परमात्म प्रकाश
प्रवचन भाग-७

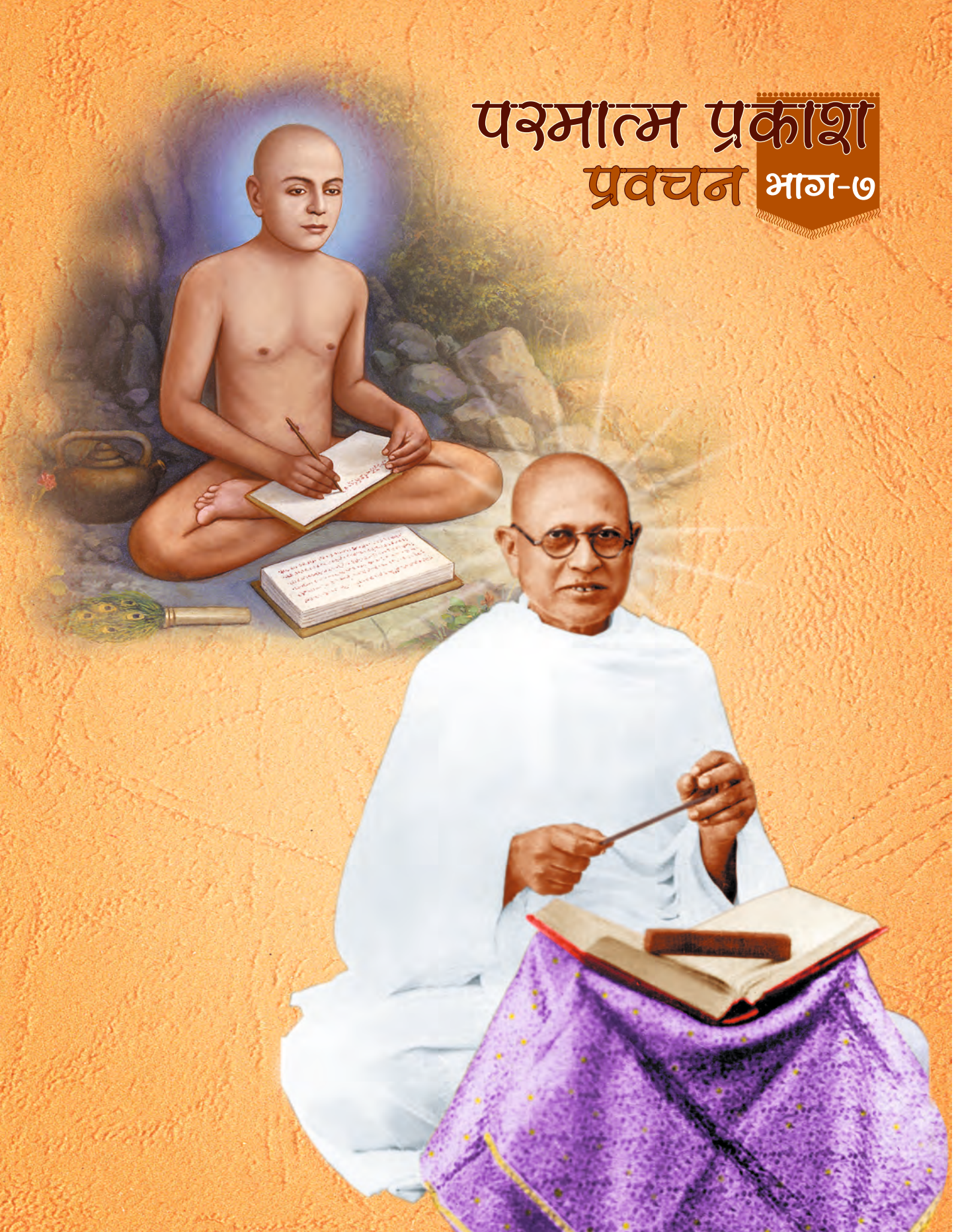

ॐ

श्री सिद्ध परमात्मने नमः
श्री सीमंधरदेवाय नमः
श्री सद्गुरुदेवाय नमः
श्री निजशुद्धात्मने नमः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

भाग–1

परमपूज्य योगीन्द्रदेव कृत परमात्मप्रकाश ग्रन्थ पर
अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
के शब्दशः प्रवचन (द्वितीय अधिकार)
गाथा 120 से 163, प्रवचन क्रमांक 185 से 214

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला–भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

—: प्रकाशन :—

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं।।

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवर्तमान जिनशासन अखण्ड मोक्षमार्ग से आज भी सुशोभित है। वीर प्रभु की दिव्यध्वनि में प्रकाशित मोक्षमार्ग, तत्पश्चात् हुए अनेक आचार्यों तथा सन्तों द्वारा अखण्डरूप से प्रकाशित हो रहा है। आचार्यों की परम्परा का इतिहास दृष्टिगोचर किया जाये तो श्री योगीन्द्रदेव ई.स. छठवीं शताब्दी में हुए है। आपश्री ने स्वयं की सातिशय अनुभवलेखनी द्वारा अनेक महान परमागमों की रचना की है। आपने स्वानुभवदर्पण, परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहापाहुड़ इत्यादि अनेक वीतरागी ग्रन्थों की रचना की है। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपश्री की ही कृति है। इस ग्रन्थ में आप की स्वरूप-भावना तथा उसके आश्रय से उत्पन्न हुए स्वसंवेदनज्ञान, वीतरागी अतीन्द्रिय सुख का रस प्रत्येक गाथा में नितरता है। भव्य जीवों के हितार्थ हुई ग्रन्थरचना पाठकवर्ग को भी अत्यन्त रस उत्पन्न होने का निमित्त होती है। आपकी लेखनी में द्रव्यदृष्टि का जोर दर्शाती हुई अनेक गाथायें इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती हैं।

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के टीकाकार श्री ब्रह्मदेवजी भी अध्यात्मरसिक महान आचार्य थे। उनका मूल नाम 'देव' और बालब्रह्मचारी होने से ब्रह्मचर्य का बहुत रंग होने के कारण 'ब्रह्म' उनकी उपाधि हो जाने से 'ब्रह्मदेव' नाम पड़ा था। वे ई.स. 1070 से 1110 के दौरान हुए हैं, ऐसा माना जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने संस्कृत टीका का आधार लेकर अन्वयार्थ तथा उनके समय की प्रचलित देशभाषा ढूंढारी में सुबोध टीका रची है। ग्रन्थ दो महाअधिकारों में विभाजित है। आत्मा-परमात्मा किस प्रकार हो, इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होता है।

प्रथम अधिकार में भेद विविक्षा से आत्मा—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक संसारी जीव को भेदज्ञान निरन्तर भाना चाहिए, इसका विस्तार से वर्णन करके परमात्मा होने की भावना बतलायी है। द्वितीय अधिकार में प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल की रुचि होने के लिये सर्व प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल का स्वरूप बतलाया है।

प्रवर्तमान जिनशासन में हम सबके परम तारणहार भावितीर्थाधिनाथ शासन दिवाकर

अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लुप्तप्रायः अखण्ड मोक्षमार्ग को पुनः जागृत करके भरतक्षेत्र के जीवों पर अविस्मरणीय अनन्त उपकार किया है। जन्म-मरण से मुक्त होना और सादि-अनन्त स्वरूपसुख में विराजमान होने का मार्ग पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वयंबुद्धत्व योग प्रगट कर प्रकाशित किया है। उनका इस काल में उदय वह एक ऐसी अपूर्व घटना है, जैसे सूर्य प्रकाशित होने पर कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भव्य जीवों का आत्मा रसविभोर होकर पुलकित होकर खिल उठता है। अनेक जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के प्रति प्रयत्नशील बने हैं। और पंचम काल के अन्त तक गुरुदेवश्री द्वारा प्रस्थापित मोक्षमार्ग अखण्डरूप से प्रवर्तमान रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक अध्यात्म शास्त्रों पर अनुभवरस झरते प्रवचन प्रदान किये हैं। उनमें से यह एक ग्रन्थ है—परमात्मप्रकाश। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रवचन डी.वी.डी. में आज मौजूद है, उन्हें सुनते हुए गुरुदेवश्री की अमीरस झरती वाणी के दर्शन होते हैं। गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन में अनेक पहलुओं से आत्मस्वरूप को प्रकाशित करता हुआ तत्त्व प्रकाशमान होता है। आपश्री की उग्र अध्यात्मपरिणति के दर्शन वाणी द्वारा हो सकते हैं। पूर्वापर अविरोध वाणी, अनुभवशीलता, आत्मा को सतत् जागृत करनेवाली वाणी का लाभ जिन्होंने प्रत्यक्ष प्राप्त किया है, वे धन्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने किसी भी प्रकार के संस्कृत, व्याकरण के अभ्यास बिना आचार्यों के हृदय खोलकर जो अनुपम भाव उन्होंने जगत के समक्ष प्रकाशित किये हैं, वह अलौकिक है! स्वलक्ष्य से स्वयं के भावों के साथ मिलान करके उन्हें समझा जाये तो वह एक अपूर्व कल्याण का कारण है। पूज्य गुरुदेवश्री के लिये या उनकी वाणी के लिये कुछ भी कहना, लिखना अथवा बोलना वह सूर्य को दीपक बतलाने के समान है। तथापि गुरुदेवश्री का अमाप उपकार हृदयगत होने पर शब्द अपने आप ही भक्तिभाव से निकल पड़ते हैं। आपश्री के उपकार का बदला तो किसी भी प्रकार से चुकाया जा सके, ऐसा नहीं है मात्र उनके द्वारा प्रकाशित पन्थ पर शुद्ध भावना से प्रयाण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा स्थापित अनेक जिनमन्दिरों में आज उनके प्रवचन नियमितरूप से सुने जा रहे हैं। अनेक मुमुक्षु उनका लाभ लेकर मोक्षमार्ग में आरूढ़ होने के लिये प्रयत्नशील हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी सबकी भावना होने से पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचनों को शब्दशः ग्रन्थारूढ़ करने के निर्णय के फलस्वरूप परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचनों का प्रस्तुत चौथा भाग प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। ऐसा सौभाग्य प्राप्त होने का श्रेय भी पूज्य गुरुदेवश्री को ही जाता है।

गुरुदेवश्री की सातिशय वाणी नित्य श्रवण करना, वह अपूर्व सौभाग्य है। आज अनेक जिनमन्दिरों में पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन सुनते समय मुमुक्षु उनके अक्षरशः प्रवचनों को

सुनने का लाभ ले रहे हैं। अनेक मुमुक्षु जीवों की भावना होने से परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचन प्रकाशित करने का निर्णय हमारे ट्रस्ट ने लिया। पूज्य गुरुदेवश्री के इस ग्रन्थ पर दो बार के प्रवचन सी.डी. में उपलब्ध हैं। उनमें से ई.स. 1976-1977 में हुए कुल 245 प्रवचनों को आठ भागों में प्रकाशित करने की भावना है। प्रवचनों को सर्व प्रथम सुनकर कम्प्यूटर में टाईप कर लिया जाता है। तत्पश्चात् उन्हें सुनकर वाक्य पूर्ण करने की आवश्यकता हो, वहाँ कोष्ठक भरा जाता है। इन प्रवचनों के प्रथम प्रूफ को जाँचते समय फिर से उन्हें सुनकर चैक किया जाता है। पूज्य गुरुदेवश्री के भाव यथावत् बने रहें, इसकी विशेष सावधानी रखने का प्रयत्न किया है तथापि प्रमादवश कहीं चूक रह गयी हो तो वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति शुद्ध अन्तःकरण से क्षमायाचना करते हैं। पाठकवर्ग से भी अनुरोध है कि यदि कहीं कोई क्षति दृष्टिगोचर हो तो हमें सूचित करें, जिससे अपेक्षित संशोधन किया जा सके।

परमात्मप्रकाश के इस सातवें भाग के प्रवचनों का गुजराती में कम्प्यूटराईज्ड करने का कार्य श्री निलेशभाई जैन, भावनगर द्वारा तथा प्रत्येक प्रवचनों को सुनकर-पढ़कर चैक करने का कार्य आत्मार्थी स्व० श्री चेतनभाई मेहता राजकोट द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत भावना प्रधान अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का लाभ हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी प्राप्त करे, इस भावना से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। साथ ही सी.डी. से मिलानकर प्रत्येक प्रवचन की यथासम्भव शुद्धता का ध्यान रखा गया है। हम अपने सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में जिनेन्द्र परमात्मा, सर्व आचार्य भगवन्तों, ज्ञानी सद्गुरु परमपुरुष के उपकार को हृदयगत करके, उनके चरणों में बारम्बार वन्दना करके नतमस्तक होते हैं। सभी जीव पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी को पढ़कर, सुनकर आत्मकल्याण के मार्ग में अनुगमन कर शाश्वत् सादि-अनन्त समाधिसुख को प्राप्त करें, यही भावना है।

यह पुस्तक vitragvani.com में शास्त्रभण्डार के अन्तर्गत पूज्य गुरुदेवश्री के शब्दशः प्रवचन और vitragvani app पर भी उपलब्ध है।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्‌या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्‌यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्‌यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने

से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से

मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में

कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा

पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖❖❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	गाथा	दिनांक	पृष्ठ क्रमांक
१८५	१२० से १२२	१४-०१-१९७७	००१
१८६	१२२, १२३	१५-०१-१९७७	०२३
१८७	१२३ से १२५	१६-०१-१९७७	०४१
१८८	१२५, १२६	१७-०१-१९७७	०६२
१८९	१२६, १२७	१८-०१-१९७७	०७९
१९०	१२७, १२८	१९-०१-१९७७	०९९
१९१	१२९, १३०	२०-०१-१९७७	११९
१९२	१३०, १३१	२१-०१-१९७७	१३७
१९३	१३२	२२-०१-१९७७	१५३
१९४	१३३, १३४	२३-०१-१९७७	१७०
१९५	१३५, १३६	२४-०१-१९७७	१८८
१९६	१३७, १३८	२५-०१-१९७७	२०६
१९७	१३८, १३९	२६-०१-१९७७	२२४
१९८	१४०, १४१	२७-०१-१९७७	२४१
१९९	१४१, १४२	२८-०१-१९७७	२५७
२००	१४३	२९-०१-१९७७	२७३
२०१	१४४	३०-०१-१९७७	२८९
२०२	१४५, १४६	३१-०१-१९७७	३०५
१७१	१४६, १४७	१६-०७-१९६५	३२१
१७२	१४८, १४९	१७-०७-१९६५	३४३
१७३	१५०, १५१	१८-०७-१९६५	३६६
२०५	१५२, १५३	०३-०२-१९७७	३९०
२०६	१५३	०४-०२-१९७७	४०६
२०७	१५४, १५५	०५-०२-१९७७	४२२
२०८	१५५, १५६	०६-०२-१९७७	४४०
२०९	१५६, १५७	०७-०२-१९७७	४५७
२१०	१५७, १५८	०८-०२-१९७७	४७३
२११	१५९	०९-०२-१९७७	४९०
२१२	१६०, १६१	१०-०२-१९७७	५०६
२१३	१६१, १६२	११-०२-१९७७	५२३
२१४	१६२, १६३	१२-०२-१९७७	५४१

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

श्रीमद्योगीन्दुदेवविरचितः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

(भाग - ७)

गाथा - १२०

अथ यधप्यल्पमपि दुःखं सोढुमसमर्थस्तथापि कर्माणि किमिति करोषीति शिक्षां प्रयच्छति–

२४३) जिय अणु–मित्तु वि दुक्खडा सहण ण सक्कहि जोइ।
चउ–गइ–दुक्खहँ कारणइँ कम्मइँ कुणहि किं तोइ।।१२०।।

जीव अणुमात्राण्यपि दुःखानि सोढुं न शक्नोषि पश्य।
चतुर्गतिदुःखानां कारणानि कर्माणि करोषि किं तथापि।।१२०।।

जिय इत्यादि। जिय हे मूढजीव अणु–मित्तु वि अणुमात्राण्यपि। कानि। दुक्खडा दुःखानि सहण ण सक्कहि सोढुं न शक्नोषि जोइ पश्य। यधपि चउ–गइ–दुक्खहं कारणइं परमात्म–भावनोत्पन्नतात्त्विकवीतरागनित्यानन्दैकविलक्षणानां नारकादिदुःखानां कारणभूतानि कम्मइं कुणहि किं कर्माणि करोषि किमर्थं तोइ यधपि दुःखानीष्टानि न भवन्ति तथापि इति। अत्रेदं व्याख्यानं ज्ञात्वा कर्मास्त्रवप्रतिपक्षभूत–रागादिविकल्परहित निजशुद्धात्मभावना कर्तव्येति तात्पर्यम्।।१२०।।

आगे जो थोड़े दुःख भी सहने को असमर्थ है, तो ऐसे काम क्यों करता है, कि जन्मों से अनंत काल तक तू भोगे, ऐसी शिक्षा देते हैं–

यदि अत्यल्प दुखों को भी तू सहन न कर सकता रे जीव।
तो फिर चौगति दुख के कारण क्यों करता है कर्म सदैव।।१२०।।

अन्वयार्थ :– [जीव] हे मूढ़जीव, तू [अमुमात्राण्यपि] परमाणुमात्र (थोड़े) भी [दुःखानि] दुःख [सोढुं] सहने को [न शक्नोषि] नहीं समर्थ है, [पश्य] देख [तथापि] तो फिर [चतुर्गतिदुःखानां] चार गतियों के दुःख के [कारणानि कर्माणि] कारण जो कर्म हैं, [किं करोषि] उनको क्यों करता है?

भावार्थ :–परमात्मा की भावना से उत्पन्न तत्त्वरुप वीतराग नित्यानंद एक परम स्वभाव उससे भिन्न जो नरकादिक के दुःख उनके कारण कर्म ही हैं। जो दुःख तुझे अच्छे नहीं लगते, दुःखों को अनिष्ट जानता है, तो दुःख के कारण कर्मों को क्यों उपार्जन करता है? मत कर। यहाँ पर ऐसा व्याख्यान जानकर कर्मों के आस्रव से रहित तथा रागादि विकल्प–जालों से रहित जो निजशुद्धात्मा की भावना वही करनी चाहिए, ऐसा तात्पर्य जानना।।१२०।।

वीर संवत् २५०२, पौष कृष्ण ९, शुक्रवार
दिनांक- १४-०१-१९७७, गाथा - १२०, १२१, १२२, प्रवचन-१८५

परमात्मप्रकाश, १२० गाथा का भावार्थ चलता है। **परमात्मा की भावना से उत्पन्न...** लो। आज उत्तरायण है, उसका पहला शब्द आया आज। उत्तरायण कहते हैं न, मकर संक्रान्त, उत्तरायण सूर्य का फिरना, उत्तर की ओर जाता है सूर्य। इसी प्रकार आत्मा अपना परमात्मा जो चिदानन्दस्वरूप शुद्ध, उसकी भावना से उत्पन्न। आहाहा! शुद्ध चिदानन्द आत्मा ध्रुवस्वरूप चिदानन्द आनन्दकन्द प्रभु आत्मा है। आहाहा! ऐसा परमात्मा अपना निजस्वरूप, उसकी भावना—उसकी एकाग्रता—उसकी सन्मुखता से उत्पन्न हुआ, **तत्त्वरूप वीतराग नित्यानन्द एक परम स्वभाव...** वहाँ 'एक' शब्द पड़ा रहा है। सब जगह एक नहीं डालते ये। **वीतराग नित्यानन्द एक...** एक चाहिए वहाँ। सब जगह 'एक' नहीं डालते ये। पाठ में 'एक' आता है। क्या कहते हैं?

मांगलिक शुरु करते हैं महा। आहाहा! परमात्मा आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शुद्धात्मा,

पुण्य और पाप के मेल की अशुद्ध अवस्था से भिन्न ऐसा भगवान परमात्मा अपना स्वरूप, उसकी एकाग्रता से, उसकी सन्मुखता से उत्पन्न हुआ। त्रिकाली परमात्मा तो ध्रुव है और उसकी भावना, वह वर्तमान पर्याय है। वर्तमान पर्याय अन्तर-सन्मुख हुई, उससे उत्पन्न हुआ **तत्त्वरूप वीतराग नित्यानन्द...** आहाहा! जगत के सुख जो इन्द्रिय के विषय के, वे तो जहर और राग है। आहाहा! समझ में आया? तो यह तत्त्वरूप वीतराग आनन्द है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? तात्त्विक है न? शब्द में पाठ है संस्कृत में, तात्त्विक। अर्थात् क्या? यह इन्द्रिय के विषय जो सुख है, वह तो काल्पनिक अतात्त्विक है, वह तो दुःख है और यह तात्त्विक सुख है। आहाहा!

परमात्मा अपना निजस्वरूप। अरे! यह कैसे बैठे? यह परमात्मप्रकाश है न, इसलिए परमात्मा लिया पहले। तेरा स्वरूप ही परमात्मा त्रिकाल शुद्धात्मा है, तुझे तेरी खबर नहीं। समझ में आया? शरीर नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं, पुण्य-पाप का राग नहीं उसमें और एक समय की पर्याय नहीं—ऐसा शुद्ध परमात्मतत्त्व। आहाहा! उसकी भावना, वह पर्याय है। उससे उत्पन्न हुआ **तत्त्वरूप वीतराग नित्यानन्द एक परम स्वभाव...** आहाहा! तत्त्वरूप वास्तविक रूप, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वीतराग नित्यानन्द, वीतरागी कायमी आनन्दरूप एक परमस्वभाव, **उससे भिन्न....** लो, यह आया, उससे भिन्न कर्म। पुण्य-पाप के फल नरकादि के दुःख, वह आत्मा के वीतरागी परम तत्त्व से भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? **नरकादि के दुःख...** नरकादि शब्द से चारों गति के। स्वर्ग भी दुःख है। समझ में आया? सेठ आये हैं। थोड़ा बजा है, पड़ गये थे कहते हैं। मैंने कहा, आयेंगे या नहीं? पड़ गये थे थोड़े। पड़ गये थे। भाई ने कहा, बसन्तीलाल। शरीर ऐसा है, यह जड़-मिट्टी है। आहाहा!

अन्दर आत्मा में दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव होते हैं, वह भी पुण्य और विकार है और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, वह भाव पापरूपी विकार वासना है। इन दोनों विकारों से रहित परमात्मा अपना स्वरूप, आहाहा! उसकी एकाग्रता से उत्पन्न हुआ तात्त्विक वीतराग नित्यानन्द एक परम सुख। आहाहा! वास्तविक तत्त्व का तात्त्विक सुख। आहाहा! भाषा तो कैसी प्रयोग की है, देखो न! चक्रवर्ती और इन्द्रों के भोग जो है, वे तो अतात्त्विक काल्पनिक सुख है, दुःख है। आहाहा! भगवान आत्मा

परमात्मस्वरूप अपना, उसके सन्मुख होकर उत्पन्न हुआ तात्त्विक वीतराग परमानन्द एक परम स्वभाव। आहाहा! **उससे भिन्न नरकादिक के दुःख...** नरक शब्द से चारों गति है। आहाहा! नरकगति हो, तिर्यंचगति हो, मनुष्यगति हो या देवगति हो, चारों गतियाँ दुःखरूप हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : मनुष्यगति भी दुःखरूप?

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्यगति दुःखरूप है। यह तुम सब पैसेवाले दुःखी हो, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पैसेवाले तो दुःखी हैं परन्तु मनुष्य भी दुःखी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य की गति है, वह दुःखरूप है। वह विकारी पर्याय है न!

मुमुक्षु : उससे तो सुख का साधन होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सुख का साधन होता है? धूल भी नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! बहुत शब्द आये पहले। यह शब्द और यहाँ ऐसा डाला, तात्त्विक शब्द। आहाहा! ऐसा कहने में, स्वर्ग आदि में जो सुख दिखता है, वह तात्त्विक नहीं। वह तो काल्पनिक है। आहाहा! यह करोड़ोंपति, अरबोंपति बेचारे दुःखी हैं, वह काल्पनिक सुख मानते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आप कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं? इसमें है या नहीं? आहाहा!

भगवान! तात्त्विक सुख कहाँ से उत्पन्न होता है? ऐसा कहते हैं। परमात्मा जिनवरदेव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञपरमात्मा ऐसा कहते हैं, वह सन्त कहते हैं। तात्त्विक सुख कैसे उत्पन्न होता है? कि भगवान अन्दर अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु है... आहाहा! उसकी सन्मुखता में एकाग्रता से तात्त्विक वीतरागी परमानन्द नित्य एकस्वभाव उत्पन्न होता है। आहाहा! बाकी सब थोथा है। कहो, पोपटभाई! पोपटभाई कहते हैं, वहाँ पैसे में सुख हो तो हम यहाँ किसलिए आये? वहाँ धूल तो इनके पास बहुत है।

मुमुक्षु : मुम्बई में एयरकन्डीशनर में रहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एयरकन्डीशन, दुःख है, वहाँ दुःख। वहाँ सुख हो तो यहाँ सुनने किसलिए आये? दुःख है दुःख। यह देखा था। वह सर्दी का और गर्मी का हमने एक बार देखा था। मोरबी से ववाणिया जाना था न, ववाणिया वहाँ बीच में आया था, छह कोस गाँव। दरबार का किसी का था। उस बँगले में उतरे थे न! वहाँ गर्मी का था बड़ा अन्दर, चाहे जैसी सर्दी हो तो भी गर्मी (लगे)। क्या कुछ कहते होंगे उसे? हीटर। था अन्दर, हमने देखा था कि यह है। बड़ा बँगला था। वह गाँव कुछ था छह कोस, नहीं? मोरबी से। बरवाळा? हाँ वह। छह कोस ववाणिया गये थे न तो बीच में रहे थे। धूल में नहीं बँगला-फँगला में। आहाहा! इसके अतिरिक्त हमने देखा नहीं था। ढाई-साढ़े तीन करोड़ का बँगला, मैसूर। मैसूर... मैसूर। वह राजा चला गया था वहाँ से। साढ़े तीन करोड़ का बड़ा बँगला है, खाली था। दरबार चले गये थे। क्योंकि उसमें से टैक्स भरना पड़े न! गये थे नहीं हम एक बार? देखने गये थे। आहाहा! धूल में भी नहीं। पैसे में सुख नहीं, मकान में सुख नहीं, स्त्री के शरीर में सुख नहीं। आहाहा! वे तो सब कल्पना के सुख, दुःख हैं। मिथ्यादृष्टि मूढ़ उसमें सुख मानता है।

मुमुक्षु : धन्धा-व्यापार?

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धा-व्यापार के भाव सब दुःख है। बड़ा दुःख। आहाहा!

आत्मा अन्तर भगवान परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि यह परमात्मा अपना निजस्वरूप जो त्रिकाली अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु है, उसकी एकाग्रता से नित्यानन्द स्वभाव प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! जिस धर्म में अतीन्द्रिय आनन्द आवे, वह धर्म। जिसमें राग आवे, वह अधर्म और दुःख है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! तेरी तुझे खबर नहीं। तेरा असली स्वरूप क्या है और नकली क्या है? समझ में आया? तेरा असली स्वरूप भगवान जिनवरदेव ऐसा फरमाते हैं कि असली स्वरूप तो तेरा वीतराग परमानन्दस्वरूप, वह तेरा असली स्वरूप है। आहाहा! तथा पुण्य और पाप के विकल्प, वे सब नकली स्वरूप है, तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! लो, उसमें भी आ गया भाई तुम्हारा। व्यवहाररत्नत्रय नकली स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? बापू! मार्ग सूक्ष्म है, भाई! दुनिया को खबर नहीं। ऐसे का

ऐसा अन्ध मूर्ख की तरह मूढ़ता से व्यापार और धन्धा करे, पाँच-पाँच हजार, दस हजार महीने में पैदा करे, इसलिए ऐसा मानो कि हम सुखी हैं। धूल में भी नहीं, पागल है। पोपटभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : मुम्बई का बाजार सब पागल है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा बाजार पागल क्या, पूरा देश पागल है। अभी यहाँ कहेंगे। आहाहा! भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, आहाहा! उसकी भावना से— उसमें एकाग्रता से तात्त्विक वीतराग परमानन्द सुख से विपरीत चार गति के दुःख (उत्पन्न होते हैं)। आहाहा!

उन **नरकादिक के दुःख उनके कारण कर्म ही हैं।** देखो! आहाहा! चार गति के दुःख का कारण कर्म है। पुण्य-पाप के कर्म। वे पुण्य-पाप के कर्म पुण्य-पाप के भाव से उत्पन्न होते हैं। आहाहा! पुण्य और पाप दोनों भाव कर्म उत्पन्न करनेवाले हैं, इसलिए दुःखरूप है। समझ में आया? ऐसी व्याख्या लोगों को कठिन पड़ती है। क्या करे, कभी अभ्यास नहीं। जगत के अन्ध अभ्यास के समक्ष मूढ़ अभ्यास सब। बी.ए. और एल.एल.बी. के बड़े पूंछड़े लगावे। एम.ए., (वह) अज्ञान है, वह तो। क्या कहा?

मुमुक्षु : पूंछड़े लगाये बिना कमाया नहीं जाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके बिना कमाते हैं। रामजीभाई से बहुत पढ़े हुए थे, वह था एक, बड़ा बेरिस्टर। क्या नाम? भूल गये। गीजुभाई बड़ा बेरिस्टर घर की रोटियाँ खाता था। कोई एक भी ग्राहक भी नहीं आता था। ग्राहक क्या कहलाता है तुम्हारे वह? असील... असील। और यह रामजीभाई तो कहीं इतना अधिक पढ़े भी नहीं, तो भी पाँच सौ-पाँच सौ, हजार रुपये (कमाते हैं)। हें? वकालत सीखे हुए दुःख की सब। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कुज्ञान... कुज्ञान... बापू! यह कहेंगे, अभी कहेंगे। श्रेष्ठ ज्ञान नहीं है, यह कहेंगे बाद की गाथा में। आहाहा!

भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप परमात्मा-आत्मा अन्दर विराजता है। आहाहा! उससे उत्पन्न हुआ, उसकी भावना से उत्पन्न तत्त्वज्ञान, उससे उत्पन्न हुआ वीतरागी आनन्द। आहाहा! **उससे भिन्न जो नरकादि के दुःख, उनके कारण कर्म ही हैं।** आहाहा!

जो दुःख तुझे अच्छे नहीं लगते,... प्रभु! तुझे दुःख नहीं लगते। आहाहा! थोड़ा भी दुःख तुझे अच्छा नहीं लगता। आहाहा! है? **दुःखों को अनिष्ट जानता है, तो दुःख के कारण कर्मों को क्या उपार्जन करता है?** आहाहा! देखो! सन्तों की करुणा के शब्द। दिगम्बर सन्त, आहाहा! जंगल में रहनेवाले अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन-अनुभवी। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवी ऐसा कहते हैं कि अरे प्राणी! देख तो सही! तुझे थोड़ा दुःख भी सहन नहीं होता तो बहुत दुःख का कारण ऐसा कर्म, तू किसलिए बाँधता है? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **मत कर।** यह पुण्य-पाप के भाव ही न कर। आहाहा! जिससे कर्म बँधते हैं और कर्म से चार गति के दुःख मिलते हैं। आहाहा! देखो! मत कर, कहते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! जिनवर का-जिनवरपंथ वीतरागमार्ग कोई अलौकिक है। लोग जैन के नाम से अजैन को धर्म मानते हैं। जैन धर्म क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! जैनधर्म तो यह है कि निज परमात्मा की एकाग्रता से उत्पन्न अतीन्द्रिय आनन्द, वह धर्म है। समझ में आया? आहाहा! इसमें सब करोड़पति और अरबोंपति तो दुःख में गोते खाते हैं। आहाहा! दुःखी प्राणी है।

मुमुक्षु : गरीब व्यक्ति से तो कम दुःखी हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे अधिक दुःखी हैं। लक्ष्मी मेरी, ऐसी मान्यता अधिक है तो दुःखी अधिक हैं। ऐई... सेठ! दलाली करते हैं भाई। पैसे कब तुम्हारे थे? तुम्हारे पिता के पास थे? वे तो अजीव हैं, पैसा तो अजीव है, धूल है, पुद्गल है, मिट्टी है, मूर्त है, अजीव है। वे जीव के होंगे? अजीव जीव का होगा? आहाहा! बापू! तुझे तत्त्व की खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मत कर। यहाँ पर ऐसा व्याख्यान जानकर कर्मों के आस्रव से रहित... देखो! कर्मों का आस्रव अर्थात् पुण्य-पाप के भाव से रहित **तथा रागादि विकल्प-जालों से रहित...** आहाहा! यह पुण्य-पाप। शुभ और अशुभराग है, दोनों आस्रव है, बन्ध का कारण है। आहाहा! **विकल्प-जालों से रहित जो निज शुद्धात्मा की भावना...** आहाहा! निज शुद्धात्मा। परमात्मा वीतराग की (भी) नहीं। वीतराग, वे तो परद्रव्य हैं, परपदार्थ हैं। आहाहा! निजशुद्धात्मा भगवान आत्मा। आहाहा! है? 'निज' शब्द पड़ा है।

'**निजशुद्धात्मभावना**' पाठ है। निजशुद्धात्मा। पुण्य-पाप के भाव तो अशुद्ध हैं, मलिन हैं, दुःख है। आहाहा! उसके कारण से कर्म बँधते हैं और कर्म के कारण से चार गति मिलती है। आहाहा! पुण्यभाव भी दुःख है। आहाहा! लोगों को यह ऐसा लगता है, कठिन लगता है मानो। ऐसा लोग कहते हैं, यह सोनगढ़ से निकला है, ऐसा कहते हैं। परन्तु यह पुस्तक किसकी है? दिगम्बर आचार्यों की-सन्तों की पुस्तक हैं।

मुमुक्षु : विवाद ऐसा है कि यह लिखा है, वह सच्चा है, परन्तु इसका अर्थ आप करते हो, वह खोटा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अर्थ विशेषता से सामान्य में लोगों को नहीं समझ में आये, इसलिए उसकी विशेषता करके स्पष्ट करते हैं। यह तो सामान्य में है, उसका स्पष्टीकरण है। आहा! आया न, देखो!

रागादि विकल्प-जालों से रहित... यह व्याख्या क्या है? कि पुण्य-पाप का राग है, वह विकल्प-जाल है।

मुमुक्षु : पाप विकल्प जाल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य और पाप दोनों विकल्प जाल हैं। सोना की बेड़ी पुण्य है और लोहा की बेड़ी पाप है। आहाहा! लोगों को कुछ खबर नहीं। वस्तु में भेद कहाँ है? वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! दोनों बन्ध के कारण हैं। दोनों में अन्तर मानता है, वह घोर संसार में भटकता है, ऐसा प्रवचनसार गाथा ७७ में आया है। आहाहा!

मुमुक्षु : कुछ तो करने का बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करने का कहते हैं न! राग से रहित भगवान आत्मा में दृष्टि और ज्ञान कर। यह करने का नहीं है? आहाहा! समझ में आया? सेठ! बीड़ी और तम्बाकू का करना, वह करने का है? बहुत तूफान किये हैं इन्होंने। तम्बाकू के ढ़ेर और... आहाहा!

मुमुक्षु : वे तो उसके कारण से आये हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भाव किसका? पूरी तम्बाकू की वह भरी है। सामने गोदाम सब। इनके घर में घुसने से बाहर।

मुमुक्षु : वे तो आने योग्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : आने योग्य (आये परन्तु) भावना किसकी थी? लाखों पैदा करें, वह सब भाव विकार-दुःख है। सेठ! ऐसी बात है, भगवान! इनका नाम भगवान है। इन सेठ का नाम शोभालाल है। तो शोभा किसकी? आत्मा के स्वभाव की परिणति की शोभा है। सेठ! पुण्य-पाप की शोभा नहीं। आहाहा! बात तो ऐसी है, भाई! आहाहा! अरेरे! चौरासी के अवतार में भटक-भटक कर दुःखी है, कहेंगे। आहाहा!

निज शुद्धात्मा की भावना वही करनी चाहिए,... लो, किसलिए यह आया। सेठ! **निज शुद्धात्मा की भावना वही करनी चाहिए, ऐसा तात्पर्य जानना।** उसमें ऐसा रहस्य जानना चाहिए। आहाहा! लो, आयी वहीं की वहीं गाड़ी वापिस। निज द्रव्य में एकाग्रता—भावना करना, एक ही बात है। आहाहा! १२० (गाथा) हुई।

गाथा - १२१

अथ बहिर्व्यासंगासक्तं जगत् क्षणमप्यात्मानं न चिन्तयतीति प्रतिपादयति–

२४४) धंधइ पडियउ सयलु जगु कम्मइँ करइ अयाणु।
मोक्खहँ कारणु एक्कु खणु णवि चिंतइ अप्पाणु।।१२१।।

धान्धे (?) पतितं सकलं जगत् कर्माणि करोति अज्ञानि।
मोक्षस्य कारणं एकं क्षणं नैव चिन्तयति आत्मानम्।।१२१।।

धंधइ इत्यादि। धंधइ धान्धे मिथ्यात्वविषयकषायनिमित्तोत्पन्ने दुर्ध्यानार्तरौद्रव्यासंगे पडियउ पतितं व्यासक्तम्। किम्। सयलु जगु समस्तं जगत्, शुद्धात्मभावनापराङ्मुखो मूढप्राणिगणः कम्मइं करइ कर्माणि करोति। कथंभूतं जगत्। अयाणु विशिष्ट भेदज्ञानरहितं मोक्खहं कारणु अनन्तज्ञानादिस्वरुपमोक्षकारणं एक्कु खणु एकक्षणमपि णवि चिंतइ नैव ध्यायति। कम्। अप्पाणु वीतरागपरमाह्लादरसास्वादपरिणतं स्वशुद्धात्मानमिति भावार्थः।।१२१।।

आगे बाहर के परिग्रह में लीन हुए जगत् के प्राणी क्षणमात्र भी आत्मा का चिंतवन नहीं करते, ऐसा कहते हैं–

धन्धों में उलझे सारे अज्ञानी कर्म करें दिन रात।
किन्तु आत्मा का चिन्तन करते नहिं जिससे हो शिव प्राप्त।।१२१।।

अन्वयार्थ :– [धांधे पतितं] जगत् के धंधे में पड़ा हुआ [सकलं जगत्] सब जगत् [अज्ञानि] अज्ञानी हुआ [कर्माणि] ज्ञानावरणादि आठों कर्मों को [करोति] करता है, परन्तु [मोक्षस्य कारणं] मोक्ष के कारण [आत्मानम्] शुद्ध आत्मा को [एकं क्षणं] एक क्षण भी [नैव चिंतयति] नहीं चिन्तवन करता।

भावार्थ :– भेदविज्ञान से रहित ये मूढ प्राणी शुद्धात्मा की भावना से पराङ्मुख हैं, इसलिए शुभाशुभ कर्मों का ही बंध करता है, और अनंतज्ञानादिस्वरुप मोक्ष का कारण जो वीतराग परमानन्दरुप निजशुद्धात्मा उसका एकक्षण भी विचार नहीं करता। सदा ही आर्त रौद्र ध्यान में लग रहा है, ऐसा सारांश है।।१२१।।

गाथा-१२१ पर प्रवचन

१२१। **आगे बाहर के परिग्रह में लीन हुए...** लो आया। बाहर के परिग्रह में **लीन हुए जगत के प्राणी क्षणमात्र भी आत्मा का चिन्तवन नहीं करते,...** आहाहा! १२१।

२४४) धंधइ पडियउ सयलु जगु कम्मइँ करइ अयाणु।
मोक्खहँ कारणु एक्कु खणु णवि चिंतइ अप्पाणु।।१२१।।

अन्वयार्थ—जगत के धन्धे में पड़ा हुआ,... है? धन्धा, इस बीड़ी के धन्धे में और टाईल्स के धन्धे में पड़े हुए। वे सब धन्धे पाप के। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! निवृत्ति नहीं मिलती। नवराश को क्या कहते हैं? फुरसत। फुरसत नहीं मिलती। ग्राहक इतने हों कि फुरसत नहीं मिलती। आहाहा! हमारे पालेज में अभी नयी दुकान हुई न, तीन भाई अलग हुए। बड़ा है मनसुख, बड़ी उम्र का। ७४ के वर्ष में जन्म है। ५९-६० वर्ष हुए और पहले से तो लोग बहुत ग्राहक आवे। फुरसत नहीं होती। यहाँ आया तो रामजीभाई ने पूछा, कहा तो उसका जवाब भी नहीं दिया। पालेज। हमारी दुकान थी न वहाँ, दुकान थी। पिताजी की दुकान थी। हम वहाँ नौ वर्ष रहे थे। वह दुकान तो अब बड़ी हो गयी। तीन लाख की आमदनी है। एक दुकान की एक वर्ष की तीन लाख की आमदनी है। परन्तु घुस गये, यह करना और यह करना। इज्जत बढ़ गयी है, पैसा बहुत... क्या कहलाता है? उधारी, उधारी। उघराणी को क्या कहते हैं? बहुत उधार देते हैं? पन्द्रह-पन्द्रह लाख की उधारी, आठ-आठ लाख की उधारी। लोग आवे तो निवृत्त न हो। वह यह कहते हैं, देखो! **जगत के धन्धे में पड़ा हुआ...** आहाहा! यह तुम्हारा आया इसमें सब। सेठ!

मुमुक्षु : पूरे जगत का आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बड़े को सामने कहा जाता है न। बड़े में खीला अधिक होते हैं। रचना-बाड़ हो न बाड़। एक-एक लकड़ी में एक खीला हो और सब लकड़ी में पचास-सौ खीला हो। लकड़ी के होते हैं न। यह तो अब सब पत्थर का हो गया। परन्तु मोघ होता है न मोघ। तो एक-एक वह होती है एक-एक उसमें एक खीला। और

मोभ में सौ खीला। इसी प्रकार बड़े को बड़ी उपाधि का पार नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **जगत के धन्धे में पड़ा हुआ...** मुनिराज योगीन्द्रदेव सन्त दिगम्बर वनवासी थे, उन्होंने यह परमात्मप्रकाश बनाया और कहते हैं, अरे! जगत के प्राणी! **धन्धे में पड़ा हुआ सब जगत अज्ञानी हुआ...** आहाहा! **ज्ञानावरणादि आठों कर्मों को करता है,...** आहाहा! **परन्तु मोक्ष के कारण शुद्ध आत्मा को...** देखो! मोक्ष अर्थात् परमानन्द की प्राप्तिरूपी मोक्ष। अतीन्द्रिय परमानन्द की प्राप्तिरूपी मोक्ष। उसका कारण शुद्ध आत्मा। आहाहा! समझ में आया? देखो! यहाँ व्यवहाररत्नत्रय कुछ कहा नहीं मोक्ष के कारण में। शुद्धात्मा मोक्ष का कारण कहा। समझ में आया? परन्तु बात यह है कि आत्मा शुद्ध पूर्ण आनन्द है, यह बात बैठती नहीं, विश्वास आता नहीं। कभी देखा नहीं, सुना नहीं, विचार किया नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द की गाँठ है, वह तो आत्मा। आहाहा! समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का बड़ा पर्वत है। उसमें एकाग्र होता है तो आनन्द झरता है। आहाहा! धन्धे में पड़ा हुआ अज्ञानी नये-नये दुःख के कारणरूप कर्म बाँधता है, परन्तु आत्मा में एकाग्र नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? डॉक्टर को दवाखाना में पूरे दिन फँसे होते हैं। सवेरे यह किया और यह किया और यह किया। नवरंगभाई को ऑपरेशन का होगा। सबके धन्धे का होता है न, जादवजीभाई! इनको ब्याज का है कलकत्ता में।

मुमुक्षु : लड़के हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़के हैं परन्तु पहले करते थे न, करके अब फुरसत हुए और लड़के करते हैं। धारधीर समझते हो? ब्याज... ब्याज। धारधीर का धन्धा, पैसे का ब्याज उपजावे। आहाहा! सब जगत के धन्धे पाप के हैं। नया कर्म उत्पन्न करने का यह धन्धा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरेरे!

मोक्ष के कारण शुद्ध आत्मा को... आहाहा! **एक क्षण भी नहीं चिन्तवन करता।** आहाहा!

मुमुक्षु : रोज सवेरे दर्शन-पूजन करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हो गया, वह तो राग है। आता है अशुभ से बचने के लिये, परन्तु वह कोई धर्म नहीं। 'तनमन्दिर में जिन...' आया नहीं था? कल आया था न। इस शरीर-मन्दिर में जिन परमात्मा है। वे परमात्मा तो व्यवहार है। आता है अशुभ से बचने के लिये, तथापि वह चीज़ धर्म नहीं। आहाहा! देखो!

अरे! **मोक्ष के कारण... 'आत्मनम्'** आहाहा! बन्ध का कारण सकल जगत अज्ञानी धन्धे में पड़े हुए अज्ञानी नये आठ कर्म को बाँधते हैं। आहाहा! परन्तु मोक्ष अर्थात् परमानन्द की प्राप्ति, अतीन्द्रिय परमानन्द का आत्मलाभ, इसका नाम मोक्ष। अतीन्द्रिय परमानन्द का लाभ, इसका नाम मोक्ष। आहाहा! ऐसे मोक्ष का कारण **शुद्ध आत्मा को एक क्षण भी नहीं चिन्तवन करता।** देवदर्शन किये तो मानो हो गया। यात्रा कर आये। धूल में भी है नहीं, सुन न! यात्रा में तो शुभभाव है, वह धर्म कहाँ है? प्रतिदिन देवदर्शन किये, वह शुभभाव है, धर्म नहीं। होता है, आता है, परन्तु वह धर्म नहीं, वह शुभभाव है। आहाहा! लोगों को भारी कठिन पड़ता है। यह यहाँ कहते हैं, देखो! मोक्ष का कारण तो शुद्धात्मा कहा। मोक्ष का कारण कोई व्यवहाररत्नत्रय, देवदर्शन, यात्रा आदि वह मोक्ष का कारण—ऐसा नहीं कहा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मोक्ष के कारण शुद्ध आत्मा को एक क्षण भी नहीं चिन्तवन करता। प्रभु! तेरी प्रभुता को एक क्षण भी सम्हालता नहीं। आहाहा! और पामरता में चौबीस घण्टे घुस गया। आहाहा! सवेरे से शाम तक यह स्त्री और यह पुत्र और कमाना, कमाना और भोग। मर गया है उसमें आत्मा। आहाहा! इसने मार डाला। इसके जीवन का जीवन आनन्द का जीवन, उसका भावमरण किया। आहाहा! मार डाला भाई!

भावार्थ :— भेदविज्ञान से रहित... भेदविज्ञान से रहित अर्थात् राग, कर्म, शरीर और बाह्य लक्ष्मी से आत्मा भिन्न है। ऐसे पर से भिन्न ज्ञान, ऐसे भेदज्ञान से रहित। आहाहा! **मूढ़ प्राणी शुद्धात्मा की भावना से पराङ्मुख हैं,...** निज शुद्ध आनन्दस्वरूप भगवान की भावना से विमुख है। आहाहा! **इसलिए शुभाशुभकर्मों का ही बन्ध करता है,...** आहाहा! एक क्षण भी निवृत्ति लेनी हो तो ले नहीं सकता और निवृत्ति ले तो यह भगवान के दर्शन और यह, आहाहा! कहा था न हमारे पालेज दुकानदार सब। हम भी

दुकान में थे, घर की दुकान थी। अपने तो गाँव में साधु आवे तो दुकान छोड़ दें। दुकान में नहीं। दूसरे सब हमारे भाई और भागीदार पूरे दिन साधु गाँव में आये हों तो सामने न देखे। आठ बजे फुरसत होकर नामा-बामा लिखकर फिर जाये। यह ६४-६५ की बात है। संवत् १९६४-६५। साधु कहे, आये रातडिया श्रावक आये, ऐसा कहे। ऐसा धन्धा... धन्धा... धन्धा... धन्धा चले, ग्राहक हो, उसमें क्या हो धूल में। साधु गाँव में आये हों, सुनना नहीं, वहाँ दर्शन करना नहीं। ऐसा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं तो पहले से भगत कहलाता था न। (मुझे) तो निवृत्ति। गाँव में साधु आवे तो दुकान में बैठना नहीं। उनके पास उन्हें आहार-पानी देने के (आदि कार्य में लगना)। हमारे घर में तीस व्यक्ति थे न, बड़ी दुकान और तीस व्यक्ति थे, इसलिए हमारे यहाँ आहार-पानी की व्यवस्था बहुत हो। साधु को साथ में लायें, आहार-पानी ले जाये। परन्तु वे लोग आठ बजे, नौ बजे रात्रि में फुरसत हो। दिन में सामने न देखे। यह धन्धा। आहाहा!

मुमुक्षु : दिन में ग्राहक के सामने देखते थे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहते हैं, धन्धे के कारण अज्ञानी तू मूढ़ तेरे आत्मा के सन्मुख का तुझे विचार भी नहीं। आहाहा! यह तो सन्तों को कहाँ वहाँ पड़ी है पर की कि यह पर को ठीक लगेगा या ठीक नहीं लगेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो धन्धावाला ही जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धावाला ही जाने धन्धे के दुःख को। इसे भान कहाँ है। आहाहा!

एक बार भाई ऐसा बना था। हम मुम्बई माल लेने गये थे, घर की दुकान। यह तो ६५-६६ की बात है। सत्रह वर्ष की उम्र से बाईस वर्ष, पाँच वर्ष दुकान चलायी थी। छोटी उम्र में, सत्रह से बाईस। तो माल लेने गये मुम्बई। तो एक सेठ था हमारे पालेज का। वहाँ हम उतरे थे। आड़तिया रूप से थे। खाने बैठे, वहाँ बाहर टोकरी बजी। फोन... फोन बजा, इसलिए सेठ उठा। मगनभाई थे। बेचारे जड़ जैसे, भान नहीं होता।

शरीर रूपवान और पैसा, उसमें धूल में क्या है। टोकरी बजी तो उठे। परन्तु सुन! खा तो सही ठीक से, जिसके लिये कमाता है, उसमें भी चैन नहीं तुमको। मगनभाई थे। पालीताणा आवे। मर गये होंगे, अब तो बहुत वर्ष हो गये न। अभी सुना था, थोड़े समय पहले आये थे। परन्तु वह कुछ खबर नहीं होती। कमाना, बस! खाने के समय फुरसत नहीं मिलती। टोकरी (घण्टी) बजी तो बाहर गये। परन्तु तू खा तो सही, जिसके लिये कमाता है। तुमको चैन नहीं, कहा। सुने। आड़तिया थे न। हमारे गाँव के, थे पालेज के थे। अरेरे! ऐसा धन्धा। फोन आवे वहाँ उठे, एकदम! क्या कहा?

मुमुक्षु : वह तो अच्छा है, नहीं तो पाट के पास फोन रखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाट के वहाँ कहाँ हो? फोन तो बाहर होता है न। दीवार में था वहाँ। आहाहा! अरेरे! कहा, यह क्या करता है यह? खाने के लिये कमाता है, उस खाने में भी चैन नहीं। ऐ... वीरचन्दभाई! खाने के लिये कमावे और खाने में भी चैन नहीं।

यहाँ यह कहते हैं, धन्धे में फँसा हुआ प्राणी मूढ़, तेरे आत्मा का एक क्षण भी अन्तर्मुख चिन्तवन करना, अन्तर्मुख वस्तु का निधान क्या है, उसके सन्मुख देखने के लिए एक क्षण तुझे मिलता नहीं? समझ में आया? आहाहा! है? **भेदविज्ञान से रहित ये मूढ़ प्राणी शुद्धात्मा की भावना से पराङ्मुख हैं, इसलिए शुभाशुभकर्मों का ही बन्ध करता है,...** देखा! शुद्धात्मा से विमुख। चाहे तो पुण्यभाव हो या पाप हो। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के पुण्य भाव, वे भी शुद्धात्मा से विमुख हैं। आहाहा! शुद्धात्मा की भावना से वे पराङ्मुख हैं। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए शुभाशुभकर्मों का ही बन्ध करता है,...**

और अनन्त ज्ञानादिस्वरूप मोक्ष का कारण... आहाहा! अनन्त ज्ञानादिस्वरूप मोक्ष। मोक्ष की व्याख्या की। मोक्ष कैसा है? अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, ऐसा जो मोक्ष उसका कारण **जो वीतराग परमानन्दरूप निज शुद्धात्मा...** आहाहा! समझ में आया? मोक्ष अर्थात् क्या? जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त प्रभुता प्रगट होती है, उसका नाम मोक्ष। ऐसे मोक्ष का कारण **जो वीतराग परमानन्दरूप निज शुद्धात्मा उसका...** देखो! उसका कारण वीतराग परमानन्दरूप निजशुद्धात्मा उसका कारण है। आहाहा! परमात्मप्रकाश भी... आहाहा!

मोक्ष—अनन्त आनन्द की प्राप्ति, पर्याय में अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्तिरूपी मोक्ष। उस मोक्ष का कारण शुद्धात्मा। है? **वीतराग परमानन्दरूप निज शुद्धात्मा...** वह त्रिकाली। वीतराग परमानन्दरूप निजशुद्धात्मा वह पूरी चीज़। समझ में आया? पूरी चीज़ क्या और यह क्या कहते हैं? भाई! तू पूर्ण वस्तु है, भगवान! तुझे खबर नहीं। आहाहा! निज **अनन्त ज्ञानादिस्वरूप मोक्ष का कारण...** आहाहा! **वीतराग परमानन्दरूप निज शुद्धात्मा...** मोक्ष का कारण वीतराग परमानन्दरूपी निजशुद्धात्मा। आहाहा! **उसका एक क्षण भी विचार नहीं करता।** भगवान! एक क्षण तुझे तेरा विचार नहीं? आहाहा! यह भक्ति और पूजा की बात नहीं, हों! भक्ति, पूजा तो राग है। अन्तर आत्मा का क्षणमात्र भी निर्विकल्प आनन्द का तुझे विचार नहीं आता? आहाहा!

धर्मी को-सम्यग्दृष्टि को अपना विचार हो, अनुभव हो तो षट् आवश्यक आते हैं। दया, पूजा, भक्ति, परन्तु वह भाव शुभराग है। अन्तर अनुभवदृष्टिपूर्वक वह राग है। इसलिए यहाँ तो मोक्ष का कारण वह राग नहीं। मोक्ष का कारण निजशुद्धात्मा, वह मोक्ष का कारण है। उसकी एकाग्रता हो, वह तो मोक्ष का कारण है, परन्तु निजशुद्धात्मा ही मोक्ष का कारण (कहा)। आहाहा! आहाहा! समझ में आया?

एक क्षण भी विचार नहीं करता। सदा ही... यह आया न, भाई! चौबीस घण्टे बारम्बार कहते हैं न! स्त्री, पुत्र, पुत्र के खेल में और या धन्धे में और छह-आठ घण्टे नींद में (जाये)। आहाहा!

मुमुक्षु : शुद्ध आत्मा का विचार करे तो मिल जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार अर्थात् एकाग्रता। ज्ञान की पर्याय में अकेले पूर्णानन्द को ज्ञेय बनाना, वह उसका विचार है। सूक्ष्म बात है, भाई!

मुमुक्षु : सविकल्प द्वारा निर्विकल्प हुआ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। सविकल्प द्वारा अर्थात् सविकल्प हो, उसमें से जाना है निर्विकल्प में, यह। यह तो रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आया न? रहस्यपूर्ण चिट्ठी। सविकल्प द्वारा निर्विकल्प। इसका अर्थ कि पहले विकल्प आता है कि मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, अभेद हूँ, ऐसा। पश्चात् छोड़कर अन्दर जाना, वह अभेद ध्यान है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी।

साधक-फाधक नहीं। वह (विकल्प) कहीं साधक नहीं, उसे छोड़कर अन्दर जाना, ऐसी बात है। आनन्दतरंग उठती है, ऐसा नहीं आता उसमें? आता है न? रहस्यपूर्ण चिट्ठी।

धर्मात्मा अपना ध्यान करने का प्रयत्न करता है, वहाँ पहले ऐसा विकल्प—राग आया कि मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ, आनन्द हूँ। ऐसा करने से रोमांच उत्पन्न होता है। उसमें है। वह विकल्प भी जब छूट जाता है, तब अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है, वह धर्म है। ऐसी धर्म की व्याख्या कहाँ से निकाली? हम तो धर्म सुनते थे कि यह दया पालना और व्रत पालना, तपस्या करना, भक्ति करना, यात्रा करना—हो गया, जाओ। सुन तो सही! यह तो सब विकल्प / राग है। यह पुण्यबन्ध का कारण है, यह धर्म नहीं। आहाहा! भगवान! तेरी चीज़ अन्दर आनन्द से भरी है। समझ में आया?

बहुत बार शकरकन्द का दृष्टान्त देते हैं। शकरकन्द समझ में आता है? हमारे (गुजराती में) शक्करिया कहा जाता है न। तुम्हारे हिन्दी में शकरकन्द कहते हैं। तो शकरकन्द में जो ऊपर लाल छाल है, उसे लक्ष्य में से छोड़ दो तो अन्दर पूरा शकरकन्द है। शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड है। शकरकन्द। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा, पुण्य और पाप के विकल्प की छाल लक्ष्य में से छोड़ दे तो अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द तेरी चीज़ है। कभी सुना नहीं, बेचारा क्या करे? समझ में आया? शकरकन्द अर्थात्, शकरकन्द अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड है वह। लाल छाल है जरा। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा, पुण्य और पाप के विकल्प जो उठते हैं, वे लाल छाल हैं। उनके पीछे अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द भगवान है, यह आत्मा। ऐसे आत्मा को शुद्धात्मा कहते हैं। यह शुद्धात्मा। आहाहा!

परमानन्दरूप निज शुद्धात्मा उसका एक क्षण भी... देखो! कहा न? परमानन्दरूप, वीतराग परमानन्दरूप ऐसा आत्मा—निज शुद्धात्मा। है न? आहाहा! **उसका एक क्षण भी विचार नहीं करता। सदा ही आर्त-रौद्रध्यान में लग रहा है,...** आहाहा! यह धन्धा करना और इसका करना और यह करना और यह करना। पुत्री बड़ी हुई हो तो विवाह करना है, पुत्र बड़ा हो तो अच्छी कन्या (से विवाह करना है)। पूरे दिन आर्त-रौद्रध्यान है। आहाहा! समझ में आया?

मुनिराज क्या कहते हैं, देखो! आहाहा! **सदा ही आर्त-रौद्रध्यान में लग रहा है, ऐसा सारांश है।** यह रहस्य है। आहाहा! अपनी शुद्ध चैतन्यमूर्ति तेरी चीज़ महान वस्तु पड़ी है। उसकी सन्मुखता का विचार एक क्षण भी नहीं करता। उससे विमुखता का विचार आर्त और रौद्रध्यान सदा ही करता है। यह एक क्षण भी करता नहीं और वह सदा ही करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश किस प्रकार का? यह वह जैनधर्म होगा यह? अरे! भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! जैन वीतराग परमात्मा जिनवरदेव ने तो तीन काल-तीन लोक देखे हैं। अनन्त आनन्द की प्राप्ति की है। उनके मुख से इच्छा बिना वाणी निकली। उस वाणी को यहाँ शास्त्र कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? १२१ (गाथा) हुई।

गाथा - १२२

अथ तमेवार्थं द्रढयति–

२४५) जोणि–लक्खइँ परिभमइ अप्पा दुक्खु सहंतु।
पुत्त–केलत्तहिँ मोहियउ जाव ण णाणु महंतु।।१२२।।

योनिलक्षाणि परिभ्रमति आत्मा दुःखं सहमानः।
पुत्रकलत्रैः मोहितः यावन्न ज्ञानं महत्।।१२२।।

जोणि इत्यादि। जोणि–लोक्खइं परिभमइ चतुशीतियोनिलक्षणानि परिभ्रमति। कोडसौ। अप्पा बहिरात्मा। किं कुर्वन्। दुक्खु सहंतु निजपरमात्मतत्त्वध्यानोत्पन्नवीतरागससदानन्दैकरुप–व्याकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखाद्वि–लक्षणं शारीरमानसदुःखं सहमानः। कथंभूतः सन्। पुत्तकलत्तहिं मोहियउ निजपरमात्मभावनाप्रतिपक्षभूतैः पुत्रकलत्रैः मोहितः। [1]किंपर्यन्तम्। जाव ण यावत्कालं न। किम्। णाणु ज्ञानम्। किं विशिष्टम्। महंतु महतो मोक्षलक्षणस्यार्थस्य साधकत्वाद्वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानं महदित्युच्यते। तेन कारणेन तदेव निरन्तरं भावनीयमित्यभिप्रायः।।१२२।।

आगे उसी बात को दृढ़ करते हैं–

पुत्रादिक में मोहित होकर आत्मा नित दुख सहन करे।
जब तक आत्म ज्ञान नहिं होता लाख योनि में भ्रमण करे।।१२२।।

अन्वयार्थ :– [यावत्] जब तक [महत् ज्ञनं न] सबसे श्रेष्ठ ज्ञान नहीं है, तब तक [आत्मा] यह जीव [पुत्रकलत्रैः मोहितः] पुत्र, स्त्री आदिकों से मोहित हुआ [दुःखं सहमानः] अनेक दुःखों को सहता हुआ [योनिलक्षाणि] चौरासी लाख योनियों में [परिभ्रमति] भटकता फिरता है।

भावार्थ :– यह जीव चौरासी लाख चोनियों में अनेक तरह के ताप सहता हुआ भटक रहा है, निज परमात्मतत्त्व के ध्यना से उत्पन्न वीतराग परम आनंदरुप निर्व्याकुल अतीन्द्रिय सुख से विमुख जो शरीर के तथा मन के नाना तरह के सुख–दुःखों को सहता

---

1. पाठान्तर = किंपर्यन्तम्=कियत्पर्यंतं

हुआ भ्रमण करता है। निज परमात्मा की भावना के शत्रु जो देहसम्बन्धी माता, पिता, भ्राता, मित्र, पुत्र-कलत्रादि उनसे मोहित है, तब तक अज्ञानी है, वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान से रहित है, वह ज्ञान मोक्ष का साधन है, ज्ञान ही से मोक्ष की सिद्धि होती है। इसलिये हमेशा ज्ञान की ही भावना करनी चाहिये।।१२२।।

गाथा-१२२ पर प्रवचन

१२२। **आगे इसी बात को दृढ़ करते हैं—**

२४५) जोणि-लक्खइँ परिभमइ अप्पा दुक्खु सहंतु।
पुत्त-केलत्तहिँ मोहियउ जाव ण णाणु महंतु।।१२२।।

आहाहा! **अन्वयार्थ—'यावत्' जब तक सबसे श्रेष्ठ ज्ञान नहीं है,...** सबसे श्रेष्ठ का अर्थ आत्मज्ञान नहीं है। यह सब वकालत का ज्ञान और यह दवा का... क्या कहलाता है? यह डॉक्टर का ज्ञान, वह सब कुज्ञान है, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! **सबसे श्रेष्ठ ज्ञान...** आत्मज्ञान। आहाहा! राग से भिन्न पड़कर अपना आत्मज्ञान। आहाहा! वह सबसे श्रेष्ठ ज्ञान है। समझ में आया? उन सबसे, पर से भेदज्ञान नहीं, **सबसे श्रेष्ठ ज्ञान नहीं है, तब तक यह जीव... 'पुत्रकलत्रैः मोहितः'** आहाहा! **पुत्र, स्त्री आदिकों में मोहित हुआ...** परचीज़ अपनी चीज़ है ही नहीं और अपने में वह आती नहीं। वह तो पर है, स्त्री, पुत्र तो परद्रव्य है। आहाहा! स्वद्रव्य का क्षणमात्र भी विचार नहीं करता और परद्रव्य में मोहित हुआ मूढ़ परद्रव्य में। यह स्त्री मेरी, पुत्र मेरा और यह मेरा, मर गया, कहते हैं, मार डाला। 'क्षण क्षण भयंकर भावमरण...' श्रीमद् ने कहा है सोलह वर्ष में। आहाहा! इस आर्त और रौद्रध्यान में, प्रभु! तेरी मृत्यु होती है। तेरा शुद्धात्मा का जीवन वहाँ टिकता नहीं, रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसी व्याख्या ऐसा लोग कहते हैं। बेचारे निवृत्त नहीं होते, उसमें दो घड़ी सुनने आवे, उसमें ऐसा आवे। बापू! मार्ग तो यह है, भाई! दूसरा प्रसन्न कर देगा तुमको कि दया पालन की और व्रत पालन किये और अपवास किये और धर्म किया। मर जायेगा, वहाँ धर्म नहीं। वह तो भावमरण है। आहाहा! अर्थात्? अर्थात्?

शुद्धात्मा आनन्द का कन्द प्रभु से विरुद्ध भाव में प्रेम से-रुचि से पड़ा है, पूर्णानन्द का जीवन जो टिकता पूर्ण है, उसका अनादर किया, इसका नाम हिंसा, इसका नाम मरण। आहाहा! समझ में आया? यह तो बात बात में अन्तर है। दुनिया में कुछ चले धर्म के नाम से और यहाँ कहे धर्म ऐसा। अब कहाँ मिलान खाये उसमें?

पुत्र, कलत्र—स्त्री आदि है न? मोहित, **आदिकों से मोहित हुआ...** आहाहा! यह मेरी पुत्री है और एल.एल.बी. में पास हुई है और एम.ए. में पास हुई है, उसमें प्रसन्न हो जाये कि आहा! धूल में भी नहीं, तेरी पुत्री कैसी? आत्मा को पुत्री क्या और पिता क्या? समझ में आया?

मुमुक्षु : लड़का घर में पूछता है कि महाराज साहब कहते थे कि तुम पिता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात है। पिता कैसा और पुत्र कैसा आत्मा को? आत्मा को राग नहीं तो बाप और बेटा कहाँ से आये? आहाहा! ऐसी बात है, बापू! जिनवर परमात्मा तीर्थंकरदेव अनन्त तीर्थंकरों का यह हुकम है। समझ में आया?

मोहित हुआ... 'दुःखं सहमानः' अनेक दुःखों को सहता हुआ... आहाहा! पुत्र के लिये, स्त्री के लिये। कहीं डाल देना हमारे? परन्तु कहाँ तेरे थे, वह डाल दे। हमें निभाना तो पड़ेगा या नहीं? किसे निभावे? वे तो स्वतन्त्र परद्रव्य हैं। उनका शरीर भी उसके कारण से रहता है, उनका आत्मा उसके कारण से रहता है, तेरे कारण से है? आहाहा! उसमें **अनेक दुःखों को सहता हुआ...** राग और द्वेष करके दुःख सहन करता है। आहाहा! पूरे दिन राग की पींजण पीजता है। पींजण समझते हो? रुई। डोरा निकालते हैं न? एक के बाद एक रेंटिया में से। इसी प्रकार यह एक के बाद एक विकल्प और राग आर्तध्यान और रौद्रध्यान की पींजणी पींजता है। आहाहा! अरे! भगवान! तेरे लिये तुझे समय नहीं? आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! दुनिया को तो वह लगे, इसमें तो व्यवहार लोप हो जाता है। बापू! व्यवहार, वह राग होता है, परन्तु वह राग आत्मा का धर्म नहीं। अरे! प्रभु! क्या करे? व्यवहार है, वह निश्चय से विरुद्ध है और उसका फल विरुद्ध है। राग से भिन्न निश्चय वस्तु भिन्न है, उसका फल भिन्न आनन्द है। आहाहा! व्यवहार का फल दुःख है। आहाहा! ऐसी बात कठिन पड़े भाई लोगों को। किसके साथ चर्चा करें और बात करें, बापू! आहाहा! भाई!

मुनिराज ऐसा कहते हैं, आहाहा! प्रभु! तेरी आनन्दशक्ति का नाथ प्रभु, उस ओर तेरी सन्मुखता की एक क्षण भी तुझे मिलता नहीं और विमुख ऐसे स्त्री, पुत्र के लिये पूरा दिन और रात उनके लिये निकाले। समझ में आया? आहाहा! **अनेक दुःखों को सहता हुआ... 'योनिलक्षाणि' चौरासी लाख योनियों में भटकता फिरता है।** आहाहा! अनन्त-अनन्त बार ऐसे नरक के भव, स्वर्ग के अनन्त किये। भगवान तो ऐसा फरमाते हैं कि जितने नरक के भव किये, उससे असंख्यगुणे स्वर्ग के अनन्त किये। क्या कहा? सबसे थोड़े मनुष्यभव किये, किये अनन्त। उससे असंख्य अनन्तगुणे नरक के किये और उससे असंख्यगुणे स्वर्ग के किये। एक नरक का और असंख्य स्वर्ग के, ऐसे अनन्त नरक के और स्वर्ग के असंख्यगुणे अनन्त। तो पुण्य बिना स्वर्ग में जाता है? तो ऐसे पुण्य भी अनन्त बार, नरक की अपेक्षा अनन्त बार तूने पुण्य किये, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देवीलालजी! आहाहा! उससे कहीं जन्म-मरण मिटता नहीं। आहाहा! **भटकता फिरता है।** लो। भावार्थ है....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष कृष्ण १०, शनिवार
दिनांक- १५-०१-१९७७, गाथा - १२२, १२३, प्रवचन-१८६

(परमात्मप्रकाश, गाथा-१२२) उसका भावार्थ। **यह जीव चौरासी लाख योनियों में अनेक तरह के ताप सहता हुआ भटक रहा है,...** आहा! ऐकेन्द्रिय से लेकर चौरासी लाख योनि—जीव को उत्पत्ति होने के स्थान, उत्पन्न होने के स्थान हैं, वे चौरासी लाख हैं। एक-एक योनि में **अनेक तरह के ताप सहता हुआ...** दुःख... दुःख। ओहो! देखा? स्वर्ग में भी दुःख, ऐसा कहते हैं यहाँ। चौरासी लाख योनि में आ गयी न वह? या नहीं? चौरासी लाख योनि में स्वर्ग, मनुष्य सब आ गये। आहाहा! उस योनि में अनेक प्रकार के दुःख सहन करता हुआ **भटक रहा है....**

मुमुक्षु : राजा, सेठिया....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सब ताप सहन करते हैं, दुःख सहन करते हैं। सेठ ने प्रश्न नहीं किया था? मनुष्य... मनुष्य। मनुष्य होता है या नहीं मनुष्य? तो उसमें कुछ है या नहीं? दुःख है, ऐसा कहते हैं। मनुष्य हो या स्वर्ग हो।

मुमुक्षु : दुःख की और सुख की व्याख्या।

पूज्य गुरुदेवश्री : आकुलता, वह दुःख और अनाकुलता, वह सुख।

मुमुक्षु : आप आत्मा से बात करते हो, हम पैसे से बात करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे में धूल में भी नहीं। पैसा तो जड़ है। यह आयेगा अभी, अभी कहेंगे।

अनेक प्रकार के दुःख सहन करता हुआ। यहाँ तो यह कहना था कि चौरासी लाख योनियों में स्वर्ग और मनुष्य भी आ जाते हैं। सेठाई और स्वर्ग के देव भी उसमें आ जाते हैं। आहाहा! तो यह चौरासी लाख योनियों में अनेक प्रकार के... आहाहा! निगोद में, नरक में, मनुष्यपने में अनेक प्रकार की आकुलता... आकुलता... आकुलता—दुःख सहन करके भटक रहा है।

निज परमात्मतत्त्व के ध्यान से उत्पन्न... देखा अब। भगवान आत्मा निज परम

आत्मा, ऐसा कहा। वीतराग सर्वज्ञ है, वे तो पर परमात्मा हैं। आहाहा! **निज परमात्मतत्त्व के ध्यान से उत्पन्न...** रात्रि में यह प्रश्न चलता था न कि क्रमबद्ध में तो जो आनेवाला होगा, वह आयेगा, हमको निर्णय... तो क्रम और कर्म दो शब्द साथ में लेना। नौवें अध्याय में आया है न? मोक्षमार्गप्रकाशक (में आया है)। द्रव्यलिंगी ने पुरुषार्थ तो बहुत किया, यदि पुरुषार्थ से होता हो तो? परन्तु पुरुषार्थ कहाँ किया है? उल्टा। धर्मानुराग के विकल्प में पुरुषार्थ किया, राग में। अपना पुरुषार्थ किया नहीं। तब कहता है, पुरुषार्थ भी कर्म मन्द हो तो पुरुषार्थ काम करे न! कर्म मन्द हुए बिना पुरुषार्थ किस प्रकार करे? कर्म तो है परन्तु तू पुरुषार्थ नहीं करता, इसलिए ऐसा होता है। जिनाज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं है। है? यह शब्द वहाँ कहा था। ईसरी—मधुवन में। मधुवन में। २० वर्ष पहले। यदि जिनाज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भवे नाहीं। कर्म से मुझमें दोष होता है तो क्या करें? तेरी बात झूठ है।

मुमुक्षु : कर्म से दु:ख नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं होता। यह तो कहते हैं, कर्म तो निमित्त है। हें?

मुमुक्षु : हम तो कर्म से दु:ख होता है, ऐसा मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निमित्त से बात है वहाँ। आत्मा के स्वभाव से नहीं तो कर्म से है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? वहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक में तो बहुत अधिकार लिया है। ऐसा कि निर्णय करने में भी कर्म हो तो निर्णय होगा या नहीं? तू पर के कार्य में तो पुरुषार्थ करता है और अपने पुरुषार्थ के कार्य में कर्म के ऊपर डालता है, तो तुझे आत्मा के धर्म का प्रेम और रुचि नहीं है। समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ क्रमबद्ध का नाम लेकर जब होना होगा तब होगा। तो क्रमबद्ध में तू पर का पुरुषार्थ तो करता है। यह तो तेरी श्रद्धा वहाँ रहती नहीं। मैं ऐसा करूँ तो ऐसा होता है, ऐसा करूँ तो ऐसा होगा। समझ में आया? देवीलालजी! आहाहा! नौवें अध्ययन में है। पुरुषार्थ की मुख्यता। दो-तीन अधिकार बहुत सरस, बहुत सरस। टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक ऐसा बनाया है कि सभी शास्त्रों का सामान्य में से रहस्य खोल दिया है। रहस्य खोल दिया है। आहाहा! वह क्रम कहो या कर्म कहो।

दोनों बातें। क्रम भी हमारे जब होना होगा तब होगा। परन्तु क्रम में होना होगा वह होगा, परन्तु तू संसार का पुरुषार्थ तो करता है। होना होगा वह होगा, यह श्रद्धा तो वहाँ रही नहीं तेरी। समझ में आया?

मुमुक्षु : क्रम में होगा, तब सीधा पुरुषार्थ होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं। क्रम में होगा तो पुरुषार्थ अपने आप होगा? यदि तुझे क्रमबद्ध की प्रतीति हो तो पर में पुरुषार्थ किसलिए करता है? तम्बाकू ऐसे बनाऊँ और अमुक ऐसे बनाऊँ। सेठ! आहाहा! वहाँ तो तू कर्तापने की बुद्धि उत्पन्न करता है और यहाँ पुरुषार्थ खो बैठता है। उसमें है, नौवें अध्ययन में। तो हम जानते हैं कि तुझे धर्म के प्रति प्रेम ही नहीं है। आहाहा! मोक्ष के प्रति तुझे प्रेम नहीं है। आहाहा! टोडरमलजी ने तो हजारों प्रश्नों के स्पष्टीकरण कर दिये हैं। समझ में आया?

कहा था न? (संवत्) १९८२ के वर्ष में राजकोट में मिला था, मोक्षमार्गप्रकाशक। दामोदरभाई के यहाँ से। दामोदर चत्रभुज। वे वृद्ध रखते थे एक कमरे में ऊपर अन्दर, नहीं? उनका मकान है न अभी, वहाँ कमरे पर रखते थे। ८२ के वर्ष।

मुमुक्षु : दरबार का उतारा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उतारा होगा। कमरे पर थी पुस्तक। नीचे उतरते थे। यह हीराभाई के पुत्र वहाँ रहते हैं न अभी। हीराभाई गुजर गये न? उनके पुत्र वहाँ रहते हैं। लक्ष्मीचन्द। वहाँ पहले मिली पुस्तक। परन्तु पढ़ते हुए इतनी धुन चढ़े कि खाना, पीना कुछ ठीक लगे नहीं। व्याख्यान देना पड़े और यह भिक्षा के लिये जाना पड़े। यह क्या? ओहोहो! यह चीज़! इनकी समझाने की पद्धति गजब है! आहाहा! समझ में आया? यह तुम्हारे राजकोट में वह उपाश्रय है न स्थानकवासी का? स्थानकवासी का उपाश्रय नहीं? क्या कहलाती है वह गली? बोघाणी बोघाणी। बोघाणी की गली। बोघाणी की गली। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, तू एक बार सुन तो सही, प्रभु! आहाहा! तेरी रुचि कहाँ जमी है? तेरी रुचि राग में जमी है या स्वभावसन्मुख जमी है? ऐसा निर्णय तो कर। समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं, देखो! **निज परमात्मतत्त्व के ध्यान से...** उसकी रुचि हुई।

यह तो अभी राग से भिन्न और उस राग में स्त्री, परिवार सब शत्रु है। तेरे विकार में वे शत्रु हैं तेरे भाव में, सब शत्रु हैं। आहाहा! समझ में आया? **निज परमात्मतत्त्व के ध्यान से...** अन्तर में पुरुषार्थ से, आहाहा! **उत्पन्न वीतराग परम आनन्दरूप...** 'एक' शब्द पड़ा रहा है। सब जगह 'एक' पड़ा रहता है इन्हें, अर्थ करनेवाले को। वहाँ 'एक' शब्द पड़ा रहा है। **वीतराग परम आनन्दरूप एक निर्व्याकुल अतीन्द्रिय सुख से विमुख...** भाषा देखो! आहाहा! आहा! गजब करते हैं न काम भी! भगवान आत्मा... आहाहा! सहजानन्दस्वरूप प्रभु ऐसे निजपरमात्मा के ध्यान से उत्पन्न होनेवाला... आहाहा! **वीतराग परम आनन्दरूप एक निर्व्याकुल अतीन्द्रिय सुख से...** ऐसा जो सुख, उससे **विमुख...** आहाहा! स्वभावसन्मुख से विमुख, पर में सन्मुख। आहाहा! स्वभावसन्मुख से विमुख और पर से सन्मुख, निजस्वभाव से विमुख। आहाहा! समझ में आया? बापू! मार्ग बारीक-सूक्ष्म बहुत। आहाहा!

निर्व्याकुल अतीन्द्रिय सुख से विमुख जो शरीर के तथा मन के नाना तरह के सुख-दुःखों को सहता हुआ... सुख-दुःख संसार की बात है, हों! संसार के सुख हैं तो दुःख। **सुख-दुःखों को सहता हुआ...** देखो भाषा। वह भी आकुलता है। उस आकुलता को सहन करता हुआ। आहाहा! समझ में आया? **भ्रमण करता है।** आहाहा! **निज परमात्मतत्त्व की भावना के शत्रु...** निज परमात्मतत्त्व अपना आनन्दस्वरूप भगवान। आहाहा! निजपरमात्मतत्त्व की भावना अर्थात् एकाग्रता के वैरी-शत्रु **देहसम्बन्धी माता,...** यह सब आ गये, तुम्हारा हसमुख और.... यह डालचन्दजी और वे शत्रु हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : माता ने तो पाल-पोसकर बड़ा किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी (बड़ा) किया नहीं। कोई किसी को पाल सकता है? परद्रव्य की पर्याय कोई कर सकता है? आहाहा!

मुमुक्षु : शरीर को तो बड़ा करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन शरीर को बड़ा करे? शरीर की पर्याय परमाणु की स्वयं के कारण से अवस्था बड़ी होती है। पर कौन करे? आहाहा!

मुमुक्षु : माता-पिता तो तीर्थ कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो किस अपेक्षा से? वह तो लौकिक की अपेक्षा से बात है। तीर्थ थे कब?

यहाँ तो कहते हैं, माता **देहसम्बन्धी माता,...** माता कहाँ दूसरी है? देहसम्बन्धी **पिता...** देहसम्बन्धी **भ्राता...** भाई, भाई। देहसम्बन्धी **मित्र...** देहसम्बन्धी **पुत्र....** आहाहा! यह सुमनभाई और डालचन्दजी सब देहसम्बन्धी पुत्र हैं। रामजीभाई का सुमन। ऐसा कि आठ हजार वेतन है न। उस विजय का भाई कोई ऐसा कहता था, हों! २०००-२२०० का वेतन था। यह विजयभाई! मर गया न? तुम चौदह हजार कहते थे न, वह खोटा है, ऐसा कोई कहता था। तुमने चौदह हजार कहे थे। खबर है न! इसलिए दिमाग में प्रश्न उठा था। एक विजय लड़का गुजर गया न! बहुत व्यक्ति.... उम्र छोटी थी परन्तु यह रस और बुद्धि इतनी शान्त... शान्त। बोलने का बहुत कम। यहाँ दो बार रह गया बेचारा। कुँवारा और विवाह के बाद। परन्तु बेचारे को किडनी का दर्द हुआ। बारह महीने के विवाह में किडनी... ऐसा हो गया, दुःखी... दुःखी। बारह महीने में यह दुःख रहा। फिर उसकी माँ ने किडनी दी। बड़ा डॉक्टर बाहर से आया। नहीं? अमेरिका से बड़ा डॉक्टर आया। बड़ा दवाखाना है न जोरदार, उसमें आया है। नहीं तो उसे अमेरिका ले जानेवाले थे। फिर यहाँ आया तो कराया परन्तु अन्त में मर गया, देह छूट गयी। कोई कहता था कि २०००-२२०० वेतन था। अभी शुरुआत थी न। पहली शुरुआत थी न। दिमाग बहुत। लड़के को शास्त्र का बहुत रस। यहाँ रह गया था। देह की स्थिति (पूरी होने की हो) वहाँ क्या हो? आहाहा!

यहाँ तो देहसम्बन्धी मित्र, देहसम्बन्धी पुत्र, देहसम्बन्धी कलत्र—स्त्री, यह सब निज परमात्मा की भावना के शत्रु हैं। आहाहा! शत्रु हैं, शत्रु। हें?

मुमुक्षु : किसी समय आप ठगों की टोली कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठगों की टोली है न! नियमसार में (कहा है)। आजीविका के लिये ठगों की टोली है सब।

मुमुक्षु : घर में झगड़ा हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! इसके लिये तो कहते हैं, छूट जा उनसे। वे सब शत्रु हैं। उनका ध्यान करने जाये तो आत्मा का ध्यान छूट जाता है। वे सब तो अपनी भावना के शत्रु हैं। स्त्री का ध्यान रखना और पोषण करना.... आहाहा! भाई ने तो यहाँ तक कहा नहीं? हुकमचन्दजी (ने) महावीर का बड़ा लेख दिया है न। भगवान को स्त्री का विवाह नहीं था। स्त्री से विवाह करना, वह पाप की दुर्घटना है। हुकमचन्दजी ने लिखा है। विवाह हुआ तो दुर्घटना (हुई), अब मात्र पाप करना। उसे सम्हालना और भोग, स्त्री, पुत्र हों और उस लड़के को सम्हालना। दुर्घटना लागू पड़ गयी। भाई ने बहुत लिखा है, हुकमचन्दजी जयपुरवाले। बड़ा लेख है भगवान का। आहाहा! एक में से दो हुआ। बिगड़े दो। सब बिगड़ा आत्मा का। आहाहा! ऐसी वस्तु है।

आचार्य महाराज कहते हैं, देखो! यह पाठ है न। १२२, आहाहा!

२४५) जोणि-लक्खइँ परिभमइ अप्पा दुक्खु सहंतु।
पुत्त-केलत्तहिँ मोहियउ जाव ण णाणु महंतु।।१२२।।

आहाहा! यह पुत्र, कलत्र आदि। कलत्र आदि अर्थात् समधी। पुत्र के ससुर और पुत्री के ससुर और पुत्री का वर, उसमें मोहित हो गया बेचारा। आहाहा! फँसा। मूर्ख फँस गया। यह सुमनभाई का रामजीभाई कहते थे न, आठ हजार वेतन, सवेरे से शाम तक वहाँ मजदूरी (करे)। हो गया, ऐसी नौकरी आठ हजार की किस काम की? दोपहर भोजन करने आवे, फिर चला जाये, हो गया जाओ। उसका व्यक्ति ऐसा है जरा। क्या है? है कुछ? हें?

मुमुक्षु : आप गाथा फिर से बोले न, तो वह ऐसा समझे कि गाथा पूरी हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। पूरी कहाँ हुई है? मैंने तो यह जो वंचता है, उसका मूल कहा कि इस मूल का यह है। यह बताया मैंने तो। '**जोणि-लक्खइँ परिभमइ**' चौरासी लाख योनि में भटकता है। '**अप्पा दुक्खु सहंतु**' यह तो आचार्य के शब्द हैं। आत्मा दुःख को सहन करता हुआ चार गति में भ्रमता है। '**पुत्त-केलत्तहिं मोहियउ**' पुत्र और स्त्री आदि में मोहित। '**जाव ण णाणु महंतु**' वहाँ तक स्वरूप-सन्मुख का ज्ञान उसे नहीं होता। आहाहा! यह आचार्य के वचन कहे। तत्प्रमाण टीका है, ऐसा। समझ में आया?

उनसे मोहित है,... आहाहा! **तब तक अज्ञानी है...** आहाहा! देहसम्बन्धी पुत्र, स्त्री, परिवार। आहाहा! अच्छा नौकर हो। दो हजार वेतन देते हों और पचास हजार पैदा करता हो। आहाहा! अरे! क्या है प्रभु? इस देहसम्बन्धी के सब सगे-सम्बन्धी, वे तो आजीविका की ठगों की टोली तुझे मिली है। आहाहा! वह नहीं कहा था अभी एक बार? दुकान पर पढ़ा था। 'सहजानन्दी रे आत्मा सूतो कंई निश्चिंत रे, मोह तणा रे रणिया भमे।' चार सज्झायमाला है, दुकान पर सब वाँची थी छोटी उम्र में। (संवत्) १९६०। दीक्षा लेने से पहले। उसमें यह एक बड़ा स्तवन है। 'सहजानन्दी रे आत्मा।' भगवान! तू तो स्वाभाविक आनन्दस्वरूप है न नाथ! 'सूतो कंई निश्चिंत रे...' अरे! तू निश्चिन्त होकर सो गया राग के अज्ञान में। 'मोह तणा रे रणिया भमे।' मोह का कर्ज सिर पर, चोर-लुटेरे घूमते हैं। 'जाग जाग मतिवन्त रे, लूटे जगत के जन्त रे, नाखी वांक अनन्त रे...' वांक करे, स्त्री कहे, किसलिए विवाह किया था? जवान अवस्था है, वृद्धा से विवाह करना था न। जवान अवस्था में तुम ऐसे इनकार करो। ऐसा कहे अन्दर सामने मुँह पर (प्रसाधन) लगावे। सब सुना है और पुत्र पढ़े हैं ऐसे सब। समझ में आया? जिनके प्रति पत्र आया था, वे यहाँ बैठे हैं। नाम नहीं लिया जाता। समझ में आया? ऐ शान्तिभाई! यह तो बालब्रह्मचारी हैं। आहाहा! 'नाखी वांक अनन्त रे, लूटे जगतना जन्त रे।' जगत के प्राणी तुझे लूटते हैं। मेरा मेरा करके मार डालेंगे तुझे। 'विरला कोई उगरंत रे...' यह शब्द है। 'नाखी वांक अनन्त रे, लूटे जगतना जन्त रे, विरला कोई उगरंत रे...' कोई विरल प्राणी उसमें से निकल जाते हैं। आहाहा!

सर्प की सर्पिणी जब अण्डा दे, तब गोल करके रखे ऐसे। उसमें से बहुत अधिक खा जाती है। कोई निकल गया तो निकल गया, वरना सर्पिणी खा जाये। सुना है? सर्प, सर्पिणी। यहाँ देखो न, अपने यहाँ हुआ था। मन्दिर के पीछे। एक कुत्ती है न, चार बच्चे जन्मे चार। अब उस समय कोई नहीं, इसलिए दो बच्चे कोमल थे, उन्हें ऐसा का ऐसा खा गयी। दो बच्चे कुत्ती के बच्चे खा गयी। भूख लगी थी। फिर भीखाभाई आये और देखा तो अरे! इसलिए तेल का हलुवा बनाकर आये।

मुमुक्षु : पहले हलुवा मिल जाता तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ था हलुवा ? वहाँ कौन देता था वहाँ ? आहाहा ! यह तो दो कुत्ती के बच्चे। क्या कहते हैं उन्हें ? पिल्ला। खा गयी वह। आहाहा ! माता जन्म देकर खा गयी। इसी प्रकार सर्पिणी, समझ में आया ? जन्म देकर खा जाती है। ऐसे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। यह तो सर्पिणी का वापस यहाँ उतारना है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में जो जन्मता है, उसमें मर जाता है, उसे खा जाता है काल। आहाहा !

मुमुक्षु : बाहर निकल-निकलकर यहाँ इकट्ठे हुए हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें से कहाँ निकले हैं, अन्दर से निकले तब कहलाये। राग में से निकले तो निकला कहलाये।

मुमुक्षु : राग में से निकलने के लिये तो आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आये परन्तु निकले तब न ! यह तो ऐसा कहते हैं, वहाँ से निकले इसलिए अवसर्पिणी में से निकले हैं, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

यह भगवान आत्मा सहजानन्दस्वरूप प्रभु ! आहाहा ! सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा तो है। सत् शाश्वत् चिद् ज्ञान और आनन्द। 'सहजानन्दी रे आत्मा सूतो कंई निश्चिंत रे...' प्रभु ! तू कहाँ सो रहा है ? राग और द्वेष और मिथ्याभ्रान्ति में सो रहा है। आहाहा ! जगत तो तुझे लूटेगा। आहाहा ! यह हमारे स्वामी हैं और यह हमारे पति है और यह मेरी पत्नी है, एक-दूसरे लुटेरे हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : घर तोड़ डालने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर तोड़ डालने की ही बात है यहाँ। 'कबहु... कबहु न निजघर आये, अबहु कबहु न निजघर आये रे, अबहु कबहु न निजघर आये, परघर भ्रमत नाम अनेक धराये।' मैं इसकी पत्नी हूँ और यह मेरा पति है और यह मेरा पुत्र है और यह मेरा पिता है, ऐसे नाम अज्ञान में धराये। आहाहा ! 'परघर भ्रमत अनेक नाम धराये, अब हम कबहु न निजघर आये।' सहजानन्द भगवान में—निजघर में आया नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि **उनसे मोहित है,...** आहाहा ! मेरा पिता और मेरी माता और

मेरा बाप और मेरा पुत्र और मेरी स्त्री, उसमें मोहित है। **तब तक अज्ञानी है,...** आहाहा! **वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान से रहित है...** अज्ञान सहित है। आहाहा! और **वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान से रहित है...** आहाहा! अपना भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु का स्व—अपना संवेदन—प्रत्यक्ष। आहाहा! वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन। स्व—अपना, सं—प्रत्यक्ष, वेदन—ज्ञान से रहित है। आहाहा! समझ में आया? बात तो ऐसी है, भाई! आहाहा! **वह ज्ञान मोक्ष का साधन है,...** लो! वह ज्ञान—**वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान से रहित है, वह ज्ञान मोक्ष का साधन है,...** ज्ञान शब्द से दर्शन, चारित्र आ गये इसमें। समझ में आया? आहाहा! 'र' के बदले यहाँ 'स' चाहिए। पाठ में यह है। सुखसहित है, पश्चात् विलक्षण शरीरादि.... '**मोक्षलक्षणस्यार्थस्य साधकत्वाद्वीत-रागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानं**' वहाँ तो सहित है, हों! सहित है न अन्दर? सहित शब्द नहीं परन्तु सहित चाहिए। **वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान से सहित है, वह ज्ञान मोक्ष का कारण है,...** समझ में आया? पाठ में है न? वीतराग '**निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानं महद्**' महाज्ञान उसे कहते हैं। आहाहा! संसारीज्ञान सब डॉक्टर के और वकील के सब अज्ञान-कुज्ञान हैं। आहाहा! वीतराग स्वसंवेदनज्ञान, आहाहा! उससहित आत्मा **वह ज्ञान मोक्ष का साधन है,...** समझ में आया? शास्त्रज्ञान भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : रहित भूल से छप गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो छप गया, हो जाता है। सहित चाहिए। सहित... सहित। यह तो इन्होंने डाला, अज्ञानी है न, वह वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन से ज्ञान से रहित है अज्ञानी, ऐसा लिया। परन्तु ऐसा नहीं, यह ठीक है।

वीतराग निर्विकल्प अपना स्वभाव स्वसंवेदन अपने प्रत्यक्ष वेदन, ऐसे ज्ञान से सहित है, **वह ज्ञान मोक्ष का साधन है,...** आहाहा! वह ज्ञान मोक्ष का साधन है। निज ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा का ज्ञान। ज्ञान का ज्ञान। शरीर, राग, निमित्त का ज्ञान, पर का ज्ञान, वह नहीं। ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा का स्वसंवेदनज्ञान, वही मोक्ष का साधन है। आहाहा! वह ज्ञान मोक्ष का उपाय है। समझ में आया? **ज्ञान ही से मोक्ष की सिद्धि होती है।** ऐसा क्यों कहते हैं? ज्ञान में दर्शन, चारित्र तीनों आ जाते हैं। आत्मा से ही

मोक्ष की सिद्धि होती है। आहाहा! व्यवहार विकल्प आदि हैं, उनसे मोक्ष की सिद्धि नहीं होती, यह बात सिद्ध करनी है। समझ में आया?

ज्ञान ही... देखो, एकान्त किया। निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र **ही से मोक्ष की सिद्धि होती है।** 'ही' डाला है, वहाँ एकान्त हो गया। एकान्त ही है। श्रीमद् ने नहीं कहा? अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपद की प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य हेतु से (उपकारी नहीं है)। अन्य हेतु से नहीं है। आहाहा! निजपद की प्राप्ति ऐसा एकान्त। अनेकान्त भी निजपद की प्राप्ति का निज हेतु है। बाकी अन्य हेतु से हेतु है नहीं, साधन है नहीं। आहाहा! यह तो 'ही' डाला है न! ऐसा भी होता है, निश्चयमोक्षमार्ग से भी मुक्ति होती है, कथंचित् व्यवहार से भी होती है तो अनेकान्त होता है। यह अनेकान्त नहीं हुआ, यह तो फुदड़ीवाद हुआ।

अनेकान्त तो यह है, अपने आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही मोक्ष की सिद्धि (होती है), व्यवहार से नहीं, यह अनेकान्त है। आहाहा! यह बड़ा विवाद है न अभी। समझ में आया? अपना स्वरूप वीतरागमूर्ति प्रभु के वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान से ही मुक्ति होती है, व्यवहार से-निमित्त से नहीं होती, इसका नाम अनेकान्त है। यह तो अनेकान्त इस प्रकार से लगाते हैं कि निश्चय से भी होता है और व्यवहार से भी होता है। शब्द बहुत आते हैं न? भिन्न साध्यसाधन। शास्त्र में बहुत आते हैं। द्रव्यसंग्रह में, कलशटीका में, इस समयसार की जयसेनाचार्य की टीका में बहुत आता है, व्यवहार और निश्चय। व्यवहार से निश्चय होता है, लो, ऐसा आवे वहाँ। वह तो व्यवहार का ज्ञान कराया है, व्यवहार का ज्ञान कराया। बस, दूसरी बात नहीं है। शास्त्र के अर्थ करने में भी विपरीतता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा के आश्रय से मोक्षमार्ग होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के आश्रय से मोक्षमार्ग होता है, उससे मुक्ति (होती है)। राग से नहीं, व्यवहार से नहीं। आहाहा! तथापि स्याद्वाद, कथन में ऐसा आता है। निश्चय और वयवहार दो मोक्ष के मार्ग हैं। तो मार्ग दो नहीं, मार्ग तो एक ही है। तब वे कहते हैं न, दो मार्ग न माने वे भ्रम में पड़े हैं। यह कहते हैं कि दो मार्ग माने वे भ्रम में

हैं। अरे! भगवान बापू! तेरे स्व आश्रय के हित की बात में तुझे 'ही' न लगे तो कहाँ लगे? आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा आनन्द पवित्र ज्ञानस्वरूपी... बहुत जगह तो यही आता है, ज्ञान अर्थात् आत्मा, ज्ञान वह आत्मा। समयसार में यह (आता है)। ज्ञान वह आत्मा, अनन्त गुण भी आत्मा। परन्तु ज्ञान की मुख्यता से ज्ञान, वह आत्मा—ऐसा कहा गया है। उसमें भी जो स्व का ज्ञान हुआ, ज्ञान का ज्ञान। जो ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा की सन्मुखता से जो ज्ञान (हुआ), ज्ञान में से ज्ञान आया, वह ज्ञान मोक्ष का साधन है। आहाहा! यह बात है, भाई! बाकी तो ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा, वह ज्ञान नहीं। **इसलिए हमेशा...** भाषा है न? '**निरन्तरं भावनीय**' ऐसा है न? देखो! '**ज्ञानं महदित्युच्यते। तेन कारणेन तदेव निरन्तरं भावनीयमित्यभिप्रायः**' संस्कृत, संस्कृत। **हमेशा ज्ञान की ही भावना करनी चाहिए।** आहाहा! धर्मी को तो हमेशा भगवान आत्मा की मुख्यता दृष्टि में है। कायम। आहाहा!

और कोई ऐसा कहता है, भूतार्थ वह सत्य है और अभूतार्थ भी सत्य है। परन्तु अभूतार्थ सत्य है और भूतार्थ असत्य है, उसकी अपेक्षा से। ऐसा कोई कहता है। क्या कहा? भूतार्थ जो त्रिकाली वस्तु भगवान आत्मा सत्य है, उस अपेक्षा से पर्याय असत्य है। परन्तु पर्याय सत्य की अपेक्षा से भूतार्थ वह असत्य है, ऐसा नहीं है। यह पाठ में आया है। वह जानने की अपेक्षा से, आदरने की अपेक्षा से बात नहीं है। मनोहरलाल वर्णी ने डाला है, खबर है। समझ में आया? जब तुम ऐसा कहो कि त्रिकाली भगवान परमानन्दस्वरूप ही सत्यार्थ है तो उस अपेक्षा से पर्याय, रागादि असत्यार्थ हो गये। तो हम तो कहते हैं कि जब पर्याय और राग को सत्यार्थ कहते हैं तो उसकी अपेक्षा से यह असत्यार्थ हो गया। उसकी अपेक्षा से यह असत्यार्थ, इसकी अपेक्षा से वह असत्यार्थ। ऐसा कभी भी नहीं है। समझ में आया? आहाहा! वह तो जानपना करना हो तो द्रव्य की मुख्यता, पर्याय की गौणता। पर्याय की मुख्यता, द्रव्य की गौणता वह तो ज्ञान करने के लिये, जानने के लिये (बात है)। साधन जो है, उसके लिये यह नहीं। आहाहा! कहाँ अन्तर पड़ता है, यह (खबर नहीं)। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में आता है न? दो डोरी से खींचे। एक खींचे और एक ढीली रखे। इसी प्रकार व्यवहार की मुख्यता करे तब निश्चय

को गौण कर दे, निश्चय की मुख्यता करे तो व्यवहार को गौण करे। यह तो ज्ञान-जानने की अपेक्षा से बात है। साधक की अपेक्षा से कभी ज्ञायकभाव मुख्य और गौण हो, ऐसा नहीं होता। मुख्यता हमेशा रहती है। यह कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए सारांश कहा न? **हमेशा ज्ञान की ही भावना करनी चाहिए। ज्ञान की ही...** वापस देखा? आहाहा! कायम भगवान आत्मा की भावना कायम मुख्यरूप से करनी चाहिए। आहाहा!

मुमुक्षु : भावना में ऐसा जानना कि....

पूज्य गुरुदेवश्री : एकाग्रता। भावना का अर्थ क्या?

मुमुक्षु : ऐसी भावना भावे कि हमको ज्ञान हो जाये, ज्ञान हो जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भावना है? यह भावना तो विकल्प है। यह दरकार की नहीं। पैसे हो जाये, पैसा हो जाये—ऐसा रटते थे। पैसे के लिये तो अन्दर मेहनत करते थे। साईकिल पर घूम-घूमकर चारों ओर झपट्टा बुलाते थे। ग्राहक बनाने हैं और अमुक करना है। यह सुना है, कोई कहता था। पहले भगवानदास बहुत मेहनत करते थे। साईकिल लेकर घूमे। आहाहा! यह मेहनत की, वह पाप की मेहनत थी। सेठ! आहाहा!

इन शब्दों में क्या है? **इसलिए हमेशा...** सदा ही **ज्ञान की ही...** अपने मुख्य द्रव्य की दृष्टि में उसकी भावना कायम रखना। आहाहा! पर्याय की और निमित्त की भावना मुख्य करना नहीं। आहाहा! समझ में आया? ११वीं गाथा में कहा है न? मुख्य, वह निश्चय। निश्चय, वह मुख्य—ऐसा नहीं। वरना द्रव्य, गुण और पर्याय निश्चय है, स्व है। पर को व्यवहार कहते हैं। सातवें अध्याय में आया न? सातवीं गाथा में। पर्याय तो अपनी है, उसे तुम व्यवहार क्यों कहते हो? भेद भी अपने हैं, उसे व्यवहार क्यों कहते हो? व्यवहार तो परद्रव्य को व्यवहार कहते हैं। सातवीं गाथा में। आहाहा! समझ में आया? भाई! तेरी बात सत्य है, इस अपेक्षा से, परन्तु यहाँ दूसरी बात है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जब भेद पर लक्ष्य जायेगा तो उसे राग उत्पन्न होगा। समझ में आया? इस अपेक्षा से भेद को गौण करके; भेद को, पर्याय को अवस्तु कहकर... परन्तु अवस्तु तो परवस्तु अपनी अपेक्षा से अवस्तु है। परन्तु अपने द्रव्य, गुण, पर्याय तो अपनी अपेक्षा

से वस्तु है। बात बराबर है, परन्तु सुन तो सही। सातवीं (गाथा समयसार) में आया है न भाई! आहाहा!

यहाँ तो पर्याय और भेद को गौण करके, रागी प्राणी है, जब तक राग रहता है, तब तक भेद के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग उत्पन्न होगा। आहाहा! यह तो हमेशा यह भावना भाना, ऐसा लिखा है न, उसमें यह भाव है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया? रागी प्राणी है, इसलिए भेद पर लक्ष्य जायेगा तो (राग होगा)। भेद पर लक्ष्य जायेगा इसलिए राग होगा, ऐसा नहीं। क्योंकि भेद पर लक्ष्य जाये और राग हो तो केवली तो भेद और सबको देखते हैं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु तू रागी है, यह बात वहाँ ली है। रागी प्राणी है तो राग के कारण भेद पर लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग उत्पन्न होगा। तो जहाँ तक पूर्णता प्राप्त न हो, वहाँ तक द्रव्य को मुख्य करके वहाँ साधन करना, ऐसा कहा है। उसे अवस्तु कहकर, वह वस्तु नहीं है इस अपेक्षा से। समझ में आया? है तो वस्तु उसकी, परन्तु भेद है और रागी प्राणी है तो भेद पर लक्ष्य जायेगा तो राग उत्पन्न होगा। आहाहा! इस कारण से हम उसकी वस्तु है, तथापि अवस्तु कहते हैं। आहाहा! गजब बात परन्तु भाई! पण्डित जयचन्द्रजी ने स्पष्टीकरण बहुत किया है। आहाहा!

मुमुक्षु : भेद का लक्ष्य नहीं, भेद-अभेद को एकसाथ जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका आश्रय नहीं, आश्रय में नहीं। आश्रय में अकेला अभेद है। क्योंकि रागी प्राणी है और भेद के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग उत्पन्न होगा। भेद के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग ही उत्पन्न होता है, ऐसा सिद्धान्त नहीं है, परन्तु रागी है इसलिए भेद पर लक्ष्य जायेगा तो राग उत्पन्न होगा। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो न्याय में थोड़ा अन्तर पड़े तो पूरा तत्त्व बदल जाता है, ऐसी बातें हैं। वहाँ इन्होंने कहा है, अवस्तु तो नहीं। अवस्तु तो उसे कहते हैं, पर को अवस्तु कहते हैं। स्व को अपनी वस्तु कहते हैं, अपने द्रव्य, गुण और पर्याय को स्व को वस्तु कहते हैं, पर को अवस्तु कहते हैं। वस्तु तो ऐसी है। और तुम यह तुम्हारे पर्याय और भेद को भी अवस्तु कहते हो। क्या अपेक्षा है, सुन तो सही। आहाहा! समझ में आया? है न समयसार?

यहाँ कोई कह सकता है कि पर्याय भी द्रव्य के ही भेद हैं,... सातवीं गाथा। पर्याय है, वह द्रव्य के ही प्रकार हैं। **अवस्तु तो नहीं...** आहाहा! बात करते हैं न! **तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है ?** क्या कहते हैं ? द्रव्य को निश्चय कहो और पर्याय को व्यवहार कहो तो पर्याय तो वस्तु का स्वरूप है, वस्तु का ही भेद है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, सेठ! सातवीं गाथा में दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहार से है, ऐसा कहा। है ?

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो॥७॥

यह तो ज्ञायकभाव एकरूप है। उसके ज्ञान, दर्शन, चारित्र भेद डालना पर्याय के, वह व्यवहार है। वहाँ शिष्य का प्रश्न है। पर्याय तो अवस्तु नहीं, अपनी वस्तु है भेदादि, अवस्तु तो नहीं। **तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है ? उसका समाधान यह है —यह ठीक है...** तेरी बात सत्य है, इस अपेक्षा से कहा। **किन्तु यहाँ द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके उपदेश दिया है।** आहाहा! अरे! बात वह बात है न! **अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही अभेद भलीभाँति मालूम हो सकता है।** भलीभाँति अर्थात् क्या ? अच्छी तरह। **इसलिए भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है। यहाँ यह अभिप्राय है कि....** देखो! **भेददृष्टि में निर्विकल्प दशा नहीं होती और सरागी को विकल्प होते रहते हैं....** 'सरागी को विकल्प रहा करते हैं', यह शब्द है यहाँ। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा मार्ग! आहाहा! दिगम्बर धर्म जैनधर्म के अतिरिक्त यह बात, ऐसी बात कहीं नहीं है। लोगों को दुःख लगे, क्या हो ? आहाहा!

मुमुक्षु : जानना दोष का कारण नहीं है, राग दोष का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानना दोष का कारण हो तो केवली सबको जानते हैं। तीन काल—तीन लोक को जानते हैं। परन्तु यह रागी प्राणी है। **सरागी को विकल्प रहा करते हैं, इसलिए जब तक रागादि न मिटे, तब तक भेद को गौण करके....** गौण करके, अभाव करके नहीं। **अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। वीतराग होने के बाद भेदाभेदरूप वस्तु का ज्ञाता हो जाता है...** बाद में सब देखता है, पर्याय देखे, द्रव्य देखे, उसमें क्या ? आहाहा!

यहाँ तो जरा यह बात आयी न? **वह ज्ञान मोक्ष का साधन है, ज्ञान ही से मोक्ष की सिद्धि होती है। इसलिए हमेशा ज्ञान की ही भावना करनी चाहिए।** आहाहा! हमेशा भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, उसकी मुख्यता रखना चाहिए। आहाहा! पर्याय को और राग को गौण करके अथवा लक्ष्य में उन्हें गौण करके लक्ष्य ध्रुव पर ले जाना, वह सहज, उसका ही साधन है आत्मा। आहाहा! भाई! अब ऐसी बातें। वह तो दया पालना, व्रत करना, अपवास करना ऐसा सीधासट्ट था। एक व्यक्ति कहता था, कहा न? विरमगाँव का आया था। हम ऐसी सरलता से (सब करते थे), अब बीच में आपने ऐसी लकड़ी मारी। भंग किया चलते सम्प्रदाय में। कहा, बापू! मार्ग यह है, भाई! ईश्वरचन्दजी! आहाहा!

इसलिए हमेशा... सदा शब्द है न? निरन्तर है न? संस्कृत में '**निरन्तरं**' है। '**तेन कारणेन तदेव निरन्तरं भावनीयमित्यभिप्रायः**' 'वही' शब्द है न, '**एव**' है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा ज्ञायकस्वभाव है, ज्ञानस्वभाव है, पूर्णानन्द प्रभु है, ऐसी दृष्टि कायम रखकर उसकी एकाग्रता करनी चाहिए। समझ में आया? आहाहा! पर्याय होने पर भी पर्याय को गौण करके, है तो पर्याय उसकी वस्तु। अवस्तु तो परद्रव्य को अवस्तु कहते हैं। स्वद्रव्य अपनी अस्ति और परद्रव्य अपने से, पर से नास्ति, और पर स्वयं से अस्ति। तो पर को अवस्तु कहते हैं। परन्तु यहाँ तो पर्याय को अवस्तु कहा। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि मुख्य द्रव्य की दृष्टि कराने के लिये और शाश्वत् ज्ञानस्वभाव की एकाग्रता कराने के लिये यह बात कही। अब ऐसा मार्ग। मार्ग ऐसा है, बापू! सत्य मार्ग तो यह ही है। आहाहा! १२२ (गाथा) पूरी हुई।

गाथा - १२३

अथ हे जीव गृहपरिजनशरीरादिममत्वं मा कुर्विति संबोधयति–

२४६) जीव म जाणहि अप्पणउँ घरु परियणु तणु इट्ठु।
कम्मायत्तउ कारिमउ आगमि जोइहिँ दिट्ठु।।१२३।।

जीव मा जानीहि आत्मीयं गृहं परिजनं तनुः इष्टम्।
कर्मायतं कृत्रिमं आगमे योगिभीः दृष्टम्।।१२३।।

जीव इत्यादि। जीव म जाणहि हे जीव मा जानीहि अप्पणउं आत्मीयम्। किम्। घरु परियणु तणु इट्ठु गृहं परिजनं शरीरमिष्टमित्रादिकम्। कथंभूतमेतत्। कम्मायत्तउ शुद्धचेतना–स्वभावादमूर्तात्परमात्मनः सकाशाद्विलक्षणं यत्कर्म तदुदयेन निर्मितत्वात् कर्मायत्तम्। पुनरपि कथंभूतम्। कारिमउ अकृत्रिमात् टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावात् शुद्धात्मद्रव्याद्विपरीतत्वात् कृत्रिमं विनश्वरम्। इत्थंभूतं दिट्ठु दृष्टम्। कैः। जोइहिं परमज्ञानसंपन्नदिव्ययोगिभिः। क्व दृष्टम्। आगमि वीतरागसर्वज्ञप्रणीतपरमागमे इति। अत्रेदमध्रुवव्याख्यानं ज्ञात्वा ध्रुवे स्वशुद्धात्मस्वभावे स्थित्वा गृहादिपरद्रव्ये ममत्वं न कर्तव्यमिति भावार्थः।।१२३।।

आगे हे जीव, तू घर, परिवार और शरीरादि का ममत्व मत कर, ऐसा समझाते हैं–

घर कुटुम्ब तन मित्रादिक को अपना मत जानो हे जीव!
ये सब कर्माधीन विनश्वर आगम में कहते योगी।।१२३।।

अन्वयार्थ :– [जीव] हे जीव, तू [गृहं] घर, [परिजनं] परिवार, [तनुः] शरीर [इष्टम्] और मित्रादि को [आत्मीयं] अपने [मा जानीहि] मत जान, क्योंकि [आगमे] परमागम में [योगिभिः] योगियों ने [दृष्टम्] ऐसा दिखलाया है, कि ये [कर्मायतं] कर्मों के आधीन हैं, और [कृत्रिमं] विनाशीक है।

भावार्थ :– ये घर वगैरह शुद्ध चेतनस्वभाव अमूर्तीक निज आत्मा से भिन्न जो शुभाशुभ कर्म उसके उदय से उत्पन्न हुए हैं, इसलिये कर्माधीन हैं, और विनश्वर होने से शुद्धात्मद्रव्य से विपरीत हैं। शुद्धात्मद्रव्य किसी का बनाया हुआ नहीं है, इसलिये अकृत्रिम है, अनादिसिद्ध है, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव है। जो टाँकी से गढ़ा हुआ न हो बिना ही गढ़ी पुरुषाकार अमूर्तीकमूर्ति है। ऐसे आत्मस्वरुप से ये देहादिक भिन्न हैं,

ऐसा सर्वज्ञकथित परमागम में परमज्ञान के धारी योगीश्वरों ने देखा है। यहाँ पर पुत्र, मित्र, स्त्री, शरीर आदि सबको अनित्य जानकर नित्यानंदरुप निज शुद्धात्म स्वभाव से ठहरकर गृहादिक परद्रव्य में ममता नहीं करना।।१२३।।

गाथा-१२३ पर प्रवचन

आगे हे जीव! तू घर, परिवार और शरीरादि का ममत्व मत कर,... लो। **ऐसा समझाते हैं—**

२४६) जीव म जाणहि अप्पणउँ घरु परियणु तणु इट्ठु।
कम्मायत्तउ कारिमउ आगमि जोइहिँ दिट्ठु।।१२३।।

'जीव म जाणहि अप्पणउँ' कौन? हे जीव! घर अपना न जान। परिजन, तनु अर्थात् शरीर। **'इट्ठु'** इष्ट, वह सब तेरा नहीं। आहाहा! **'कम्मायत्तउ कारिमउ'** वह कर्म की सब, कर्म के निमित्त का सब पसारा है। वह कर्म की सेना का सब पसारा है। तेरा नहीं, भगवान! आहाहा! यह क्या करना? लड़के, विद्यमान लड़के को उड़ा देना कि मेरा नहीं! आहाहा! **'आगमि जोइहिँ दिट्ठु'।** आहाहा!

अन्वयार्थ—हे जीव! तू घर, परिवार,... कुटुम्ब, स्त्री आदि। **शरीर... 'इष्टम्' और मित्रादि को... 'आत्मीयं मा जानीहि' अपने मत जान,...** आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पुत्र, पुत्री, दुकान सब और मित्र आत्मीय न जान, **'आत्मीयं मा जानीहि'** अपनेरूप न मान। आहाहा! **क्योंकि परमागम में योगियों ने ऐसा दिखलाया है कि ये कर्मों के आधीन हैं,...** सब प्राणी। यह कर्म का पसारा है, यह तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! **और विनाशीक है।** आहाहा! कर्म के संयोग से चीज़ आयी, विनाशीक / नाशवान है। आहाहा! और यह परिवार, पुत्र, पुत्रियाँ जो मर जाये स्वयं, तब रोता है, वह रोता है, वह कहीं मरकर तू कहाँ गया, उसके लिये नहीं रोते। तू मरकर पशु में जा, उसमें हमारे क्या है? हमारी सुविधा जाती है, उसके लिए हम रोते हैं। आहाहा! गजब है न स्वार्थ!

मुमुक्षु : लोगों को दिखाने के लिये रोवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और बाहर में करे। आहाहा! दडवा में एक बार थे, दडवा में। कोई मर गया था। कूटनेवाली (पैसा लेकर रोनेवाली) बाई लाये थे, कूटनेवाली होती है न! वह बोलती थी और हाथ बहुत उठावे नहीं कूटने के, इसलिए कहे, यह लकड़ी मर गयी है? लकड़ी पड़ी है? क्यों हाथ नहीं उठता? लकड़ी टूटी है यह? यह बराबर सुना था। (संवत्) १९७८ की बात है। हाथ भी उठता नहीं ऐसे पिट्टस लेने? आहाहा!

मुमुक्षु : कूटी मरो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कूटी मरो। आहाहा! एक बार दामनगर, दामोदर सेठ का रायचन्द था। मर गया छह महीने के विवाह में। छह महीने के विवाह में। बड़ा लड़का। फिर उसकी माँ थी वहाँ के लींबड़ी के दीवान वजुभाई की। वे सब आये। मर गया इसलिए आये। आये और साथ में लांघ्युं लाये। राजा की रोनेवाली लांघ्युं साथ में (लाये)। और दामनगर में घुसे और रुलावे... रुलावे... दामोदर सेठ कठोर थे परन्तु तब सुनते, मुझे बहुत आँसू आ गये। ऐसी लांघ्युं लेकर आये और रुलावे... रुलावे। ओहोहो! दामोदर सेठ कठोर थे परन्तु उस दिन सुनते हुए मुझे आँसू आ गये। ऐसी लांघ्यु समझते हो? ऐसी पीटनेवाली महिलायें होती हैं। ... महिलायें। रोवे न? क्या कहते हैं तुम्हारी भाषा? जब आवे न गाँव में? हें? ऐसा रुलावे... आहाहा! सेठिया के घर और वहाँ सेठिया को वहाँ से आयी हुई। आहाहा! धूल धूल में कुछ नहीं होता। आहाहा! यह सब स्वार्थ के सगे हैं। हे योगी! सब नाशवान है। भावार्थ कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष कृष्ण ११, रविवार
दिनांक- १६-०१-१९७७, गाथा - १२३, १२४, १२५, प्रवचन-१८७

लेना था यह कि व्यवहाररत्नत्रय जो है न, उसका इस द्रव्य-गुण में अत्यन्त अभाव है। समझ में आया? यह तो विवाद निकालते हैं न, उसके सब विचार। व्यवहाररत्नत्रय है, वह राग है। वह द्रव्य में और गुण में उसका अत्यन्त अभाव है। अध्यात्म में। अत्यन्त अभाव है, वह व्यवहाररत्नत्रय निश्चय को प्राप्त कैसे करावे?

मुमुक्षु : वह तो निमित्त का कथन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो निमित्त है एक वस्तु। निमित्त कार्य करता है, ऐसा नहीं। सूक्ष्म बातें बहुत।

परमात्मप्रकाश, १२३ गाथा का भावार्थ। **ये घर वगैरह...** लो सेठ! यह तुम्हारे घर छह-छह लाख के।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम रहते हो न वहाँ अन्दर।

मुमुक्षु : सबके आ गये न, इनके एक के नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इनका मुख्य कहलाये न! सेठियाओं का कहलाये, दूसरे तो फिर लिये जायें बाद में। यह सेठिया बैठे सामने। इसे दो करोड़ का स्टील था तब। यह भभूतमल, पहिचानते हो न? बैंगलोर। कहते हैं कि यह घर... शब्द है न? **घर वगैरह...** यह क्या है भाई? संस्कृत टीका में इस ओर। **'वरि वरं'** है पहली लाईन १२४ में? १२४ गाथा, पहली लाईन संस्कृत। **'वरि वरं'** अर्थात् क्या? **'वरि वरं'।**

मुमुक्षु : **'वरं'** अर्थात् किन्तु।

पूज्य गुरुदेवश्री : किन्तु? ठीक। यह बैठा नहीं बराबर।

यहाँ क्या कहते हैं? कि घर, लक्ष्मी, पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब आदि सब **शुद्ध चेतनस्वभाव अमूर्तिक निज आत्मा से भिन्न...** है। आहाहा! भभूतमलजी! उसके लिये

पूरे दिन पाप करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **घर वगैरह शुद्ध चैतन्यस्वभाव अमूर्तिक निज आत्मा...** देखा वापस? आत्मा कैसा है, उसका भी वर्णन किया। चैतन्यस्वभाव अमूर्तिक निज आत्मा। आहाहा! समझ में आया? **शुभाशुभ कर्म उसके...** आत्मा से भिन्न क्या? शुभाशुभकर्म। **उसके उदय से उत्पन्न हुए हैं,...** कर्म के उदय से यह सब सामग्री, परिवार, घर, स्त्री, पैसा आदि हुए हैं। वे कहीं तुझसे नहीं हुए और तुझमें है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ है न! तो परमात्मप्रकाश तो चैतन्यस्वरूप परमात्मा है आत्मा। उससे भिन्न जो कर्म है, उस कर्म से प्राप्त वह सब सामग्री है, वह कहीं तेरी सामग्री नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : इसकी नहीं तो इसके पास कैसे आयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : पास कहाँ, पास तो यहाँ आकाश आदि सब पास है, अर्थात्? जहाँ आत्मा है, वहाँ आकाश है, धर्मास्ति आदि सब साथ में एक प्रदेश में है। चन्दुभाई! है या नहीं अन्दर? पास में है इसलिए क्या इसका हो गया? वह लक्ष्मी तो अभी बहुत दूर है। यहाँ तो आत्मा है, वहाँ धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, अनन्त परमाणु इसके प्रदेश में पड़े हैं। आहाहा! समझ में आया?

परमात्मा अपना चैतन्यस्वभाव अमूर्तिक वह निजआत्मा, वह परमात्मा अपना, हों! उससे **भिन्न जो शुभाशुभ कर्म उसके उदय से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए कर्माधीन हैं,...** वह तो कर्माधीन चीज़ है। कर्म बदले तो नाश हो जाये, चले जायें। आहाहा! समझ में आया? **और विनश्वर होने से शुद्धात्मद्रव्य से विपरीत हैं।** वे सब विनश्वर हैं। लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब, घर, मकान आदि। आहाहा! वे तो विनश्वर—नाश होने से शुद्धात्मद्रव्य से... भगवान आत्मा शुद्धात्मा पवित्र पिण्ड प्रभु से वे सब विपरीत हैं।

मुमुक्षु : पृष्ठ में अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पृष्ठ आया... १२३ गाथा हिन्दी... हिन्दी।

शुद्धात्मद्रव्य किसी का बनाया हुआ नहीं है,... क्या कहते हैं? वे तो कर्म के कारण से प्राप्त चीज़ें हैं, वे कृत्रिम हैं। आहाहा! भगवान आत्मा अकृत्रिम है। किसी से

प्राप्त नहीं, वह तो अनादि-अनन्त है। आहाहा! **अकृत्रिम है,... शुद्धात्मद्रव्य किसी का बनाया हुआ नहीं है,...** इसलिए अकृत्रिम है। **अनादिसिद्ध है,...** वह तो अनादि का है। आहाहा! **टंकोत्कीर्ण ज्ञायकस्वभाव है। जो टांकी से गढा हुआ न हो, बिना ही गढी पुरुषाकार अमूर्तिकमूर्ति है।** अनन्त गुण का स्वरूप, अनन्त गुण का रूप। आहाहा! एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप, ऐसा अनन्त गुण का रूप—स्वरूप चैतन्य भगवान आत्मा है। आहाहा! **बिना ही गढी पुरुषाकार अमूर्तिकमूर्ति है।** अमूर्तिकमूर्ति—अमूर्तिकस्वरूप। मूर्ति अर्थात् (स्वरूप)। आहाहा! समझ में आया? यह भगवान आत्मा अमूर्तिकस्वरूप है।

ऐसे आत्मस्वरूप से ये देहादिक भिन्न हैं,... भगवान आत्मा जो स्वरूप चैतन्यस्वभाव उससे शरीर, परिवार, स्त्री आदि सब भिन्न हैं। आहाहा! उस भिन्न चीज़ को अपनी मानना, वह मिथ्यात्व और भ्रम है। समझ में आया? आहाहा! **ऐसा श्री सर्वज्ञकथित परमागम में परमज्ञान के धारी योगीश्वरों ने देखा है।** आधार देते हैं। आहाहा! भगवान! तू चैतन्यस्वरूप वीतरागमूर्ति तेरी चीज़ अमूर्तस्वरूप है। और यह शरीर, परिवार, स्त्री आदि कर्माधीन—कर्म से उत्पन्न हुई सामग्री है। यह तेरी नहीं, तुझमें नहीं, तू उसमें नहीं। आहाहा! यह भूत कहाँ से लगा तब यह? भूत लगना नहीं कहते? भूत का लगना। यह भूत लगा, मेरा घर और मेरा शरीर और मेरी स्त्री। मिथ्यात्व का भूत लगा है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आत्मस्वरूप से तो वे भिन्न हैं सब शरीर, लक्ष्मी, परिवार, स्त्री आदि। **ऐसा सर्वज्ञकथित परमागम में परमज्ञान के धारी योगीश्वरों ने देखा है।**

यहाँ पर पुत्र, मित्र... पु और मि, इतना अन्तर है। बाकी **पुत्र, मित्र, स्त्री, शरीर आदि सबको अनित्य जानकर...** आहाहा! **नित्यानन्दरूप निजशुद्धात्म स्वभाव में ठहरकर...** आहाहा! नित्यानन्द भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप। आहाहा! उस एक आनन्दस्वरूप में अनन्त गुण का रूप और अनन्त गुण में आनन्द का रूप। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा नित्यानन्दरूप निजशुद्धात्मा, नित्यानन्दरूप निज शुद्धात्मा। आहाहा! उसमें—स्वभाव में स्थिर होकर। यह क्या कहते हैं? कि यह भिन्न है, भिन्न

है—ऐसा शब्द धारण से नहीं, ऐसा कहते हैं। स्वभाव में स्थिर होकर भिन्न जान। है न? ममता नहीं करना, लिखा है न? **ठहरकर गृहादिक....** कुटुम्ब, पैसा, लक्ष्मी, स्त्री **परद्रव्य में ममता नहीं करना।** यहाँ स्वभाव में स्थिर होकर ममता नहीं करना। आहाहा! ममता न करे तो यहाँ स्वभाव में स्थिर हो। स्वभाव में स्थिर हो तो ममता न करे। समझ में आया? **परद्रव्य में ममता नहीं करना।** यह अपना स्वभावधर्म, उस समय होता है। आहाहा!

नित्यानन्द प्रभु अपने स्वभाव में स्थिर होकर, घर, लक्ष्मी, स्त्री आदि का ममत्व छोड़े, उसे धर्म होता है। आहाहा! यहाँ तो शरीरादि की ममता छोड़ना। एक ओर कहे कि शरीर (आघं) खलु धर्मसाधनम् खलु। शरीराद्यं खलु धर्मसाधनम्। वह तो निमित्त की बात है। साधन कहाँ? ऐसा पकड़े, कथन आवे न! आहाहा! जिस चीज़ से तू अभावरूप है, और वह चीज़ तुझसे अभावरूप है... आहाहा! वह तेरी कहाँ से हुई? आहाहा! समझ में आया? व्यवहार विकल्प जो है, उसका भी तुझमें अत्यन्त अभाव है। आहाहा! विकल्प जो पर्याय में उत्पन्न होता है, उसका भी तुझमें अभाव है, अत्यन्त अभाव है। तो बाहर की चीज़ का क्या कहना, कहते हैं। आहाहा! कौन सी चीज़ मेरी है कि ममता करना? अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप में जमकर, स्थिर होकर स्त्री, शरीरादि का ममत्व और उस व्यवहाररत्नत्रय का राग है, उसका भी ममत्व, यहाँ (स्वरूप में) स्थिर होकर छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! यह १२३ (गाथा) हुई।

गाथा - १२४

अथ गृहपरिवारादिचिन्तया मोक्षो न लभ्यत इति निश्चिनोति–

२४७) मुक्खु ण पावहि जीव तुहुँ घरु परियणु चिंतंतु।
तो वरि चिंतहि तउ जि तउ पावहि मोक्खु महंतु।।१२४।।

मोक्षं न प्राप्नोषि जीव त्वं गृहे परिजनं चिन्तयन्।
ततः वरं चिन्तय तपः एव तपः प्राप्नोषि मोक्षं महान्तम्।।१२४।।

मुक्खु इत्यादि। मुक्खु कर्ममलकलङ्करहितंकेवलज्ञानाघनन्तगुणसहितं मोक्षं ण पावहि न प्राप्नोषि न केवलं मोक्षं निश्चयव्यवहाररत्नत्रयात्मकं मोक्षमार्गं च जीव हे मूढ जीव तुहुँ त्वम्। किं कुर्वन् सन्। घरु परियणु चिंतंतु गृहपरिवारादिकं परद्रव्यं चिन्तयन् सन् तो ततः कारणात् वरि वरं किंतु चिंतहि चिन्तय ध्याय। किम्। तउ जि तउ तपस्तप एव विचिन्तय नान्यत्। तपश्चरणचिन्तनात् किं फलं भवति। पावहि प्राप्नोषि। कम्। मोक्खु पूर्वोक्तलक्षणं मोक्षम्। कथंभूतं। महंतु तीर्थंकरपरमदेवादिमहापुरुषै–राश्रितत्वान्महान्तमिति। अत्र बहिर्द्रव्येच्छानिरोधेन वीतरागतात्त्विकानन्दपरमात्मरुपे निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा गृहादि ममत्वं त्यक्त्वा च भावना कर्तव्येति तात्पर्यम्।।१२४।।

आगे घर परिवारादिक की चिंता से मोक्ष नहीं मिलती, ऐसा निश्चय करते हैं–

घर कुटुम्ब के चिन्तन से हे जीव न मुक्ति पायेगा।
इसीलिए चिन्तन कर तप का जिससे मुक्ति पायेगा।।१२४।।

अन्वयार्थ :– [जीव] हे जीव, [त्वं] तू [गृहं परिजनं] घर, परिवार वगैरह की [चिन्तयन्] चिंता करता हुआ [मोक्षं] मोक्ष [न प्राप्नोषि] कभी नहीं पा सकता, [ततः] इसलिये [वरं] उत्तम [तपः एव तपः] तप का ही बारम्बार [चिंतय] चिंतवन कर, क्योंकि तप से ही [महांतम् मोक्षं] श्रेष्ठ मोक्ष सुख को [प्राप्नोषि] पा सकेगा।

भावार्थ :– तू गृहादि परवस्तुओं को चिंतवन करता हुआ कर्म–कलंक रहित केवलज्ञानादि अनंतगुण सहित मोक्ष को नहीं पावेगा, और मोक्ष का मार्ग जो निश्चय–व्यवहाररत्नत्रय उसको भी नहीं–पावेगा। इन गृहादि के चिंतवन से भव–वन में भ्रमण करेगा। इसलिये इनका चिंतवन तो मत कर, लेकिन बारह प्रकार के तप का चिन्तवन

कर। इसी से मोक्ष पायेगा। वह मोक्ष तीर्थंकर परमदेवाधिदेव महापुरुषों से आश्रित है, इसलिये सबसे उत्कृष्ट है। मोक्ष के समान अन्य पदार्थ नहीं। यहाँ परद्रव्य की इच्छा को रोककर वीतराग परम आनन्दरुप जो परमात्मस्वरुप उसके ध्यान में ठहरकर घर परिवारादिक का ममत्व छोड़ एक केवल निजस्वरुप की भावना करना, यह तात्पर्य है। आत्म-भावना के अन्य कुछ भी करने योग्य नहीं है।।१२४।।

गाथा-१२४ पर प्रवचन

१२४। **आगे घर परिवारादिक की चिन्ता से मोक्ष नहीं मिलती,...** आहाहा! पूरे दिन उसकी चिन्ता। हें! पोपटभाई! आहाहा! **ऐसा निश्चय करते हैं—**

२४७) मुक्खु ण पावहि जीव तुहुँ घरु परियणु चिंतंतु।
तो वरि चिंतहि तउ जि तउ पावहि मोक्खु महंतु।।१२४।।

घर और परिजन की चिन्ता में तेरी मुक्ति नहीं होगी। '**तो वरि चिंतहि**' '**वरि वरं**'।

अन्वयार्थ—हे जीव! तू घर, परिवार वगैरह की चिन्ता करता हुआ... चिन्ता करते हुए तेरा मोक्ष होगा? आहाहा! बहुत समय तो लोगों का इसमें जाता है, लो। स्त्री, पुत्र, मकान, इज्जत के लिये राग की पिंजण पीजता है। राग की पिंजण। इसे पहिचानते हो चन्दुभाई! बैंगलोर। कहा न अभी वह। आठ लाख रुपये डाले हैं उसमें। बारह लाख का मन्दिर बना है न, उसमें आठ लाख (इसने डाले हैं)।

मुमुक्षु : बड़ा धर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म-बर्म नहीं, यह तो उस समय कहा था। उस समय कहा था, खबर है? और यह उसमें सोलह दिन यहाँ ध्यान (कार्यक्रम) में रहे। दो करोड़ की स्टील थी, इसके पास दो करोड़ की स्टील थी। तो सोलह दिन चालीस लाख बढ़ गये। आठ लाख खर्च किये और चालीस लाख बढ़े। इनके मित्र कहते थे, यह बोले नहीं, यह कुछ बोले नहीं। परन्तु वे खड़े थे और इनका मित्र कहता था।

मुमुक्षु : मन्दिर बनाया इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दिर बनाया इसलिए वह तो पुण्य के कारण से आये। मन्दिर के कारण से नहीं, मन्दिर के भाव के कारण से नहीं। आये तो क्या हुआ? वह तो परचीज़ है। कहाँ आये? आहाहा! मेरे हैं, ऐसी ममता उसके पास आयी। चीज़ तो वहाँ रहती है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, अरे! **हे जीव! तू घर, परिवार वगैरह की चिन्ता करता हुआ मोक्ष कभी नहीं पा सकता, इसलिए उत्तम तप का ही बारम्बार चिन्तवन कर।** तप अर्थात् मुनिपना। दीक्षा—तपकल्याणक आता है न? वह तप। यह अपवास—बपवास की बात नहीं। यहाँ तो चारित्र दशा—वीतरागी दशा का चिन्तवन कर। यह तपकल्याणक आता है न? दीक्षा को तपकल्याण कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो वह छोड़कर मुनिपने का चिन्तन कर आनन्द का, यह बात है। परिवार, घर आदि की चिन्ता दुःखरूप है। उससे तेरी मुक्ति होगी? आहाहा! तो उसकी चिन्ता छोड़कर आनन्दस्वरूप भगवान का चिन्तवन कर। आहाहा! वह तेरी चीज़ तुझमें है। आहाहा!

यह आज सवेरे भजन आया था न? 'तेरा प्रभु तेरे में डोले', भजन आता है न? 'तेरा प्रभु तेरे में डोले, तेरा प्रभु तेरे में बोले।' अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु है न! आहाहा! तेरा प्रभु कहीं बाहर गया नहीं। आहाहा! यह भजन नहीं गाया था? एक व्यक्ति आया था न बाहर से? हें?

मुमुक्षु : तेरा प्रभु के ये बोल....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। आहाहा! प्रभु नाम की एक शक्ति है इसमें—गुण। तो एक गुण का अनन्त गुण में उसका—ईश्वर का रूप है। अनन्त गुण में प्रभुता का रूप अनन्त प्रभुता है। आहाहा! ऐसी अनन्त प्रभुता का पिण्ड प्रभु तेरा परमात्मा ईश्वर है, उसकी चिन्ता कर। आहाहा! चिन्ता शब्द से (आशय यह है कि) उस ओर झुकाव करके स्थिर हो। चिन्तवन अर्थात् विकल्प की बात नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए उत्तम तप का ही बारम्बार... स्वरूप की रमणता, आनन्द की रमणता, वह शुद्धोपयोग, उसमें लीन हो। आहाहा! यह तप अर्थात् यह अपवास करना, यह बात नहीं, हों! वापस कोई ऐसा कहे। यह तप तो आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान का अनुभव

करके फिर आनन्द में लीन होना, इसका नाम तप का चिन्तवन कहने में आता है। शब्दार्थ करने में अन्तर है। समझ में आया? **क्योंकि तप से ही श्रेष्ठ मोक्ष सुख को पा सकेगा।** देखा! चारित्र लेना है। आहाहा! पर की ममता रहित और स्व की स्थिरता सहित मोक्ष मिलेगा। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? पर की ममता रहित और अपनी समता सहित, समता अर्थात् वीतरागता चारित्रदशा... आहाहा! समझ में आया? उससे मोक्ष मिलेगा। आहाहा!

भावार्थ—तू गृहादि परवस्तुओं को चिन्तवन करता हुआ कर्म-कलंक रहित केवलज्ञानादि अनन्त गुण सहित मोक्ष को नहीं पावेगा,... क्या कहते हैं? दो बातें की। मोक्ष की व्याख्या भी की। तू गृह, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी आदि का **चिन्तवन करता हुआ, कर्म-कलंक रहित...** भगवान आत्मा केवलज्ञान मोक्ष वह तो कर्म-कलंक से रहित **केवलज्ञानादि अनन्त गुण सहित मोक्ष को नहीं पावेगा,...** आहाहा! **और मोक्ष का मार्ग जो निश्चयव्यवहाररत्नत्रय उसको भी नहीं पावेगा।** आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय-व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है न, दोनों है, वस्तु साथ में है न। साथ में है तो कहने में आता है। नहीं तो निश्चयमोक्षमार्ग का निश्चयमोक्ष और व्यवहारमोक्षमार्ग का व्यवहार मोक्ष, ऐसे दो हैं? समझ में आया? दो हैं या नहीं? दो मोक्ष हैं? वह तो साथ में हे, उसका निरूपण किया है। वरना व्यवहाररत्नत्रय है, वह तो राग है। समझ में आया? आहाहा! परन्तु साथ में दो प्रकार की प्ररूपणा चलती है, निरूपण दो प्रकार से चलता है। यह कहा न भाई ने? टोडरमलजी ने नहीं (कहा)? सातवें अध्याय में। निश्चय और व्यवहाराभास में लिया है। मोक्षमार्ग का प्ररूपण दो प्रकार का है, मोक्षमार्ग दो प्रकार का है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? साधन दो प्रकार के कथन हैं, साधन दो प्रकार के नहीं, साधन एक प्रकार का है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : कथन करने का प्रयोजन तो होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कथन निमित्त प्रयोजन ऐसा कि साथ में सहचर निमित्त देखकर उपचार से व्यवहार कहने में आया है। चार बोल हैं। चन्दुभाई! वहाँ चार बोल साथ में

हैं। उन्होंने प्रयोजन पूछा। सहचर, निमित्त देखकर उपचार से व्यवहार कहने में आया है। वास्तविक वह मोक्षमार्ग नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : तो फिर उसमें प्रयोजन तो कुछ सिद्ध हुआ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, यह प्रयोजन कहा, सहचर है, यह सिद्ध करने के लिये।

मुमुक्षु : वह तो नाम की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, तो यही है बात। साथ में है, निमित्त है, उसका ज्ञान कराने के लिये निरूपण / कथन किया गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म होता है या नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे धर्म बिल्कुल नहीं। समझ में आया?

जैसे आत्मा में वीतरागी परिणति से धर्म होता है, उसके साथ राग बाकी है, उसे व्यवहारधर्म कहा जाता है। धर्म है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....रास्ता बताता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल बताता नहीं, रास्ते को रोकता है। ऐसा है, सेठ!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, कथन कहा न! साथ में है।

मुमुक्षु : कथन करना तो व्यवहार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार तब ही व्यवहार कहा। निश्चय है अपने आनन्दस्वरूप की दृष्टि और अनुभव है, साथ में राग है, सहचर देखकर व्यवहार कहने में आया है, वह वास्तविक धर्म नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसे ही प्रकार का राग, अन्यथा प्रकार का नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग की मन्दता उस प्रकार की है, इतना बतलाने को व्यवहार कहा है। और भाई ने कहा न तुरन्त ही यह कहकर, टोडरमलजी ने, सर्वत्र

निश्चय-व्यवहार का ऐसा लक्षण जानना। यह तो उन्होंने महा सिद्धान्त कहा है। लोग न समझ सके इसलिए शास्त्र में से निचोड़ निकालकर (कहा है)। है न उसमें? आहाहा!

मोक्षमार्ग, अपना निजस्वरूप का वेदन आनन्द का, उसकी प्रतीति, ज्ञान और वेदन वह एक ही मोक्षमार्ग है। परन्तु मोक्षमार्ग की पूर्णता द्रव्य का आश्रय नहीं, तब तक उसे साथ में राग की मन्दता आती है, उसे निरूपण में व्यवहार कहकर उपचार से मार्ग कहा, वास्तविक है नहीं। आहाहा! बन्ध के कारण को उपचार से मोक्ष का कारण कहा। लो! आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा न, उपचार कहा, निरूपण कहा न, साथ में है। आहाहा! साथ में है तो कहने में आया। वास्तविक नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। अरे! शास्त्र का अर्थ करने में बड़ी भूल। आहाहा! तो समझने में तो कहाँ रह गयी? ओहोहो! आया?

मोक्ष का मार्ग जो निश्चयव्यवहाररत्नत्रय उसको भी नहीं पावेगा। इन गृहादिक के चिन्तवन से भव-वन में भ्रमण करेगा। आहाहा! पुत्र हों चार, पाँच, छह उनका विवाह करना और उनकी स्त्री और बहू और वापस उनके कपड़े और गहने, उनके रहने के मकान और उनके मकान में पाखाना अलग, उनके सोने का कमरा अलग। चिन्ता का पार नहीं।

मुमुक्षु : लड़के ऐसा पुण्य लेकर आये हों तो करना पड़े न!

पूज्य गुरुदेवश्री : सुमनभाई पुण्य लेकर आये, तब पैसा खर्च करके पढ़ाये न! ऐसा कहते हैं। धूल में भी नहीं, वह तो राग था।

मुमुक्षु : हमारा राग तो बराबर है, परन्तु वह भी पुण्य लेकर आया है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह लेकर आया इसलिए तुम्हारे करना पड़े, ऐसा कहाँ आया?

मुमुक्षु : वह और अलग विषय है। राग तो हमारा है। उसका पुण्य था, इसलिए राग आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। बिल्कुल नहीं। निमित्त है, इसलिए राग हुआ, ऐसा भी नहीं। स्वयं से राग किया। पाप में से पैसा पैदा किये और पैसे सुमन को पढ़ाने में डाले। यह तो घर में बात है।

मुमुक्षु : वह इतना पुण्य लेकर आया हो,.... करना पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण बिल्कुल किया नहीं। नहीं, नहीं। बिल्कुल झूठ। ऐसा कि वह पुण्य लेकर आया, इसलिए यह करना पड़ा। नहीं?

एक माँ को पुत्र। बड़े गृहस्थ थे, बहुत पैसे, दस लाख, पन्द्रह लाख। कोई है? नहीं यहाँ पोरबन्दरवाला? हमने तो बहुत सुना हो न, देखा है सबको, देखा है सबको। वह बाई संसार की रीति प्रमाण नहीं थी, इसलिए उसका लड़का उसे आदर नहीं करता था। पैसा दस लाख या इतने। एक पाई नहीं दी लड़के को। लो, लड़का पुण्य लेकर आया था या नहीं? दस लाख के घर में आया। अच्छे घर में अवतरित हुआ, बड़े पैसेवाले के यहाँ, लो। आहाहा! हम तो सबको जानते हैं, हों! उसकी बाई को भी पहिचानते हैं, कौन थी, उन सबको। यह तो बहुत वर्ष हो गये न! ६४ वर्ष तो यहाँ हुए, दीक्षा लिये ६४ (वर्ष हुए)। आहाहा! अरे! धूल में भी नहीं। बेचारा लड़का फिर नरम व्यक्ति था। उसकी माँ कहे, एक पाई नहीं दूँ। तू मुझे तरछोड़े है? बाई थी साधारण ऐसी। आहाहा! इसलिए लड़का हुआ, इसलिए देना पड़े और उसे लेना पड़े, ऐसा है?

मुमुक्षु : ऐसा नहीं, उसका पुण्य है इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके पुण्य के लिए कराता है?

मुमुक्षु : अपने लिये नहीं, उसे मिला, वह उसका पुण्य था इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे पुण्य था और यह नहीं मिला, वह अलग बात है। यह तो उसके लिये है। परन्तु यह किया है करनेवाले ने, वह उसका पुण्य है] इसलिए किया है, बिल्कुल झूठ। राग की कल्पना चिन्तवन की पिंजण पींजता है। भभूतमलजी! अब इन्होंने धन्धा कम किया है। पैसे बहुत हैं और सरकार जहाँ-तहाँ दखल देती है, इसलिए धन्धा कम कर दिया।

मुमुक्षु : सरकार दखल मारे उसमें कारण होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कायदा होता है न, सब कायदा (कानून) ऐसे कठोर। ऐसा हुआ बेचारा, क्या हो? आहाहा! अभी देखो न भोगीभाई को है न कठोर। घाटकोपर, भोगीभाई अपने प्रमुख। उनके लड़के को पकड़ा है, कैद में डाल दिया है। बड़े गृहस्थ पैसेवाले। ऐसा कुछ स्पीरीट में गुनाह हो गया है। हथकड़ी डालकर लड़के को बाजार में घुमाया। ऐसा सुना है। दो लाख रुपये तो वकील को केस के लिये दिये हैं। दो लाख। लगभग पाँच-छह लाख खर्च होंगे। वकील, वकील रखा। हथकड़ी डालकर ले गये। अब वे लड़के गृहस्थ के लड़के। आहाहा! उन्हें छुड़ाने के लिये उपाधि में है अभी। पूरा संसार ऐसा है। आहाहा! स्पीरिट का धन्धा करता है, उसमें कुछ फेरफार किया होगा। सरकार गुनाह अभी... बेचारे को त्रास। भाई पहिचानते हैं, पोपटभाई। भोगीभाई को, घाटकोपरवाले। उपाधि लो। हमारे वहाँ (जन्म) जयन्ती करनी थी, वह बन्द रही। वह और ठीक, नहीं तो बेचारा उपाधि में था। घाटकोपर में करना था न?

मुमुक्षु : वे तो बुलाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके लिये नहीं, वे तो दूसरे सब मुम्बई के लिये। घाटकोपर के लिये नहीं। वे तो सब तुम्हारे हैं न? हिम्मतभाई और शान्तिभाई और सब आये थे। चार व्यक्ति आये थे। हिम्मतभाई, शान्तिभाई... कौन था दूसरा? आणंदभाई। ये आणंदभाई थे लो। हें? पोपटभाई वोरा सेठिया थे। लो, सब सेठिया थे। वे तो मुम्बई के लिये। नहीं? घाटकोपर तो बेचारे को उपाधि आ गयी। आहाहा! यह सुना था कुछ। वह तो गुप्तरूप से रामजीभाई ने तार डलवाया। ... ऐसी कुछ भाषा कहते थे। क्या? ऐई! ऐसा था कुछ। कोई कहता था। कोई कहे वह सुने, हम कहाँ वहाँ देखने जाते हैं? तार किया न... क्या कहलाता है वह? क्या दिया? शक्यता है। यह सवेरे भाई बात करते थे। अपने को तो कुछ खबर नहीं। आहाहा! अरे! यहाँ तो आत्मा की बात है, बापू! आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु! तू तेरी चिन्तवना छोड़कर पर के चिन्तवन में रह गया, भटक गया। आहाहा! भवभ्रमण में मुश्किल से मनुष्यदेह मिला। आहाहा! यह परिवार, पुत्र और स्त्रियाँ, आहाहा! प्रभु! तूने राग की पिंजण पिंजी है। राग और द्वेष कषाय की

पिंजण पिंजी हैं। आहाहा! भव में भटकता है। है? है न? आहाहा! **इन गृहादिक के चिन्तवन से भव-वन में भ्रमण करेगा। इसलिए इनका चिन्तवन तो मत कर,...** आहाहा! **लेकिन बारह प्रकार के तप का चिन्तवन कर।** निमित्त से कथन है। अन्तर के आनन्द के ध्यान में रहे, वह तप है। समझ में आया? **इसी से मोक्ष पायेगा।** शुद्धोपयोग से मोक्ष प्राप्त करेगा। शुद्धोपयोग को ही आत्मा का चिन्तवन कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार बताता है किसे? निश्चय को। यह आठवीं गाथा में नहीं आया? व्यवहार किसे बताता है? निश्चय को। व्यवहार का अनुसरण नहीं करना। आता है? व्यवहार बताता है निश्चय को, व्यवहार का अनुसरण नहीं करना, अनुसरण निश्चय का करना। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार बताता है निश्चय को; व्यवहार, व्यवहार को नहीं (बताता)। चन्दुभाई! व्यवहार व्यवहार को नहीं, व्यवहार बताता है निश्चय को। निश्चय स्वभाव की स्थिरता हुई, तब निमित्त बताते हैं, बस। आहाहा!

मुमुक्षु : परम सत्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम सत्य है। आहाहा! आचार्य ने कहा न? हमने व्यवहार से कहा, क्यों? कि भेद किये बिना समझा नहीं सकते। इतना तो, थोड़े में थोड़ा भेद करो तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त, वह आत्मा, इतना भेद तो करना ही पड़े। वह व्यवहार निश्चय को बताता है, परन्तु व्यवहार का अनुसरण कहनेवाले को और सुननेवाले को अनुसरण करना नहीं। आहाहा! यह बड़ा विवाद है न अभी। अनादि का विवाद है, अभी का कहाँ? आहाहा!

मुमुक्षु : विवाद का फल तो वर्तमान में भोगते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भोगते हैं और वापस विवाद निकालते हैं। है भाई, वह वस्तु है। शास्त्र में कथन आता है, व्यवहारमोक्षमार्ग। लो, व्यवहार तपस्या, व्यवहारमोक्षमार्ग, व्यवहारसमकित, व्यवहारज्ञान, व्यवहारचारित्र, पंच महाव्रत को व्यवहारचारित्र कहते हैं। आहाहा! जिसे निश्चयचारित्र आनन्दस्वरूप में रमणता, आत्माराम में रमे, वह

चारित्र है। आहाहा! उस चारित्र की भूमिका में स्व का आश्रय अल्प / थोड़ा है, विशेष पूर्ण नहीं हुआ तो उस समय में राग पर के आश्रयवाला आता है। उसे व्यवहारचारित्र कहा गया है। है निषेध, परन्तु ज्ञान कराने के लिये कहा गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुसरण करनेयोग्य नहीं, तो किसलिए कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न यह? निमित्त के कथन हैं। जैसे दो कहे न? उसमें नहीं आया? निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय आया या नहीं? क्या? निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय आये तो एक सत्य है और दूसरा झूठा है। इसी प्रकार यह व्यवहार कहा, व्यवहार बारह तप है, वह निमित्त है, वह झूठा है। यथार्थ अन्दर आश्रय ले, वह सत्य है। चन्दुभाई! ऐसा मार्ग है, भाई! यह अपने नहीं लिखा? शास्त्र का अर्थ करने की पद्धति। प्रकाशित किया है, नहीं? पीछे। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्रज्ञान करने की पद्धति।

पूज्य गुरुदेवश्री : पद्धति। आता है लेखन।

यह मोक्ष तीर्थंकर परमदेवाधिदेव महापुरुषों से आश्रित है,... आहाहा! **तीर्थंकर परमदेवाधिदेव महापुरुषों से आश्रित...** मोक्ष है। आहाहा! जो अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान, उस आनन्द में अनन्त गुण का रूप है। आहाहा! आनन्द में प्रभुता है, ईश्वरता है, स्वच्छता है, आनन्द में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, वह सब आनन्द में अपना रूप है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा परमानन्दरूप मोक्ष तो तीर्थंकर महापुरुषों के आश्रित है।

मुमुक्षु : अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् कि महाआत्मा है, उसके आश्रित है।

मुमुक्षु : उनकी कृपा हो तो मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : कृपा की बात यहाँ नहीं। कृपा किसकी मिले? आहाहा!

महापुरुषों से आश्रित है,... आहाहा! जिसने मोक्ष का मार्ग स्व के आश्रय से लिया, उसके आधीन मोक्ष है। आहाहा! व्यवहार अकेला करता है, उसके आधीन मोक्ष

नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **इसलिए सबसे उत्कृष्ट है।** तीन लोक के नाथ तीर्थंकर जैसे ने मोक्ष साधा, इस कारण से मोक्ष, वह सर्वोत्कृष्ट है। आहाहा! समझ में आया? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार प्रकार हैं। उनमें मोक्ष, वह सर्वोत्कृष्ट है। धर्म शब्द से पुण्य। उसका पुरुषार्थ तो विकार-बन्ध का कारण है। आहाहा! अर्थ—लक्ष्मी और (काम) भोग, वह पाप का कारण है। पुण्य, वह पुण्य का कारण है। मोक्ष, वह शुद्धोपयोग से प्राप्त होता है। यह तीसरी चीज़। आहाहा! देखो, आता है, देखो!

मोक्ष के समान अन्य पदार्थ नहीं। यहाँ परद्रव्य की इच्छा को रोककर वीतराग परम आनन्दरूप... लो, आया। बारह प्रकार के तप में से वापस यह निकाला। आहाहा! **परद्रव्य की इच्छा को रोककर...** आहाहा! अब स्व आया। **परद्रव्य की इच्छा को रोककर वीतराग परम आनन्दरूप जो परमात्मस्वरूप...** निजद्रव्य। आहाहा! **उसके ध्यान में ठहरकर...** लो। यह तपस्या यथार्थ है। आहाहा! समझ में आया? **परद्रव्य की इच्छा को रोककर...** यह कहते हैं न, भगवान ने बारह वर्ष तप किया। अन्न खाया नहीं, पानी पिया नहीं, ऐसा आता है, बोलते हैं। जब स्थानकवासी में स्तुति करे न, व्याख्यान से पहले। वह करे। जिन्होंने अन्न से अन्न खाया नहीं, पानी से पानी पिया नहीं ऐसी तपस्यायें कीं। आहाहा! यह तो बाहर की बात है, भाई! भगवान ने तपस्या की थी, आनन्द की उग्र दशा प्रगट की, वह तपस्या थी। तपयन्ते इति तपः। आनन्द तपे अन्दर आनन्द में से शोभे, उग्र आनन्द की दशा, चारित्र की उग्र आनन्ददशा, वह तप है। आहाहा!

मुमुक्षु : इच्छा का निरोध, उसे तप कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : इच्छा का निरोध, पूरा हो गया। इच्छा का निरोध, यह नास्ति से बात की है। अतीन्द्रिय आनन्द की उग्र दशा, यह अस्ति से है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में लीन हुआ तो इच्छा उत्पन्न हुई नहीं। आहाहा! शब्दार्थ करने में, शास्त्र के अर्थ करने में अन्तर है। पूरा अन्तर है, भाई! आहाहा!

वीतराग परम आनन्दरूप... देखो! आहाहा! **जो परमात्मस्वरूप... वीतराग परम आनन्दरूप जो परमात्मस्वरूप...** अपना परमात्मस्वरूप कैसा है? आहाहा! वीतराग

परमानन्दरूप परमात्मस्वरूप **उसके ध्यान में...** यह पर्याय। वह द्रव्य। वीतराग परमानन्दस्वरूप परमात्मा, वह द्रव्य—वस्तु। **उसके ध्यान में ठहरकर...** यह पर्याय। **घर परिवारादिक का ममत्व छोड़,...** इसमें स्थिर होकर छोड़, ऐसा कहते हैं। ऐसे घर और स्त्री छोड़े, इसलिए छोड़े हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! **घर परिवारादिक का ममत्व छोड़, एक केवल निजस्वरूप की भावना करना,...** लो, ठीक। लो, यह सार। सेठ! किसलिए? करना क्या, यह सब नकार करते-करते अब करना क्या, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : खाना, पीना, मौज करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन खाये, कौन पीवे? आनन्द का खाना, पीना और मौज करना, यह है यहाँ तो। आहाहा!

एक केवल... १२४ है न? '**तात्त्विकानन्दपरमात्मस्वरूपे**' देखा? इसमें शब्द है। है न? '**वीतरागतात्त्विकानन्दपरमात्मस्वरूपे निर्विकल्पसमाधो स्थित्वा**' आहाहा! देखा? वीतराग तात्त्विक, वीतराग परमानन्द, ऐसा लिया तात्त्विक का अर्थ। तात्त्विक आनन्द। देखो! तात्त्विक का अर्थ परम किया। परम, वह तो बराबर है। वीतराग परमानन्दरूप भगवान। आहाहा! वह निजघर। वीतराग परमानन्दरूपी परमात्मा, वह निजघर। आहाहा! **उसके ध्यान में ठहरकर घर परिवारादिक का ममत्व छोड़, एक केवल निजस्वरूप की भावना करना, यह तात्पर्य (रहस्य) है।** यह सब कहने का रहस्य-तात्पर्य है। आहाहा!

निज वीतराग परमानन्दस्वरूप भगवान आत्मा, बस वहाँ जा। आहाहा! सब शास्त्र का सार यह है। 'लाख बात की बात...' यह आता है न छहढाला में? निश्चय उर आणो। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्वफंद, निज आतम उर ध्याओ।' आहाहा! यह सब शास्त्र के कथन का यह सार है। वीतरागता कही न! वीतरागता तो ऐसे प्रगट होती है, इसलिए कहा न, वीतराग परमआनन्दरूप परमात्मा। वीतराग परमानन्दरूप परमात्मा के आश्रय से वीतराग परमानन्द परिणति होती है। आहाहा! जिसके घर में वीतरागता भरी है, उसका आश्रय लेने से पर्याय में वीतरागता आती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मार्ग बापू बहुत अलौकिक है, भाई! आहाहा!

आत्म-भावना के सिवाय... लो, हिन्दी में सिवाय आती है भाषा, अलावा आता है, सिवाय आता है। **आत्म-भावना के सिवाय...** आत्म-भावना अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो आत्मा की भावना। **अन्य कुछ भी करनेयोग्य नहीं है।** लो, यह सब व्यापार-धन्धा और कुछ करनेयोग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यापार-धन्धे में तो क्या राग-द्वेष करता है, दूसरा क्या करे? धन्धा कर सकता है? राग का राग, राग में से राग, राग में से द्वेष। अनुकूलता में राग और प्रतिकूलता में द्वेष। आहाहा! राग और द्वेष की पिंजण पींजता है। भारी कर्मी होकर जाये, भटकता है। आहाहा! और यह पीछे जो रोते हैं लड़के या कोई, वे कहीं तुम मरकर कहाँ गये, उसके लिये रोते नहीं, तू मरकर नरक में गया तो हमारे क्या है यहाँ?

मुमुक्षु : वह भी नरक को मानते हैं या नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह तो मानता हो कदाचित्, लो न। परन्तु वह कहाँ गया, यह कौन विचारता है कब? वह तो हमारी सुविधा गयी। तू मजदूरी करके यहाँ कमाता था। भभूतमलजी! यह हमारी सुविधा गयी, उसके लिये हम रोते हैं। तू तिर्यंच में गया या नरक में गया, वह हमारे कहाँ नहाने जाना है। आहाहा! कभी ऐसा विचार किया कि अरे! बापू मरकर कहाँ गये होंगे? हमारे लिये इतना किया, २५-३०-४० वर्ष मजदूरी की, पाप बाँधे, आहाहा! धर्म के लिये तो जाते भी नहीं, सुनते नहीं, विचार नहीं, धर्म तो नहीं परन्तु धर्म के लिये जाते नहीं अर्थात् पुण्य भी नहीं, ऐसा। सुनने जानना, वांचन करना, वह सब पुण्य है। धर्म तीसरी चीज़ है। आहाहा! बराबर है? बाईस, तेईस घण्टे हमारे लिये पाप करके निकाले, दो-चार घण्टे निवृत्ति से सुनने जाये तो कुछ पुण्य तो बाँधे। सुनने जाये, दो-चार घण्टे वांचन करे, उसका भी ठिकाना नहीं। आहाहा! हें!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मारा था। कहा था न! दो भाई थे। छोटे भाई के लिये बड़ा भाई अण्डा और वह चुपचाप लाकर दवा में देता था। उसमें बड़ा भाई है, वह मरकर नारकी हुआ, छोटा भाई, जिसके लिये पाप करता था, वह मरकर परमाधामी हुआ। कथा में आता है। अरे! भाई! मैंने तेरे लिये किया। परन्तु मैंने कब कहा था कि मेरे लिये ऐसे गुप्त

पाप करना। मेरे देखे बिना गुप्तरूप से तू अण्डे लाया, यह लाया... आहाहा! जिसके लिये पाप किये, वह मरकर हुआ परमाधामी और जिसने पाप किये वह हुआ मरकर नरक में (नारकी)। दोनों भाई। मार फाड़... परन्तु हम दोनों भाई थे। वह कौन कहता है, थे या नहीं। तूने पाप किसलिए किये हमारे लिये? लो, ऐसा है। हें! पुत्र न हो तो पुत्र ले, क्या कहलाता है वह? दत्तक... दत्तक। गोद ले गोद। इसकी अपेक्षा पैसा दे, उसमें से राग घटाकर पुण्य किया होता तो तेरे शुभभाव होता। परन्तु यह पैसे के लिये खोजा एक लड़का कि इसे सब देना है।

मुमुक्षु : वह नाम और वंश रखेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम और वंश किसका? आहाहा! यह संसार की लीला है। आहाहा!

एक केवल निजस्वरूप की... आहाहा! वापस देखा, पर्याय नहीं। एक है? केवल निजस्वरूप। आहाहा! उसकी भावना, वह पर्याय। पर्याय की भावना भी नहीं। ऐसा। आहाहा! **एक केवल निजस्वरूप...** इसलिए आत्मज्ञान कहा है न? पर्याय का ज्ञान और राग का ज्ञान, ऐसा नहीं कहा। आत्मज्ञान। तो आत्मा जो द्रव्य है वस्तु पूरी, उसका ज्ञान। वह पर्याय है, वह पर्याय है। यह कहा वह। केवल निजस्वरूप, वह वस्तु। वह वस्तु-पदार्थ; उसकी भावना, वह पर्याय। यह करने का तात्पर्य है। आहाहा! समझ में आया?

आत्म-भावना के सिवाय अन्य कुछ भी करने योग्य नहीं है। आहाहा! यह सब लफड़े लगे हों, उनका क्या करना? आहाहा! स्त्री को पुत्र न होता हो तो पुरानी पड़ी हो और नयी करे। फिर उन दोनों को विवाद। आहाहा! ऐसा संसार जला-सुलगा है। भगवान! तेरा हित तो केवल एक निज आत्मा-भगवान सुखस्वरूप। आहाहा! उसकी एकाग्रता करना, वह एक ही कर्तव्य है। आहाहा! समझ में आया?

गाथा - १२५

अथ जीवहिंसादोषं दर्शयति–

२४८) मारिवि जीवहँ लक्खडा जं जिय पाउ करीसि।
पुत्त–कलत्तहँ कारणइँ तं तुहुँ एक्कु सहीसि।।१२५।।

मारयित्वा जीवानां लक्षाणि यत् जीव पापं करिष्यसि।
पुत्रकलत्राणां कारणेन तत् त्वं एकः सहिष्यसे।।१२५।।

मारिवि इत्यादि। मारिवि जीवहं लक्खडा रागादिविकल्परहितस्य स्वस्वभावनालक्षणस्य शुद्धचैतन्यप्राणस्य निश्चयेनाभ्यन्तरं वधं कृत्वा बहिर्भागे चानेकजीवलक्षाणाम्। केन हिंसोपकरणेन। पुत्तकलत्तहं कारणइं पुत्रकलत्रममत्वनिमित्तोत्पन्नदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षास्वरुपतीक्ष्णशस्त्रेण। जं जिय पाउ करीसि हे जीव यत्पापं करिष्यति तं तुहुँ एक्कु सहीसि तत्पापफलं त्वं कर्ता नरकादिगतिष्वेकाकी सन् सहिष्यसे हि। अत्र रागाघभावो निश्चयेनाहिंसा भण्यते। कस्मात् निश्चयशुद्धचैतन्यप्राणस्य रक्षाकारणत्वात्, रागाघुत्पत्तिस्तु निश्चयहिंसा। तदपि कस्मात्। निश्चय–शुद्धप्राणस्य हिंसाकारणत्वात्। इति ज्ञात्वा रागादिपरिणामरुपा निश्चयहिंसा त्याज्येति भावार्थः। तथा चोक्तं निश्चयहिंसालक्षणम्–''रागादिणमणुप्पा अहंसकतं त्ति देसियं समए। तेसिं चे उप्पत्ती हिंसेति जिणेहिं णिद्दिट्ठा।।''।।१२५।।

आगे जीवहिंसा का दोष दिखलाते हैं–

पुत्रादिक के लिए जीव तू लाखों जीवों को मारे।
जो भी पाप करेगा किन्तु उसको तू ही सहन करे।।१२५।।

अन्वयार्थ :– [जीवानां लक्षाणि] लाखों जीवों को [मारयित्वा] मारकर [जीव] हे जीव, [यत्] जो तू [पापं करिष्यसि] पाप करता है, [पुत्रकलत्राणां] पुत्र, स्त्री वगैरह के [कारणेन] कारण [तत् त्वं] उसके फल को तू [एक] अकेला [सहिष्यसे] सहेगा।

भावार्थ :– हे जीव, तू पुत्रादि कुटुम्ब के लिये हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रहादि अनेक प्रकार के पाप करता है, तथा अंतरंग में रागादि विकल्प रहित ज्ञानादि शुद्धचैतन्य प्राणों का घात करता है, अपने प्राण रागादिक मैल से मैले करता है, और बाह्य में अनेक जीवों की हिंसा करके अशुभ कर्मों को उपार्जन करता है, उनका फल

तू नरकादि गति में अकेला सहेगा। कुटुम्ब के लोग कोई भी तेरे दुःख के बटानेवाले नहीं हैं, तू ही सहेगा। श्रीजिनशासन में हिंसा दो तरह की है। एक आत्मघात, दूसरी परघात। उनमें से जो मिथ्यात्व रागादिक के निमित्त से देखे, सुने, भोगे हुए भोगों की वाँछारुप जो तीक्ष्ण शस्त्र उससे अपने ज्ञानादि प्राणों को हनना, वह निश्चयहिंसा है, रागादिक की उत्पति वह निश्चय हिंसा है। क्योंकि इन विभावों से निज भाव घाते जाते हैं। ऐसा जानकर रागादि परिणामरुप निश्चयहिंसा त्यागना। वही निश्चयहिंसा आत्मघात है। और प्रमाद के योग से अविवेकी होकर एकेंन्द्रि, दोइंन्द्रि, तेइंद्रि, चौइंद्रि, पंचेद्रि जीवों का घात करना वह परघात है। जब इसने परजीव का घात विचारा, तब इसके परिणाम मलिन हुए, और भावों की मलिनता ही निश्चयहिंसा है, इसलिये परघातरुप हिंसा आत्मघात का कारण है। जो हिंसक जीव है, वह परजीवों का घातकर अपना घात करता है। यह स्वदया परदया का स्वरुप जानकर हिंसा सर्वथा त्यागना। हिंसा के समान अन्य पाप नहीं है। निश्चयहिंसा का स्वरुप सिद्धांत में दूसरी जगह ऐसा कहा है–जो रागादिक का अभाव वही शास्त्र में अहिंसा कही है, और रागादिक की उत्पति वही हिंसा है, ऐसा कथन जिनशासन में जिनेश्वरदेव ने दिखलाया है। अर्थात् जो रागादिक का अभाव वह स्वदया और जो प्रमादरहित विवेकरुप करुणाभाव वह परदया है। यह स्वदया–परदया धर्म का मूलकारण है। जो पापी हिंसक होगा उसके परिणाम निर्मल नहीं हो सकते, ऐसा निश्चय है, परजीव घात तो उसकी आयु के अनुसार है, परंतु इसने जब परघात विचारा, तब आत्मघाती हो चुका।।१२५।।

गाथा-१२५ पर प्रवचन

अब, १२५ में **जीवहिंसा का दोष दिखलाते हैं—** आहाहा!

२४८)　**मारिवि जीवहँ लक्खडा जं जिय पाउ करीसि।**
पुत्त–कलत्तहँ कारणइँ तं तुहुँ एक्कु सहीसि।।१२५।।

अन्वयार्थ—लाखों जीवों को मारकर हे जीव! जो तू पाप करता है,... लाखों क्या, अनन्त जीव निगोद और आलू... आहाहा! लाखों शब्द तो एक शब्द आया। बाकी अनन्त जीवों को मारकर। आहाहा! **हे जीव! जो तू पाप करता है, पुत्र, स्त्री वगैरह के**

कारण उसके फल को... आहाहा! पुत्र और स्त्री और उनकी सुविधा के लिये सब। ओहोहो! उनके लिये करता है, **उसके फल को तू अकेलाा सहेगा।** आहाहा! अकेला सहन करेगा बापू, भाई! अकेला स्वयं पर की ममता करके पाप किये, वह अकेला जाकर सहन करेगा। आहाहा! वहाँ कोई सामने नहीं देखेगा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

नरक की पीड़ा। उष्ण पीड़ा। लाख मण का लोहे का गोला हो। छह महीने तक निरोगी लुहार के जवान लड़के ने टीप-टीप कर छह महीने में पक्का किया हो, वह गोला उसकी उष्ण वेदना में छोड़े तो जैसे घी पिघल जाता है अग्नि में, अग्नि के कोटारवा में जैसे पिघल जाये। इतनी उष्ण की गर्मी पहले नरक में है। यहाँ जरा ९९ और १०० बुखार आवे वहाँ खलबलाहट हो जाये अन्दर में, हाय... हाय...! सहन नहीं होता। क्या है परन्तु अब? आहाहा!

मुमुक्षु : तबियत बिगड़ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिगड़ जाये। यह अपने भाई का था। खबर है न मूलजीभाई को? एक दिन देखने गये थे। शोकातुर था, ऐसे से ऐसे करे। पैसेवाला व्यक्ति और ऐसे सुविधा में फँस गया। क्या धूल में भी है। मूलजीभाई का। फिर बाद में बहुत वह, हों! पीछे से तो ओहोहो! रोग ऐसा आया, लोग कहे, बुलाओ डॉक्टर को। वह कहे कि बुलाओ लालभाई को। खबर है न? लालचन्दभाई को बुलाओ। सगे-सम्बन्धी कहे, डॉक्टर को बुलाओ। वह कहे, लालचन्दभाई को बुलाओ। लालचन्दभाई मुझे सुनावे। आहाहा! पीड़ा में धर्म सुनने की भावना हुई, लो! पीड़ा मिटाने की नहीं। वह तो देह की स्थिति है। आहाहा! यहाँ से जाना है जहाँ उसका क्या? आहाहा! वहाँ कोई मौसी माँ नहीं बैठी कि आओ भाई! आहाहा! बापू! अनजाने देश में, अनजाने काल में उस भाव में जाना। प्रभु! तैयारी करना अब आने की। अनजाने क्षेत्र में, अनजाने साधन में... आहाहा! वह पर को मारकर पाप करेगा, भगवान! तुझे अकेले को सहन करना पड़ेगा। भावार्थ कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष कृष्ण १२, सोमवार
दिनांक- १७-०१-१९७७, गाथा - १२५, १२६, प्रवचन-१८८

परमात्मप्रकाश, १२५ गाथा। गाथा बोल ली गयी है। भावार्थ हो गया है? '**मारिवि जीवहँ लक्खडा**' '**लक्खडा**' अर्थात् लाखों। लाखों प्राणियों को मार डालकर तू पाप करता है, उसका फल तुझे भोगना पड़ेगा, यह कहते हैं।

भावार्थ—हे जीव! तू पुत्रादि कुटुम्ब के लिये... पुत्र, स्त्री, परिवार के ममत्व के कारण **हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रहादि अनेक प्रकार के पाप करता है, तथा अन्तरंग में रागादि विकल्प रहित ज्ञानादि शुद्धचैतन्य प्राणों का घात करता है,...** आहाहा! बाह्य में एकेन्द्रिय आदि से लेकर दूसरे प्राणियों का घात करता है, अन्तरंग में रागादि से अपने निश्चय भावप्राण आनन्द और ज्ञाता का घात करता है। आहाहा! दूसरे प्राणी का घात करता है अथवा पाप करता है हिंसा, झूठ आदि और अन्तरंग में, रागादि विकल्प रहित भगवान आत्मा तो रागादि विकल्प रहित स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन है, उसे राग करके चैतन्य के प्राण का तू घात करता है। आहाहा! समझ में आया?

अन्तरंग में रागादि विकल्प रहित ज्ञानादि शुद्धचैतन्य प्राण... ज्ञान, आनन्दादि शुद्ध चैतन्यप्राण। जीवत्वशक्ति में लिया है न? जीवत्वशक्ति, जिसके ज्ञान, दर्शन, आनन्द, सत्ता प्राण है। जीवत्वशक्ति पहली। 'जीवो' यहाँ से शुरु किया है न, (समयसार) दूसरी गाथा। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' उस जीव में से पहली शक्ति जीवत्व निकाली है। आहाहा! तेरी जीवत्वशक्ति अर्थात् तेरे ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सत्तारूपी भावप्राण, उसमें राग और द्वेष, विषयवासना उत्पन्न करके, आहाहा! अपने भावप्राण का घात करता है। आहाहा! समझ में आया? सेठ आये नहीं। देरी क्यों हो गयी? आते हैं? **ज्ञानादि शुद्धचैतन्य प्राण...** शुद्धज्ञान, शुद्ध आनन्द, शुद्ध सत्ता, शुद्ध स्वभाव, शुद्धवीर्य। जो वस्तु आत्मा की है, उसमें राग, द्वेष आदि से अपने प्राण का घात होता है। आहाहा! आनन्दप्राण और ज्ञानप्राण राग में लुट जाते हैं। आहाहा! समझ में आया?

बाह्य में अनेक जीवों की हिंसा करके... गाथा में '**लक्खडा**' है न? लाखों जीव, ऐसा। शब्द बहुत संक्षिप्त रखा है। **बाह्य में अनेक जीवों की हिंसा करके अशुभ**

कर्मों का उपार्जन करता है,... आहाहा! **उनका फल तू नरकादि गति में अकेला सहेगा।** आहाहा! स्त्री, परिवार, पुत्र की ममता के कारण जो पाप तू करता है, अन्तरंग रागादि के और बाह्य से हिंसा आदि, उनका फल तू अकेला भोगेगा।

मुमुक्षु : परमाधामी मारने नहीं आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमाधामी भी भोगे कौन? अकेला या वे सगे, कुटुम्बी वहाँ आयेंगे भोगने? क्या करें हम? हमारे स्त्री, पुत्र का भूत लगा है, उसके लिये करना पड़ता है।

पाठ में—टीका में 'ममत्व' शब्द है। यहाँ ममत्व रखा नहीं, टीका में ऐसा है। '**पुत्रकलत्रममत्वनिमित्तोत्पन्न**' टीका में है। आहाहा! ये मेरे हैं, पुत्र मेरा, स्त्री मेरी, भाई मेरे, उनकी पुत्रियाँ हमारी, उनके दामाद वे हमारे। हमें उनके लिये करना पड़ता है, हमारा कर्तव्य संसार का है भटकने का। ऐसी बात है। **उनका फल तू नरकादि गति में अकेला सहेगा।** आहाहा! **कुटुम्ब के लोग कोई भी तेरे दुःख के बँटानेवाले नहीं हैं,...** दुःख बाँट नहीं सकेगा, कहते हैं। थोड़ा दुःख तू और थोड़ा दुःख मैं (सहन करूँ)। आहाहा! समझ में आया? **तू ही सहेगा।** आहाहा!

कल कहा नहीं था? दो भाई थे। छोटे भाई को रोग हुआ और बड़ा भाई दवा लावे। दवा लाकर दे। खबर भी न पड़े छोटे को। उसमें अण्डा डाले अण्डा, बड़ा भाई उसके लिये। वह बड़ा मरकर नारकी हुआ और छोटा था, वह मरकर परमाधामी हुआ। मारे उसके भाई को—नारकी को। वह कहे, अरे! परन्तु तू मुझे (मारता है)? मैंने तो तेरे लिये किया था। किसने कहा था? मेरे लिये करने का कहा था तुझे? सगे दो भाई, एक हुआ नारकी और एक हुआ परमाधामी। यहाँ यह कहते हैं, देखो! आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो एक दृष्टान्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे अनन्त बार हुए हैं सबको। यह तो दृष्टान्त तो एक ही हो न! आहाहा!

तू ही सहेगा। श्री जिनशासन में हिंसा दो तरह की है। एक आत्मघात, दूसरी परघात। उनमें से जो मिथ्यात्व रागादिक के निमित्त से देखे, सुने, भोगे... लो, आया।

देखा ? मिथ्यात्वभाव विपरीत मान्यता और राग-द्वेष के निमित्त से देखे हुए आँख से, कान से सुने हुए, भोगे हुए इसमें नहीं। **भोगों की वांछारूप जो तीक्ष्ण शस्त्र...** आहाहा! भोग की वासना तीक्ष्ण शस्त्र। आहाहा! **उससे अपने ज्ञानादि प्राणों को हनना,...** अपने ज्ञान और आनन्द प्राण शुद्ध पवित्र, उस भोग की वासना में प्राण का घात होना। आहाहा! वह आत्मघात है। समझ में आया ? **तीक्ष्ण शस्त्र उनसे अपने ज्ञानादि प्राणों को हनना, वह निश्चयहिंसा है,...** वह अपनी निश्चयहिंसा। आहाहा! **रागादिक की उत्पत्ति वह निश्चयहिंसा है।** राग की उत्पत्ति करना शुभ और अशुभ, वह हिंसा। आहाहा! यहाँ ऐसा कहा और वहाँ वापस ऐसा कहा कि निश्चय-व्यवहार दोनों मोक्ष का मार्ग, भेदाभेदरत्नत्रय को आराधना। क्या शैली! भेदरत्नत्रय तो शुभराग है। परन्तु कथन की शैली से यह कथन आया है। निरूपण की अपेक्षा से। बाकी तो राग है, वह हिंसा है। आहाहा! पुरुषार्थसिद्धिउपाय में गाथा ली है। यहाँ दूसरा दृष्टान्त देंगे जयधवल का देंगे। पुरुषार्थसिद्धि में लिया है। रागमात्र की उत्पत्ति, भगवान आत्मा वीतराग प्राण को धरनेवाला, उस राग से निश्चय वीतरागी प्राण, अपनी निजशक्ति का सामर्थ्य पर्याय में लुट जाता है। आहाहा! कहो, भभूतमलजी! यह परिवार के लिये, पुत्र के लिये करते हैं, क्या करें ? आहा! यह भाई मर गया न यह ? दो अरब चालीस करोड़ वाला, शान्तिलाल खुशाल। तब उसके बहनोई ने उसे कहा, यह बहनोई होते हैं न ? पोपटभाई। उसको दो अरब चालीस करोड़। पोपटभाई अपने आते हैं न ? उनकी दो लड़कियाँ ब्रह्मचारी हैं। उन्होंने कहा, परन्तु अब तुम किसलिए करते हो ? इतने पैसे हैं। दो अरब चालीस करोड़। जवाब ऐसा दिया। ऐ सेठ! जवाब ऐसा आया उसके साले का, बहनोई को, वह क्या हम हमारे लिये करते हैं ? हजारों लोगों को आजीविका मिले, इसके लिये धन्धा करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : हजारों लोग काम पर लगे हुए हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटी बात। हजारों लोग को निभाने के लिये करता है या तेरी ममता के लिये करता है ? हें ?

मुमुक्षु : ममता के लिये करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ममता के लिये करता है। उसके बहनोई पोपटभाई हैं न,

पोपटभाई लींबडीवाले। उनके घर में भी छह सौ बीघा जमीन है, पोपटभाई की। पैंतीस-चालीस हजार की वर्ष की आमदनी है। जमीन हलकी है न, भाल में। और इस ओर होती तो बहुत पैदा होता। परन्तु वह तो पैसे का जहाँ योग हो, ऐसा बने न। उसके साले को कहा, तुम अब कितने पैसे.... दो अरब चालीस करोड़, कितना कमाना है अब तुम्हारे? कितने पाप करने हैं तुम्हारे? वह क्या हम हमारे लिये करते हैं? हजारों लोग कारखाना में निभते हैं। उनके लिये करता होगा? बड़ी मूर्खता है। ऐई! पोपटभाई! मूर्ख का सरदार है। आहाहा! मरकर कहीं जायेगा, भाई! तेरा हाथ नहीं आयेगा। वे लड़के भी वहाँ मारने आयेंगे परमाधामी होकर। आहाहा!

मुमुक्षु : पैसे कमाये और मूर्ख?

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा मूर्ख। यह रहे तुम्हारे पैसेवाले, सब साथ बैठे हैं न, देखो न!

मुमुक्षु : यहाँ सब हाँ करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठ को जवाब देना आता है। आहाहा! अरे! भाई! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य भावप्राण को धरनेवाला, वह पर के कारण से रागादि करे, वह तो हिंसा है, हिंसा है। आहाहा! व्यापार-धन्धा निभाने के लिये, वे सब पाप के भाव आत्मघात हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

मुमुक्षु : धन्धा न करे तो पैसा मिले?

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धा किसलिए करता है? रोटियाँ मिलती है, इतना बस है। उसके लड़के की बातें करते हैं। आठ हजार वेतन है न मासिक। सुमनभाई।

मुमुक्षु : मैं तो सामान्य बात करता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु उसमें आया यह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी कुछ नहीं वहाँ। यह संसार तो, ओहो! पर के लिये करता हूँ, मेरा कर्तव्य है, मुझे करना पड़े। मर जायेगा। पर कहाँ तेरे साथ आनेवाले हैं। अकेले पाप के फल नरक में या तिर्यंच में (भोगेगा)। आहाहा! जीवित बकरे को, भेड़

को बाघ आवे, नाहर-नाहर होता है न? नाहर जीवित खाये। थोड़ा... थोड़ा... थोड़ा। आहाहा! नाहर नहीं होता? नाहर कहते हैं? जंगल में (होता है)। क्या कहते हैं? चीता नहीं। नाहर अलग। चीता अलग, बाघ अलग, नाहर अलग। नाहर देखा नहीं, चीता और बाघ देखा है। सिंह, बाघ, चिता (देखे हैं)। नाहर देखा नहीं। कहीं होगा। अपने यहाँ नाहर आता है भरवाडो में। बकरा ले जाता है नाहर आता है यहाँ रात्रि में। कुत्ते जैसा होता है। आहाहा! वह प्राण को मारकर घात करे। आहाहा! बाहर का घात तो हो, न हो, परन्तु पर को मारने का भाव हुआ, वहाँ अपना घात तो हुआ। आहाहा! समझ में आया?

एक जगह ऐसा हुआ था। उसके बाप का, क्या कहलाता है वह? श्राद्ध... श्राद्ध। श्राद्ध कहते हैं? क्या कहते हैं? श्राद्ध था तो दूधपाक बनाया, दूधपाक। उसका बाप मरकर कुत्ती का बच्चा हुआ, वहाँ ही उस गली में, गली... गली। अब बारह महीने का जो दूधपाक बनाया हुआ, क्या कहलाता है? श्राद्ध। वह बच्चा आवे एकदम खाने के लिये और यह मारे, निकाले। वापस हटे नहीं, फिर आवे। फिर उसे वहम पड़ा कि यह है क्या यह? बारम्बार आता है। फिर किसी को पूछा, साधु होगा उसे, अवधिज्ञानी (को पूछा)। उसने कहा, यह तेरे बाप का श्राद्ध है न, यह तेरा बाप है। आहाहा! यह भी बनता है न, इसमें कोई विशेषता कुछ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? अपने स्वभाव की सम्हाल छोड़कर पर की सम्हाल में राग-द्वेष किये, अपघात किया। आहाहा! प्रभु! तेरी हिंसा तूने की, ऐसा कहते हैं। है? आहाहा!

क्योंकि इन विभावों से निज भाव घाते जाते हैं। पर को मारने का भाव, अरे! बचाने का भाव, वह भी राग। आहाहा! गजब बात है, बापू! बहुत कठिन काम।

मुमुक्षु : उसमें भी अपनी हिंसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हिंसा है, राग है न! भगवान आत्मा निर्विकल्प आनन्दस्वरूप, निर्विकल्प अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु है। आहाहा! उसे राग का विकल्पमात्र उसे हिंसा है। आहाहा! समझ में आया? **विभावों से निज भाव...** ज्ञान, दृष्टा, ज्ञाता, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता के प्राण राग से घात होते हैं। आहाहा! **ऐसा जानकर रागादि परिणामरूप निश्चयहिंसा त्यागना।** रागादि परिणामरूप निश्चयहिंसा छोड़ना। आहाहा!

यही निश्चयहिंसा आत्मघात है। आहाहा! यह आत्मघात की व्याख्या की, परघात की अब करेंगे। आत्मघात और परघात, दो की व्याख्या। उसमें यह आत्मघात की व्याख्या। अब परघात की व्याख्या करेंगे।

प्रमाद के योग से अविवेकी होकर एकेन्द्रि जीव,... पृथ्वी, पानी / जल, अग्नि, वायु, वनस्पति। आहाहा! यह नीम के नीचे लोग निकलते हैं न, तो कितने ही डालियाँ तोड़ते जाते हैं। कुछ नहीं, कुछ नहीं होता। कोई तो ले जाते हैं डालियाँ तोड़कर बकरे के लिये। निकली रास्ते और ऐसे खींचकर तोड़कर ले जाते हैं। आहाहा! जिसमें असंख्य तो जीव हैं, एक टुकड़े में असंख्य जीव हैं। नीम में, पीपल में, नीम के एक टुकड़े में असंख्य जीव, असंख्य शरीर, एक शरीर में एक जीव। और एक जीव में भी तेरे माता-पिता अन्दर विराजते हैं। पूर्व के माता-पिता भी वहाँ अन्दर मरकर गये हैं। आहाहा! समझ में आया? असंख्य हैं न असंख्य। आहाहा! दीर्घरूप से विचार कब किया है? आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, **एकेन्द्री....** काई, कन्दमूल, लहसुन, प्याज को घात करे। आहाहा! दो इन्द्रिय को घात करे। लट-लट आदि। **त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रीय, पंचेन्द्री जीवों का घात करना, वह परघात है।** आहाहा! **जब इसने परजीव का घात विचारा, तब इसके परिणाम मलिन हुए, और भावों की मलिनता ही निश्चयहिंसा है,...** तेरी हिंसा तो हो गयी। परजीव मरे, न मरे, वह कहीं तेरे आधीन नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **भावों की मलिनता ही निश्चयहिंसा है, इसलिए परघातरूप हिंसा आत्मघात का कारण है।** परघातरूप हिंसा आत्मघात का कारण है। **जो हिंसक जीव है, वह परजीवों का घातकर अपना घात करता है।** परजीव का घात करने का भाव ही अपना घात है। आहाहा! **यह स्वदया-परदया का स्वरूप जानकर हिंसा सर्वथा त्यागना।** पर को मारने का भाव रागादि, उसे त्यागना और पर को मारने की क्रिया है, वह भी न करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **हिंसा के समान अन्य पाप नहीं है।** यह हिंसा-राग, हों!

निश्चयहिंसा का स्वरूप सिद्धान्त में दूसरी जगह ऐसा कहा है—जयधवल है। आरा की प्रति में लिखा है। १३ गाथा है। आरा की प्रति है यहाँ? जयधवल में लिखा है। उसमें लिखा है। **जो रागादिक का अभाव, वही शास्त्र में अहिंसा कही है,...**

आहाहा! यह अहिंसा, पर को न मारना, वह अहिंसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! **रागादिक का अभाव, वही शास्त्र में अहिंसा कही है,...** यह अहिंसा। आहाहा! यह अहिंसा परमो धर्म। परजीव की अहिंसा और परजीव की दया पालना, वह धर्म है— ऐसा तो है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? राग की व्याख्या बहुत सूक्ष्म। परजीव को बचाने का विकल्प उठे, वह भी हिंसा। आहाहा! वे आलोचना करते हैं, देखो! दया धर्म है, उसमें ऐसा कहते हैं। अरे! प्रभु! सुन तो सही! दया दो प्रकार की—एक अपनी दया और पर। पर की दया। पर की दया का भाव तो राग है। हें! आहाहा! सत्य को स्वीकारने का अवसर आया तो कहता है, नहीं... नहीं। भगवान ने तो दया, करुणा को जीव का स्वभाव कहा है। वह कौन सी दया? वह अहिंसा राग रहित की, वह। आहाहा!

बाकी प्रवचनसार में नहीं कहा? मोह के तीन लक्षण। आहाहा! मोह के लक्षण कहे न? परजीव की करुणा। उसे उसके कारण से ऐसी करुणा। वह मिथ्यात्वभाव है। तिर्यंच और मनुष्य की दया, उसकी है ऐसा लक्ष्य करके करुणा करे, वह मिथ्यात्वभाव है। हें?

मुमुक्षु : तन्मयपने।

पूज्य गुरुदेवश्री : तन्मय है। इसे ऐसा करूँ, इसे ऐसा करूँ, ऐसा। उसके लिये करता हूँ। अपने को दया का भाव आवे जरा यों ही साधारण राग, वह अलग बात है। परन्तु मैं यह दया, करुणा उसके लिये करता हूँ। यह मिथ्यात्वभाव है। लक्षण वर्णन किये हैं न मिथ्यात्व के और राग-द्वेष के। आहाहा! प्रवचनसार। वे तीन बोल हैं। आहाहा!

रागादिक का अभाव वही शास्त्र में अहिंसा कही है,... आहाहा! **और रागादिक की उत्पत्ति वही हिंसा है,...** बहुत ही संक्षिप्त बात है। आहाहा! **ऐसा कथन जिनशासन में जिनेश्वरदेव ने दिखलाया है।** है? श्लोक है न?

रागादीणमणुप्पा अहिंसकतं ति देसियं समए।
तेसिं चे उप्पत्ती हिंसेति जिणेहिं णिद्दिट्ठा॥४२॥

जिनेश्वरदेव वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने ऐसा देखा कि राग, वह हिंसा और अराग, वह अहिंसा। आहाहा! समझ में आया? चाहे तो राग शुभ हो या अशुभ हो, आत्मा की

हिंसा है। आहाहा! हसता तें.... आता है सज्झाय में। चार सज्झायमाला है न, उसमें आता है। 'हसता तें बांध्या कर्म, रोता न छूटे प्राणीया' चार सज्झायमाला में आता है। हसता बांध्या कर्म। ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न और बस यह... यह... अरे! भाई! 'हसता बांध्या कर्म...' चार सज्झायमाला है न? तब दुकान पर वांची थी। तब यह आता था, 'हसता बांध्या कर्म, रोता न छूटे प्राणीया' आहाहा!

ऐसा कथन जिनशासन में जिनेश्वरदेव ने दिखलाया है। देखो! '**जिणेहिं णिद्दिट्ठा**' आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर, एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक अपनी पर्याय को जानते हुए जानते हैं। पर्याय जानने पर सब ज्ञात हो जाता है। आहाहा! ऐसे जिनेश्वरदेव। आहाहा! है न? उन्होंने दिखलाया है। आहाहा! रागमात्र की उत्पत्ति जीव—भगवान आत्मा के भावप्राण की हिंसा। श्रीमद् में आया नहीं? '(क्षण क्षण भयंकर) भावमरण प्रवाह में चकचूर है।' श्रीमद में आता है 'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से...' (काव्य में) आता है। '(क्षण क्षण भयंकर) भाव मरण प्रवाह में चकचूर है।' आहाहा! परप्राणी का घात हो या न हो, उसका अधिकार नहीं। परन्तु परप्राणी का घात करने का विचार आया, राग (आया) वह अपना घात है। आहाहा! परिवार, कबीला को निभाने का राग आया, वह अपनी हिंसा है। आहाहा!

जो रागादिक का अभाव, वह स्वदया और जो प्रमादरहित विवेकरूप करुणाभाव, वह परदया है। लो, इतना। **यह स्वदया-परदया धर्म का मूलकारण है।** परदया में डाला, राग है। परन्तु यहाँ व्यवहार से मूल कहा उसे। ऐसी बात है। साथ-साथ आये न दोनों, स्व-परदया दोनों आवे न, इसलिए साथ में बात की, कथन दो प्रकार के किये। ऐसा आवे तब करे कि देखो, परदया भी धर्म का मूल है। आया या नहीं उसमें? एक ओर कहा कि पर की दया का भाव उत्पन्न हुआ, वह हिंसा है। किस नय से कथन है? आहाहा! वह तो साथ में व्यवहार वर्णन किया। आहाहा! वह स्वदया-परदया, यह इन्होंने विशेष डाला है। स्पष्टीकरण टीका में नहीं है। इन्होंने—दौलतरामजी ने स्पष्टीकरण किया है।

जो पापी हिंसक होगा, उसके परिणाम निर्मल नहीं हो सकते,... आहाहा! **ऐसा निश्चय है, परजीव घात तो उसकी आयु के अनुसार है,...** आहाहा! परजीव का घात

तो उसकी आयु हो उस प्रमाण बचे और मरे। **परन्तु इसने जब परघात विचारा, तब आत्मघाती हो चुका।** आहाहा! एकेन्द्रिय, पंचेनिद्रय, आहाहा! अनन्त जीव हैं। लहसुन, प्याज, कांदा मूल, मूला का कांदा नहीं सफेद? अनन्त जीव हैं। आहाहा! श्रीमद् तो एक बार कहते थे कि एकेन्द्रिय मोणे तो हमारे से देखा नहीं जाता। एकेन्द्रिय को छीले न सवेरे, सब्जी-सब्जी? श्रीमद् लिखते हैं न। मैं देख नहीं सकता। जीव है न अन्दर।

मुमुक्षु : काशीफल जो होता है वह तो बाहर होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर अर्थात्?

मुमुक्षु : कन्दमूल नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कन्दमूल नहीं है। परन्तु जीव है न उसमें, हरा हो, हों! पक्का हो जाये फिर... आम, आम लो, केरी—आम। हरी करते हैं तो उसमें एक टुकड़े में असंख्य जीव हैं। पक्की हो जाये फिर अन्दर गुठली हो, वह जीव। आहाहा! यह बोर, हरे बोर। एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक-एक शरीर में एक जीव। आहाहा! यह तो बातें बापू! इसने सुनी नहीं। आहाहा! यह पत्ता लो न, देखो न यह नीम का। एक इतने पत्ते में असंख्य शरीर। एक-एक शरीर में एक-एक जीव, ऐसे पूरे में भरे हैं। आहाहा! तुरिया कच्ची होती है न? तुरिया को क्या कहते हैं? घिसोड़ा। घिसोड़ा कहते हैं न? तुरिया। ऊपर की छाल निकाल डाले। अणी-अणी होती है न ऐसी जरा बारीक-बारीक ऊपर? छाल निकाल डाले। यह आलू की चिप्स करके घी में और तेल में तले। प्याज घी में, तेल में डाले प्याज। अनन्त-अनन्त जीव। आहाहा! एक साथ अनन्त की देह छूट जाये। वह तो उनका आयुष्य पूरा हुआ, इसलिए छूटती है, परन्तु मारनेवाले का भाव है, वह स्वयं का घात करता है। समझ में आया?

उसकी आयु के अनुसार है, परन्तु इसने जब परघात विचारा, तब आत्मघाती हो चुका। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : परघात हो, न हो, अपना राग....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग हुआ, वह घात हुआ। पर का घात हो, न हो, वह तो उसके आयुष्य के आधीन है। आहाहा! समझ में आया? यह १२५ हुई।

गाथा - १२६

अथ तमेव हिंसादोषं द्रढयति–

२४९) मारिवि चूरिवि जीवडा जं तुहुँ दुक्खु करीसि।
तं तह पासि अणंत–गुणु अवसइँ जीव लहीसि।।१२६।।

मारयित्वा चूर्णयित्वा जीवान् यत् त्वं दुःखं करिष्यसि।
तत्तदपेक्षया अनन्तगुणं अवश्यमेव जीव लभसे।।१२६।।

मारिवि इत्यादि। मारिवि बहिर्विषये अन्यजीवान् प्राणीप्राणवियोगलक्षणेन मारयित्वा चूरिवि हस्तपादाघेकदेशच्छेदरुपेण चूरयित्वा। कान्। जीवडा जीवान्। निश्चयेनाभ्यन्तरे तु मिथ्यात्वरागादिरुपतीक्ष्णशस्त्रणे शुद्धात्मानुभूतिरुपनिश्चयप्राणांश्च जं तुहुँ दुक्खु करीसि यद्दुःखं त्वं कर्ता करिष्यसि तेषु पूर्वोक्तस्वपरजीवेषु तं तह पासि अणंतगुणु तद्दुःखं तदपेक्षया अनन्तगुणं अवसइं अवश्यमेव जीव हे मूढजीव लहीसि प्राप्नोतीति। अत्रायं जीवो मिथ्यात्व–रागादिपरिणतः पूर्वं स्वयमेव निजशुद्धात्मप्राणं हिनस्ति बहिर्विषये अन्यजीवानां प्राणघातो भवतु मा भवतु नियमो नास्ति। परघातार्थं तन्नायःपिण्डग्रहणेन स्वहस्तदाहवत् इति भावार्थः। तथा चोक्तम्–''स्वयमेवात्मनात्मानं हिनस्त्यात्मा कषायवान्। पूर्वं प्राण्यन्तराणां तु पश्चत्स्याद्वा न वा वधः।।''।।१२६।।

आगे उसी हिंसा के दोष को फिर निंदते हैं, और दयाधर्म को दृढ़ करते हैं–

यदि जीवों को मारे या कुचले तू उनको दुखी करे।
अनन्त गुणा उससे भी ज्यादा तू निश्चित दुख सहन करे।।१२६।।

अन्वयार्थ :– [जीव] हे जीव, [यत् त्वं] जो तू [जीवान्] परजीवों को [मारयित्वा] मारकर, [चूरयित्वा] चूरकर [दुःखं करिष्यसि] दुःखी करता है, [तत्] उसका फल [तदपेक्षया] उसकी अपेक्षा [अनंतगुणं] अनंतगुणा [अवश्यमेव] निश्चय से [लभसे] पावेगा।

भावार्थ :–निर्दयी होकर अन्य जीवों के प्राण हरना, परजीवों का शस्त्रादिक से घात करना, वह मारना है, और हाथ–पैर आदि से, तथा लाठि आदि से परजीवों का काटना, एकदेश मारना वह चूरना है, यह हिंसा ही महा पाप का मूल है। निश्चयनय से अभ्यन्तर में मिथ्यात्व रागादिरुप तिक्ष्ण शस्त्रों से शुद्धात्मानुभूतिरुप अपने निश्चय प्राणों

को हत रहा है, क्लेशरुप करता है, उसका फल अनंत दुःख अवश्य सहेगा। इसलिए हे मूढ़ जीव, परजीवों को मत मार, और मत चूर, तथा अपने भाव हिंसारुप मत कर, उज्ज्वल भाव रख, जो तू जीवों को दुःख देगा, तो निश्चय से अनंतगुणा दुःख पावेगा। यहाँ सारांश है–जो यह जीव मिथ्यात्व रागादिरुप परिणत हुआ पहले तो अपने भावप्राणों का नाश करता है, परजीव का घात तो हो या न हो, परजीव का घात तो उसकी आयु पूर्ण हो गई हो, तब होता है, अन्यथा नहीं; परंतु इसने जब पर का घात विचारा, तब यह आत्मघाती हो चूका। जैसे गरम लोहे का गोला पकड़ने से अपने हाथ तो निस्संदेह जल जाते हैं। इससे यह निश्चय हूआ, कि जो परजींवो पर खोटे भाव करता है, वह आत्मघाती है। ऐसा दूसरी जगह भी कहा है, कि जो आत्मा कषायवाला है, निर्दयी है, वह पहले तो आप ही अपने से अपना घात करता है, इसलिये आत्मघाती है, पीछे परजीव का घात होवे, या न होवे। जीव को आयु बाकी रही हो, तो यह नहीं मार सकता, परंतु इसने मारने के भाव किये, इस कारण निस्संदेह हिंसक हो चुका, और जब हिंसा के भाव हुए, तब यह कषायवान् हुआ। कषायवान् होना ही आत्मघात है।।१२६।।

गाथा-१२६ पर प्रवचन

१२६। **आगे उसी हिंसा के दोष को फिर निन्दते हैं, और दयाधर्म को दृढ़ करते हैं—**

२४९) मारिवि चूरिवि जीवडा जं तुहुँ दुक्खु करीसि।
तं तह पासि अणंत-गुणु अवसइँ जीव लहीसि।।१२६।।

आहाहा! साधारण बात की थी। अनन्तगुणे फल से तुझे भोगना पड़ेगा, भाई! आहाहा! समझ में आया? ब्रह्मदत्त का नहीं कहा था? ब्रह्मदत्त। ७०० वर्ष (की आयु)। चक्रवर्तीपद तो थोड़ा था। परन्तु उसका पूरा जीवन ७०० वर्ष। उसमें एक श्वास, इतने श्वास में जो चक्रवर्तीपद का भोग लिया, उसके फल में, एक श्वास के फल में ग्यारह लाख पल्योपम का दुःख। क्या कहा? इतना एक श्वास, उसके ७०० वर्ष जितने श्वास। उसने इतने पाप किये, आहाहा! कि एक श्वास के फल में ग्यारह लाख आदि पल्योपम

का दुःख। ग्यारह लाख पल्योपम। एक पल्य के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष। क्या कहा, समझ में आया? भाई को कण्ठस्थ है, धनजीभाई को। ग्यारह लाख छप्पन हजार नौ सौ पिचहत्तर, यह पहले कहा हुआ हो, फिर यहाँ याद न हो, कोई याद रखे। एक श्वास के सुख की कल्पना का भाव, उसके फलरूप से एक श्वास का फल ग्यारह लाख छप्पन हजार नौ सौ पिहचत्तर पल्योपम। आता है न? अनन्तगुणा है न, देखो न! इसलिए कहा न। है न? '**तं तह पासि अणंत-गुणु**'। आहाहा! कषाय की इतनी तीव्रता। आहाहा!

२४९) मारिवि चूरिवि जीवडा जं तुहुँ दुक्खु करीसि।
तं तह पासि अणंत-गुणु अवसइँ जीव लहीसि।।१२६।।

अन्वयार्थ—हे जीव! जो तू परजीवों को मारकर, चूरकर... चूरा करके '**दुःखं करिष्यसि' दुःखी करता है, उसका फल उसकी अपेक्षा अनन्त गुणा निश्चय से पावेगा।** आहाहा! लो, रस की अपेक्षा से। समझे? वैसे तो काल तो असंख्यगुणा हुआ। एक श्वास के फल में असंख्यगुणा काल। पल्योपम हुए वे। ग्यारह लाख छप्पन हजार नौ सौ पिचहत्तर पल्य। वहाँ तो पल्य सब इतना कहो तो भी असंख्य है, परन्तु उसके रस में जो दुःख है, वह अनन्त है, ऐसा कहते हैं। काल थोड़ा परन्तु रस जो है, आहाहा! समझ में आया?

एक छोटी फुंसी हो न शरीर में इतनी, रहे भले थोड़े समय और है थोड़े क्षेत्र में, परन्तु उसकी पीड़ा, चिल्लाहट मचाये ऐसी पीड़ा है। अन्दर से झपकारा मारे और बुखार १०५, १०४ आया हो, परन्तु दुःख न हो उसे। इसलिए पूरे शरीर में बुखार आया हो और उतना दुःख न हो, तथा इतनी एक फुंसी पीली पकी हो अन्दर से तो झपकारा मारे अन्दर से। रस दुःख का अनन्त। काल भले थोड़ा। आहाहा! यह तो काल भी बहुत और रस भी उसका अनन्तगुणा। आहाहा! ऐसी बात हैं, बापू! वीतराग जैन परमेश्वर ने स्वदया के लिये, अहिंसा के लिये यह विचार चलता है। आहाहा! समझ में आया? कोई ऐसा कहता है न, ककड़ी के चोर को फाँसी? एक ककड़ी चोरे, वहाँ उसे फाँसी? ऐसा नहीं है। ऐसा कि इतना पाप करे और इतने नरक के दुःख? वह तो ककड़ी के चोर

को फाँसी जैसा कहा। ऐसा नहीं है, बापू! तेरे कषाय की अन्दर में तीव्रता, उसका जो अनन्तगुणा रस है, अन्दर उसका फल अनन्तगुणा मिलता है। आहाहा!

भावार्थ—निर्दय होकर अन्य जीवों के प्राण हरना, परजीवों का शस्त्रादिक से घात करना, वह मारना है,... '**मारिवी**' है न? पश्चात् '**चूरिवि**'। यह '**चूरिवि**' का अर्थ चलता है। पहले '**मारिवि**' का अर्थ (हुआ)। **हाथ-पैर आदि से, तथा लाठी आदि से परजीवों का काटना, एकदेश मारना,...** एक अंग काट डालना **वह चूरना है,...** उसे चूरना कहा जाता है, चूरे। आँख फोड़ डालना, हाथ काट डालना। आहाहा! **यह हिंसा ही महा पाप का मूल है। निश्चयनय से अभ्यन्तर में मिथ्यात्व रागादिरूप तीक्ष्ण शस्त्रों से...** आहाहा! सत्यदृष्टि से, यथार्थदृष्टि से देखें तो अभ्यन्तर में मिथ्यात्व-विपरीत श्रद्धा। आहाहा! हिंसा में ठीक पड़े, मजा पड़ता है, भोग में मजा आता है, ऐसे जो तीव्र मिथ्यात्व के परिणाम। आहाहा! है? **निश्चयनय से अभ्यन्तर में मिथ्यात्व रागादिरूप तीक्ष्ण शस्त्रों से शुद्धात्मानुभूतिरूप अपने निश्चय प्राणों को...** आहाहा! शुद्धस्वरूप का अनुभव, आनन्द का अनुभव होना। आहाहा! ऐसे जो निश्चयप्राण, वे अपने प्राण हैं। आहाहा! शुद्धभगवान पवित्र परमात्मा अपना स्वरूप, उसकी अनुभूति होना, वह अपना निश्चयप्राण है। उस **निश्चय प्राणों को हत रहा है,...** आहाहा! राग-द्वेष से घात डालता है। आहाहा! शान्ति... शान्ति... शान्ति अनुभूति, अविकारी अकषायस्वरूप त्रिकाल के आश्रय से अकषाय शुद्ध अनुभूति हो, वह पर्याय है, उसका राग घात करता है। आहाहा! समझ में आया?

मिथ्यात्व रागादिरूप तीक्ष्ण शस्त्रों से शुद्धात्मानुभूतिरूप अपने निश्चय प्राणों को हत रहा है,... आहाहा! अकेला बैठा हो और विचार करे मिथ्यात्व और राग-द्वेष के। आहाहा! अन्तर के निश्चय शुद्धस्वरूप की अनुभूतिरूप परिणति का वह घात करता है। है और घात करता है, ऐसा नहीं, परन्तु वह परिणति उत्पन्न नहीं होती और यहाँ हिंसा होती है तो घात करता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

६९-७० में आया न? समयसार में कर्ताकर्म (अधिकार) में आया है कि अपने प्राण को घात करता है। प्राण निर्मल प्रगट है तो घातता है? परन्तु निर्मल परिणाम,

परिणति उत्पन्न नहीं करता तो अशुद्ध परिणति उत्पन्न करता है। ऐसा। ६९-७० में आता है, ६९-७०, कर्ताकर्म (अधिकार)। ऐसा कि अपनी शुद्ध निर्मल परिणति का घात करता है। परिणति है और घात करता है? इसका अर्थ? समझ में आया? ६९-७०। आहाहा! **यह आत्मा अपने अज्ञानभाव के कारण, ज्ञानभवनमात्र जो सहज उदासीन (ज्ञातादृष्टामात्र) अवस्था का त्याग करके....** अवस्था है? क्या कहा, समझ में आया? आहाहा! यही आया सामने। **यह आत्मा अपने अज्ञानभाव के कारण, ज्ञानभवनमात्र जो सहज उदासीन (ज्ञातादृष्टामात्र) अवस्था...** तो अवस्था है? परन्तु ऐसी अवस्था उत्पन्न होनी चाहिए, उसके बदले राग करके वह अवस्था उत्पन्न नहीं होती, ऐसा। **अवस्था का त्याग करके....** आहाहा! तो क्या अवस्था है? परन्तु वह अवस्था शुद्ध होनी चाहिए, उसके स्थान में राग से अशुद्ध उत्पन्न करता है तो उस अनुभूति की अवस्था छोड़कर, ऐसा कहा। त्याग करके। आहाहा! समझ में आया? **ज्ञानभवनमात्र जो सहज...** ज्ञाता-दृष्टा की अवस्था का त्याग करके। भाषा तो ऐसी है।

मुमुक्षु : वह त्याग भी नाममात्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं, वह नहीं। यह अलग, यह यहाँ नहीं। वह और दूसरी बात है, यह अलग बात है। वह दूसरी बात है। वह तो राग का त्यागकर्ता नाममात्र है। यह तो ३४ (गाथा)। वह अलग बात है। यह तो यहाँ उत्पन्न नहीं और उत्पन्न का घात करता है, इतना कहना है। वह बात अलग है, यह दूसरी बात है। यह तो सब ख्याल है न!

यहाँ तो इतना कहना था कि अज्ञानभाव के कारण ज्ञानभवनमात्र (अर्थात्) ज्ञान का परिणमना, ज्ञान का होना। आहाहा! **जो सहज उदासीन अवस्था, उसका त्याग करके...** इसका अर्थ कि वह उत्पन्न होनी चाहिए, उसे उत्पन्न नहीं करता और राग को उत्पन्न करता है, ऐसा। समझ में आया? और वहाँ तो अलग। वह तो राग का त्याग है, वह भी नाममात्र कथन है। क्योंकि वह तो अन्दर स्थिर होता है, वहाँ राग उत्पन्न नहीं होता, उसका—राग का त्याग किया, वह नाममात्र है। राग का त्याग किया। यह तो निर्मल अवस्था का त्याग करके। समझ में आया? आहाहा! ६९-७०। देखो!

रागादिरूप तीक्ष्ण शस्त्रों से... आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्परूपी तीक्ष्ण शस्त्र। **शुद्धात्मानुभूतिरूप अपने निश्चय प्राणों को हत रहा है,...** यहाँ शुद्धात्मानुभूति वर्तमान परिणति निर्मल, ऐसा कहना है। निश्चयप्राण को घात डालता है, वह निश्चयप्राण को घात डालता है। अर्थात् निश्चयप्राण जो उत्पन्न होना चाहिए, वे उत्पन्न नहीं होते, ऐसा। आहाहा! लोगों को ऐसा लगे। वे कहे, जीवदया। 'दया वह सुख की बेलडी, दया वह सुख की खान, अनन्त जीव मोक्ष में गये, दया के प्रमाण।' वे परजीव की दया की बातें करे। आहाहा! स्थानकवासी में बहुत बोलते हैं। प्रतिक्रमण करते वहाँ। पण्डितजी साथ में प्रतिक्रमण करते थे, तब ऐसा बहुत बोलते थे। हमारे गढडा में चातुर्मास था तो घड़ी के पास में यह सब लेखन रखे। (संवत्) १९८१। 'दया वह सुख की बेलडी' कौन सी दया बापू? यह राग की अनुत्पत्ति, वह अहिंसा, वह दया। हें? आहाहा! पर की दया कौन पाल सकता है? वह तो उसका आयुष्य हो तो रहे, आयुष्य न हो तो न बचे, उसके कारण से। उसका भाव हो परदया का, तो वह तो विकल्प है, राग है। आहाहा! मार्ग बहुत ऐसा, भाई! आहाहा!

एक तो संसार के काम में इतना फँस गया, बीस-बीस, बाईस घण्टे उसी और उसी पाप में। आहाहा! संकल्प और विकल्प की जाल में घात कर रहा है क्षण-क्षण में। आहाहा! थोड़ा समय सुनने का मिले तो सुनानेवाले ऐसे मिले कि यह व्रत करो और अपवास करो और यह करो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। यह घात है वहाँ। शुभराग, वह भी स्वरूप का घात है।

मुमुक्षु : नहीं करने से तो अच्छा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभ न करे, इतना शुभ ठीक, परन्तु वह है तो हिंसा। राग की उत्पत्ति हुई, वही हिंसा है और राग की अनुत्पत्ति, वही अहिंसा है। लो, नवरंगभाई! पानी छानकर पीना। आहाहा! कठिन मार्ग, बापू! बहुत सूक्ष्म, भाई!

अकेला ज्ञानस्वरूपी प्रभु, ज्ञान का पिण्ड चिद्रूपो अहं, वह करे क्या? जैसे सर्वज्ञ जानते-देखते हैं, वैसे यह ज्ञान जाने-देखे बस। करे किसका? घाते किसे? मारे किसे? दया किसकी पाले? आहाहा! और वहाँ तो बन्ध अधिकार में ऐसा लिया है, मैं पर को

जिलाऊँ और पर से मैं जीऊँ, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ अज्ञानी है। तीन बोल लिये हैं। उन गाँधी (महात्मा गाँधी) प्रवचन में आये थे तब (के समय यह बोल आया था), वहाँ (संवत्) १९९५ में। तब मोहनभाई के मकान में थे। गाँधी को लगा कि यह... परजीव को बचाने का भाव राग है और वह मूढ़ है कि मैं पर को बचा सकता हूँ। पश्चात् दो-चार वर्ष में एकान्त में कहा होगा, उन नटुभाई को, बेचरभाई के नटुभाई को, एक महाराज मुझे मूढ़ कहते थे, वे कहाँ हैं? मुझे तो वह सिद्धान्त में आया था। १९९५ में चातुर्मास था न, राजकोट। कितने वर्ष हो गये? ३८ वर्ष हो हुए, लो। नटु कहता था कि ऐसा कहते थे। आहाहा! बात कठिन। जगत से पूरी अलग बात है न! पर को सुविधा देकर सुखी कर दें, ऐसा करके और वैसा करके। पर को सुख दूँ, यह मान्यता ही मिथ्यादृष्टि की है। आता है न बन्ध अधिकार में? अरे! मैं पर को मोक्ष करा दूँ। मूढ़ है। उसकी वीतरागदशा बिना मोक्ष कहाँ से होगा? तू करा देता है वीतरागभाव? आहाहा! बात में बहुत अन्तर है, भाई!

उसका फल अनन्त दुःख अवश्य सहेगा। आहाहा! **अपने निश्चय प्राणों को हत रहा है, क्लेशरूप करता है,...** आत्मा को क्लेशरूप करता है। आहाहा! ज्ञाता-दृष्टा शान्तस्वभाव अपने प्राण, उन्हें राग और द्वेषादि उत्पन्न करके क्लेश करता है। आहाहा! **उसका फल अनन्त दुःख अवश्य सहेगा।** आहाहा! तुझे अनन्त दुःख सहन करना पड़ेगा, प्रभु! कोई कुटुम्ब, कबीला, स्त्री कोई वहाँ साथ नहीं आयेंगे। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए हे मूढ़ जीव! परजीवों को मत मार और मत चूर...** चूरा न कर। **तथा अपने भाव हिंसारूप मत कर, उज्ज्वल भाव रख...** भाई! आहाहा! **जो तू जीवों को दुःख देगा, तो निश्चय से अनन्त गुणा दुःख पायेगा।** अनन्त गुणा। रस है न कषाय की तीव्रता। ऐसा। आहाहा!

यहाँ सारांश यह है—जो यह जीव मिथ्यात्व रागादिरूप परिणत हुआ... मिथ्याश्रद्धा मान्यता में। मैं विषय में सुख लेता हूँ, इज्जत में मुझे मजा आता है। आहाहा! यह सब मिथ्यात्वभाव है। उस मिथ्यात्व का फल अनन्तगुणा दुःख है। आहाहा! मिथ्यात्व को ही अनन्त कहते हैं। अनन्तानुबन्धी है न, उसका अर्थ ऐसा है अनन्तानुबन्धी

का। अनन्त ऐसा मिथ्यात्व, उसके साथ अनुबन्ध, वह कषाय अनन्तानुबन्धी। आहाहा! मिथ्यात्व का अर्थ ही अनन्त है। आहाहा! **मिथ्यात्व रागादिरूप परिणत हुआ पहले तो अपने भावप्राणों का नाश करता है,...** अपने ज्ञाता-दृष्टा शान्त वीतरागी-प्राण, उसमें राग करके अपने भावप्राण का घात करता है। आहाहा! ऐसी व्याख्या वीतराग के अतिरिक्त कहीं है नहीं। सबको सुखी करो, समझे न? उसकी आँतें सुखी होंगी तो तेरा कल्याण होगा। दूसरे को सुख देने से, दुःख टालने से उसकी आँतड़ियाँ सुखी होंगी। अभी उसकी दया आयेगी तुझे, उसके भाव का फल तुझे आयेगा आनन्द। दुःख धूल भी नहीं। आहाहा! **अपने भावप्राणों का नाश करता है,...**

परजीव का घात तो हो या न हो, परजीव का घात तो उसकी आयु पूर्ण हो गई हो, तब होता है, अन्यथा नहीं; परन्तु इसने जब पर का घात विचारा, तब यह आत्मघाती हो चुका। आहाहा! **ऐसा दूसरी जगह भी कहा है...** दूसरा आधार देंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष कृष्ण १४, मंगलवार
दिनांक- १८-०१-१९७७, गाथा - १२६, १२७, प्रवचन-१८९

यहाँ तक आया, देखो! ठीक यहाँ से है, परन्तु ऊपर से थोड़ा मेल के लिये। **परजीव का घात तो हो या न हो,...** आत्मा अपने परिणाम में पर को मैं मार सकता हूँ, पर को मैं जिला सकता हूँ, ऐसा जो भाव, वह मिथ्यात्वभाव है। वह मिथ्यात्वभाव, वही आत्मा का घात है। आहाहा! समझ में आया? यह है न? **परजीव का घात तो हो या न हो,...** परजीव का आयुष्य हो तो मरे भी नहीं। आयुष्य पूरा होने का हो तो मरे तो उसके कारण से है। आहाहा! **परन्तु इसने जब पर का घात विचारा,...** है न? **परजीव का घात तो उसकी आयु पूर्ण हो गई हो, तब होता है, अन्यथा नहीं;...** पर का आयुष्य पूर्ण हुआ हो तो देह छूट जायेगी, परन्तु तू उसे मार सके, ऐसा तो है नहीं। **परन्तु इसने जब पर का घात विचारा, तब यह आत्मघाती हो चुका।** आहाहा! एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय जीव के भेद हैं, उन्हें मैं मार सकता हूँ, हिंसा कर सकता हूँ, ऐसा जो भाव, वह आत्मघात है। आहाहा! है? **पर का घात विचारा, तब यह आत्मघाती हो चुका।** आहाहा!

जैसे गर्म लोहे का गोला पकड़ने से अपने हाथ तो निस्संदेह जल जाते हैं। गर्म लोहे का गोला हाथ में ले तो हाथ जल जाते हैं। **पहले तो आप ही...** है न? **निस्संदेह जल जाते हैं। इससे यह निश्चय हुआ कि जो परजीवों पर खोटे भाव करता है, वह आत्मघाती है।** आहाहा! **ऐसा दूसरी जगह भी कहा है कि जो आत्मा कषायवाला है,...** जिसे कषाय अर्थात् राग-द्वेष के भाव हैं, वह **निर्दयी है, वह पहले तो आप ही अपने से अपना घात करता है,...** आहाहा! **इसलिए आत्मघाती है, पीछे परजीव का घात होवे, या न होवे।** जीव का आयुष्य बाकी रहा हो तो नहीं भी मार सके। **परन्तु इसने मारने के भाव किये, इस कारण निस्सन्देह हिंसक हो चुका,...** आहाहा! **और जब हिंसा के भाव हुए, तब वह कषायवान् हुआ। कषायवान् होना ही आत्मघात है।** आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

भगवान आत्मा तो ज्ञाता-दृष्टा है। उसमें से निकलकर पर को मारूँ, ऐसा

भाव हुआ, वह आत्मघात हुआ, अपनी हिंसा हुई। आहाहा! अरे! पर को मैं जिला सकता हूँ, यह भाव भी मिथ्यात्व है। आहाहा! इस परिवार को निभा सकता है या नहीं? नहीं?

मुमुक्षु : यहाँ तो नहीं ही कहा जाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्त्री, पुत्र को निभावे। कौन निभावे? वे तो उनके आयुष्य प्रमाण निभते हैं और उनका पुण्य हो, तत्प्रमाण साता-असाता का योग होता है। तो तू कर सकता है पर का? आहाहा! अभिमानी, मैं पर को बचा सकता हूँ, पर का रक्षण कर सकता हूँ, यह भाव मिथ्यात्व है, कषाय है, यह आत्मघात है। समझ में आया? यह मिलमालिक और सब गृहस्थ हजारों जीवों को नौकरी देते हैं सबको। धूल भी नहीं, तेरा भाव है। पर को कौन बचावे? समझ में आया?

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की कोई कभी पर्याय करे, वह तीन काल में नहीं होता। आहाहा! ऐसा जिनवर का सिद्धान्त है, उसे चूककर पर को जिला सकता हूँ, पर को मार सकता हूँ, (यह मिथ्यात्व है)। बड़ी उम्र हो तो भी लड़कों को मदद करता है। क्योंकि स्वयं ने पूरी जिन्दगी का अनुभव किया हो पाप का, इसलिए उन लड़कों को अनुभव दे। पोपटभाई! फूलचन्दभाई! हें!

मुमुक्षु : ऐसा तो बनता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन काल में बनता नहीं। पर को कौन बचावे? पर को कौन निभावे? पर की कौन रक्षा करे? पर को कौन जिला सके? आहाहा! उसके कर्म के कारण से आयुष्य हो तो बचे, आयुष्य न हो तो मर जाये। उसके पुण्य का उदय हो तो संयोग अनुकूल मिले, पाप हो तो प्रतिकूल मिले, दूसरा कोई दे सके, इस बात में कुछ दम नहीं है। परन्तु... आहाहा! 'मैं करूँ मैं करूँ यही अज्ञान है...' सवेरे से शाम तक, मैंने किया, यह मैंने किया, मैंने किया। मैंने पैसे की व्यवस्था की। समझ में आया? करोड़ रुपये हो तो इतना अधिक व्यापार करना न आवे स्वयं को, तो अच्छा व्यापार हो, उस व्यक्ति को पाँच-पाँच लाख और बारह आने, रुपये का ब्याज ले और आधा भाग ले। ऐसा होता है न? यह तो सब होता है अभी। क्योंकि स्वयं को परिवार इतना लम्बा

न हो और दो लड़के हों, वे साधारण हों। पैसा हो करोड़, दो करोड़, अब करना क्या? लड़के को ठीक से व्यापार करना आता नहीं। फिर ऐसे व्यापारी रखे अनुभववाले इसलिए उसके.... कि पाँच लाख तुमको देते हैं। बारह आने का ब्याज। पहले, हों! अभी तो डेढ़ प्रतिशत हो गया है, ऐसा सुना था। पहले बारह आने का था। बारह आने का ब्याज और आमदनी हो उसका आधा भाग। और महीने-महीने में बहियाँ देखने आऊँगा, वापस तुम गड़बड़ न करो कुछ। आहाहा! कुछ कर सकता नहीं, व्यर्थ का अभिमानी। आहाहा! पर का रक्षण करने के लिये पैसा पैदा करूँ, मिथ्यात्वभाव है, आत्मघात है। आहाहा! यह ऐसी बात।

जब हिंसा के भाव हुए, तब वह कषायवान हुआ। कषायवान होना ही आत्मघात है। लो। आहाहा! ऐसी बात है, त्रिभुवनभाई! कहाँ गये भाई? कान्तिभाई वहाँ बैठे हैं। समझ में आया? आहाहा! घर में कमाऊ लड़का हो और कमाऊ हो तो सब करता है या नहीं? लोग नहीं कहते कि मेरा लड़का कर्मी जगा है? कर्मी अर्थात् पापी, ऐसा। कर्म करनेवाला। आहाहा! ऐसी महिमा करे, घर में बहुत होशियार है और पाँच-दस हजार की मासिक आमदनी करता है और भलीभाँति सम्हालता है। सब हाथ-डोर परिवार की उसके हाथ में है। धूल भी नहीं, सुन न!

मुमुक्षु : व्यवस्था कैसे करना....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी व्यवस्था करे? पैसे कहाँ इसके हैं? वे तो जड़ हैं। ऐसी बातें हैं, सेठ!

अन्तर में उस विकार की वृत्ति उठना कि पर को जिला सकता हूँ, मार सकता हूँ, सुविधा दे सकता हूँ, वह कर नहीं सकता, परन्तु यह भाव हुआ, वही आत्मघात है।

मुमुक्षु : दूसरे को बचाने का भाव किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आत्मघात है, राग है।

यहाँ यह बात नहीं ले। पाप से नरक और पुण्य से स्वर्ग, यह बात लेंगे। समझ में आया? आहाहा! अरेरे! ऐसा अवतार मिला, उसमें वीतराग क्या तत्त्व कहते हैं, उसकी खबर नहीं होती, उसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता, आहाहा! वह कहाँ जाकर

अवतरित होगा? चौरासी का भवसिन्धु महासमुद्र भरा है। चौरासी लाख योनियाँ।

कहते हैं कि जिसने पर के लिये मारने का विचार किया, वह स्वयं मरे या नहीं उसके आयुष्य के कारण से, परन्तु इसके अपने भाव में इसे आत्मघात तो हुआ। आहाहा! है? **कषायवान् होना ही आत्मघात है।** आहाहा! यह राग होना, वही आत्मघात है। त्रिभुवनभाई! वह सब पोषण करे न सब, परिवार का। फूलचन्दभाई! छोड़ा था परन्तु लड़कों को सम्हालने के लिये सुविधा में रुके हैं लो ये। और इनके मित्र गुजर गये, समधी थे। यह भी क्या है? प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई! तू तो आत्मा ज्ञान और दर्शन और आनन्दस्वरूप है। इसके अतिरिक्त कुछ भी विकल्प उठाना, वह आत्मघात है। पर का घात तो कर नहीं सकता, परन्तु तेरा घात तू कर सकता है। आहाहा!

गाथा - १२७

अथ जीववधेन नरकगतिस्तद्रक्षणे स्वर्गो भवतीति निश्चनोति-

२५०) जीव वहंतहँ णरय-गइ अभय-पदाणेँ सग्गु।
बे पह जवला दरिसिया जहिँ रुच्चइ तइँ लग्गु।।१२७।।

जीवं घ्नतां नरकगतिः अभयप्रदानेन स्वर्गः।
द्वौ पन्थान समीपौ दर्शितौ यत्र रोचते तत्र लग्न।।१२७।।

जीव वहंतहं इत्यादि। जीव वहंतहं निश्चेन मिथ्यात्वविषयकषायपरिणामरुपं वधं स्वकीयजीवस्य व्यवहारेणेन्द्रियबलायुःप्राणापानविनाशरुपमन्यजीवानां च वधं कुर्वतां णरय-गइ नरकगतिर्भवति अभय-पदाणें निश्चयेन वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदन-परिणामरुपमभयप्रदानं स्वकीयजीवस्य व्यवहारेण प्राणरक्षारुपमभयप्रदानं परजीवानां च कुर्वतां सग्गु स्वस्याभयप्रदानेन मोक्षो भवत्यन्यजीवानामभयप्रदानेन स्वर्गश्चेति वे पह जवला दरिसिया एवं द्वौ पन्थानां समीपे दर्शितौ। जहिं रुच्चइ तहिं लग्गु हे जीव यत्र रोचते तत्र लग्न भव त्वमिति। कश्चिदज्ञानि प्राह। प्राणा जीवादभिन्ना भिन्नावा, यधभिन्नाः तर्हि जीववत्प्राणानां विनाशो नास्ति, अथ भिन्नास्तर्हि प्राणवधेडपि जीवस्य वधो नास्त्यनेन प्रकारेण जीवहिंसैव नास्ति कथं जीववधे पापबन्धो भविष्यतीति। परिहारमाह। कथंचिद्-भेदाभेदः। तथाहि-स्वकीयप्राणे हृते सति दुःखोत्पत्तिदर्शनाद्व्यवहारेणाभेदः सैव दुःखोत्पत्तिस्तु हिंसा भण्यते ततश्च पापबन्धः। यदि पुनरेकान्तेन देहात्मनोर्भेद एव तर्हि यथा परकीयदेहघाते दुःखं न भवति तथा स्वदेहघातेडपि दुःखं न स्यान्न च तथा। निश्चयेन पुनर्जीवे गतेडपि देहो न गच्छतीति हेतोर्भेद एव। ननु तथापि व्यवहारेण हिंसा जाता पापबन्धोडपि न च निश्चयेन इति। सत्यमुक्तं त्वया, व्यवहारेण पापं तथैव नारकादि दुःखमपि व्यवहारेणेति। तदिष्टं भवतां चेत्तर्हि हिंसां कुरु यूयमिति।।१२७।।

आगे जीवहिंसा का फल नरकगति है, और रक्षा करने से स्वर्ग होता है, ऐसा निश्चय करते हैं-

नरक गति हो जीव घात से स्वर्ग प्राप्त रक्षा से हो।
इस प्रकार दो राह जगत में जाओ वहाँ जहाँ चाहो।।१२७।।

अन्वयार्थ :- [जीवं घ्नतां] जीवों को मारनेवोलों की [नरकगतिः] नरकगति होती

है, [अभयप्रदानेन] अभयदान देने से [स्वर्गः] स्वर्ग होता है, [द्वौ पन्थानौ] ये दोनों मार्ग [समीपे] अपने पास [दर्शितौ] दिखलाते हैं, [यत्र] जिसमें [रोचते] तेरी रुचि हो, [तत्र] उसी में [लग्न] तू लग जा।

भावार्थ :- निश्चयकर मिथ्यात्व विषय कषाय परिणामरुप निजघात और व्यवहारनयकर परजीवों के इंद्री, बल, आयु, श्वासोच्छ्वासरुप प्राणों का विनाश, उसरुप परप्राणघात, सो प्राणघातियों के नरकगति होती है। हिंसक जीव नरक ही के पात्र हैं। निश्चयकर वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन परिणामरुप जो निजभावों का अभयदान निज जीव की रक्षा और व्यवहारनयकर परप्राणियों के प्राणों की रक्षारुप अभयदान यह स्वदया परदयास्वरुप अभयदान है, उसके करनेवालों को स्वर्ग मोक्ष होता है, इसमें संदेह नहीं है। इनमें से जो अच्छा मालूम पड़े उसे करो। ऐसी श्रीगुरु ने आज्ञा की। ऐसा कथन सुनकर कोई अज्ञानी जीव तर्क करता है, कि जो ये प्राण जीव से जुदे हैं, कि नहीं? यदि जीव से जुदे नहीं हैं, तो जैसे जीव का नाश नहीं है, वैसे प्राणों का भी नाश नहीं हो सकता। अगर जुदे हैं, अर्थात् जीव से सर्वथा भिन्न हैं, तो इन प्राणों का नाश नहीं हो सकता। इस प्रकार से जीवहिंसा है ही नहीं, तुम जीवहिंसा में पाप क्यों मानते हो? इसका समाधान-जो ये इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छ्वास और प्राण जीव से किसी नयकर अभिन्न हैं, भिन्न नहीं हैं, किसी नय से भिन्न हैं। ये दोनों नय प्रामाणिक हैं। अब अभेद कहते हैं, सो सुनो। अपने प्राणों का घात होने पर जो व्यवहारनयकर दुःख की उत्पत्ति वह हिंसा है, उसी से पाप का बंध होता है, और जो इन प्राणों को सर्वथा जुदे ही मानें, देह और आत्मा का सर्वथा भेद ही जानें, तो जैसे पर के शरीर का घात होने पर दुःख नहीं होता है, वैसे अपने देह के घात में भी दुःख न होना चाहिये, इसलिये व्यवहारनयकर जीव का और देह का एकत्व दिखता है, परंतु निश्चय से एकत्व नहीं है। यदि निश्चय से एकपना होवे, तो देह के विनाश होने से जीव का विनाश हो जावे, सो जीव अविनाशी है। जीव इस देह को छोड़कर परभव को जाता है, तब देह नहीं जाती है। इसलिये जीव और देह में भेद भी है। यधपि निश्चयनयकर भेद है, तो भी व्यवहारनयकर प्राणों के चले जाने से जीव दुःखी होता है, सो जीव को दुःखी करना यही हिंसा है, और हिंसा से पाप का बंध होता है। निश्चयनयकर जीव का घात नहीं होता, यह तूने कहा, वह सत्य है, परंतु व्यवहारनयकर प्राणवियोगरुप हिंसा है ही, और

व्यवहारनयकर ही पाप है, और पाप का फल नरकादिक के दुःख हैं, वे भी व्यवहारनयकर ही हैं। यदि तुझे नरक के दुःख अच्छे लगते हैं, तो हिंसा कर, और नरक का भय है, तो हिंसा मत कर। ऐसे व्याख्यान से अज्ञानी जीवों का संशय मेटा।।१२७।।

गाथा-१२७ पर प्रवचन

१२७। **आगे जीवहिंसा का फल नरकगति है, और रक्षा करने से स्वर्ग होता है,...** इतना लेंगे।

२५०) जीव वहंतहँ णरय-गइ अभय-पदाणेँ सग्गु।
बे पह जवला दरिसिया जहिँ रुच्चइ तइँ लग्गु।।१२७।।

अन्वयार्थ—जीवों को मारनेवालों की नरकगति होती है, अभयदान देने से स्वर्ग होता है,... मोक्ष नहीं। पर को नहीं मारने का भाव, वह पुण्य है तो पुण्य से स्वर्ग में जायेगा। समझ में आया? उससे मुक्ति नहीं। आहाहा! दूसरे प्राणी को मारने का भाव आदि, वह तो नरकगति का कारण है। नरकगति है नीचे। वहाँ अनन्त बार जन्मकर आया है। वहाँ इन पापी प्राणियों की पार्लियामेन्ट भरती है, नरक में। यह बड़े मिलमालिक और राजा ये सब, मोटरों में घूमते हों... आहाहा! उन सबका वहाँ संग्रहालय है। नरक में उनका संग्रह का स्थान है, आलय अर्थात् स्थान। आहाहा! कहते हैं कि परप्राणी को मार डालना... आहाहा! घात करना, वह भाव नरकगति का कारण है। **अभयदान देने से स्वर्ग...** भाषा है? कोई कहे कि अभयदान देने से मोक्ष होता है और धर्म होता है (तो) ऐसा नहीं है। परप्राणी को नहीं मारना—अभयदान, वह पुण्य, पुण्य है। पुण्य से स्वर्ग—देवलोक में जाता है। समझ में आया?

ये दोनों मार्ग अपने पास दिखलाये हैं,... तेरे पास दो प्रकार के भाव हैं, वे तुझे बतलाये। चाहे तो पाप कर तो नरक और पुण्य कर तो स्वर्ग। तेरे भाव के ऊपर है। आहाहा! बहुत तो ऐसा कहे न, बात नहीं की थी? इन मिलमालिकों को दस-दस लाख की मिल होती है, बीस लाख, पचास लाख। तो उसमें पाँच-पाँच हजार लोग निभते हों। उसे ऐसा कि इन लोगों को निभाने के लिये यह मेरा है। धूल भी नहीं, सुन न! तेरा

पापभाव है इसलिए सब खड़ा है। समझ में आया? भाई को कहा था। शान्तिलाल खुशाल। अपना दशाश्रीमाली बनिया स्थानकवासी। दो अरब चालीस करोड़ रुपये। गोवा में है। गुजर गया अभी वर्ष, डेढ़ वर्ष पहले। दो अरब चालीस करोड़। फिर उसके बहनोई ने उससे कहा, पोपटभाई ने—लींबड़ीवाले पोपटभाई ने कहा, अब तुम्हारे क्या करना है? दो अरब चालीस करोड़, दो सौ चालीस करोड़। पैसा और फट गया प्याला (अभिमान चढ़ गया)। हम क्या धन्धे के लिये यह करते हैं? लोगों को निभाने के लिये करते हैं। ऐई! पोपटभाई! हें!

मुमुक्षु : मद चढ़ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मद चढ़ गया। पोपटभाई अपने आते हैं न? लींबड़ी से। उनका साला होता है। उसके यह बहनोई होते हैं। आहाहा! पैसा फाट-फाट जाये अन्दर से। निभाने के लिये यह धन्धा करते हैं बड़े पाप के। आहाहा! बापू! तेरी ममता है, उसके लिये यह करता है, पर के लिये है नहीं। आहाहा!

दोनों मार्ग अपने पास दिखलाये हैं, जिसमें तेरी रुचि हो, उसी में तू लग जा। आहाहा!

भावार्थ—निश्चयकर मिथ्यात्व विषय कषाय परिणामरूप निजघात... क्या कहते हैं? **निश्चयकर मिथ्यात्व...** मैं पर को जिला सकता हूँ, पर को मार सकता हूँ, पर को निभा सकता हूँ, ऐसा जो भाव, वह मिथ्यात्व। आहाहा! महापाप। वह **निश्चयकर मिथ्यात्व विषय कषाय...** पाँच इन्द्रिय के विषय का भाव और कषाय, रागादि विकार का भाव, वह परिणाम निजघात है। आहाहा! वह उसमें अपनी शान्ति का घात होता है, कहते हैं। आहाहा! दुनिया से सब उल्टा है। वीतराग का मार्ग पूरा। समझ में आया? देखो! मिथ्यात्व अर्थात् झूठी श्रद्धा कि मैं कमा सकता हूँ, होशियारी के कारण, वह भी झूठी मिथ्याश्रद्धा, झूठी मान्यता है। आहाहा! दुकान की और पुत्र-पुत्रियों की व्यवस्था कर सकता हूँ। पुत्रियों को भी अच्छे घर में ठिकाने रखता हूँ और लड़कों को भी अच्छे घर की कन्या आवे, उसकी व्यवस्था करनेवाला मैं हूँ। यह मान्यता मिथ्यात्व है, झूठी श्रद्धा है। अरे! ऐसी बातें अब। फिर किसलिए तब अब यह सब? यह हसमुख आदि का कुछ करना या नहीं, इनके लिये? किया अभी तक। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

'मैं करूँ मैं करूँ यही अज्ञान है, गाड़ी का भार ज्यों श्वान खींचे।' गाड़ी हो पचास मण की, दो बैल हाँकते हों। ठूठा के नीचे कुत्ता आवे, उसे स्पर्शे। वह मानो कि मुझसे यह पूरा चलता है। इसी प्रकार दुकान का धन्धा और... आहाहा! हमारे कुँवरजीभाई थे न, उन्हें यह बहुत अभिमान था। भागीदार, हमारे बुआ के पुत्र। बुद्धि स्थूल, हों! बहुत स्थूल। पुण्य न हो तो उसे सम्हालने के लिये पैसा देना पड़े नौकर को। पुण्य के कारण दो-दो लाख वर्ष में पैदा करता। आहाहा! उसे ऐसा मानो मैं दुकान चला सकता हूँ। मेरे नाम की जब से दुकान हुई, तब से आमदनी बढ़ी, पैसे बढ़े। आहाहा! मैंने तो कहा था, (संवत्) १९६६ के वर्ष। भाई! तुमको इतना सब है, मुझे तो ऐसा लगता है, बापू! ६६, हों! ६७ वर्ष पहले की बात है, ६७ वर्ष पहले की। बीस वर्ष की उम्र, अभी शरीर को ८७ हुए। तब मैंने उससे कहा था। मैं तो पहले से भगत कहलाता था न! दुकान चलती थी, परन्तु रस नहीं, शास्त्र वाँचन करूँ। भाई! तुमको यह क्या? इतनी अधिक (ममता)? बापू! मुझे तो ऐसा लगता है, भाई! ... सुने, हों! मेरे सामने कोई बोले नहीं। भगत है, सुनो। (मैंने कहा) मरकर ढोर होओगे, कहा। याद रखना। हम बनिया हैं, मदिरा-माँस खाते नहीं। अण्डा और मदिर-माँस अपने है नहीं, इसलिए नरक में नहीं जाओगे। बापू! देव में जाने के लक्षण मुझे नहीं लगते। यह तो ६७ वर्ष पहले की बात है। बीस वर्ष की उम्र। आहाहा! तथा मुझे मनुष्य होने के तुम्हारे लक्षण नहीं लगते। यह होली पूरे दिन, यह करता हो तुम यह? एक तिर्यंचगति होगी तुम्हारे, कहा। ऐई! बुद्धि स्थूल परन्तु वह पुण्य था न पूर्व का, इसलिए दुकान बढ़ती ही गयी आमदनी में। मर गया तब दो लाख की आमदनी। दस लाख की पूँजी। अब तो बढ़ गया अभी तो। दस वर्ष पहले मर गया, ग्यारह वर्ष पहले। आहाहा! वह मरते भाई, दिमाग पागल हो गया। अभिमान किया न, बहुत किया। दिमाग (घूम गया)। ऐसा करो, ऐसा करो, लाओ लोगों को। यह बोलाबोल (करे), प्रलाप बढ़ गया। भूल गया था, मरकर गया नीचे। आहाहा! हें? आहाहा! उसके लड़के कहते थे, महाराज पहले कहते थे संसार में, वह बापू की स्थिति हो गयी। आहाहा! यह क्या है परन्तु तुमको? तुम पर का कर सकता हो, ऐसा मानते हो? गाँव में साधु आवे सवेरे, हम सब तो स्थानकवासी थे न पहले, धर्म उसका था न, हमारे पिता स्थानकवासी इसलिए। साधु गाँव में आवे तो

सामने देखे नहीं, रात्रि को आठ बजे जाये। पूरे दिन कोई नहीं, हम दुकान छोड़ दें। उस समय तो वह लाईन हो न! उन्हें आहार-पानी देना और ऐसा सब। वे आवे रात्रि में आठ बजे, नामा-बामा लिखकर। साधु कहे, ओहो! रातडिया श्रावक आया। रात्रि में आठ बजे आवे, नामा-बामा लिखने के बाद। अरे! यह क्या होली? साधु गाँव में एक-दो दिन रहे, उनके पास दो-चार घण्टे जाने का भी समय नहीं? क्या है तुम्हारा यह? ऐ... सेठ!

मुमुक्षु : काम से निवृत्ति मिले तब न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं न, काम-धन्धे के पाप के कारण निवृत्ति नहीं लेता। आहाहा!

यहाँ यह कहा न, पाप करनेवाला नरक में जाता है। आहाहा! और जीव की दया पालनेवाला शुभभाव हो तो वह स्वर्ग में जाता है, मुक्ति नहीं, मोक्ष नहीं। बाद में भी नहीं कि पुण्य के फल भोग भोगकर और वहाँ से मरकर वापस पशु में आयेगा, स्वर्ग में से। सेठ दलाली करता है।

मुमुक्षु : मोक्ष के नजदीक पहुँच गया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ अनन्त बार रह आया है। सुना है? जहाँ सिद्ध भगवान है न ऊपर? मुक्तिशिला ४५ लाख योजन की है। ऊपर सिद्ध भगवान हैं। वहाँ अनन्त भगवान सिद्ध विराजते हैं। णमो सिद्धाणं। अरिहन्त तो यहाँ महाविदेह में विराजते हैं और सिद्ध भगवान लोक के अग्र में ऊपर विराजते हैं। वे सिद्ध भगवान हैं, वहाँ एकेन्द्रियरूप से अनन्त बार अवतरित हुआ है। सिद्ध भगवान के पेट में—क्षेत्र में। आहाहा! निगोद एकेन्द्रिय, जल, पृथ्वी... पाँच एकेन्द्रिय हैं न? पृथ्वी के जीव। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय नहीं आता? इच्छामि पडिक्कमणा में नहीं आता? पृथ्वी, अपकाय, पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय। वे एकेन्द्रिय हैं और यह मनुष्य, लट, चींटी,.... कौवा, कुत्ता, नारकी, देव ये पंचेन्द्रिय हैं। आहाहा!

इसलिए कहते हैं कि इससे पुण्य बँधे, परन्तु अभिमान मिथ्यात्व सेवन किया है वापस। आहाहा! इसलिए उसे गति मिले परन्तु उसे सिद्धपद नहीं मिले। **विषय कषाय**

परिणामरूप निजघात... देखो! आहाहा! **और व्यवहारनयकर परजीवों के इन्द्री, बल, आयु, श्वासोश्वासरूप प्राणों का विनाश,...** परजीवों की इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय; बल—मन, वचन और काया बल। पाँच और तीन=आठ। आयुष्य और श्वासोच्छवास—ऐसे दस प्राण हैं। उन दस प्राणों का घात करनेवाला। आहाहा! **विनाश, उसरूप परप्राणघात, सो प्राणघातियों के नरकगति होती है।** आहाहा! दस प्राण की बात है, यहाँ अधिक, हों! इसलिए डाला है। क्या कहा, समझ में आया? एकेन्द्रिय का नहीं। यहाँ दस प्राण है न? ऐसे परजीव के इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छवासरूप **प्राणों का विनाश, उसरूप प्राणघात,...** ऐसा। पंचेन्द्रिय के प्राण के घात। एकेन्द्रिय आदि में तो होता है। ...एकेन्द्रिय जीव यह पृथ्वी, जल, अग्नि, क्या कहलाता है? लौकी, घिसोड़ा और करेला वे सब जीव हैं अन्दर। एक टुकड़े में असंख्य। यह तो सवेरे काट डालकर बराबर छीलकर व्यवस्थित करे, ऐसा साफ करके। परन्तु उसका पाप विशेष नहीं। परन्तु पंचेन्द्रिय के दस प्राण का घात करे, वह मरकर नरक में जाये, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? श्वासोच्छ्वास। यह प्राण है न श्वास? यह शरीर का अवयव है। शरीर का अवयव है। आत्मा में नहीं, वह तो जड़ है, वह तो जड़ है। आयुष्य शरीर की अवधि होती है। शरीर में रहने की अवधि होती है। इतना आयुप्राण है। उस आयुष्य के कारण नहीं परन्तु अपनी योग्यता इतनी वहाँ रहने के की, इसलिए उसे प्राण कहा गया है। समझ में आया?

उन **प्राणों का विनाश, उसरूप परप्राणघात, सो प्राणघातियों के नरकगति होती है।** आहाहा! **हिंसक जीव नरक ही के पात्र हैं।** आहाहा! बड़े मिल चलें, दस-दस, बीस-बीस लाख। वह गर्म पानी अन्दर हो, वह हौज में पानी गिरे, उसमें बिल्ली, कौआ, कुत्ता मर जायें कितने ही बेचारे। आहाहा! यह मिलमालिक दो-दो लाख पैदा करते हों, चार लाख, पाँच लाख। परन्तु यह हिंसा। हौज होती है न, पानी होता है न मिल में गर्म-गर्म धगधगता हौज भरा हो। पानी निकले उसमें कोई पीने आवे तो पड़े अन्दर वहाँ। आहाहा! बाहर में ऐसा कहा जाता है कि मिलमालिक सुखी। पाँच लाख और दस लाख की आमदनी। आयुष्य पूरा हो तो नरक में जायेगा। आहाहा! उसने विचार कब किया है कि यह क्या होता है? और कहाँ जाऊँगा? आहाहा!

निश्चयनयकर वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन परिणामरूप जो निजभावों का अभयदान... आहाहा! अब देखो, अभयदान के दो प्रकार किये। अपना जो आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञान, आनन्द ऐसे निजप्राण अन्दर... आहाहा! **वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन परिणाम...** आहाहा! बात सुनी भी न हो। रागरहित वीतराग अभेद स्वसंवेदन। अपने आनन्द का स्व—अपना वेदन। आहाहा! उन **परिणामरूप जो निजभावों का अभयदान...** लो, यह निजभाव का अभयदान आत्मा का। आहाहा! क्या कहा?

भगवान आत्मा अर्थात् आनन्द और ज्ञानगुण का गोदाम है। आहाहा! यह कैसे बैठे इसे? यहाँ बड़े गोदाम नहीं करते? मुम्बई में बड़े गोदाम। ओहोहो! लाख-लाख रुपये, लाख-लाख केसर के डिब्बे भरे हों लाखों। केसर। तब तो हम लेने जाते थे न! तब तो रुपया का रुपयाभार था न। अभी महँगा हो गया। परन्तु बड़े गोदाम ऐसे। ओहोहो! इसी प्रकार यह आत्मा अनन्त गुण का गोदाम है। आहाहा! अरे! कैसे, कभी सुना नहीं न! यह तो मिट्टी-धूल है। पुण्य और पाप के भाव वे विकार और राग है। उनसे भगवान अन्दर अनन्त गुण का गोदाम है। ऐसा जो अपना निजस्वभाव... आहाहा! उसे वीतरागी निर्विकल्प स्वसंवेदन परिणाम, उस निजभाव का अभयदान। ऐसे परिणाम को आत्मा ने अभय दिया। मैं तो आनन्दकन्द प्रभु हूँ। आहाहा! ऐसे परिणाम से जिसने आत्मा को अभयदान किया। यह आत्मा का अभयदान। ले! अभयदान तो दूसरे को देना वह (है)। सुन तो सही। पर को अभयदान कौन दे सकता है? शुभभाव हो इतना। आहाहा! है?

निश्चय—सत्यदृष्टि से देखें तो, वीतराग परमेश्वर ने निश्चयदृष्टि से कहा है वह, वीतराग निर्विकल्प अन्दर। आहाहा! आत्मा वीतरागस्वरूप ही अभी अन्दर है, हों! आहाहा! उसे वीतरागी निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञानरूपी परिणाम, वह जीव का अभयदान है, अपने जीव का वह अभयदान है। अर्थात् कि जैसा है, वैसा उसने माना, जाना, अनुभव किया। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग। अब बेचारे को मुश्किल से घण्टे, दो घण्टे समय मिलता हो, उसमें ऐसा सुनने में मस्तिष्क कुछ काम न करे। अरे! बापू! काम करे, भाई! ऐसा अवसर कहाँ से मिले भाई तुझे? वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव की अकषाय करुणा तो देखो! आहाहा!

पर की दया का भाव, वह राग है और पर को मारने का भाव, वह द्वेष है। दोनों दुःखरूप है। उससे शुद्ध चैतन्यघन भगवान का निर्विकल्प वीतरागी वेदन। आहाहा! जिसमें आनन्द का वेदन आवे, शान्ति का वेदन (आवे)। वस्तु आनन्दस्वरूप है, शान्तिस्वरूप है। उसमें से जिसे आनन्द का वेदन आवे, उस आनन्द के वेदन से जीव को उसने अभयदान दिया, स्वयं को (दिया)। अरे! ऐसा और क्या होगा यह? बापू! मार्ग अलग, नाथ! वीतराग परमेश्वर का पंथ दुनिया में अलग प्रकार है और लोगों ने अलग प्रकार से कल्पित किया है। आहा! समझ में आया? आहाहा!

आत्मा अन्दर अविकारी निर्विकल्प शुद्धात्मवस्तु अनादि-अनन्त है। दया, दान परिणाम भक्ति आदि के, व्रत के, वे शुभभाव। वह शुभभाव कषाय है और हिंसा, झूठ का भाव अशुभभाव है, वह पाप है। दोनों से रहित आत्मा वीतरागमूर्ति है। ऐसा वीतरागमूर्ति का जीवन है, टिकता-टिकता तत्त्व है, ऐसे टिकते तत्त्व को, आहाहा! वीतरागी परिणति द्वारा उसका वेदन करना, वह अपने जीव का अभयदान है। सुमनभाई! क्या कहा यह?

मुमुक्षु : फिर से समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से। आहाहा! प्रभु! क्या कहें? आहाहा! भाई! तू तो अनन्त आनन्द का कल्याण का कन्द है, बापू! तुझे खबर नहीं। ऐसा जो अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द, ऐसी तो अनन्त शक्तियाँ। आहाहा! यह कार्यकारण का घोटाला करते हैं न, भाई! चन्दुभाई! उसे तो कहा था। आत्मा में एक अकार्यकारण नाम का गुण है। जैसे भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है, वीतरागस्वरूप है, स्वच्छतास्वरूप है, प्रभुतास्वरूप है—ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं। शक्ति अर्थात् गुण; गुण अर्थात् उसका सत्त्व, सत् का सत्त्व। आहाहा! सत्पना, सत् सत्पना। आहाहा! उसमें एक अकार्यकारण नाम का गुण भगवान आत्मा में है। कि जो गुण जिसकी परिणति में आया, वस्तु को जहाँ अभयदान दिया, आहाहा! तब वह अकार्यकारणगुण भी पर्याय में अकार्यकारणरूप से परिणमित हुआ। उस अकार्यकारणपने परिणमनेवाले को राग व्यवहार था, इसलिए यह हुआ, ऐसा नहीं है। तथा व्यवहाररत्नत्रय के राग को आत्मा करे, यह भी है नहीं। आहाहा! क्या है ऐसी बातें? सरल मार्ग था, उसे महँगा कर डाला, ऐसा लोग कहते हैं।

अरे! बापू! वह सरल नहीं था, सड़ गया था। समझ में आया? मार्ग यह है। आहाहा!

जिसमें आत्मा आनन्दस्वरूप के साथ अकार्यकारण नाम की शक्ति का सत्त्व और गुण है, ऐसे गुण के धारक भगवान आत्मा, उसे वीतरागी परिणति द्वारा जिसने पहिचाना और जाना, वह वीतरागी परिणति वह राग से कार्य नहीं, राग का वह कार्य नहीं तथा उस परिणति से राग का वह कारण नहीं। अरे! अरे! ऐसी बातें हैं। दया का भाव जो हुआ ज्ञानी को, वह राग निर्मल धर्म की परिणति में वह कारण नहीं। तथा वह राग हुआ, उस निर्मल परिणति का वह कार्य नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। पागल जैसी बातें लगे यह। वह तो ऐसा सीधा-सट्ट था। एक व्यक्ति आया था, बेचारा कहता था, महाराज! हम किस रास्ते चलते थे, सीधा था। उसमें आपने डाला बीच में यह। विरमगाम का था। वह क्या कहलाता है? इनकमटैक्स का ऊपरी आया था, श्वेताम्बर था। यहाँ आवे, सब आते हैं न, आवे तो सही। पालीताणा है न रास्ते में। अरे बापू! मार्ग अलग, भाई! लो, हम यात्रा करने जायें तो भी कहे, धर्म नहीं। वह तो शुभभाव है, पुण्य है। बात तो ऐसी है। पुण्य को व्यवहारधर्म कहा जाता है। निश्चयधर्म हुआ हो उसे। वह बात आरोपित है, धर्म नहीं। आहाहा! लो, धर्म यह।

निश्चयनयकर... यह कुछ कथा नहीं कि इसमें एक शब्द में पूरा पड़े, यह तो शब्द में गम्भीर भरा है। वीतराग त्रिलोकनाथ के सन्त दिगम्बर मुनि वनवासी, आत्मा के आनन्द में झूला झूलनेवाले, उनके यह शास्त्र हैं। आहाहा! समझ में आया? **निश्चयनयकर वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन परिणाम...** देखा! परिणामी त्रिकाल नहीं, उसके परिणाम। **निश्चयनयकर वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनरूपी...** त्रिकाल। क्या कहा? **निश्चयनयकर वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनरूपी...** स्वभाव त्रिकाल का वर्तमान वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनरूप परिणाम। आहाहा! समझ में आया? यह क्या कहा? वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनरूप परिणाम हुए कैसे? कहीं से हुए है वे? भगवान निर्विकल्प वीतरागस्वरूपी परमात्मा स्वयं है, स्वयं परमात्मस्वरूप ही है। सेठ! आता नहीं तारणस्वामी में 'अप्पा सो परमअप्पा' बहुत आता है। परन्तु कहाँ भान था कुछ? ऐसी की ऐसी पुस्तक रखे और फिर, चैत्यालय (में), वह तो शुभभाव है। ढोल बजावे ढोल। भक्ति, वह तो शुभभाव है। आहाहा! उसके द्वारा आत्मा नहीं ज्ञात होता।

आत्मा स्वयं वीतराग अभेदस्वरूप आनन्दस्वरूप प्रभु है, तो उसकी परिणति वर्तमान में वीतराग निर्विकल्प परिणति द्वारा ज्ञात हो। तो वीतराग परिणति हुई, वह आत्मा का अभयदान है। आहाहा! अर्थात्? कि जैसा है, वैसा उसे जीवता स्वीकार किया, ऐसा जीवता स्वीकार किया। क्या कहा यह? भगवान आत्मा देहदेवल में प्रभु विराजता है। वह स्वयं प्रभु है। उस प्रभु की शक्ति से भरपूर भगवान है। आहा! ऐसा कैसे बैठे? दो बीड़ी, सिगरेट ठीक से पीवे तब, कलशा (दस्त) उतरे जंगल, पाखाना में। ऐसे तो अपलक्षण के पार नहीं होते, अब उसे कहना कि आत्मा ऐसा है। आहाहा! बापू! मार्ग तो यह है, हों! जब तुझे संसार से मुक्त होना हो तो इस प्रकार से पहिचान और अनुभव करना पड़ेगा। आहाहा!

वीतरागनिर्विकल्प अर्थात् अभेद **स्वसंवेदन परिणामरूप...** आहाहा! **जो निजभाव...** देखो! उसे अपने भाव कहे, किसे? वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन परिणाम, वे अपने भाव हैं। दया, दान, रागादि अपना भाव नहीं, वह तो विकारभाव है। आहाहा! समझ में आया? कुछ समझ में आया, ऐसा आता है न? थोड़ी बहुत क्या गन्ध है बात? बापू! समझ जाये, वह तो निहाल हो जाये। आहाहा! देखो! यह जीव की दया और पर की दया और स्व की दया की व्याख्या। आहाहा! आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का संग्रहालय—गोदाम है, संग्रह का आलय—स्थान है। ऐसी निज भूमिका आनन्दरूप वीतरागस्वरूप उसे वीतरागी परिणति द्वारा जाना अथवा वीतरागी परिणति द्वारा वह पूर्ण है, ऐसी उसकी प्रतीति हुई, इसलिए उसे अभयदान दिया। है, ऐसा तू बराबर है। आहाहा! सुमनभाई! आहाहा!

अभयदान क्या कहा? आत्मा को आत्मा ने अभयदान दिया अर्थात् क्या? कि जैसा जितना वह वीतरागमूर्ति आनन्दकन्द प्रभु है, इतने को इतना जीवन स्वयं ने स्वीकार किया, वह वीतरागी परिणति द्वारा स्वीकार किया। अरे! ऐसी बातें अब। धन्धे के कारण निवृत्त कहाँ बेचारा! निवृत्त हो तो बाहर की प्रवृत्ति, यह दया और यह व्रत और तप मर गया कर-करके। आहाहा! देखो! ये शब्द।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न! वस्तु स्वरूप है, उसे पहिचानकर, उसके ऊपर दृष्टि करके रमणता करना। वह करना है, बाकी सब थोथा है। आहाहा!

मुमुक्षु : पुरानी मान्यता....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरानी मान्यता (के ऊपर) पोता फेर देना। पाठशाला में नहीं ले जाते लड़के? डिब्बी ले जाते थे, पहले की बात। गीला पोता। पूरी स्लेट भर गयी हो, फिर मार पोता। लिख नया। इसी प्रकार पूर्व की मानी हुई बातें हो और लिखी हों, उसे पोता मार, नया ले अब। समझ में आया? उस डिब्बी में रखते थे। अब कुछ करते हैं दूसरा? सुधरा होगा। हें?

मुमुक्षु : नोटबुक में लिखाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नोटबुक में लिखते हैं, हाँ, यह बात सच्ची। तब तो स्लेट थी। आहाहा!

महा सिद्धान्त प्रभु का। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू जितना है, उतना मान और अनुभव कर, तब तूने तेरे जीव को अभयदान दिया। जितना है, उससे तू कम, अधिक माने तो तूने आत्मा का घात—हिंसा की है। आहाहा! समझ में आया? दूसरा जीव है, उसे जीवित रखे भाव, तब उसका भाव शुभ कहलाये न। जीवता है उसे। इसी प्रकार आत्मा जिस प्रकार से जीवित तत्त्व है, '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' भाई! दूसरी गाथा समयसार। शुरुआत वहाँ से की। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' वह यह वीतराग परिणति। आहाहा! इसमें से जीवत्वशक्ति निकाली है। आत्मा में जीवत्वशक्ति है। आहाहा! अर्थात्? भगवान आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, ऐसे उसके निजप्राणरूपी जीवन टिकता त्रिकाली है वह। आहाहा! ऐसे त्रिकाली टिकते तत्त्व को त्रिकालरूप टिकने का वेदन करना, आहाहा! वह आत्मा की दया है, वह आत्मा को अभयदान है। आहाहा! ऐसी व्याख्यायें अब, याद रहे नहीं। स्त्री सुनने आयी न हो और पूछे कि, क्या सुनकर आये? कुछ कहते थे, ऐसा और वैसा। वह दया पालना, व्रत करना, वह तो सीधासट्ट समझ में आये। त्रंबकभाई! बापू! मार्ग अलग, भाई! वीतराग जैन परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि

तेरा... वे वीतराग कहाँ से हुए? वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञ केवलज्ञानी हुए कहाँ से? वह पर्याय कहीं बाहर से आती है? चौसठ पहरी चरपराई छोटी पीपर की, छोटी पीपर आती है न? छोटी पीपर, तुम्हारे हिन्दी में। हमारे (गुजराती में) लींडीपीपर (कहते हैं)। रंग में काली, चरपराई में अल्प बाह्य, अन्दर में चरपराई चौसठ पहरी। रुपया रुपया सोलह आना। जिससे चौसठ पूर्ण घूंटे तो अन्दर में से आवे बाहर। इतनी तो भी रुपया-रुपया (पूर्ण) चरपराई भरी है। चौसठ पहरी कहते हैं, नहीं? घोंटकर चौंसठ पहरी पीपर करते हैं न। वह चौसठ पहरी हुई कहाँ से? कहाँ से आयी? घूंटने में से आयी? पत्थर को घूंटे न। कहाँ उसमें थी? उसमें चौसठ पहरी पूर्ण, पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... रस इतने में पूर्ण चरपरा रस और पूर्ण हरा रंग पूरा-पूरा भरा है। आहाहा!

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा, आहाहा! वह बात बैठे, क्योंकि किया हो न बहुत बार। इस देह में प्रभु अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त बल—वीर्य आत्मा का स्वभाव। उससे चौसठ पहरी अर्थात् पूर्ण भरपूर है वह। आहाहा! उसे उसकी ओर की वीतरागी परिणति द्वारा वेदन करना अर्थात् कि मानना अर्थात् कि उतना जानना। आहाहा! उसने आत्मा को अभयदान दिया। उससे कम, अधिक, विपरीत मानना, वह घात है। यह तो पूर्ण की व्याख्या। समझ में आया? कहो, कान्तिभाई! ऐसा है, यह तो वकालत (वकील) को बैठे ऐसा है। ये सब वकील हैं। धूल में भी नहीं वहाँ वकालत में। सब गप्प मारा हो। आहाहा!

मुमुक्षु : गप्प मारना सरल नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सरल नहीं, तुम्हारा मित्र भगवानजी था न, भगवानजीभाई थे न, क्या कहलाते हैं वे? ठिकाने बिना के तो भी लाखों पैदा किये थे। उसमें क्या? भगवानजीभाई इनके मित्र थे। भगवानजी वकील, राजकोट। बहुत सुनने आते थे। फिर सुनने में भी यह बात आती हो कि ऐसा आत्मा, ऐसा आत्मा। तब एक बार बोले, महाराज! ऐसा धोया हुआ मूला जैसा आत्मा गया कहाँ? यह वकील। लो। ऐसे के ऐसे। बहुत जब आत्मा की महिमा करे न, तब कहे—ऐसा है तो धोये हुए मूला जैसा गया कहाँ? एक बार बोले। पहिचानते थे न? भगवानजीभाई, भगवानजी वकील।

आहाहा! अरे भाई! तुझे खबर नहीं। यह मूला होता है न, मूला? उसे खेत में से लावे तब पहले पानी में धो डाले। क्योंकि वे कांदा के ऊपर मिट्टी हो न, सफेद के ऊपर मिट्टी (हो)। क्योंकि वह अन्दर होता है न, पत्ते बाहर होते हैं और हरा-हरा पानी में धोवे और फिर डाले। वह धोया हुआ मूला कहलाता है। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा मूल चीज़ पुण्य-पाप के रागरहित वीतरागी निर्विकल्प है, उसे अनुभव करना, वह धोया हुआ मूला होता है। मूल नाम था, उसे निर्मलरूप से जानना। आहाहा! गजब बात, भाई! ऐसा मार्ग? बापू! मार्ग तो यह वीतराग का है। अभी तो सब बहुत गड़बड़ चली है। आहाहा!

मुमुक्षु : गड़बड़ जवानों में मिट गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : जवान तो अब बेचारे विचार करते हैं। पुराने लोग पड़े हों ऐसे के ऐसे वाड़ा में। जवान जरा विचार तो करे या नहीं? क्या है यह? कैसे यह मार्ग चलता है? आहाहा! लॉजिक से, युक्ति से उसे मार्ग ख्याल में आना चाहिए न! ऐसे के ऐसे अन्ध दौड़ से जाना, वह क्या? आहाहा! समझ में आया?

वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन... स्व अर्थात् अपने से, सं—प्रत्यक्ष वेदन। आहाहा! मति-श्रुतज्ञान का प्रत्यक्ष वेदन। ऐसे **परिणामरूप जो निजभावों का अभयदान निज जीव की रक्षा...** है। आहाहा! अपनी रक्षा और क्या? परजीव की रक्षा तो (समझे)। बापू! परजीव की रक्षा तू कहाँ कर सकता है? और तेरे जीव की रक्षा कर सकता है। जितना है, वैसा अनुभव करके मान सकता है। आहाहा! समझ में आया?

व्यवहारनयकर परप्राणियों के प्राणों की रक्षारूप अभयदान, वह स्वदया परदयास्वरूप... दोनों की व्याख्या की है। ऐसा **अभयदान है, उसके करनेवालों को स्वर्ग मोक्ष होता है,...** लो। अर्थात् कि निजदया से मोक्ष होता है, परदया से स्वर्ग मिलता है। समझ में आया? और हिंसा, पंचेन्द्रिय की हिंसा से नरक मिलता है। आहाहा! **उसके करनेवालों को स्वर्ग-मोक्ष होता है, इसमें सन्देह नहीं है। इनमें से जो अच्छा मालूम पड़े, उसे करो। ऐसी श्रीगुरु ने आज्ञा की।** आहाहा! है न पाठ? '**जहिं रुच्चइ तहिं लग्गु।**' आहाहा!

ऐसा कथन सुनकर कोई अज्ञानी जीव तर्क करता है कि जो ये प्राण जीव से जुदे हैं कि नहीं ? यदि जीव से जुदे नहीं है, तो जैसे जीव का नाश नहीं है, वैसे प्राणों का भी नाश नहीं हो सकता ? यह दस प्राण, दस प्राण। समझ में आया ? **प्राण जीव से जुदे हैं कि नहीं ?** पाँच इन्द्रिय के प्राण, मन, वचन, काया के प्राण और आयुष्य आदि। वे कर्म के प्राण हैं, वे जड़ हैं और उनकी योग्यता के अशुद्ध भावप्राण, वह चैतन्य की पर्याय है और त्रिकाली है, वह शुद्ध प्राण है। क्या कहा यह ? यह जो है यह पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, काया, आयुष्य और श्वास, वे जड़ के प्राण हैं। वे तो जड़ हैं। और अपनी पर्याय में उसकी योग्यता से जो अशुद्धभावरूप है, वे अशुद्धप्राण हैं और वे प्राण पर्याय में हैं और त्रिकाली आनन्दादि प्राण हैं, वे गुण में हैं। आहाहा! ऐसा सब (समझना)। **प्राण जीव से जुदे हैं कि नहीं ? यदि जीव से जुदे नहीं है, तो जैसे जीव का नाश नहीं है, वैसे प्राणों का भी नाश नहीं हो सकता ?** क्या कहते हैं यह ? यदि यह प्राण दस हैं, वे जीव से भिन्न नहीं, आहाहा! तो **जीव से जुदे नहीं है, तो जैसे जीव का नाश नहीं है, वैसे प्राणों का भी नाश नहीं हो सकता ?** आहाहा!

अगर जुदे हैं अर्थात् जीव से सर्वथा भिन्न हैं, तो इन प्राणों का नाश होने पर... क्या है ? **नहीं हो सकता।** ऐसा। आहाहा! क्या कहा यह ? यह दस प्राण हैं, वे जीव से भिन्न हों तो उनके नाश से जीव का नाश होगा नहीं, जीव का नाश नहीं किया जा सकता। और यदि प्राण अभेद हों तो जीव का नाश कभी नहीं है, उसके प्राण का नाश नहीं होता। समझ में आया ? थोड़ा सा अन्दर सुधारा है। नाश होने पर, ऐसा लिखा है। जीव का, हाँ, जीव का। सुधारा है। '**परकीय देहघाते दुःखं न भवति।**' आहाहा! क्या कहा यह ? कि भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें दस प्राण हैं, वे जीव से अभेद है या जीव से भिन्न हैं ? यदि जीव से अभेद हों तो जीव का नाश नहीं, वैसे प्राण का नाश नहीं होगा। और भिन्न हैं तो भिन्न के नाश से जीव का नाश नहीं होता। आहाहा! हिंसा है नहीं, ऐसा जानकर जीवहिंसा है ही नहीं, ऐसा अज्ञानी ने तर्क किया। जीव की हिंसा सिद्ध नहीं होती। क्योंकि यह प्राण है, वे यदि आत्मा के साथ अभेद हों तो जीव का नाश नहीं तो इनका नाश नहीं और यदि भिन्न हों तो इनके नाश से जीव का नाश नहीं होता।

आहाहा! तो इस प्रकार हिंसा सिद्ध नहीं होती। आहाहा! है? **तुम जीव हिंसा में पाप क्यों मानते हो?** आहाहा!

इसका समाधान—जो ये इन्द्रिय,... पाँच, **बल,...** मन, वचन, काया। **आयु, श्वासोश्वास यह प्राण जीव से किसी नयकर अभिन्न हैं,...** व्यवहारनय से। समझ में आया? **किसी नय से भिन्न हैं।** निश्चयनय से। **ये दोनों नय प्रमाणिक हैं।** समझ में आया? दस प्राण व्यवहार की अपेक्षा से अभिन्न कहे जाते हैं और निश्चय की अपेक्षा से प्राणों को भिन्न कहा जाता है। आहाहा!

अब अभेद कहते हैं, सो सुनो। अपने प्राणों का घात होने पर जो व्यवहारनयकर दुःख की उत्पत्ति, वह हिंसा है,... लो, ठीक। आहाहा! **अपने प्राणों का घात होने पर जो व्यवहारनयकर दुःख की उत्पत्ति वह हिंसा है,...** लो, यह व्यवहारहिंसा अपने में हुई यह, हों! अपने में होकर राग की हिंसा। **उसी से पाप का बन्ध होता है।** आहाहा! **और जो इन प्राणों को सर्वथा जुदे ही मानें, देह और आत्मा का सर्वथा भेद ही जाने, तो जैसे पर के शरीर का घात होने पर दुःख नहीं होता है, वैसे अपने देह के घात में भी दुःख न होना चाहिए...** प्राण का घात हो जाये तो दुःख नहीं होता। क्योंकि वे भिन्न हैं। विशेष है....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष कृष्ण अमावस्या, बुधववार
दिनांक- १९-०१-१९७७, गाथा - १२७, १२८, प्रवचन-१९०

१२७ गाथा। यहाँ आया। शिष्य प्रश्न करता है कि **इस प्रकार से जीव हिंसा है ही नहीं...** क्यों? कि यह जीव और प्राण तो भिन्न हैं। यह दस प्राण और भगवान आत्मा तो भिन्न है। तो इसमें हिंसा कहाँ हुई? भिन्न है, उसमें पर की हिंसा नहीं होती और अभिन्न कहें तो हिंसा होती है। शरीर और आत्मा को एक व्यवहार से माने तो हिंसा व्यवहार से होती है। समझ में आया? प्रश्न किया है। जरा नय का विचार है। देखो!

किसी नयकर अभिन्न हैं, भिन्न नहीं हैं, किसी नय से भिन्न हैं। है? आया या नहीं चन्दुभाई! आया इसमें? **जो ये इन्द्रिय,...** यह पाँच इन्द्रियाँ जड़ हैं यह तो। **बल...** शरीर का मन, वचन, काय। **आयु, श्वासोश्वास और प्राण जीव से किसी नयकर अभिन्न हैं, भिन्न नहीं है,...** व्यवहारनय से अभिन्न है, व्यवहार से भिन्न नहीं है। है? **किसी नय से भिन्न हैं।** निश्चयनय से भिन्न है। ऐसी बातें। और **ये दोनों नय प्रामाणिक हैं।** लो, व्यवहारनय प्रमाणिक कही। विषय है न वह भी। प्रमाणिक है। विषय है न! आहाहा! भगवान आत्मा तो दस प्राण और भवप्राण से भिन्न है। शुद्धात्मा पवित्र, उसे आत्मा कहते हैं। परन्तु व्यवहारनय से उसमें अशुद्धता के भावप्राण हैं और अशुद्धता के निमित्त में द्रव्यप्राण भी निमित्तरूप से असद्भूतव्यवहारनय से हैं। आहाहा! ऐसा नय का व्याख्यान। लोगों को तत्त्व की खबर नहीं होती और लोगों को धर्म हो (ऐसा नहीं होता)। अनन्त काल हुआ इसे। समझ में आया?

स्वयं शुद्धात्मा है। यह पहले प्रश्न हो गया है अपने, ६८ में, ६८ गाथा में, भाई! ऐसा कि '**जीव ण करई बंध मोक्ख**'। जीव बन्ध-मोक्ष को करता नहीं। ६८ में आ गया न, वह तो दृष्टान्त दिया है न! जीव बन्ध-मोक्ष नहीं करता तो फिर मोक्ष नहीं है, ऐसा शिष्य का प्रश्न है। जब जीव निश्चय से बन्ध-मोक्ष करता नहीं तो निश्चय से जीव को मोक्ष और बन्ध है नहीं, इसलिए हमारा मोक्ष का पुरुषार्थ करना, वह तो हमारे रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भाई सुन! अशुद्धनिश्चयनय से बन्ध है और अशुद्धनय से त्याग करने से, नाश

करने से व्यवहारनय से मोक्ष है। ऐसे तो अशुद्धनय, वह संसार है और उसका अभाव करना, वह भी एक न्याय से अशुद्धनय का विषय है। पर्याय है न! ऐसी बातें। आत्मा शुद्ध जो पवित्र आत्मा भगवान, उसमें तो पर्याय का कर्ता भी आत्मा नहीं। मोक्ष की पर्याय, मोक्ष के मार्ग की और बन्ध के और बन्ध के कारण की, आहाहा! वह कर्ता नहीं, आत्मा तो ज्ञायकस्वरूप ध्रुव चैतन्य है। पर्याय में रागादि का करना और पर्याय में राग का टालना है। ...तब कहा कि भाई! एक नय से व्यवहार से प्राण का नाश होने पर जीव को दुःख होता है न? इस अपेक्षा से व्यवहार से उसके हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे को मारे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे को दुःख होने से, शरीर का नाश होने से तुझे दुःख नहीं होता और उससे होता है, इतना अन्तर है। आहाहा! सूक्ष्म बातें! वह अकालमरण में चर्चा की है न? कालमरण और अकालमरण। फूलचन्दजी ने जवाब ऐसा दिया कि कालमरण वह निश्चय से है। जिस समय में जिस काल में देह छूटनेवाली है, वह छूटने का वह कालमरण और अकालमरण वह व्यवहार से है। कर्म की स्थिति का वर्णन बताकर इस प्रकार अकालमरण। वास्तव में तो अकालमरण नहीं, वास्तव में तो कालमरण ही है। तब उसका प्रश्न हुआ, कालमरण भी व्यवहार है और अकालमरण भी व्यवहार है। ऐसा डाला उन्होंने, उत्तर में ऐसा डाला। परन्तु क्या हो? लोगों को निश्चय वस्तु है वह बैठती नहीं। जिस समय में जिसकी जो पर्याय होनेवाली है, वह उस समय में होगी, उसमें आगे-पीछे कुछ होगा, ऐसा नहीं है। यह बात बैठाने को वहाँ अकालमरण को व्यवहार कहा। और कालमरण उस मरण की अपेक्षा से अनिश्चय है। त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से तो कालमरण क्या, मोक्षमार्ग भी व्यवहार है। आहाहा! अरे! समझ में आया?

शुद्ध चिदानन्द प्रभु, जो सम्यग्दर्शन का विषय भगवान आत्मा, वह सम्यग्दर्शन धर्म की शुरुआत करनेवाले को उस सम्यग्दर्शन में पूरा भगवान पूर्णानन्द आत्मा उसके विषय में—ध्येय में आता है।

मुमुक्षु : आप पूरा आत्मा कहते हो, वह प्रमाण....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा अर्थात् पर्याय नहीं, पूरा अर्थात् यह। आहाहा! ध्रुव पूरा

अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु है। आहाहा! कुछ खबर भी नहीं, चला रखा है, धर्म हो गया। ऐई! नटुभाई! नटुभाई आये हैं न? वह कहे, यात्रा करके धर्म हो गया, वह कहे, व्रत पालो और धर्म हो गया। वह कहे, भक्ति की और धर्म, अपवास किये और धर्म (हो गया)। धूल भी नहीं, सुन न! वह तो सब राग की क्रिया है।

मुमुक्षु : आपके पास शास्त्र सुने तो धर्म हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुने तो भी धर्म नहीं। वह भी विकल्प है। बातें बहुत सूक्ष्म। जिनवर का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, बापू! सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्होंने एक समय में तीन काल—तीन लोक देखे, उसमें भी तर्क करते हैं कि पर को जानना, सर्वज्ञ पर को जाने, वह तो व्यवहार हुआ, तो झूठा हुआ। यह तो ऐसा है कि पर को जानना, वह असद्भूत है। परन्तु परसम्बन्धी अपने ज्ञान को जानना, वह तो बराबर शुद्ध है। पर की अपेक्षा से शुद्ध है, हों! अपने स्वभाव की अपेक्षा से वह व्यवहार है। आहाहा! पूरा आत्मा जो शुद्धचैतन्यघन, महासत्ता प्रभु जैसा सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, वह आत्मा है, उसमें तो बन्ध-मोक्ष नहीं। समझ में आया? राग से बन्ध है, वह अशुद्धनय का विषय है और कर्म का बन्ध है, वह अशुद्ध व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! कब? यह शुद्ध आत्मा को अन्तर दृष्टि करके पुरुषार्थ करना मोक्षमार्ग का, वह भी व्यवहार है। परन्तु राग की क्रिया की अपेक्षा से उसे निश्चय कहा जाता है। राग की जो क्रिया है दया, दान की, वह असद्भूत है। इस अपेक्षा से मोक्ष का मार्ग वह निश्चय है, ऐसा कहने में आता है। परन्तु उस मोक्ष के मार्ग की पर्याय को जब लेना हो तो त्रिकाल की अपेक्षा से उसे व्यवहार कहा जाता है। अरेरे! ऐसी बातें। कहो, समझ में आया? शिष्य ने प्रश्न किया था कि जब बन्ध-मोक्ष आत्मा में नहीं तो फिर मोक्ष है ही नहीं जगत में। ६८वीं गाथा में। टीका में दिया है, जयसेनाचार्य की ३२० गाथा की टीका में दिया है।

यह क्या चलता है यह? कि वास्तविक निश्चय सत्यार्थ किसे कहना? और व्यवहार-उपचारिक किसे कहना? यह दो नय का विषय वीतरागमार्ग में है। अब इन दो नयों का ज्ञान जिसे नहीं, उसे अज्ञान है, उसे तो कुछ धर्म होता नहीं। समझ में आया? यहाँ कहते हैं, शिष्य को कहते हैं कि यदि तुम ऐसा कहो कि यह भगवान

आत्मा है, वह तो बन्ध को भी नहीं करता और मोक्ष को भी नहीं करता। तो फिर मोक्ष है ही नहीं। बापू! निश्चय से तो बन्ध को करता नहीं, बन्ध में भी नहीं, मोक्ष की पर्याय में भी वह नहीं, मोक्ष की पर्याय को करता नहीं। परन्तु व्यवहार से जो पर्याय में अशुद्धता करता है, वह व्यवहार है, त्रिकाल की अपेक्षा से। और उसे टालने का पुरुषार्थ अन्दर में करे, शुद्ध भगवान परमानन्द हूँ, सर्वज्ञ जिनवर ने देखा वह, हों! अज्ञानी आत्मा करे, वह आत्मा नहीं। आहाहा! परमेश्वर वीतराग केवलज्ञानी ने जो आत्मा कहा, वह अन्दर आत्मा तो पवित्र शुद्ध है। समझ में आया?

कहा था न? आया नहीं देवचन्दजी में? 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल' सर्वज्ञ परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। सीमन्धर परमात्मा आदि, लाखों केवली, बीस तीर्थंकर। स्तुतिकार कहते हैं, 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाला, निज सत्ता से शुद्ध हमको पेखता हो लाल...' वहाँ सबको पेखते हैं। क्या कहा? निज सत्ता आत्मा का निज—अपना स्वरूप सत्ता, इस प्रकार से भगवान! आप हमारे आत्मा को शुद्ध देखते हो। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें। इसकी अपेक्षा दया पाले और भक्ति करे और पूजा करे, जाये मरकर चार गति में भटकने। ... यह कहाँ, यह तो राग की क्रिया है, उसमें कहाँ धर्म था? आहाहा!

शुद्ध चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का कन्द वस्तु जो सर्वज्ञ ने निज सत्ता से शुद्ध (देखी), हे नाथ! आप सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेव, हमारे आत्मा को निज सत्ता से आप शुद्ध देखते हो। यह दया, दान, व्रत के परिणाम हैं, वे भाव अशुद्ध हैं। वे कहीं आत्मा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा में से निकल जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निकल जाते हैं, वे इसके कहाँ हैं? इसके हों तो निकले? सिद्ध होते हैं, वहाँ कोई दया का भाव रहता है। वह तो राग था। आहाहा!

आत्मा उसे कहते हैं कि निज सत्ता से शुद्ध, वह त्रिकाल शुद्ध है, वह निश्चय; और अशुद्धता राग में है, उसकी अपेक्षा से कर्म जब अनुपचार असद्भूत से कहें, तब राग को अशुद्धनय से व्यवहारनय से कहते हैं।

मुमुक्षु : अशुद्धनय....

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुद्धनय व्यवहार है। और स्वरूप का पुरुषार्थ करना, वह व्यवहार है। हें! आहाहा! अखण्डानन्द प्रभु चिदानन्दस्वरूप जिनवर परमात्मा ने देखा और कहा निज सत्ता से शुद्ध, ऐसी जिसे अन्तर्दृष्टि होती है, तब उसने पुरुषार्थ किया व्यवहार से ऐसा कहने में आता है। आहाहा! तब उसे समकित होता है। तब उसे धर्म की शुरुआत होती है। बाकी सब थोथा। समझ में आया? आहाहा! निवृत्त भी कहाँ? बनिया को निवृत्ति नहीं मिलती। धन्धा करने के कारण बीस, बाईस घण्टे वहाँ जाये। छह-सात घण्टे नींद में जाये, छह-सात घण्टे स्त्री को प्रसन्न, पुत्र को प्रसन्न करने में जाये। दो-तीन घण्टे खाने में जाये। उसमें निवृत्त कहाँ है, अन्दर में यह क्या चीज़ है। ऐई! नटुभाई! यह तुम्हारे वकालत में जाये बहुत समय। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर आत्मा को पवित्र किस प्रकार कहते हैं, उसे अपवित्रता अर्थात् संसार किस प्रकार है और वह संसार कैसे टले, व्यवहार कैसा और निश्चय कैसा, यह बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसे और उसे व्यवहार कहा जाये, उसे और उसे निश्चय कहा जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से बात है? राग का बन्धन है। राग का, हों! वह अशुद्धनय से कहने में आता है। कर्म का बन्धन है, वह अशुद्ध व्यवहारनय से कहने में आता है और असद्भूत से व्यवहार जब कहते हैं कर्म के सम्बन्ध का, तब अशुद्धनिश्चय से निश्चय से राग का बन्ध है अशुद्धनय से, ऐसा कहा जाता है और उसे टालने के लिये पुरुषार्थ करना, भगवान आत्मा पूर्णानन्द में दृष्टि करना, वह भी व्यवहार हुआ। परन्तु राग के त्याग की अपेक्षा से उसे कहें तो अशुद्ध हुआ, निश्चय हुआ। आहाहा! कहो, सेठ! अशुद्धनिश्चय है, वह व्यवहार है। शुद्ध की—त्रिकाल की अपेक्षा से। पर के सम्बन्ध की अपेक्षा से तो उसे निश्चय कहा जाता है। राग उसकी पर्याय है न! प्रवचनसार में नहीं कहा? १८९ गाथा। निश्चय से आत्मा को विकारी पर्याय निश्चय से स्व की है। किस अपेक्षा से? कर्म के और पर के सम्बन्ध की रहितपने की अपेक्षा से राग का भाव जीव का निश्चय से है, ऐसा कहा है। अब यहाँ वापस ऐसा कहा कि राग को टालना और रागपना इसे है, यह व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! सत्यता क्या है

और उपचारिक क्या है, यह बात इसे समझ में लेनी पड़ेगी, बापू! समझ में आया? वह यह प्रश्न इन्होंने यहाँ किया। यह प्रश्न ६८ में किया था वह।

महाराज! आप तो कहते हो, जीव '**जीवो ण बंधु ण मोक्खु करेइ**'। जीव मोक्ष की पर्याय को करता नहीं।.... देह मिट्टी अजीव है, यह तो उससे भिन्न है, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव, वह शुभराग, वह भी भगवान से भिन्न है। यह भगवान, हों!.... भाई! इसलिए जब राग की-संसार की पर्याय जो है, संसार उदयभाव, वह भी व्यवहार है, उसे टालना, वह भी व्यवहार है। जब कर्म के जड़ की अपेक्षा .... लें तो असद्भूतव्यवहार है। और राग का... पर की अपेक्षा न रखे तो निश्चय में जाता है, स्व की अपेक्षा से। परन्तु त्रिकाल की दृष्टि से देखने में आवे तो वह अशुद्धता राग है, वह व्यवहार और राग को टालना, वह व्यवहार।....मोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार। निश्चय तो निष्क्रिय भगवान आत्मा, वह निश्चय। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग कहीं है नहीं। सब ऐसे के ऐसे बिना भान के पड़े हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ओघे ओघे अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : ओघे ओघे (अर्थात्) समझे बिना के ओघो... इस चावल के कारण से छिलका कूटे उसे ओघे कहा जाता है। एक गृहस्थ बाई थी गृहस्थ, वह खांडती थी। चावल तो भिन्न पड़कर नीचे जाये, ऊपर छिलका दिखाई दे। एक गरीब बाई देखने आयी, यह तो सेठानी है और खांडती है, इसमें कुछ माल होगा। देखे तो छिलके हैं, उसमें भी कुछ होगा। परन्तु वे छिलके पृथक् पड़कर चावल गये, उन्हें देखती नहीं। छिलके खांडे, इसलिए स्वयं घर में उसके पति को कहे, पाँच सेर छिलके ले आओ, मैं कूटूं। भान नहीं होता। छिलके अलग, चावल अलग। वे छिलके तुझे ऊपर दिखाई दिये, वह ऊपर की चीज़, चावल अन्दर गिर गये छूटकर। क्या कहलाता है? खाणियो। भूल जाते हैं भाई तुम्हारी भाषा। हिन्दी में उकली बोले। परन्तु अपने क्या कहते हैं? खाणियो। अपने यहाँ गुजराती में खाणियो कहते हैं। कूटे न। काला पत्थर का होता है। खाणियो। उसमें वे छिलके ऊपर रहे और चावल नीचे चले जायें। वे चावल हैं, उन्हें वह देखती नहीं, वह गरीब बाई आयी थी वह, छिलको को देखती है।

इसी प्रकार ज्ञानी को राग की क्रिया देखने से, छिलके की क्रिया देखने से अज्ञानी भी राग की क्रिया करना, ऐसा मान लेता है। परन्तु ज्ञानी को राग के पीछे आनन्दस्वरूप का भान है। वह चावल निर्मल आनन्दकन्द, जिसे दृष्टि में आया है, उसे तो वह देखता नहीं। नटुभाई! अरे.. अरे! ऐसी बातें! एक तो बनियों को बेचारों को फुरसत नहीं मिलती। ऐई! पोपटभाई! बेचारे कहे होंगे यह? ऐई! सेठ! यह सब करोड़पति बैठे हैं।

मुमुक्षु : आप तो बहुत बार कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं, भिखारी हैं सब। आहाहा! जिन्हें आत्मा की लक्ष्मी की खबर नहीं और यह बाहर की लक्ष्मी (माँगते हैं), भिखारी हैं, बड़े भिखारी। लाओ... लाओ... लाओ।

यहाँ परमात्मा कहते हैं, यह प्रश्न उठा किसमें से, उसमें से यह सब चला। जीव को यह प्राण है... पाँच इन्द्रिय, मन, वचन, काया, श्वास और आयुष्य, वे तो पर हैं। निश्चय से पर हैं परन्तु व्यवहार से स्व के सम्बन्ध में है। इसलिए प्राण का नाश करने से जीव को दुःख होता है। दूसरे के प्राण का नाश होने से इसे दुःख नहीं होता। इस अपेक्षा से प्राण को आत्मा से व्यवहार से अभिन्न कहने में आता है। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें हैं अब।

मुमुक्षु : निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, व्यवहार सम्बन्ध है न! आहाहा! वह असद्भूतव्यवहार का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। यह अशुद्धता अशुद्धनय का व्यवहार, उसका सम्बन्ध है। आहाहा! योगसार में तो कहा था, अपने आया था। योगसार में कहा है न? विकार के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। वास्तविक जीव स्वयं विकार का कर्ता है ही नहीं, ऐसा कहा। गाथा में कहा।

मुमुक्षु : अमितगति में आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अमितगति का है, वह नहीं। यह तो कहा। आहाहा!

वस्तु जो ध्रुव आत्मा है, वह तो नित्यानन्द सहजात्मस्वरूप परमात्मस्वरूप है।

वह आत्मा परमात्मा, हों! सब आत्मा परमात्मस्वरूप है। कैसे बैठे? एक-दो बीड़ी ठीक से पीवे तो भाईसाहब को (दस्त उतरे), इतने तो अपलक्षण। दो सिगरेट और बीड़ी पीवे तो पाखाने में दस्त उतरे, अब उसे कहना कि तू परमात्मा है। अब किस माप से मापे उसे? कुछ भान नहीं होता। समझ में आया? अन्दर परमात्मस्वरूप सच्चिदानन्द आत्मा सिद्ध समान सदा पद मेरो, आहाहा! उसका निश्चय की दृष्टि की अपेक्षा से बन्ध और मोक्ष भी व्यवहार से कहा जाता है। बन्ध को टालना, वह भी व्यवहार और मोक्ष को करना, वह भी व्यवहार। संसार और मोक्ष पर्यायें हैं वे जीव को व्यवहार से है। भेद पड़ा न! आहाहा! निश्चय से बन्ध-मोक्ष का कर्ता नहीं, पर्याय में वह बन्ध है। आहाहा!

यहाँ यह कहा, देखो! **प्राणों का घात होने पर जो व्यवहारनयकर दुःख की उत्पत्ति वह हिंसा है,...** है न? **उसी से पाप का बन्ध होता है।** आहाहा! **और जो इन प्राणों को सर्वथा जुदे ही मानें, देह और आत्मा का सर्वथा भेद ही जानें, तो जैसे पर के शरीर का घात होने पर दुःख नहीं होता है,...** समझ में आया? ऐसे आत्मा का सर्वथा भेद जाने, **वैसे अपने देह के घात में भी दुःख न होना चाहिए, इसलिए व्यवहारनयकर जीव का और देह का एकत्व दिखता है,...** आता है अपने कहीं? गाथा समयसार। उपचारिक दृष्टि से जीव और इस शरीर का एकपना कहा जाता है। वास्तविक तो भगवान भिन्न है, शरीर भिन्न जड़ है मिट्टी यह तो। समझ में आया? यह कहते हैं। **व्यवहारनयकर जीव का और देह का एकत्व दिखता है, परन्तु निश्चय से एकत्व नहीं है। यदि निश्चय से एकपना होवे, तो देह के विनाश होने से जीव का विनाश हो जावे,...** देह तो नाश हो जाती है और जीव तो उसमें से चला जाता है। इसलिए जीव को और देह को एकपना नहीं है, निश्चय से यथार्थ दृष्टि से। परन्तु व्यवहार से इतना सम्बन्ध है, इसलिए शरीर जाने से उसे दुःख होता है, इतना सम्बन्ध व्यवहार से गिनने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : गजसुकुमार....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कहाँ था? उसे तो छूट गया था। गजसुकुमार तो अन्दर आनन्द में प्रविष्ट हो गये थे। उन्हें दुःख उत्पन्न नहीं हुआ। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप

भगवान का जिसे सम्यग्दर्शन में अनुभव हुआ, फिर तो अन्दर में स्थिर हो गये हैं। आहाहा! आनन्द में रमणता करते हुए उनके सिर पर पगड़ी अग्नि की है, उसकी खबर भी नहीं, वे तो ध्यान में—आनन्द में हैं। समझ में आया? एक ऐसा भी लिया है मोक्षमार्गप्रकाशक में, कि भाई! उपसर्ग है ज्ञानी को, उसे जानता भी नहीं, ऐसा नहीं है। अन्दर ध्यान में है, तब नहीं जानता, परन्तु विकल्प आया तो कुछ है इतना जाने। भाई! आता है? मोक्षमार्गप्रकाशक (में आता है)। धर्मी जीव अन्दर निर्विकल्प में—आनन्द में है, तब ख्याल भी नहीं कि क्या होता है शरीर पर। परन्तु ऐसा कहीं सदा नहीं रहता। विकल्प उठा, ख्याल में आवे कि कुछ है। है इतना ज्ञान। चन्दूभाई! है? मोक्षमार्गप्रकाशक में है। टोडरमलजी ने तो बहुत स्पष्टीकरण किया है, एक-एक बात का। ऐसा ख्याल आवे कि यह अग्नि है, इतना। दुःख नहीं। विकल्प उठा, उतना दुःख सही। परन्तु उसके कारण से दुःख नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग अब यह, वीतरागमार्ग दुर्लभ है, भाई! समझ में आया?

जीव इस देह को छोड़कर परभव को जाता है, तब देह नहीं जाती है। इसलिए जीव और देह में भेद भी है। यद्यपि निश्चयनयकर भेद है, तो भी व्यवहारनयकर प्राणों के चले जाने से जीव दुःखी होता है,... निमित्त सम्बन्ध है न, इसलिए। **सो जीव को दुःखी करना वही हिंसा है,...** यह व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? निश्चय से आत्मा की हिंसा उसे कहते हैं कि जो कुछ शुभ और अशुभराग करे, वह निश्चय से आत्मा की हिंसा है और परजीव को मारना, वह भी व्यवहार है और अपने को जीव छूटे और दुःख हो, वह भी व्यवहार है। आहाहा! इतने सब भंग-भेद याद कहाँ करना? ऐई! छोटुभाई! बिना भान के कूटे और पड़े हों वाड़ा में। धर्म हो गया, सामायिक की और प्रौषध किये और प्रतिक्रमण किये। धूल में भी धर्म नहीं, सुन न! वह तो राग की परलक्षी क्रिया है। अन्दर राग से भिन्न भगवान चिदानन्द प्रभु आत्मा है, उसे ज्ञान में देखने से वह पर से भिन्न है। समझ में आया? **और हिंसा से पाप का बन्ध होता है।** यह व्यवहार है। है?

निश्चयनयकर जीव का घात नहीं होता, यह तूने कहा, वह सत्य है,... निश्चय

से घात नहीं होता। वह तो ज्ञानानन्द प्राणस्वरूप शुद्धचैतन्यघन है। उसका कभी नाश होता है ? आहाहा! समझ में आया ? **परन्तु व्यवहारनयकर प्राणवियोगरूप हिंसा है ही, और व्यवहारनयकर ही पाप है, और पाप का फल नरकादिक के दुःख हैं, वे भी व्यवहारनयकर ही हैं।** पाप करके नरक में जाये, ढोर में अवतरित हो—पशु में जाये। वह है या नहीं ? व्यवहार से गति, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! ऐसी बातें, लो!

योगसार में वहाँ कहा है, आत्मा पर्याय का दाता नहीं है, लो। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की धर्म की पर्याय, उसका वह जीव दाता नहीं है। एक ओर कहना कि देह को और आत्मा को सम्बन्ध है, इसलिए दुःख होता है और दुःख, वह निश्चय से हिंसा है। व्यवहार से हिंसा का फल बन्ध है व्यवहार से, बन्ध का फल नरकादि गति है। पोपटभाई! यह सब समझना पड़ेगा, हों! रुपया में थोथा में कुछ नहीं मिले वहाँ। पाप बाँधकर चला जानेवाला है। स्त्री, पुत्र, परिवार के लिये पाप करना। भले पाँच, पचास, दस लाख इकट्ठे हों। मर जाना है इसे। आहाहा!

यहाँ तो वीतराग परमेश्वर कहते हैं, बापू! एक बार समझ तो सही, तू क्या है ? निश्चय से क्या है और व्यवहार से क्या है ? निश्चय से शरीर और राग को कुछ सम्बन्ध नहीं। शरीर का सम्बन्ध नहीं और राग का सम्बन्ध नहीं। वह भिन्न चीज़ वापस दूसरी हो गयी। समझ में आया ? और व्यवहार से शरीर को भी दुःख होता है, यह तो व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! और उसे हिंसा के भाव करना, वह व्यवहार, पर को दुःख हो वह व्यवहार, बन्ध होता है वह व्यवहार और उसका फल नरकगति में, ढोर में जाना, वह व्यवहार।

पाप का फल नरकादिक के दुःख हैं, वे भी व्यवहारनयकर ही हैं। यदि तुझे नरक के दुःख अच्छे लगते हैं, तो हिंसा कर,... नरक के दुःख में तुझे ठीक लगता हो तो हिंसा कर व्यवहार से। **और नरक का भय है, तो हिंसा मत कर। ऐसे व्याख्यान से अज्ञानी जीवों का संशय मेटा।** लो। आहाहा! वह अकाल, काल के मरण में कहा है। फूलचन्दजी ने ऐसा कहा कि कालमरण निश्चय है। निश्चय से अर्थात् जिस समय में है, उस (समय में)। ऐसा। इस अपेक्षा से निश्चय और अकालमरण है, वह व्यवहार

और उपचार है। तब उन्होंने कहा, नहीं, कालमरण और अकालमरण दोनों व्यवहार है। अरे! आहाहा! झगड़ा... झगड़ा... झगड़ा। निश्चय से तो जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह हो, वह निश्चय। किस अपेक्षा से? होनेवाली हो, वह होती है, इस अपेक्षा से निश्चय। और आड़ी-टेढ़ी हो, वह तो है ही नहीं। परन्तु अकालमरण कहने में आता है। वह व्यवहार से है, उपचार। कर्म की स्थिति ही ऐसी थी, वह घटकर देह छूट गयी। आहाहा! बाकी तो कालमरण तो देह छूटने का वह कालमरण है। वह निश्चय है, मरण की अपेक्षा से। आत्मा त्रिकाल की अपेक्षा से कालमरण, वह व्यवहार है। अरेरे! **ऐसे व्याख्यान से अज्ञानी जीवों का संशय मेटा।** १२७ हुई न?

गाथा - १२८

अथ मोक्षमार्गे रतिं कुर्वंति शिक्षां ददाति-

२५१) मूढा सयलु वि कारिमउ भुल्लउ मं तुस कंडि।
सिव-पहि णिम्मलि करहि रइ घरु परियणु लहु छंडि।।१२८।।

मूढ सकलमपि कृत्रिमं भ्रान्तः मा तुषं कण्डय।
शिवपथे निर्मले कुरु रतिं गृहं परिजनं लघु त्यज।।१२८।।

मूढा इत्यादि। मूढा सयलु वि कारिमउ हे मूढजीव शुद्धात्मानं विहायान्यत् पञ्चेन्द्रियविषयरुपं समस्तमपि कृत्रिमं विनश्वरं भुल्लउ मं तुस कंडि भ्रान्तो भूत्वा तुषकण्डनं मा कुरु। एवं विनश्वरं ज्ञात्वा सिव-पहि णिम्मलि शिवशब्दवाच्यविशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावो मुक्तात्मा तस्य प्राप्तयुपायः पन्था निजशुद्धात्मसम्चयक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरुपः स च रागादिरहितत्वेन निर्मलः करहि रइ इत्थंभूते मोक्षे मोक्षमार्गे च रतिं प्रीतिं कुरु घरु परियणु लहु छंडि पूर्वोक्त-मोक्षमार्गप्रतिपक्षभूतं गृहं परिजनादिकं शीघ्रं त्यजेति तात्पर्यम्।।१२८।।

आगे श्रीगुरु यह शिक्षा देते हैं, कि तू मोक्ष-मार्ग में प्रीति कर-

होकर भ्रान्त विनश्वर वस्तु में तुम तुष को मत कूटो।
अरे मूढ़! घर बार छोड़ निर्मल शिव पथ पर गमन करो।।१२८।।

अन्वयार्थ :- [मूढ] हे मूढ जीव, [सकलमपि] शुद्धात्मा के सिवाय अन्य सब विषयादिक [कृत्रिमं] विनाशवाले हैं, तू [भ्रांतः] भ्रम (भूल) से [तुषं मा कंडय] भूसे का खंडन मत कर। तू [निर्मले] परमपवित्र [शिवपथे] मोक्ष-मार्ग में [रतिं] प्रीति [कुरु] कर, [गृहं परिजनं] और मोक्ष-मार्ग का उधमि होके घर, परिवार आदि को [लघु] शीघ्र ही [त्यज] छोड़।

भावार्थ :- हे मूढ, शुद्धात्मस्वरुप के सिवाय अन्य सब पंचेन्द्री विषयरुप पदार्थ नाशवान् हैं, तू भ्रम से भूला हुआ असार भूसे के कूटने की तरह कार्य न कर, इस सामग्री को विनाशीक जानकर शीघ्र ही मोक्ष-मार्ग के घातक घर, परिवार आदिक को छोड़कर, मोक्षमार्ग का उधमि होके, ज्ञानदर्शनस्वभाव को रखनेवाले शुद्धात्मा की प्राप्ति का उपाय

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररुप मोक्ष का मार्ग है, उसमें प्रीति कर। जो मोक्ष-मार्ग रागादिक से रहित होने से महा निर्मल है।।१२८।।

गाथा-१२८ पर प्रवचन

२५१) **मूढा सयलु वि कारिमउ भुल्लउ मं तुस कंडि।**
सिव-पहि णिम्मलि करहि रइ घरु परियणु लहु छंडि।।१२८।।

आगे श्रीगुरु शिक्षा देते हैं, कि तू मोक्ष-मार्ग में प्रीति कर—

भावार्थ—हे मूढ जीव,... आहाहा! है? **शुद्धात्मा के सिवाय अन्य सब विषयादिक विनाशवाले हैं,...** तेरा नाथ अन्दर शुद्धचिदानन्द भगवान विराजता है, इसके अतिरिक्त सब नाशवान है। **शुद्धात्मा के सिवाय अन्य सब विषयादिक विनाशवाले हैं, तू भ्रम से भूसे का खण्डन मत कर।** आहाहा! यह भूखा आया, देखो! छिलके को न कूट। यह स्त्री, पुत्र, परिवार के लिये मर जाता है पूरे दिन पाप करके, तूने छिलके कूटे हैं। .... इसलिए जाना पड़े कलकत्ता। पाँच-दस हजार मिले तो वहाँ जाये धूल में। समझ में आया? यहाँ कहते हैं, अरे प्रभु! तू अब क्या करता है? ऐसा मनुष्यपना तुझे मिला, उसमें छिलके न कूट। परिवार के लिये कमाकर मर जायेगा, परन्तु सब छिलके कूटे। ऐई सेठ! यह तुम करोड़पति हो, यह भी करोड़पति है। हें!

मुमुक्षु : ....इसीलिए तो हम यहाँ आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी वहाँ करोड़ में और अरब में। वह तो धूल-मिट्टी है, जड़ है, अजीव है। उस अजीव को अपना मानना, वह मूढ़ता है, महापाप है।

मुमुक्षु : व्यवहार से जीव को....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ सम्बन्ध नहीं, उसे कुछ व्यवहार से। शरीर के साथ व्यवहार से, लक्ष्मी के साथ नहीं। कर्म का सम्बन्ध है आत्मा को, वह उपचारिक असद्भूत व्यवहारनय से है। राग का सम्बन्ध है, वह अशुद्धनिश्चय से है। और स्त्री, पुत्र का जो सम्बन्ध है, वह असद्भूत उपचार से है। दूर है न। ...भाई! स्त्री, कुटुम्ब,

परिवार, मकान के साथ जो सम्बन्ध है, वह उपचारिक असद्भूत है। झूठा उपचार है। और कर्म का यहाँ सम्बन्ध है, नजदीक है, इसलिए झूठा अनुपचारिक सम्बन्ध है। आहाहा! ऐसा सब कहाँ..? तथा पुण्य और पाप के भाव के साथ सम्बन्ध है, वह निश्चय से आगम की अपेक्षा से उसे असद्भूत कहते हैं। समझ में आया? आगम की अपेक्षा से राग का सम्बन्ध है, वह असद्भूतव्यवहारनय से है। आहाहा! अध्यात्म की अपेक्षा से पर के साथ सम्बन्ध है, वह यहाँ कुछ नहीं आता। पर के साथ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! मात्र अन्दर कर्म के साथ सम्बन्ध है अनुपचार व्यवहार। अध्यात्म की अपेक्षा से वह भी नहीं। अध्यात्म की अपेक्षा से तो यह है कि जितना राग होता है, उसमें ज्ञात होता है उसे असद्भूत उपचार कहा जाता है, राग को और राग ज्ञात नहीं होता, उस भाव को असद्भूत अनुपचार कहा जाता है। आहाहा! अब ऐसी बातें सब।

यहाँ यह कहते हैं, भाई! मूढ़ जीव! **भूसे का खण्डन मत कर। तू परमपवित्र मोक्षमार्ग में प्रीति कर,...** आहाहा! भगवान अन्दर आनन्दस्वरूप प्रभु है वहाँ जा न, उसे देख न, उसे मान न! नहीं तो मर जायेगा ऐसा का ऐसा। आहाहा! है? **मोक्षमार्ग का उद्यमी होकर घर, परिवार आदि को शीघ्र ही छोड़।** हें!

मुमुक्षु : घर-बार छोड़े उसे आप मान्य नहीं करते।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर-बार छोड़े, (वह तो) वह मिथ्यात्व छोड़े, तब अभी छोड़ा कहलाये, राग को। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से धर्म माने, वह तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। उसे तो मिथ्यात्व छूटा नहीं तो घरबार कहाँ से छूटे। वह तो असद्भूतव्यवहारनय। मिथ्यात्व छूटे, तब पर का त्याग अशुद्ध व्यवहारनय से कहा जाता है। आहाहा! प्ररूपणा तो यह चलती है अभी। व्रत करो, अपवास करो, दान करो, मन्दिर बनाओ। धर्म (होगा)। उल्टी दृष्टि है, धर्म कहाँ था। वह तो पुण्यभाव है। पुण्य में धर्म मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है। समझ में आया? आहाहा! है?

भावार्थ—हे मूढ! आहाहा! **शुद्धात्मस्वरूप के सिवाय...** तेरा स्वरूप तो पवित्र आनन्दकन्द पड़ा है। आहाहा! किसे खबर कहाँ है! शुद्धात्मा पवित्र, क्योंकि पुण्य और पाप के भाव तो आस्रवतत्त्व है और उससे रहित भगवान वह शुद्ध आत्मतत्त्व है। जो

आत्मा शुद्धात्मा परमानन्दस्वरूप... आहा! उसके अतिरिक्त **अन्य सब पंचेन्द्री विषयरूप पदार्थ...** आहाहा! इज्जत, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार सब विषय पदार्थ नाशवान हैं। आहाहा! **तू भ्रम से भूसा हुआ असार भूसे के कूटने की तरह कार्य न कर,...** आहाहा! स्त्री से विवाह किया, उसका करना क्या परन्तु तब? डाल देना? थी कब वहाँ? तूने विवाह ही नहीं किया। पर के साथ क्या सम्बन्ध है? ऐसी बात है। भगवान तो ऐसा कहते हैं। उसका आत्मा अलग, उसका शरीर अलग, तेरा आत्मा अलग, यह शरीर अलग। उसका आया कहाँ से कि तेरी स्त्री हो गयी? आहाहा! उसमें कुछ रूपवान ठीक सी हो, अपने से बुद्धिशाली निकले कोई, ऐसा भी होता है न, तो दब जाता है, हो गया। आहाहा!

एक राजा था वह उसकी रानी को कुछ बोलता होगा थोड़ा। नाम नहीं देते। खबर है कौन और कौन सा राजा। परन्तु राजा बड़ा राजा। करोड़ों की आमदनीवाला। उसमें कुछ बोलता होगा उसकी स्त्री से। देखो दरबार! ध्यान रखना। हम जमींदार की पुत्री हैं, यह बाहर कहने जाये कि यह रानी मेरा अपमान करती है। ऐसा करे अन्दर। यह बनी हुई बात है, नाम नहीं देते। हम तो यहाँ बहुत वर्ष से जानती हैं न! ६४ वर्ष तो दीक्षा लिये हुए और शरीर को ८७ वर्ष चलता है। ८० और ७। तथा दुकान पर बहुत सब वाँचन किया हुआ। ६३ से ६८।

मुमुक्षु : आपने वकालत नहीं की।

पूज्य गुरुदेवश्री : वकालत नहीं की। परन्तु वकालत कैसे होती है, वह सब खबर है। की नहीं, वह तो कहा न! आहाहा! दुनिया में नाचे नहीं परन्तु नाचनेवाले कैसे होते हैं, उन्हें देखा है। समझ में आया? वह बड़ा राजा था। रानी को कुछ कहा न, यह बात बाहर आ गयी। ध्यान रखना दरबार! हम जमींदार हैं। हम कुछ बनिये जैसे नहीं, कोली जैसे नहीं। ध्यान रख लेना। हाय... हाय... मार डाला। करना क्या? यह सब स्वार्थ के (सगे हैं)। कहा नहीं? अपने आ नहीं गया? स्त्री, कुटुम्ब, परिवार अजीविका के लिये ठगों की टोली तुझे मिली है। लूट डालते हैं। आहाहा! कहा था न? सज्झायमाला का नहीं था? चार सज्झायमाला है। श्वेताम्बर में चार सज्झायमाला है। एक-एक में २००-२५० सज्झाय है। चार पुस्तकें हैं। मैंने चारों दुकान पर वाँची थी। तब, (संवत्)

१९६३ से ६८। समझ में आया? उसमें यह स्तवन है। पिताजी की दुकान थी न, इसलिए हम बहुत फुरसत में, व्यापार घर का। क्या कहा यह?

सूतो कांई निश्चिंत रे, मोह तणा रे रणिया भमे,
जाग रे जाग मतिवन्त रे, लूंटे जगतना जंत रे....

स्त्री कहे, विवाह किसलिए किया था? .... लड़का बड़ा किया, हमको तुमने बड़ा किसलिए किया? .... व्यवस्थित ठिकाने विवाह करना, व्यवस्थित ठिकाने लड़की को डालना (विवाह करना)। यह सब लुटेरे हैं। 'नाखी वांक अनन्त रे, विरला कोई उगरन्त रे...' आहाहा! सज्झाय आती है। अपने चार सज्झायमाला है। दुकान पर मँगायी थी चार। छोटी उम्र, १७ वर्ष से २२। पिताजी १७ वर्ष तक थे, ६३ के वर्ष तक। निवृत्ति में वांचन बहुत। आहाहा! उसमें यह आया था। आहाहा! दो बात तो दूसरी की थी बहुत बार। 'केवळी आगळ रह गयो कोरो' एक आया था। भाई! तू भगवान के समवसरण में अनन्त बार गया है। साक्षात् भगवान विराजते हैं, वहाँ महाविदेह में अनन्त बार जन्मा है। समवसरण में गया परन्तु कुछ छूने दी नहीं तत्त्व की बात। 'केवळी आगळ रह गया कोरो, द्रव्यसंयमसे ग्रैवेयक पायो, फेर पीछे पटकयो।' यह शब्द आता है, दो हैं। आत्मा के ज्ञान बिना तूने साधूपना पालन किया, इन्द्रियाँ दमन कीं, ब्रह्मचर्य पालन किया, व्रत पालन किये, सब थोथा है। आहाहा! समझ में आया? वह द्रव्यसंयम कहलाता है। पुण्य बाँधकर स्वर्ग में गया, वहाँ से गिरा, पशु में और नरक में गया वापस। आहाहा! जिसे अभी सम्यग्दर्शन क्या है और उसकी खबर नहीं, समयक् दर्शन किसे कहना, अभी धर्म की पहली सीढ़ी। चारित्र तो कहीं रह गया अब। समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं, **हे मूढ!...** मुनि क्यों कहते होंगे ऐसा? सेठ! मूढ़ किसलिए कहते हैं? **हे मूढ! शुद्धात्मस्वरूप के सिवाय अन्य सब पंचेन्द्री विषयरूप पदार्थ नाशवान हैं, तू भ्रम से भूला हुआ असार भूसे के कूटने की तरह कार्य न कर।** आहाहा! **इस सामग्री को विनाशीक जानकर शीघ्र ही मोक्षमार्ग के घातक...** मोक्षमार्ग के घातक कौन? **घर, परिवार आदिक को छोड़कर...** आहाहा! यह स्त्री, पुत्र, नौकर सब मोक्षमार्ग के घातक शत्रु हैं। आहाहा! यह स्त्री, पुत्र छोड़ गये इसलिए ... वे छूटे

हैं, हों! यह तो शुद्ध आत्मा की दृष्टि, अनुभव करने के लिये निवृत्ति ले, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? मोक्षमार्ग—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणिमोक्षमार्ग। इसके कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र सब घातक हैं। वह आजीविका की ठगों की टोली मिली है सब। आहाहा! उसमें फिर दो-पाँच करोड़ रुपये हों। लड़का अच्छा पका हो, दो-दो लाख की आमदनी हो महीने की, यह बैठा हो तो मानो चक्रवर्ती के राज में बैठा हो। मूढ़ है। सुन न! वह तो धूल सब विनाशीक चीज़ है, उसमें तू कहाँ से आया? आहाहा! देखो न! आचार्य तो मुनि दिगम्बर सन्त हैं। आहाहा!

मोक्षमार्ग—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो आत्मा के आश्रय से होते हैं, वह पर का आश्रय करने जाता है, वहाँ घातक होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! .... क्या कहा यह? यह भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन का आश्रय करना, वह मोक्षमार्ग है। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। और पर का आश्रय करने जाये, वहाँ राग और विकार होगा, इसलिए शत्रु हैं सब। आहाहा! ऐसा होगा? यह वापस स्त्री, पुत्र छोड़े, इसलिए संसार छोड़ा, ऐसा नहीं है। संसार तो उसे कहते हैं कि जो शरीर, वाणी, मन मेरे हैं, पुण्य-पाप के परिणाम मेरे हैं, स्त्री, कुटुम्ब मेरे हैं, इज्जत मेरी है... मेरा है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसे संसार कहते हैं। स्त्री, पुत्र तो पर रह गये, वहाँ संसार कहाँ आया तेरा? समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि छोड़कर करना क्या? **मोक्षमार्ग का उद्यमी होके...** आहाहा! मोक्षमार्ग भगवान तीर्थंकरदेव सर्वज्ञदेव ने कहा हुआ, उसमें उद्यमी होकर। क्रमबद्ध में आयेगा तब होगा, उसमें उद्यम कहाँ रहा? यह क्रमबद्ध में निर्णय किया, वहाँ ही पुरुषार्थ हुआ। आहाहा! स्वसन्मुख दृष्टि हुई। समझ में आया? क्रमबद्ध में पर्याय जिस काल में होगी, उसका निर्णय, वह निर्णय कहाँ से करे? निर्णय, स्वभाव का आश्रय करे तो निर्णय होता है, नहीं तो निर्णय नहीं होता। यह चाबी—मास्टर की (Master key) भगवान के घर की यह चाबी है। तीर्थंकरदेव जिनवर परमात्मा कहते हैं... आहाहा! क्रमबद्ध में होगा, उसका बहुत प्रश्न है भाई इसमें—चर्चा में। ८८ पृष्ठ तो प्रश्न के भरे हैं, एक प्रश्न के और १२५ पृष्ठ उसके उत्तर के हैं। अन्तिम के। तीसरे का प्रश्न।

आहाहा! २१३ पृष्ठ का प्रश्न तीसरे में पूरा हुआ। आहाहा! यहाँ कहते हैं, भाई! मोक्षमार्ग में उद्यमी हो।

ज्ञान-दर्शनस्वभाव को रखनेवाले... भगवान आत्मा कैसा है यह अन्दर? वह तो ज्ञान-दर्शनस्वभाव को रखनेवाला है। वह राग को रखनेवाला और स्त्री, पुत्र रखनेवाला आत्मा नहीं। आहाहा! अरे! ऐसी बातें कठिन पड़े। प्रभु का मार्ग सूक्ष्म है बापू! अभी तो सम्प्रदाय में यह बात सब दूसरे उल्टे रास्ते चढ़ गयी है। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शनस्वभाव चैतन्य हीरा जाननस्वभाव और दर्शनस्वभाव से भरपूर प्रभु, ऐसा जो आत्मा। **ज्ञान-दर्शनस्वभाव को रखनेवाले...** है ऐसे **शुद्धात्मा की प्राप्ति का उपाय...** ऐसे शुद्धात्मा की। सर्वज्ञ ने देखा ऐसा आत्मा भगवान ने प्रगट किया, कहाँ से? कि शुद्धात्मा में से। आहाहा! ऐसी बातें! वह तो कहे, सिद्धचक्र करो, अमुक करो, उपधान करो, सीधा-सट्ट बेचारे को। समय जाये। धूल में भी नहीं वहाँ धर्म। समझ में आया? ऐसी बात। भगवान अन्दर शुद्धस्वरूप।

आज तो यह प्रश्न आया था, कोई ऐसा कहे कि सर्वज्ञ सर्वज्ञ का जाने, हमारे क्या? इसका अर्थ, ज्ञायकभाव ज्ञायक का भाव, उसमें हमारे क्या? इसका अर्थ यह हुआ। सवेरे ऐसा आया था। कहा, क्या करता है यह? सर्वज्ञ का सर्वज्ञ जाने, ऐसा क्या कहा? अर्थात् कि यह जाननेवाला ज्ञायकस्वरूप है, वह उसका जाने, हमारे क्या है? आहाहा! भारी कठिन बात है, बापू! क्या हो? आहाहा!

यहाँ तो **ज्ञान दर्शनस्वभाव को रखनेवाले शुद्धात्मा की प्राप्ति का उपाय जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप मोक्ष का मार्ग है, उसमें प्रीति कर...** आहाहा! लो। शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का सागर भगवान आत्मा... आहाहा! अन्तर पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान से छलाछल भरपूर भगवान आत्मा है। कहाँ देखे? खबर भी कहाँ है बेचारे को। जैसे पानी का कलश भरा हो न, काशीघाट का। उसमें पानी पूर्ण भरा हो न, उसी प्रकार यह काशीघाट का कलश। इसमें भगवान इसके आकार से भिन्न है अन्दर। अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द से भरपूर छलाछल प्रभु है। आहाहा! क्या कहा, देखो! **ज्ञान दर्शनस्वभाव को रखनेवाले शुद्धात्मा की प्राप्ति का**

उपाय... उसे प्राप्त करने का रास्ता **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र...** शुद्धात्मा का अनुभव करना और प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान और आनन्दस्वरूप भगवान में स्थिर होना, इसका नाम चारित्र। आहाहा! शब्द शब्द में अन्तर, बात बात में अन्तर। 'आनन्द कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मळे ने एक त्रांबियाना तेर।' इसी प्रकार भगवान कहते हैं, तुझे और मेरे शब्द-शब्द में, भाव-भाव में अन्तर है। छोटुभाई! आहाहा! क्या कहा?

एक तो यह सिद्ध किया कि आत्मा कैसा है? कि ज्ञान-दर्शनस्वभाववाला, ऐसा (आत्मा)। उसका उपाय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, सम्यक्चारित्र मोक्ष का मार्ग। **उसमें प्रीति कर।** आहाहा! मार्ग में प्रीति कर। पूर्ण स्वरूप शुद्ध चैतन्य का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। इस स्वरूप में पूर्ण प्रतीति, सन्मुख होने से उसकी श्रद्धा, सन्मुख होने से उसका ज्ञान और सन्मुखता में स्थिरता, ऐसा चारित्र है। स्त्री, पुत्र छोड़े और नग्न हो गया, इसलिए चारित्र है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इस मोक्ष के मार्ग में प्रीति कर।

अब स्पष्टीकरण करते हैं, मोक्षमार्ग कैसा? वह अस्ति से कहा। **जो मोक्षमार्ग रागादिक से रहित होने से महा निर्मल है।** आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र कैसे हैं? कि दया, दान के विकल्प से रहित वह चीज़ है। इसलिए सम्यग्दर्शन, ज्ञान अति निर्मल है। आहाहा! है? महानिर्मल। पहले आत्मा को ज्ञान-दर्शनस्वभाववाला कहा, अब उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र को महानिर्मल कहा। आहाहा! महानिर्मल पवित्र। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र वह निर्दोष वीतरागी पर्याय है। आहाहा! इसलिए रागादि रहित कहा। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र का ज्ञान, वह सब राग है, उस रागादि रहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी पर्याय है। सदा उस निर्मल की प्रीति कर। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १२९

अथ पुनरप्यध्रुवानुप्रेक्षां प्रतिपादयति–

२५२) जोइय सयलु वि कारिमउ णिक्कारिमउ ण कोइ।
जीविं जंतिं कुडि ण गय इहु पडिछंदा जोइ।।१२९।।

योगिन् सकलमपि कृत्रिमं निःकृत्रिमं न किमपि।
जीवेन यातेन देहो न गतः इमं दृष्टान्तं पश्य।।१२९।।

जोइय इत्यादि। जोइय हे योगिन् सयलु वि कारिमउ टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावाद–कृत्रिमाद्वीतरागनित्यानन्दैकस्वरुपात् परमात्मनः सकाशाद् यदन्यन्मनोवाक्कायव्यापाररुपं तत्समस्तमपि कृत्रिमं विनश्वरं णिक्कारिमउ ण कोइ अकृत्रिमं नित्यं पूर्वोक्तपरमात्मसदृशं संसारे किमपि नास्ति। अस्मिन्नर्थे दृष्टान्तमाह। जीविं जंतिं कुडि ण गय शुद्धात्मतत्त्वभावनारहितेन मिथ्यात्वविषयकषायासक्तेन यान्युपार्जितानि कर्माणि तत्कर्मसहितेन जीवेन भवान्तरं प्रति गच्छतापि कुडिशब्दवाच्यो देहः सहैव न गत इति हे जीव इहु पडिछंदा जोइ इमं दृष्टान्तं पश्येति। अत्रेदमध्रुवं ज्ञात्वा देहममत्वप्रभृतिविभावरहितनिजशुद्धात्मपदार्थभावना कर्तव्या इत्यभिप्रायः।।१२९।।

आगे फिर भी अनित्यानुप्रेक्षा का व्याख्यान करते हैं–

यहाँ सभी नश्वर हैं योगी! शाश्वत नहिं कुछ दिखे यहाँ।
यह शरीर भी जीव संग नहिं जाय लखो दृष्टान्त यहाँ।।१२९/२५२।।

अन्वयार्थ :– [योगिन्] हे योगी, [सकलमपि] सभी [कृत्रिमं] विनश्वर हैं, [निःकृत्रिमं] अकृत्रिम [किमपि] कोई भी वस्तु [न] नहीं है, [जीवेन यातेन] जीव के जाने पर उसके साथ [देहो न गतः] शरीर भी नहीं जाता, [इमं दृष्टांतं] इस दृष्टान्त को [पश्य] प्रत्यक्ष देखो।

भावार्थ :– हे योगी, टंकोत्कीर्ण (अघटित घाट–बिना टाँकी का गढ़ा) अमूर्तीक पुरुषाकार आत्मा केवल ज्ञायकस्वभाव अकृत्रिम वीतराग परमानंदस्वरुप, उससे जुदे जो मन, वचन, काय के व्यापार उनको आदि ले सभी कार्य–पदार्थ विनश्वर हैं। इस संसार में देहादि समस्त सामग्री अविनाशी नहीं है, जैसा शुद्ध–बुद्ध परमात्मा अकृत्रिम

है, वैसा देहादि में से कोई भी नहीं है, सब क्षणभंगुर हैं। शुद्धात्मतत्त्व की भावना से रहित जो मिथ्यात्व विषयकषाय हैं उनसे आसक्त होके जीव ने जो कर्म उपार्जन किये हैं, उन कर्मों से जब यह जीव परभव में गमन करता है, तब शरीर भी साथ नहीं जाता। इसलिये इस लोक में इन देहादिक सबको विनश्वर जानकर देहादि की ममता छोड़ना चाहिये, और सकल विभाव रहित निज शुद्धात्म पदार्थ की भावना करनी चाहिये।।१२९।।

वीर संवत् २५०२, माघ शुक्ल १, गुरुवार
दिनांक- २०-०१-१९७७, गाथा - १२९, १३०, प्रवचन-१९१

परमात्मप्रकाश, १२९ गाथा है। **आगे फिर भी अनित्यानुप्रेक्षा का व्याख्यान करते हैं—**

२५२) जोइय सयलु वि कारिमउ णिक्कारिमउ ण कोइ।
जीविं जंतिं कुडि ण गय इहु पडिछंदा जोइ।।१२९।।

योगीन्द्रदेव मुनि हैं, वे अपने शिष्य को कहते हैं, **हे योगी....** योगी अर्थात् यह अन्य के बाबा, वे नहीं। आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें जिसने अपनी परिणति जोड़ दी है, उसे योगी कहा जाता है। अन्यमत में जो बाबा-फाबा हैं, वे कोई योगी है नहीं। समझ में आया? अपना आत्मा शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द ध्रुव है, उसमें अपनी वर्तमान परिणति—पर्याय जोड़ दे, वह योगी। समझ में आया? **हे योगी, सभी विनश्वर हैं, अकृत्रिम कोई भी वस्तु नहीं है,...** शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, अरे! वर्तमान पर्याय भी नाशवान है। केवलज्ञान आदि पर्याय है न? वह नाशवान है, एक समय की पर्याय है। तो सब नाशवान है। आहाहा! कोई भी वस्तु अकृत्रिम शाश्वत् नहीं है। **जीव के जाने पर उसके साथ शरीर भी नहीं जाता,...** यह तो शरीर मिट्टी—धूल है। आहाहा! यहाँ से निकलकर आत्मा जाता है तो शरीर साथ नहीं आता। नाशवान है, वह तो परपदार्थ है। **उस दृष्टान्त को लेकर प्रत्यक्ष देखो।**

भावार्थ—हे योगी, टंकोत्कीर्ण (अघटित घाट...) आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा अघटित घाट (अर्थात्) घड़े बिना का घाट अरूपी चैतन्यघन, आहाहा! जो

सम्यग्दर्शन का विषय। समझ में आया? टंकोत्कीर्ण अघटित घाट—नहीं घड़ा हुआ घाट अरूपी चैतन्यघन विज्ञानदल। आहाहा! यह आत्मा। इसकी दृष्टि कराने को नित्य की दृष्टि कर, अनित्य की दृष्टि छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? **टंकोत्कीर्ण (अघटित घाट-बिना टांकी का गढा) अमूर्तिक पुरुषाकार...** जिसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं। अमूर्तिक प्रभु चैतन्य है। पुरुषाकार—पुरुष के शरीर का आकार है, वैसा उसका आकार है। **केवल ज्ञायक एक स्वभाव...** यहाँ 'एक' शब्द पड़ा रहा है, टीका में है। है न? केवलज्ञान एक स्वभाव। टीका में एक है। 'एक' शब्द.... आहाहा! एक स्वभाव है।... सब जगह 'एक' शब्द छोड़ देते हैं। एक स्वभाव केवलज्ञान। है? केवल ज्ञायक। ज्ञायक केवल ज्ञानस्वरूप। केवल अर्थात् केवलज्ञान पर्याय नहीं। केवलज्ञान की पर्याय, वह नहीं। अकेला ज्ञायकभाव सर्वज्ञस्वभाव। दो बातें ली हैं। देखो!

एक तो आत्मा ऐसा है, परन्तु स्वभाव कैसा है? **केवल ज्ञायकस्वभाव...** आहाहा! सम्यग्दर्शन प्रथम प्राप्त करने की चीज़, वह यह आत्मा केवलज्ञान एक स्वभाव है, उसे दृष्टि में लेना। आहाहा! समझ में आया? बाकी सब धूलधमाका। सेठ! इस अविनाशी भगवान की दृष्टि कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पहले आत्मा शब्द लिया है। **अमूर्तिक पुरुषाकार आत्मा...** अब उसका स्वभाव क्या? केवल ज्ञान एक स्वभाव। एक ज्ञान प्रज्ञाब्रह्म भगवान। आहाहा! बहुत कठिन लोगों को। क्रियाकाण्ड में धर्म मनाया है न, तो उससे भिन्न आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा पुरुषाकार अमूर्तिक केवलज्ञान ज्ञायक एकस्वभाव। ज्ञायक का अर्थ किया था। (समयसार) छठी गाथा में कहा न? **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो।'** प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय से भिन्न भगवान ज्ञायक है। ऐसी बातें हैं। समझ में आया?

एक सर्वज्ञस्वभाव कहो, वस्तु अमूर्तिक ज्ञ—स्वभाव, स्वभाववान का ज्ञ—स्वभाव, सर्वज्ञस्वभाव केवल एक ज्ञानस्वभाव। आहाहा! **अकृत्रिम...** वह वस्तु अकृत्रिम—नहीं करायी हुई है। किसी ने की नहीं, ईश्वर उसका कर्ता-बर्ता नहीं। समझ में आया? **वीतराग परमानन्दस्वरूप...** आहाहा! वहाँ कहा, परन्तु वापस ऐसा डाला अन्दर। वीतराग परमानन्दस्वरूप आत्मा है। इन्द्रिय के विषय के जो भाव हैं, वह तो जहर है, दुःख है। इन्द्रिय के विषय जो हैं, वे तो दुःख हैं। यह तो वीतराग

परमानन्दस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? रागरहित, विकल्परहित, नीरागी वीतरागी स्वभाव आनन्द। चारित्र लिया, आनन्द लिया, ज्ञायक लिया। त्रिकाली ज्ञानस्वभाव। उसमें वीतरागस्वभाव, वह चारित्र। उसमें आनन्दस्वभाव, वह सुख। आहाहा! है? **परमानन्दस्वरूप...** वापस परमानन्दस्वरूप। वीतरागी परमानन्दस्वरूप। आहाहा!

उससे जुदे,.... यह सब मन, वचन, काया के विकल्प की क्रिया सब भगवान आत्मा से भिन्न चीज़ है। समझ में आया? नियमसार में तो यहाँ तक कहा, ३८ गाथा में, वीतराग परमानन्दस्वरूप वह आत्मा। वह अप्पणो अप्पा। बाकी पर्याय जो केवलज्ञान हो या संवर, निर्जरा की पर्याय हो, वह भी नाशवान है। क्योंकि एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान जो सर्वज्ञ परमात्मा को उत्पन्न हुआ, वह एक समय की स्थिति है। दूसरे समय में दूसरा, तीसरे समय में तीसरा केवलज्ञान। आहाहा! गुण है, वह त्रिकाल है परन्तु केवलज्ञान है, वह पर्याय है। आहाहा! नौ तत्त्व में संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह पर्याय नाशवान है। पुण्य-पाप के भाव, उसके फल की यहाँ बात नहीं, पुण्य-पाप के भाव भी नाशवान हैं। आहाहा!

यह यहाँ केवल परमानन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय आत्मा (यह) वह आत्मा। सर्वज्ञ ने कहा वह। अज्ञानियों ने कहा आत्मा... आत्मा बातें करते हैं, वह नहीं। समझ में आया? और जिसे वीतराग परमानन्द स्वभाव की दृष्टि हुई, उसे किसी चीज़ में सुख भासित नहीं होता। इन्द्रिय के विषयभोग दुःख है, जहर है। आहाहा! समझ में आया? **उससे जुदे जो मन, वचन, काय के व्यापार...** देखो! आहाहा! मन में जो शुभ-अशुभभाव हैं, वे भी नाशवान हैं। आहाहा! विकार है। **मन, वचन, काय के व्यापार उनको आदि ले सभी कार्य-पदार्थ विनश्वर हैं।... सभी कार्य-पदार्थ विनश्वर हैं।** आहाहा! **इस संसार में देहादि समस्त सामग्री अविनाशी नहीं हैं,...** आहाहा! आगे तो कहेंगे बाद में, देव, अरिहन्त प्रतिमा, जिनमन्दिर आदि सब नाशवान है। बाद की गाथा में आयेगा, १३० में (आयेगा)। आहाहा! देव की प्रतिमा, देवालय, शास्त्र सब नाशवान हैं। काल के ईंधन में भस्म हो जायेंगे। आहाहा!

भगवान आत्मा वीतराग परमानन्दस्वभावस्वरूप प्रभु, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द पूरा-पूरा भरा है। आहाहा! उस आनन्द की दृष्टि के समक्ष पर्याय से, राग से लगाकर सब नाशवान है। समझ में आया? नाशवान की दृष्टि छोड़। अविनाशी परमात्मस्वरूप है न! योगीन्द्रदेव १३०० वर्ष पहले दिगम्बर मुनि हुए, उनका है यह। आहाहा! समझ में आया? **देहादि समस्त सामग्री अविनाशी नहीं है,...** आहाहा! **जैसा शुद्ध-बुद्ध परमात्मा अकृत्रिम है,...** देखो! भगवान आत्मा शुद्ध अर्थात् पवित्र और बुद्ध अर्थात् ज्ञानघन। वही अपना आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो पर्याय को भी निकाल दिया। पर्याय तो उसकी दृष्टि करती है। पर्याय में कार्य होता है परन्तु वह पर्याय विषय करती है त्रिकाली आनन्दकन्द को। यह तो वीतराग जिनेश्वरदेव परमात्मा का यह कथन है। लोगों को बेचारों को मिला नहीं। बाहर की बातों में। एक तो संसार के धन्धे के कारण निवृत्त नहीं होता, फुरसत नहीं मिलती, पाप पूरे दिन। निवृत्त हो तो, धर्म क्या चीज़ है, यह सुनने को नहीं मिलता। आहाहा! अरे! जिन्दगी चली जाती है।

शुद्ध-बुद्ध परमात्मा अकृत्रिम है,... है न? '**शुद्धात्मतत्त्वभावनारहितेन**'। पहले शुद्ध कहा न, शुद्ध। यह शुद्धात्मतत्त्वभावना। १२९ है न?

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम,
दूसरा कितना कहें, कर विचार तो पाम॥

अरे! ऐसी बातें। **शुद्ध-बुद्ध परमात्मा अकृत्रिम है,...** ध्रुव है, अविनाशी है। आहाहा! **ऐसा देहादि में से कोई भी नहीं है,...** देह, मन के विकल्प, विचार आदि कोई अविनाशी नहीं है। आहाहा! **सब क्षणभंगुर हैं।** भगवान अविनाशी है। कौन सा भगवान? यह आत्मा भगवान, हों! यह आगे सब मन के विकल्प, वाणी सम्बन्धी विकल्प, देह सम्बन्धी विकल्प सब विनश्वर है, नाशवान है। आहाहा!

शुद्धात्मतत्त्व की भावना से रहित... यहाँ आया। समझ में आया? **शुद्धात्मतत्त्व की भावना से रहित...** यह क्या कहते हैं? त्रिकाली वीतराग परमानन्दस्वरूप शुद्धात्मतत्त्व की ओर की सन्मुखता की एकाग्रता से रहित। आहाहा! अनादि अज्ञानी निजस्वरूप की सम्पदा के सन्मुख नहीं होकर। आहाहा! ऐसा मार्ग सूक्ष्म, इसलिए लोगों को... कहते

हैं, **शुद्धात्मतत्त्व की भावना से रहित...** भावना शब्द से एकाग्रता। शुद्धात्मा, वह द्रव्य और भावना, वह पर्याय। आहाहा! ऐसा मार्ग है। इस शुद्धात्मा की सन्मुखता की परिणति से रहित मिथ्यात्व, विषय-कषाय है, आहाहा! देह की क्रिया मैं कर सकता हूँ, देह मेरी चीज़ है, वाणी मेरी चीज़ है, पुत्र, पुत्री, स्त्री आदि मेरी चीज़ है, यह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? यहाँ तो एक समय की पर्याय भी मैं आत्मा हूँ, वह भी मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया?

मिथ्यात्व विषयकषाय हैं, उनसे आसक्त होके जीव ने जो कर्म उपार्जन किये हैं,... आहाहा! **उन कर्मों से जब यह जीव परभव में गमन करता है,...** कर्म निमित्त से लेना है न! भाव में बन्ध हुआ और बन्ध का.... चार गति में भटकता है अपनी योग्यता से। कर्म तो निमित्त है। समझ में आया? कर्म जड़ है। वह जड़ आत्मा को ले जाये, ऐसी चीज़ नहीं। जैसे भाव करके बन्ध हुआ, उसके उदय में भटकता है, ऐसा कहने में आया। है तो अपनी योग्यता। आहाहा! दूसरे द्रव्य से दूसरे द्रव्य में कुछ हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा! **जीव ने जो कर्म उपार्जन किये हैं, उन कर्मों से जब यह जीव परभव में गमन करता है, तब शरीर भी साथ नहीं जाता।** कर्म तो अजीव है। .... तो अजीव साथ में जाये। वह तो जड़ मिट्टी है। **तब शरीर भी साथ नहीं जाता।**

इसलिए इस लोक में इन देहादिक सबको विनश्वर जानकर देहादि की ममता छोड़ना चाहिए,... शरीर और शरीर सम्बन्ध यह विचार पुण्य-पाप के यह विनश्वर का विचार छोड़ दे, ममता छोड़ दे। **और सकल विभाव रहित निज शुद्धात्मा...** ऐसा क्यों कहा? भगवान केवली नहीं। तीर्थंकर का लक्ष्य होगा, तब तो राग होगा। निजशुद्धात्मा। आहाहा! समझ में आया? निज शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द ऐसी चीज़ में... आहाहा! **भावना करनी चाहिए।** शुद्ध निज आत्मपदार्थ की भावना—उसके सन्मुख होकर। आहाहा! ... ऐसी बातें हैं। समझ में आया? भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप प्रभु अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय वीतरागस्वरूप—चारित्रस्वरूप त्रिकाल, उसकी ओर दृष्टि करके उसमें एकाग्र होना चाहिए। इसका नाम धर्म है। समझ में आया? व्रत, तप, भक्ति और पूजा, वह तो सब विकल्प, राग है, नाशवान है। समझ में आया? अविनाशी भगवान आत्मा, वह सकल विभावरहित निज शुद्धात्मपदार्थ की

भावना करनी चाहिए। भावना शब्द से चिन्तवन करना, ऐसा नहीं। ज्ञायक एकस्वभावरूप भाव की भावना, वह पर्याय है।

मुमुक्षु : भावना भाते....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह परन्तु यह भावना। भाषा बोले, वह नहीं। श्रीमद् में आता है। वह तो भक्ति करते हुए अपने बोलते हैं, भक्ति करने से प्राप्त होगा, ऐसा वे लोग मानते हैं। डॉक्टर गुजर गये बेचारे, नहीं? ... दिवाली में आयेंगे। ... पर की भक्ति से आत्मा को कल्याण हो, यह तीन काल में नहीं है। हें!

मुमुक्षु : भक्तिपूर्वक भावना भावे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव। सिद्धान्त तो ऐसा कहता है, अष्टपाहुड़ में, '**परदव्वादो दुग्गइ**'। अपने निजद्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो दुर्गति होगी। दुर्गति अर्थात् वह चैतन्य की परिणति नहीं, राग है। सूक्ष्म बात बहुत, बापू! लोगों को व्यवहार के रसिया को यह निश्चय बैठना कठिन है। भगवान की भक्ति... अरे! समवसरण में अनन्त बार गया। महाविदेहक्षेत्र में भगवान विराजते हैं, वहाँ भी अनन्त बार जन्म लिया और अनन्त बार समवसरण में गया। हीरा के थाल और कल्पवृक्ष के फूल तथा मणिरत्न के दीपक (लेकर), जय भगवान, अनन्त बार पूजा की। वह तो शुभभाव है, धर्म नहीं। आहाहा! यह आगे आ गया, भवे भवे पूजियो। यह परमात्मप्रकाश। ऐसे अनन्त भव हुए, अनन्त बार भगवान को पूजा समवसरण में जाकर। परन्तु आत्मा निज आत्मा क्या है, उसकी दृष्टि नहीं की। सूक्ष्म बात है, बापू! लोगों को अभी कठिन पड़ता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व। अपनी दृष्टि नहीं की वह। 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया।' कहो, सेठ! दान भी करोड़ों, अरबों के किये, उसमें क्या है? राग मन्द हो तो पुण्य बाँधे, पुण्य हो। दान तो अपना दान, सम्प्रदान। आत्मा में सम्प्रदान नाम का गुण अनादि का है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण—ऐसी छह शक्तियाँ—गुण अनादि-अनन्त हैं। उसमें दृष्टि देने से अपने को आनन्द आता है। आनन्द

देनेवाला भी आत्मा और लेनेवाला भी आत्मा। इसका नाम सच्चा दान है। आहाहा! समझ में आया? यह पैसा-बैसा खर्च करे और वे चढ़ा दे सब। ओहो! तुमने तो बहुत किया। जिनमन्दिर बनाया और अमुक किया और ऐसा किया और वैसा किया। पर को कौन करे? वे तो परपदार्थ हैं। उनकी अवस्था होना, वह दूसरे के आधीन है? समझ में आया? वे परपदार्थ मन्दिर हुए, वह उसका निजक्षण है, जन्मक्षण है। उत्पत्ति के काल में उत्पत्ति होती है। पर से होती है, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? १०२ गाथा में कहा है भगवान ने, प्रवचनसार। निजक्षण। काल है, वह पर्याय उत्पत्ति का काल है, इसलिए उत्पन्न होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : काल हो वहाँ दूसरे चार समवाय होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ ही होता है पुरुषार्थ। नियत पुरुषार्थ का निश्चय किया इसलिए उसमें पाँचों समवाय साथ ही होते हैं। उस समय में नियत पर्याय, उस समय में पुरुषार्थ हुआ स्वभाव सन्मुख, स्वभाव हुआ, कर्म के निमित्त का भी उतना अभाव है, काल उस समय में पका, वह पर्याय प्रगट हुई और भवितव्यता का भाव है। एक समय में पाँचों समवाय हैं। समझ में आया?

निज शुद्धात्म पदार्थ की भावना करनी चाहिए। आहाहा!

गाथा - १३०

अथ तपोधनं प्रत्यध्रुवानुप्रेक्षां प्रतिपादयति–

२५३) देउलु देउ वि सत्थु गुरु तित्थु वि वेउ वि कव्वु।
वच्छु जु दीसइ कुसुमियउ इंधणु होसइ सव्वु।।१३०।।

देवकुलं देवोडपि शास्त्रं गुरुः तीर्थमपि वेदोडपि काव्यम्।
वृक्षः यद् दृश्यते कुसुमितं इन्धनं भविष्यति सर्वम्।।१३०।।

देउलु इत्यादि। पदखण्डनारुपेण व्याख्यानं क्रियते। देउलु निर्दोषिपरमात्मस्थापना–प्रतिमाया रक्षणार्थं देवकुलं मिथ्यात्वदेवकुलं वा, देउ वि तस्यैव परमात्मनोडनन्तज्ञानादि–गुणस्मरणार्थं धर्मप्रभावनार्थं वा प्रतिमास्थापनारुपो देवो रागादिपरिणतदेवताप्रतिमारुपो वा, सत्थु वीतरागनिर्विकल्पात्मतत्त्वप्रभृतिपदार्थप्रतिपादकं शास्त्रं मिथ्याशास्त्रं वा, गुरु लोकालोक–प्रकाशककेवलज्ञानादिगुणसमृद्धस्य परमात्मनः प्रच्छादको मिथ्यात्वरागादिपरिणतिरुपो महाडज्ञानान्धकारदर्पः तद्व्यापियद्वचनदिनकरकिरणविदारितः सन् क्षणमात्रेण च विलयं गतः स जिनदीक्षादायकः श्रीगुरुः तद्विपरीतो मिथ्यागुरुर्वा, तित्थु वि संसारतरणोपायभूतनिजशुद्धात्म–तत्त्वभावनारुपनिश्चयतीर्थं तत्स्वरुपरतः परमतपोधनानां आवासभूतं तीर्थकदम्बकमपि मिथ्यातीर्थसमूहो वा, वेउ वि निर्दोषिपरमात्मोपदिष्टवेदशब्दवाच्यः सिद्धान्तोडपि परकल्पितवेदो वा कव्वु शुद्धजीवपदार्थादीनां गधपधाकारेण वर्णकं काव्यं लोकप्रसिद्धविचित्रकथाकाव्यं वा, वच्छु परमात्मभावनारहितेन जीवेन यदुपार्जितं वनस्पतिनामकर्म तदुदयजनितंवृक्षकदम्बकं जो दीसइ कुसुमियउ यद् दृश्यते कुसुमितं पुष्पितं इंधणु होसइ सव्वु तत्सर्वं कालाग्नेरिन्धनं भविष्यति विनाशं यास्तीत्यर्थः। अत्र तथा तावत् पञ्चेन्द्रियविषये मोहो न कर्तव्यः प्राथमिकानां यानि धर्मतीर्थवर्तनादिनिमित्तानि देवकुलप्रतिमादीनि तत्रापि शुद्धात्मभावना काले मोहो न कर्तव्येति संबंधः।।१३०।।

आगे मुनिराजों को देवल आदि सभी सामग्री अनित्य दिखलाते हुए अध्रुवानुप्रेक्षा को कहते हैं–

देव तीर्थ देवालय अथवा शास्त्र गुरु या वेद सभी।
काव्य, पुष्पभूषित तरुवर भी क्षण में ईधन बने सभी।।१३०।।

अन्वयार्थ :- [देवकुलं] अरहंतदेव की प्रतिमा का स्थान जिनालय [देवोडपि] श्रीजिनेंद्रदेव [शास्त्रं] जेनशास्त्र [गुरुः] दीक्षा देनेवाले गुरु [तीर्थमपि] संसार-सागर से तैरने के कारण परमतपस्वियों के स्थान सम्मेदशिखर आदि [वेदोडपि] द्वादशांगरुप सिद्धांत [काव्यम्] गध-पधरुप रचना इत्यादि [यद् दृश्यते कुसुमितं] जो वस्तु अच्छी या बुरी दिखने में आती हैं, वे [सर्वम्] सब [इंधनं] कालरुपी अग्नि का ईंधन [भविष्यति] हो जावेगी।

भावार्थ :- निर्दोषि परमात्मा श्रीअरहंतदेव उनको प्रतिमा के पधराने के लिये जो गृहस्थों ने देवालय [जैनमंदिर] बनाया है, वह विनाशीक हैं, अनंत ज्ञानादिगुणरुप श्रीजिनेन्द्रदेव की प्रतिमा धर्म की प्रभावना के अर्थ भव्यजीवों ने देवालय में स्थापन की है, उसे देव कहते हैं, वह भी विनश्वर है। यह तो जिनमंदिर और जिनप्रतिमा का निरुपण किया, इसके सिवाय अन्य देवों के मंदिर और अन्यदेव की प्रतिमायें सब ही विनश्वर हैं, वीतराग-निर्विकल्प जो आत्मतत्त्व उसको आदि ले जीव अजीवादि सकल पदार्थ उनका निरुपण करनेवाला जो जैनशास्त्र वह भी यधपि अनादि प्रवृत्ति की अपेक्षा नित्य है, तो भी वक्ता-श्रोता पुस्तकादिक की अपेक्षा विनश्वर ही है, और जैन सिवाय जो सांख्य पातंजल आदि परशास्त्र हैं, वे भी विनाशीक हैं। जिनदीक्षा के देनेवाले लोकालोक के प्रकाशक केवलज्ञानादि गुणोंकर पूर्ण परमरात्मा के रोकनेवाला जो मिथ्यात्व रागादि परिणत महा अज्ञानरुप अंधकार उसके दूर करने के लिए सूर्य के समान जिनके वचनरुपी किरणों से मोहांधकार दूर हो गया है, ऐसे महामुनि गुरु हैं, वे भी विनश्वर हैं, और उसके आचरण से विपरीत जो अज्ञान तापस मिथ्यागुरु वे भी क्षणभंगुर हैं। संसार-समुद्र के तरने का कारण जो निज शुद्धात्मतत्त्व उसकी भावनारुप जो निश्चयतीर्थ उसमें लीन परमतपोधन का निवासस्थान, सम्मेदशिखर, गिरनार आदि तीर्थ वे भी विनश्वर हैं, और जिनतीर्थ के सिवाय जो पर यतियों का निवास वे परतीर्थ वे भी विनाशीक हैं। निर्दोष परमात्मा जो सर्वज्ञ वीतरागदेव उनकर उपदेश किया गया जो द्वादशांग सिद्धांत वह वेद है, वह यधपि सदा सनातन है, तो भी क्षेत्र की अपेक्षा विनश्वर है, किसी समय है, किसी क्षेत्र में पाया जाता है, किसी समय नहीं पाया जाता, भरतक्षेत्र ऐरावत क्षेत्र में कभी प्रगट हो जाता है, कभी विलय हो जाता है, और महाविदेहक्षेत्र में यधपि प्रवाहकर सदा शाश्वता है, तो भी वक्ता श्रोताव्याख्यान की अपेक्षा विनश्वर है, वे ही

वक्ता-श्रोता हमेशा नहीं पाये जाते, इसलिए विनश्वर है, और पर मतियोंकर कहा गया जो हिंसारुप वेद वह भी विनश्वर है। शुद्ध जीवादि पदार्थों का वर्णन करनेवाली संस्कृत प्राकृत छटारुप गध व छंदबंधरुप पध उस स्वरुप और जिसमें विचित्र कथायें हैं, ऐसे सुन्दर काव्य कहे जाते हैं, वे भी विनश्वर हैं। इत्यादि जो जो वस्तु सुन्दर और खोटे कवियोंकर प्रकाशित खोटे काव्य भी विनश्वर हैं। इत्यादि जो जो वस्तु सुन्दर और असुन्दर दिखती हैं, वे सब कालरुपी अग्नि का ईंधन हो जावेंगी। तात्पर्य यह है, कि सब भस्म हो जावेंगी, और परमात्मा की भावना से रहित जो जीव उसने उपार्जन किया जो वनस्पतिनामकर्म उसके उदय से वृक्ष हुआ, सो वृक्षों के समूह जो फूले-फाले दिखते हैं, वे सब ईंधन हो जावेंगे। संसार का सब ठाठ क्षणभंगुर है, ऐसा जानकर पंचेंद्रियों के विषयों में मोह नहीं करना, विषय का राग सर्वथा त्यागना योग्य है। प्रथम अवस्था में यधपि धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति का निमित्त जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म तथा जेनधर्मी इनमें प्रेम करना योग्य है, तो भी शुद्धात्मा की भावना के समय वह धर्मानुराग भी नीचे दरजे का गिना जाता है, वहाँ पर केवल वीतरागभाव ही है।।१३०।।

गाथा-१३० पर प्रवचन

आगे मुनिराजों को देवल आदि सभी सामग्री अनित्य दिखलाते हुए अध्रुवानुप्रेक्षा को कहते हैं—

२५३) देउलु देउ वि सत्थु गुरु तित्थु वि वेउ वि कव्वु।
वच्छु जु दीसइ कुसुमियउ इंधणु होसइ सव्वु।।१३०।।

अन्वयार्थ—अरहन्तदेव की प्रतिमा का स्थान जिनालय... वह नाशवान है। आहाहा! है? देखो! **जिनेन्द्रदेव...** समवसरण आदि। **जैनशास्त्र...** नाशवान है। आहाहा! शास्त्र के पृष्ठ हैं, वे तो नाशवान हैं। **दीक्षा देनेवाले गुरु...** नाशवान हैं। आहाहा! **संसार-सागर से तैरने के कारण परमतपस्वियों के स्थान सम्मेदशिखर...** नाशवान है। आहाहा! लो, समझ में आया? स्तवन में तो ऐसा आता है, 'एक बार वन्दे जो कोई, नरक-पशु न होई', ऐसा आता है। उसमें क्या? एक बार ऐसे भाव हों तो नरक, पशु में न जाये,

स्वर्ग में जाये। बाद में जायेगा। आहाहा! नाशवान पदार्थ की दृष्टि है, वह तो कृत्रिम दृष्टि है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू!

यहाँ तो परमात्मा योगीन्द्रदेव सन्त कहते हैं, वह केवली की ही बात कहते हैं। मुनिराजों को कहते हैं अथवा समकिती को कहते हैं, हे जीव! शास्त्र नाशवान, देव नाशवान, गुरु नाशवान... आहाहा! तीर्थ नाशवान। वेद... वेद—द्वादशांग का सिद्धान्त नाशवान है। **गद्य-पद्यरूप रचना इत्यादि...** काव्य। काव्य नाशवान। आहाहा! वस्तु **'कुसुमितं'। जो वस्तु अच्छी या बुरी दिखने में आती हैं, वे सब कालरूपी अग्नि का ईंधन हो जायेगी।** आहाहा! अविनाशी तो तेरी चीज़ है, वहाँ दृष्टि कर। देव, देवालय नाशवान है, ऐसा कहते हैं। शत्रुंजय और सम्मेदशिखर। आहाहा! अविनाशी भगवान एक आत्मा है। ध्रुव को ध्येय में लिये बिना कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? यह बताते हैं। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति और देव-गुरु-शास्त्र का विनय, वह तो सब राग है। होता है, अशुभ से बचने को शुभ आता है। शुभ व्यवहार आता है। ज्ञानी को भी व्यवहार आता है, परन्तु हेयबुद्धि से आता है।

मुमुक्षु : आता है या लाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है। बीच में राग आता है। जब तक पूर्ण वीतराग न हो, आत्मा का आश्रय लिया है सम्यग्दृष्टि ने, परन्तु जब तक अन्दर आश्रय पूर्ण नहीं हुआ, तब तक व्यवहार बीच में आता है। राग—भक्ति, पूजा भाव आये बिना रहता नहीं, परन्तु हैं वे बन्ध के कारण। ऐसी बातें हैं, भाई!

मुमुक्षु : परम्परा मोक्ष का कारण है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा का अर्थ बाद में राग छोड़ देगा, इसलिए परम्परा। ऐसा। राग के कारण से नहीं। राग वीतरागता का कारण होगा? बाद में राग छोड़ेगा। जिसकी दृष्टि में वीतरागस्वरूप आत्मा आया। उसे पर के आश्रय से राग तो हुआ परन्तु वह जानता है कि यह चीज़ मेरी नहीं। मुझे लाभदायक नहीं। तो आगे बढ़कर राग को छोड़कर वीतराग हो जायेगा। आहाहा! भाई! बातें ऐसी।

मुमुक्षु : परम्परा साधक तो कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस अपेक्षा से कहा न, इस अपेक्षा से। सम्यग्दृष्टि को। मिथ्यादृष्टि को नहीं। क्योंकि सम्यग्दृष्टि ने आत्मा का साधकपना प्रगट किया है। उसे राग है, फिर छोड़ देगा। इस अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि का राग परम्परा कारण कहा। मिथ्यादृष्टि में तो राग अनन्त बार किया, नौवें ग्रैवेयक (गया)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आहाहा! अनन्त बार अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये। नौवें ग्रैवेयक के अनन्त पुद्गल (परावर्तन) द्रव्यलिंग धारण किये। पंच महाव्रत चुस्त, हों! उसके लिये चौका करके ले, प्राण जाये तो भी न ले।—ऐसे जिसके चुस्त व्यवहार। शुक्ललेश्या। शुक्लध्यान अलग चीज़ है, शुक्ललेश्या अलग चीज़ है। शुक्ललेश्या तो अभव्य को भी होती है। आहाहा! नौवें ग्रैवेयक में गया तो उसे ... शुभभाव। शरीर के खण्ड-खण्ड करे तो क्रोध न करे, ऐसी व्यवहार से क्षमा होती है। निश्चय वस्तु का भान नहीं। भगवान आत्मा विकल्परहित निर्विकल्प की दृष्टि नहीं। 'निज आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ? मुनिव्रत धारण किया पंच महाव्रत, वह दुःखरूप है, राग है। राग है न? सम्यग्दृष्टि—ज्ञानी को चौथे गुणस्थान में पंच महाव्रत का विकल्प आता है। परन्तु वह जानता है कि दुःख है। मेरे पुरुषार्थ की कमी है, इसलिए आता है। वह कहीं मोक्ष का कारण है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा कठिन मार्ग, भाई! समझ में आया?

समयसार नाटक में कहा है न भाई! प्रमाद भाव का विकल्प आवे, वह जगपंथ है। जगपंथ। समयसार नाटक में है। है इसमें? मोक्षद्वार। ४० है न? ४० है। **इसीलिए प्रमाद संसार का कारण है।** राग संसार। '**ता कारन जगपंथ इत**' राग जो प्रमाद आया पंचमहाव्रत का विकल्प, वह जगपंथ है। '**उत सिव मारग जोर।**' भगवान आत्मानन्दस्वरूप की एकाग्रता, वह मोक्षमार्ग का जोर। '**परमादी जगकौं धुकै, अपरमादि सिव ओर।**' आहाहा!

मुनि सच्चे भावलिंगी आत्मा के आनन्द के प्रचुर वेदन में हैं। मुनि के अनुभव की मोहरछाप। पाँचवीं गाथा में है, समयसार। सच्चे मुनि के अनुभव की मोहरछाप क्या? कि आनन्द की मोहरछाप है। अतीन्द्रिय आनन्द के झरना झरते हैं। पोस्ट में लगाते हैं न छाप। मोहरछाप। होती है न? इसी प्रकार भगवान कहते हैं, पाँचवीं गाथा में समयसार

में कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, कि मैं निज वैभव से कहूँगा, समयसार मैं निज वैभव से कहूँगा। मेरा निज वैभव क्या है? प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द का, वह मेरा निज वैभव है। आहाहा! महाव्रत के परिणाम, वह मेरा निज वैभव नहीं। लिखते हैं, टीका करने का विकल्प उठता है, वह भी मेरा निज वैभव नहीं, मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! प्रचुर स्वसंवेदन। छठवाँ गुणस्थान है न। चौथे गुणस्थान में हैं, उन्हें आनन्द का वेदन है, परन्तु प्रचुर नहीं। मुनि को प्रचुर स्वसंवेदन है। आनन्द की मोहरछाप पड़ी है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द की। आहाहा! उन्हें मुनि कहते हैं। वे मुनि कहते हैं, मेरे निजवैभव से समयसार कहूँगा। आहाहा! भारी सूक्ष्म, बापू! लोगों को बाहर की विपरीतता इतनी घुस गयी है न, और उपदेशक भी ऐसे मिले। 'द्रव्यक्रिया रुचि जीवडा, भावधर्म रुचिहीन, उपदेशक भी वैसे ही, क्या करे जीव नवीन?' उपदेश भी ऐसा मिले, तुम व्रत, तप और अपवास करो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। कल्याण होगा। यहाँ तो कहते हैं, मुनि सच्चे पंथ—आत्मपंथ में स्थित हैं आनन्द में। उन्हें भी महाव्रत का विकल्प उठता है, वह जगपंथ है। मिथ्यादृष्टि की तो क्या बात करना?

'**परमादि जगकौं धुकै**' है न? '**प्रमाद संसार का कारण है और अनुभव मोक्ष का कारण है।** आहाहा!

अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप,
अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।

समझ में आया? अनुभव मार्ग मोक्ष का। आत्मा का अनुभव आनन्द, वह रत्नचिन्तामणि। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सम्प्रदाय में तो एक बार इस अनुभव का प्रश्न उठा। (संवत्) १९८० के वर्ष। अपने कहीं हो अनुभव? कुछ खबर नहीं होती। .... २० और ३३ = ५३ वर्ष हुए। ... के पिता थे, उन्होंने वहाँ प्रश्न किया था। उसे खबर नहीं... वहाँ आये थे, बोटाद आये थे। महाराज! यह द्रव्यकर्म और भावकर्म क्या है? द्रव्यकर्म-भावकर्म आत्मा में है? ... बहुत वर्ष की बात है। आहाहा! कर्म—द्रव्यकर्म-भावकर्म आत्मा में है? कुछ खबर नहीं होती। मगनभाई ने प्रश्न किया था। आहाहा! ... यह तो एक बार ख्याल आ गया तो दिमाग अन्दर रह जाये बात। आहाहा!

भाई! द्रव्यकर्म अर्थात् परमाणु जड़, वह द्रव्यकर्म और पुण्य और पाप के भाव हों, वह भावकर्म। वह भावकर्म अरूपी है और द्रव्यकर्म वह रूपी-जड़ है। आहाहा! दोनों से भगवान भिन्न है। क्योंकि भावकर्म है, वह आस्रव है। जड़कर्म है, वह अजीव है। तो अजीव और आस्रव से भगवान ज्ञायकभाव भिन्न है। आहाहा! नहीं तो... हो जाता है। आहाहा!

जो परमादी आलसी, जिन्हकैं विकलप भूरी।
होई शिथल अनुभौविषै, तिन्हकौं सिवपथ दूरि॥ ४१॥

जो राग में आता है, व्यवहार की क्रिया दया, दान, व्रतादि, वह **परमादी आलसी, जिन्हकैं विकलप भूरी।'** जिन्हें बारम्बार विकल्प उठता है। **होई शिथिल अनुभौविषै।** आहाहा! अन्तर के अनुभव में वह शिथिल-प्रमादी है। **तिन्हकौं सिवपथ दूरि।** उन्हें मोक्षपंथ दूर है। आहाहा! समयसार नाटक, बनारसीदास।

यहाँ कहते हैं बारह अंग, शास्त्र, काव्य... काव्य... काव्य है न? भव्यसागर साधु है दिगम्बर। कर्नाटक में। आशुकवि, शीघ्र कवि। हमारे पास दस पत्र आये हैं, दस पत्र। अठारह वर्ष की दीक्षा। आशुकवि। यह वाँचकर कहा, अरे! महाराज! अरे! स्वामी! क्या किया? ओहो! लाखों के उद्धार का मार्ग है। आप कहते हो तत्प्रमाण तो हम साधु नहीं, यति नहीं, मुनि नहीं। आशुकवि है। अभी कविता आयी थी बाहर। किसमें आयी है? सन्मति सन्देश।... सन्मति सन्देश में आयी थी। अठारह वर्ष की दीक्षा है, दिगम्बर मुनि। शीघ्र कवि है। यहाँ का वांचन हुआ वहाँ मन्दिर में... ओहो! यह मार्ग कोई अलग है, यथार्थ है। उन्होंने तो यहाँ तक समाचार पत्र में कहा, २०० वर्ष में ऐसा मार्ग नहीं था, आपने निकाला है। ... आहाहा! बापू! मध्यस्थ से ...भाई! वास्तविक तत्त्व बहुत निराला है।

सम्यग्दर्शन का विषय भगवान अविनाशी ... अमूर्तिक वीतरागी आनन्दस्वभावरूप एकरूप प्रभु, वह दृष्टि अन्दर हुए बिना कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! भूतार्थ **'भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो'** ११वीं गाथा, समयसार। **'ववहारोऽभूदत्थो'** पर्यायमात्र असत्य है। गौण करके असत्य है, हों पर्याय। पर्याय है। वेदान्त की तरह नहीं

कि पर्याय है ही नहीं। पर्याय है, परन्तु उसे गौण करके '**ववहारोऽभूदत्थो**' पर्यायमात्र अभूतार्थ-असत्यार्थ है। गौण करके, अभाव करके नहीं। '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' वीतराग परमानन्द भूतार्थ त्रिकाल, वह शुद्धनय है। वह शुद्धनय का विषय ... '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भूतार्थ सत्यार्थ भगवान त्रिकाल ध्रुव, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' ११वीं गाथा जैनदर्शन का प्राण है। समयसार। आहाहा! भाई ने लिखा है, कैलाशचन्द्रजी ने। मैंने कहा था, ११वीं गाथा जैनदर्शन के प्राण हैं। जैनदर्शन, वही धर्म है, दूसरा धर्म है ही नहीं कहीं। समझ में आया? वस्तु का जैसा स्वरूप है, वैसा जाना, वैसा कहा। आहाहा!

कहा न? व्यवहार अभूतार्थ है। ११वीं गाथा। व्यवहार के चार बोल लिये। एक तो राग जो आता है शुभ आदि, तो राग ज्ञात होता है, उतना असद्भूत उपचार कहा गया है। और उसी समय उपयोग अल्पज्ञ है, विशेष नहीं तो राग ख्याल में नहीं आता, उसे असद्भूत अनुपचार कहते हैं। दो नय, वह निषेध है। और आत्मा राग को जानता है, यह भी सद्भूत उपचार है, इसका भी निषेध है। व्यवहार अभूतार्थ, चारों ही नय असत्यार्थ हैं। असत्यार्थ का अर्थ गौण करके, हों! ११वीं गाथा में आया। और ज्ञान, वह आत्मा—ऐसा अनुपचार सद्भूत, वह भी भेद है। निषेध है। कठिन बात। आहाहा! ...चौरासी के अवतार के छूटने का उपाय... समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, यह सब देव-गुरु-शास्त्र आदि... आहाहा! वह कालरूपी अग्नि का ईंधन। उसका काल नाश होने का आवे, तब नाश हो जायेंगे।

भावार्थ—निर्दोष परमात्मा श्री अरहन्तदेव... अरहन्तदेव शब्द है। निर्दोष परमात्मा अरहन्तदेव **उनकी प्रतिमा के पधारने के लिये जो गृहस्थों ने देवालय बनाया है,...** देखो! मन्दिर है, प्रतिमा है, यह सिद्ध करते हैं। मुनिराज। है, अनादि के मन्दिर हैं, नये नहीं। भगवान के शाश्वत् मन्दिर हैं। आहाहा! अकृत्रिम जिनालय शाश्वत् प्रतिमा जिनेश्वर की। (नन्दीश्वर) बावन जिनालय। एक-एक जिनालय में १०८ प्रतिमायें रत्न की शाश्वत् है। यह कहते हैं, देखो! **निर्दोष परमात्मा श्री अरहन्तदेव उनकी प्रतिमा को पधारने के लिये...** यह कृत्रिम की बात की। **गृहस्थों ने देवालय बनाया है, वह विनाशीक हैं,...** आहाहा!

अनन्त ज्ञानादिगुणरूप श्री जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा... रक्षणार्थं शब्द पड़ा रहा है। है न? ... यह शब्द पड़ा रहा है। अनन्त ज्ञानादि गुण स्मरणरूप श्री जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा। आहाहा! अनन्त ज्ञानादि गुण स्मरणरूप। यह यात्रा करने जाते हैं, वहाँ हेतु क्या है? ... (संवत्) २०१३ के वर्ष मुम्बई गये न मुम्बई। यात्रा का अर्थ ऐसा नहीं कि वहाँ भगवान और कोई मिल जायेंगे। परन्तु जिस स्थान से भगवान मुक्ति पधारे हैं, वहाँ से सीधे.... समश्रेणी से गये हैं। तो वहाँ जाकर भगवान का स्मरण करने के लिये यात्रा है। शुभभाव है। ... बापू! ... उसका निषेध कर डालो कि होती ही नहीं, ऐसा नहीं है। जहाँ भगवान... यहाँ पालीताणा लो न, तीन पाण्डव मोक्ष पधारे सीधे समश्रेणी से। तो वहाँ जाकर स्मरण करना कि यहाँ भगवान ऊपर विराजते हैं। यह स्मरण के लिये यात्रा है। कहा न?

ज्ञानादि गुण स्मरणरूप, ऐसा चाहिए। स्मरण शब्द है पाठ में। **श्री जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा धर्म की प्रभावना के अर्थ भव्यजीवों ने देवालय में स्थापन की है,...** आहाहा! समझ में आया? **उसे देव कहते हैं,...** उसे देव कहते हैं, हों! आहाहा! **वह भी विनश्वर है। यह तो जिनमन्दिर और जिनप्रतिमा का निरूपण किया, इसके सिवाय अन्य देवों के मन्दिर और अन्य देव की प्रतिमायें सब ही विनश्वर हैं,...** आहाहा! अब शास्त्र भी नाशवान है, ऐसा कहते हैं।

वीतराग निर्विकल्प जो आत्मतत्त्व उसको आदि ले जीव-अजीवादि सकल पदार्थ उनका निरूपण करनेवाला... अब क्या कहते हैं? गम्भीर बात है। जिन शास्त्र की वाणी जो है, वह कैसी है? वीतराग निर्विकल्प आत्मतत्त्व। आत्मा को जैनशास्त्र ऐसा बताते हैं। आहाहा! जैनशास्त्र ऐसा बताते हैं कि वीतराग निर्विकल्प जो आत्मतत्त्व, उसे ... कहते हैं। आहाहा! निमित्त। भाव करता है तो उसे निमित्त कहने में आता है। सूक्ष्म बात, भाई! अपनी पर्याय में वह भाव उत्पन्न होता है, तब भगवान की प्रतिमा जिनालय को निमित्त कहा जाता है। उससे होते नहीं। वीतराग निर्विकल्प आत्मतत्त्व। ओहो! है न? ... '**वीतरागनिर्विकल्पात्मतत्त्व-प्रभृतिपदार्थप्रतिपादकं**' संस्कृत में है पहले शुरुआत में। जैनशास्त्र उसे कहते हैं कि जिसमें आत्मा निर्विकल्प वीतराग बतलाया हो, वह जैनशास्त्र। आहाहा! ऐ... आहाहा! एक तो जैनशास्त्र में मुख्य वस्तु

क्या है, वह बताते हैं। वह जैनशास्त्र। जिस जैनशास्त्र में आत्मा को रागवाला, पुण्यवाला और पापवाला बताते हैं, वह नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वीतराग निर्विकल्प जो आत्मतत्त्व उसको आदि ले जीव-अजीवादि सकल पदार्थ उनका निरूपण करनेवाला जो जैनशास्त्र... आहाहा! **वह भी यद्यपि अनादि प्रवृत्ति की अपेक्षा नित्य है, तो भी वक्ता-श्रोता पुस्तकादिक की अपेक्षा विनश्वर ही है,...** शास्त्र तो अनादि के हैं, परन्तु वक्ता-श्रोता की अपेक्षा से नये बने हैं, इस अपेक्षा से अनित्य हैं। आहाहा! क्या कहते हैं? वक्ता की अपेक्षा से, श्रोता की अपेक्षा से, पुस्तक बनाने की अपेक्षा से शास्त्र विनश्वर है। आहाहा! **और जैन सिवाय जो सांख्य पातंजल आदि परशास्त्र हैं, वे भी विनाशीक हैं।** आहाहा! अविनाशी वीतराग परमात्मस्वरूप भगवान की दृष्टि करने के लिये, सब नाशवान है, उनकी दृष्टि छोड़ दे। आहाहा! जिनबिम्ब के दर्शन से निद्धत कर्म छूट जाते हैं, ऐसा धवल में पाठ है। जिनबिम्ब, वह विचार में निमित्त है। अन्दर जिनबिम्ब आत्मा है। समझ में आया? जिनबिम्ब तो अनन्त बार देखे, पूजा की। स्वर्ग में अनन्त बार गया तो वहाँ मन्दिर शाश्वत् हैं। शाश्वत् मन्दिर की प्रतिमा पूजा अनन्त बार की। परन्तु वह जिनबिम्ब जैसा है, वैसा मैं जिनबिम्ब हूँ, मैं वीतरागी मूर्ति हूँ—ऐसा अन्तर में ध्यान हुआ, उससे निकाचित कर्म छूट जाते हैं। निद्धत और निकाचित कर्म भी छूट जाते हैं। आहाहा!

... देखो यह। बापू! जिनबिम्ब के दर्शन तो अन्दर है। जिनबिम्ब भगवान, जिनबिम्ब आत्मा। 'जिन सो ही आत्मा, अन्या सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा! ऐसी कठिन बातें, भाई! यात्रा करने गये, इसलिए धर्म हो जायेगा। नहीं, नहीं। सुन। पुण्य है, पुण्यभाव है, बन्धतत्त्व है। आत्मतत्त्व को लाभ हो, (वैसा) वह धर्म नहीं। आहाहा! बात ऐसी है, बापू! ... एक ने उड़ा दी स्थानकवासी ने प्रतिमा (उड़ा दी), तब एक ने उसकी—प्रतिमा की पूजा से मुक्ति है, ऐसा करके स्थापित किया। ऐसा कहा न? आहाहा!

शास्त्र, वैसे तो शास्त्र अनादि-अनन्त हैं। सिद्धोवर्ण समाम्नाय—आता है न, मोक्षमार्गप्रकाशक (में आता है)? वहाँ क्या कहा है? यह हमको पहले विद्यालय में सिखाते थे। धूली शाला में, धूली शाला में। ७५ वर्ष पहले की बातें हैं। सिद्धो वर्ण

समाम्नाय। ऐसा ... प्रथम सूत्र है। उसमें है न अपने, मोक्षमार्गप्रकाशक में। वर्ण की आम्नाय सिद्ध—अनादि की है। मोक्षमार्गप्रकाशक। सिद्धो वर्ण समाम्नाय। शब्द की आम्नाय अनादि की है। परन्तु एक व्यक्ति कहनेवाला और सुननेवाले की अपेक्षा से आदि है। समझ में आया? उस अपेक्षा से अनादि कहा, देखा! **अनादि प्रवृत्ति की अपेक्षा नित्य है, तो भी वक्ता-श्रोता पुस्तकादिक की अपेक्षा विनश्वर ही है,...** आहाहा!

जिनदीक्षा के देनेवाले लोकालोक के प्रकाशक केवलज्ञानादि गुणोंकर पूर्ण परमात्मा के रोकनेवाला जो मिथ्यात्व... जिनदीक्षा... **लोकालोक के प्रकाशक केवलज्ञानादि गुणोंकर पूर्ण परमात्मा के रोकनेवाला जो मिथ्यात्व रागादि परिणत महा अज्ञानरूप अन्धकार उसके दूर करने के लिये सूर्य के समान जिनके वचनरूपी किरणों से मोहान्धकार दूर हो गया है, ऐसे महामुनि...** जिनदीक्षा के देनेवाले। इतनी बात। **लोकालोक के प्रकाशक केवलज्ञानादि गुणोंकर पूर्ण परमात्मा के रोकनेवाला जो मिथ्यात्व रागादि परिणत महा अज्ञानरूप अन्धकार, उसके दूर करने के लिये सूर्य के समान...** आहाहा! **जिनके वचनरूपी किरणों से मोहान्धकार दूर हो गया है, ऐसे महामुनि गुरु हैं, वे भी विनश्वर हैं,...** समझ में आया? **और उसके आचरण से विपरीत जो अज्ञान तापस...** बाद में तीर्थ का डालते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, माघ शुक्ल २, शुक्रवार
दिनांक- २१-०१-१९७७, गाथा - १३०, १३१, प्रवचन-१९२

... **जिनदीक्षा के देनेवाले लोकालोक के प्रकाशक केवलज्ञानादि गुणोंकर पूर्ण परमात्मा के रोकनेवाले जो मिथ्यात्व रागादि परिणति महा अज्ञानरूप अन्धकार उसके दूर करने के लिये सूर्य के समान जिनके वचनरूपी किरणों से मोहान्धकार दूर हो गया है,...** आहाहा! एक तो मुनि के वचन ऐसे होते हैं कि जिससे मोह का नाश होता है। इसका अर्थ—मुनि के वचन ऐसे होते हैं कि मोह का अभाव करे, ऐसी प्ररूपणा होती है। समझ में आया? स्व का आश्रय करावे और पर का त्याग करावे, ऐसे मुनि के वचन, सिद्धान्त ऐसे होते हैं। आहाहा! **मोहान्धकार दूर हो गया है, ऐसे महामुनि गुरु हैं, वे भी विनश्वर हैं,...** आहाहा! हें! नाशवान है। अविनाशी तो भगवान आत्मा सहजात्म नित्यानन्द प्रभु वह अविनाशी एक है। समझ में आया?

ऋषभदेव भगवान जब अष्टापद पर्वत पर मुक्ति पधारे तो भरत गये, भरत। भरत और इन्द्र दोनों गये। भरत ऐसे देखते हैं, देह छूट गयी। रुदन करते हैं। नाशवान देह भगवान की भी नाश हो गयी। समाधान करने को जिन्हें पूछते थे, वे नाश हो गये। नाशवान है। ओहोहो! भगवान का समवसरण और उनका शरीर नाशवान। आहाहा! अविनाशी भगवान आनन्दकन्द प्रभु एक है। अब तीर्थ लेते हैं। '**और उसके आचरण से विपरीत जो अज्ञान तापस मिथ्यागुरु वे भी क्षणभंगुर हैं।' उसके आचरण से विपरीत जो अज्ञान तापस मिथ्यागुरु वे भी क्षणभंगुर हैं।** आहाहा!

संसार-समुद्र के तरने का कारण जो निज शुद्धात्मतत्त्व... आहाहा! देखो! निज शुद्धात्मतत्त्व, जो संसार-समुद्र तिरने में कारण है। आहाहा! लो। भगवान कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। स्वयं भगवान निज शुद्धात्मा, वह संसार का किनारा लाने में कारण है। उसकी **भावनारूप जो निश्चयतीर्थ...** आहाहा! **उसमें लीन परमतपोधन का निवास स्थान,...** अपने स्वरूप में लीन ऐसे परमतपोधन का निवासस्थान **सम्मेदशिखर, गिरनार आदि तीर्थ वे भी विनश्वर हैं,...** लो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शाश्वत् वस्तु कोई नहीं, यह तो बताते हैं। नाशवान है।

मुमुक्षु : अनन्त काल तक रहनेवाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या?

मुमुक्षु : सम्मेदशिखर तो अनन्त काल रहनेवाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले रहे, परन्तु नाशवान पर्याय... नाशवान है। पर्याय पलटती है न! भगवान के शरीर में भी पर्याय पलट जाती है। अरे! एक समय की पर्याय संवर, निर्जरा की भी पलट जाती है। आहाहा! अविनाशी शुद्ध चैतन्यघन, वह ध्रुव है। यह कहा।

संसार-समुद्र के तरने का कारण जो निज शुद्धात्मतत्त्व उसकी भावनारूप निश्चयतीर्थ... अपना स्वभाव, हों! एकाग्रता। निज शुद्धात्म द्रव्य की एकाग्रता, वह निश्चयतीर्थ। **उसमें लीन परमतपोधन का निवास स्थान,...** आहाहा! **सम्मेदशिखर, गिरनार आदि तीर्थ वे भी विनश्वर हैं, और जिनतीर्थ के सिवाय जो पर यतियों का निवास वे परतीर्थ वे भी विनाशीक हैं...** आहाहा! अब, **निर्दोष परमात्मा जो सर्वज्ञ वीतरागदेव उनकर उपदेश दिया गया जो द्वादशांग सिद्धान्त वह वेद हैं,...** वेद भी नाशवान है। समझ में आया? सिद्धो वर्ण समाम्नाय, वहाँ कहा है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में। अक्षर की आम्नाय भले अनादि है, परन्तु उसे बोलनेवाले, कहनेवाले आदिवाले हैं इसलिए नाशवान है। आहाहा! अकार आदि जो वर्ण है, उनकी मर्यादा तो अनादि की है। परन्तु बोलनेवाले नये है, इसकी अपेक्षा से नाशवान है। वाणी भी बन्द हो जायेगी। अविनाशी त्रिलोकनाथ भगवान ध्रुव, वह एक अविनाशी आत्मा है। आहाहा! बाकी सब काल की अग्नि में भस्म हो जायेंगे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **वह यद्यपि सदा सनातन हैं,...** वेदशास्त्र **तो भी क्षेत्र की अपेक्षा विनश्वर है,...** इस क्षेत्र में नहीं रहते, नाश हो जाते हैं।

किसी समय है, किसी क्षेत्र में पाये जाते हैं, किसी समय नहीं पाया जाता,... द्रव्य, क्षेत्र में वाणी नहीं मिलती। **भरतक्षेत्र, ऐरावतक्षेत्र में कभी प्रगट हो जाता है, कभी विलय हो जाता है, और महाविदेहक्षेत्र में यद्यपि प्रवाहकर सदा शाश्वता है,...** नाशवान सिद्ध करना है। **तो भी वक्ता श्रोता व्याख्यान की अपेक्षा विनश्वर है,...** कहनेवाले गणधर और तीर्थंकर के शरीर और वाणी नाश हो जाते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वेद अर्थात् शास्त्र-भगवान की वाणी। भगवान की वाणी को वेद कहते हैं, मुनि की वाणी को शास्त्र कहते हैं। ... वीतराग की ध्वनि से भी आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। यहाँ कहा कि मुनिश्वर की वाणी से ज्ञात होता है, यह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। वेद और शास्त्र से भी आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। कितनी गाथा है? १२३? पहले अधिकार की २३ गाथा। **वेद, शास्त्र, इन्द्रियादि परद्रव्यों के आगेचर और वीतराग निर्विकल्प समाधि के गोचर (प्रत्यक्ष) ऐसे परमात्मा का स्वरूप कहते हैं।... केवली की दिव्यवाणी से महामुनियों के वचनों से...** है २३? भगवान की वाणी को वेद कहते हैं और महामुनियों के वचनों को शास्त्र कहते हैं। है? दो शब्द हैं। आहाहा! **शुद्धात्मा जाना नहीं जाता,...** आहाहा! **वेद, शास्त्र, ये दोनों शब्द अर्थस्वरूप है, आत्मा शब्दातीत है तथा इन्द्रिय, मन, विकल्परूप हैं, उससे रहित निर्विकल्प आत्मा और मूर्तिक पदार्थ को जानते हैं, वह आत्मा निर्विकल्प है,...** आहाहा!

यहाँ तो सामग्री निमित्त है, परन्तु उसे मिलती नहीं, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा निज स्वरूप का आश्रय करे तब इन्द्रियाँ निमित्त हो, उन्हें निमित्त व्यवहार कहा जाता है, परन्तु उससे प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। वे लोग विरोध करते हैं न? भगवान की वाणी से भी नहीं समझ में आता? यहाँ इनकार करते हैं न!

मुमुक्षु : ....अनन्त गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त गये वह तो निमित्त का कथन है। अपना आश्रय किया तब उसको निमित्त कहा गया है। आहाहा! बात तो ऐसी है परन्तु अब ऐसे रास्ते चढ़ी है न, चोर कोतवाल को दण्डे, ऐसा हो गया है। आहाहा! .... जगत में है न!

यहाँ तो कहते हैं कि वेद से और शास्त्र से भी आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह गाथा पहले आ गयी है। ३८ है? जिसे राग और निमित्त उपादेय है, उसे आत्मा हेय है। आहाहा! ३६। आत्मा को आनन्दस्वरूप भगवान उपादेय है, राग हेय है। परन्तु जिसे राग उपादेय है, उसे आत्मा हेय है। आहाहा! पूरे विकल्प से लेकर परद्रव्य जिसे उपादेय है, उसे पूरा आत्मा पूर्णानन्द का नाथ हेय है। आहाहा! निश्चय की अपेक्षा से व्यवहार हेय है, परन्तु व्यवहार की रुचिवाले को निश्चय हेय है। आहाहा! यह तो

कहा, वेद और शास्त्र से समझ में आये, ऐसा नहीं है। अरे! ऐसा क्या? परमात्मप्रकाश में स्वयं कहते हैं, उसका विरोध करते हैं कि वाणी ऐसी है, वाणी भगवान की ऐसी है। वाणी से उसमें आया नहीं? **मोहान्धकार दूर हो गया है, ऐसे महामुनि...** लो। यह तो निमित्त का कथन है। मोहान्धकार उसके कारण दूर हुआ है और जो ऐसी प्ररूपणा करते हैं, उसे स्वयं के आश्रय से मोह दूर होता है, इसलिए उन महामुनि को गुरु कहा जाता है, ऐसा है। निश्चय से तू तेरा गुरु है, ऐसा इष्टोपदेश कहता है। समझ में आया? आहाहा!

भाई! भगवान! तू पूर्ण है न, प्रभु! तेरी नजर के आलस्य से निधान रह गया है। समझे? समझ में आया? निधान आनन्द का नाथ प्रभु, जिसका स्वाद अमृत। आहाहा! जिसके स्वाद के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़े हुए बिल्ली और कुत्ते सड़े हुए हों, ऐसे दिखते हैं। आहाहा! ऐसा भगवान तू स्वयं है न, प्रभु! आहाहा! शरीर को न देख, राग को न देख, कर्म को न देख। एक समय की पर्याय को भी न देख। आहाहा! यह सार है। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु शुद्धचैतन्यघन, वही सम्यग्दर्शन में उपादेय है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय भी उपादेय नहीं। आहाहा!

यह परमात्मप्रकाश है। योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त कहते हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (समयसार) ३१वीं गाथा में कहते हैं, **'जो इंदिये जिणित्ता'**। इन्द्रियों में तो शरीर, पाँच इन्द्रियाँ जड़, भावेन्द्रिय और भगवान की वाणी और भगवान, ये सब इन्द्रिय है। आहाहा! इससे आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं। यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा।

मुमुक्षु : वे ही कुन्दकुन्दाचार्य वापस उपदेश देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश, वह तो विकल्प हो, दे कौन? आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़ती हैं, भाई! स्वयं कहते हैं कि भगवान की वाणी, साक्षात् समवसरण और तीर्थंकरदेव, हम तो उन्हें इन्द्रिय कहते हैं। क्योंकि इन्द्रिय का विषय, वह इन्द्रिय है। उससे आत्मा (ज्ञात नहीं होता)। **'जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं'** उससे भिन्न पड़कर, अधिक (अर्थात्) भिन्न जो भगवान है, उसका आश्रय ले तो तुझे आत्मा ज्ञात हो। आहाहा! समझ में आया? है?

वे ही वक्ता-श्रोता हमेशा नहीं पाये जाते,... महाविदेह में भी; **इसलिए विनश्वर है, और पर यतियोंकर कहा गया जो हिंसारूप वेद वह भी विनश्वर है। शुद्ध जीवादि पदार्थों का वर्णन करनेवाली संस्कृत प्राकृत छटारूप गद्य...** पद्यरूप काव्य। आहाहा! **विचित्र कथायें हैं, ऐसे सुन्दर काव्य कहे जाते हैं, वे भी विनश्वर हैं।** आहाहा! कण्ठ को ... ऐसा बोले शार्दूल और बसन्ततिलका। आहाहा! सभा में लोगों को हिला दे। नाशवान है। वहाँ गये थे न, जयपुर, आदर्शनगर। बोला नहीं था अभी? नटुभाई थोड़ा बोले थे। उसकी कॉपी की थी। एक लड़की थी, परन्तु कण्ठ वह कण्ठ। जहाँ बोलना शुरु किया, भाषा साधारण। 'नरभव फिर से नहीं मिले', ऐसा, परन्तु कण्ठ वह कण्ठ ऐसा कँपे मानो अन्दर से झनझनाहट। शान्त... शान्त... शान्त... दस हजार लोग। नटुभाई बोलते हैं, क्या है? नटुभाई आये हैं? वह लड़की बोलती थी, वह लिख लिया। कण्ठ ठीक है। ओ... ऐसा करके बोलती है। आहाहा! वह सब नाशवान है। आहाहा! समझ में आया? वह बाई नहीं थी? घण्टी बजे ऐसी आवाज।

मुमुक्षु : सरोजनी नायडू।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सरोजनी नायडू। बोले तो ऐसा मानो अन्दर से घण्टे बजे। परन्तु वह तो जड़ की पर्याय सब नाशवान है। आहाहा! भगवान! यह शरीर नाशवान, वाणी नाशवान। यहाँ तो वहाँ तक लिया नियमसार में (कि) केवलज्ञान और संवर, निर्जरा की पर्याय नाशवान। आहाहा! क्योंकि उस पर्याय की स्थिति एक समय की है। आहाहा! ज्ञायकभाव भगवान आत्मा, वह ध्रुव है। आहाहा! उसका आश्रय करनेयोग्य है। आहाहा! यह अन्त में योगफल करेंगे।

इसी प्रकार खोटे कवि से बनाये हुए (काव्य) नाशवान हैं। **इत्यादि जो-जो वस्तु सुन्दर और असुन्दर दिखती हैं, वे सब कालरूपी अग्नि का ईंधन हो जावेगी।** आहाहा! अग्नि में जैसे लकड़ी जल जाये, वैसे कालरूपी अग्नि में भस्म हो जायेंगे। आहाहा! **तात्पर्य यह है...** रहस्य। **सब भस्म हो जावेगी, और परमात्मा की भावना से रहित...** आहाहा! यह हरे वृक्ष फलते फूलते हैं न? बाग में फलते-फूलते हैं। आहाहा! पाँच सौ, हजार, दो हजार, पाँच हजार वृक्ष फूले-फले, ऐसा... पत्तों से फूलकर ऐसे... यह कहते हैं। आहाहा! **परमात्मा की भावना से रहित...** अपने निज स्वरूप की एकाग्रता

से रहित **उससे उपार्जन किया जो वनस्पति नामकर्म...** आहाहा! **उसके उदय से वृक्ष हुआ, सो वृक्षों के समूह...** लाखों, करोड़ों वृक्ष। आहाहा! **फूले-फाले दिखते हैं, वे सब ईंधन हो जावेंगे।** आहाहा! नाश... नाश... नाश। भगवान अविनाशी को प्रतीति में, अनुभव में ले न, प्रभु! आहाहा! वह स्वयं त्रिकाली शाश्वत् वस्तु है न! उसका आदर कर न! यह सब भस्म है, उसका आदर छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जवान शरीर हस्ट-पुष्ट हो अन्दर, पच्चीस, तीस, चालीस वर्ष की उम्र, गोरा रूपवान और एक-एक अवयव। सब जलकर राख होंगे। आहाहा! है। आहाहा! ... श्मशान में। सेठ! ... मुम्बई में निकले थे न एक बार, नदी के किनारे मकान (था), समुद्र के किनारे इस ओर। आग लगी बड़ी। चार मंजिल का। नीचे आग लगी थी दूसरी मंजिल में, पहली मंजिल में नहीं। दूसरे मंजिल की अग्नि तीसरे और चौथे में दरवाजे के बाहर निकलती थी, खिड़की के बाहर निकलती थी। भडाका बोलते थे। आहाहा! वह दूसरे मंजिल का ऐसा जलने लगा कि तीसरे और चौथे मंजिल की खिड़की में लपटें निकलती थीं। हमारी मोटर... ओहो! देखो यह। नाशवान। दूसरे मंजिल में अग्नि लगी। आहाहा! इसी प्रकार यह सब भस्म होकर नाश होनेवाला है। इस राख के उसमें तूने क्रीड़ा की है। भगवान को भूल गया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भस्मरूप होने के योग्य ये सभी चीज़ें, आतमराम इनमें रमने लगा मूढ होकर। आहाहा! प्रभु! यह छोड़, अब अविनाशी को ले, ऐसा कहना है। आहाहा! पैसे हों न .... करोड़पति व्यक्ति, करोड़पति व्यक्ति। सवेरे निकला घोड़ागाड़ी में बाहर। जहाँ भूकम्प आवे, वहाँ सब समाप्त। धरतीकम्प। यह आया था, भाई जामनगर।

मुमुक्षु : वह तो किसी काल में किसी दिन होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह किसी दिन होता है, उसकी ही बात है न! आहाहा! हड... हड... हड... अग्नि ऐसे। उस अग्नि में यह देह भस्म हो जायेगी। तेरा नाथ अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, इसके अतिरिक्त कोई आदरणीय है नहीं। आहाहा! बाहर की सब चमक लगे न, श्मशान की हड्डियाँ होती है फासफूस, क्या कहते हैं उसे? फोस्फरस। लड़के देखने जाते तो कहते हैं, वह भूत है, वहाँ जाना नहीं। भूत क्या हो, वे हड्डियाँ पड़ी हों, इसलिए चमक... चमक... चमक... होती हो। इसी प्रकार यह

सब बाहर की फासफूस है—चमक... चमक लगे। शरीर रूपवान और शरीर ऐसा, यह लड्डू और अरबी के पत्ते (के भुजिया) खाता हो, तब मानो कि आहाहा! बापू! यह घण्टे में विष्टा होगी। यह (शरीर) ऐसी मशीन है कि दूसरे के लिये मैसूर डालो तो विष्टा नहीं हो। समझ में आया? इसमें मौसम्बी डालो तो विष्टा हो, ऐसी यह मशीन है। कहो, उसके साथ बटका भरना और क्या करना, ऐसा हो जाता है। मर गया है। आहाहा! नाशवान को चिपटा है, अविनाशी को भूल गया है, भाई! आहाहा! नित्य स्मरण करनेयोग्य तो प्रभु तू है। आहाहा!

यह सज्झाय में आता है। 'गर्व न करशो रे गात्रनो...' सज्झाय में आता है, चार सज्झायमाला आती है न! तब दुकान पर (वांची थी)। आहाहा! श्रीकृष्ण का दृष्टान्त है। कौसम्बी वन में वे कृष्ण, जिनकी हजारों देव सेवा करते थे, वह द्वारिका नगरी सोने के गढ़ और रतन के कंगूरे जलते हैं, सुलगते हैं। आहाहा! मणि रत्न के कंगूरे और सोने के गढ़ हड... हड... हड... सुलगते हैं। कृष्ण कहते हैं, अरे भाई! हम कहाँ जायेंगे? बलदेव को कहते हैं। आहाहा! भाई! हम पाण्डवों के पास जायेंगे। भाई! पाण्डवों को तो हमने देश बाहर किया। आहाहा! वासुदेव जैसे की हजारों देव सेवा करे, वे पुकार करते हैं, हम कहाँ जायेंगे? भाई! वहाँ जायेंगे हम। वे खानदानी मनुष्य हैं, अपना अनादर नहीं करेंगे। आहाहा! अब उसे शंका पड़ी। आहाहा! हें! 'तरसे तरफडे त्रिकमन नहि कोई पाणीनो पानार।' सज्झायमाला में आता है। 'तरसे तरफडे त्रिकमो' तीन खण्ड का स्वामी, प्यास ऐसी (लगी), पानी नहीं मिलता। पानी भाई पानी। बलभद्र को कहते हैं। अरे! जिसे माँगे वहाँ देव मौसम्बी दे, पानी के बदले। उसे पानी पीने को नहीं मिलता। आहाहा! यह दशा, बापू! वह तो नाशवान में यह आवे ही। 'तरसे तरफडे त्रिकमो, नहि कोई पाणीनो पानार।' आहाहा! बलभद्र से कहते हैं, भाई! मुझे बहुत प्यास लगी है। भाई! तुम यहाँ वृक्ष के नीचे बैठो। मैं वड के बड़े पत्ते (से दौना) बनाकर और तालाब में से पानी लेकर आता हूँ। दूसरा कोई साधन नहीं है। आहाहा! जिसके घर में रत्न और हीरा के गोदाम भरे हैं। उसे पानी भरने का कलश साथ में नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : देव कहाँ गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : देव चले गये। आहाहा! ऐसा नाशवान, बापू! पूर्व के पुण्य के संयोग, पुण्य सब नाशवान है, नाथ! ऐसा कहते हैं। आहाहा! तेरी ध्रुव पवित्रता भूमि अन्दर पड़ी है, वह अविनाशी है। आहाहा! कहो, ऐसा है। आहाहा!

'गर्व न करशो रे गात्रनो।' गात्र कहते हैं न, उसका गर्व नहीं करना, भाई! वासुदेव जैसे के शरीर। आहाहा! भाई जहाँ पानी लेकर आते हैं, वहाँ उनका ही भाई जराकुमार, जरतकुमार बारह वर्ष से बाहर भील होकर जंगल में घूमता था। आहाहा! उसने ऐसा देखा। वासुदेव थे और पैर में पद्म (का चिह्न) था। ऐसा देखा, यह कोई हिरण है। ... ऐसे पैर पर पैर चढ़ाये हुए (श्रीकृष्ण सो रहे थे)। बाण मारा। आहाहा! देखो! यह स्थिति! बाण मारता है। देह छूट गयी। फिर बात की। वहाँ आया। कौन है? श्री कृष्ण ने आवाज की। इस वन में गुनहगार मैं नहीं और मुझे मारनेवाला कौन है? प्रगट होओ। इतना बोले। मैं जरतकुमार हूँ। भाई! तुम यहाँ कहाँ से? आहाहा! अरे! मेरे हाथ से तुम्हारी मृत्यु? मुझे कहाँ जाना? भाई! तू मेरे हाथ में कौस्तुभमणि है, वह ले जा। पाण्डवों के पास जा। (श्रीकृष्ण ने) राजमणि मुझे दिया है, मुझे रखो। आहाहा! यह संसार तो देखो! यह सब नाशवान। प्रभु अविनाशी आत्मा की नजर कर, दूसरी नजर छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। सेठ! आहाहा!

सब ईंधन हो जावेंगे। आहाहा! **वृक्ष के समूह जो फूले-फाले दिखते हैं,...** आहाहा! आम और गुलाब और... आहाहा! वहाँ गये थे न, क्या नाम गाँव का? गुलाब का फूल नहीं था तालाब में? हजार पंखुड़ी का गुलाब होता है, गुजरात में। चीखली, चीखली गये थे न, पूरा ऐसा तालाब भरा हुआ। एक हजार पंखुड़ी का गुलाब। ओहोहो! हम गये तब कुछ नहीं मिले। वह सब सूख गया, समाप्त हो गया। और वापस नया हो तब सही। आहाहा! **ईंधन हो जावेंगे। संसार का सब ठाठ क्षणभंगुर है...** आहाहा! क्षणभंगुर में क्षण में नाशवान है, ऐसा कहते हैं। **ऐसा जानकर...** अब कहते हैं, जानकर करना क्या है परन्तु वह नाशवान है तो? आहाहा! **पंचेन्द्रियों के विषयों में मोह नहीं करना,...** निर्विषयी भगवान आत्मा की दृष्टि करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सार तो यह है न! किसी भी वीतराग के वाक्य का सार तो वीतरागता है। वीतरागता सार कब आवे? वीतरागमूर्ति भगवान है, उसका आश्रय ले तो वीतरागता आवे। आहाहा!

समझ में आया ? कोई भी अनित्यभावना, असंगभावना का सार क्या ? उसका तात्पर्य तो वीतरागता है, चाबी वह है। क्या कहलाता है तुम्हारे ?

मुमुक्षु : मास्टर की।

पूज्य गुरुदेवश्री : मास्टर की। आहाहा!

उसमें सार क्या ? रहस्य क्या ? उसमें सार वीतरागता निकले वह। वह वीतरागता कैसे निकले ? वह कहीं पर्याय का और राग का आश्रय होने से वीतरागता नहीं निकलती। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का दल है, उसका आश्रय ले तो वह वीतरागस्वरूप है। वीतरागस्वरूप के आश्रय से वीतरागता होगी। आहाहा! यह सब बारह अंग का सार यह है। समझ में आया ? अब ऐसी जिसे श्रद्धा का ठिकाना नहीं, बाहर से होगा और इससे होगा और इससे होगा, निमित्त सामग्री अच्छी मिले तो उससे होगा, उपादान में योग्यता अनेक प्रकार की है, ऐसा कहते हैं। जैसा निमित्त आवे, वैसा होता है, ऐसा पण्डित कहते हैं। क्या कहा जाता है उसे ? खानियाचर्चा, खानियाचर्चा में। अभी आया था, अभी पत्रिका में। उपादान की योग्यता बहुत है। ... महेन्द्र, महेन्द्र बड़ा पण्डित था न महेन्द्र।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादान में योग्यता बहुत है, जैसा निमित्त आवे, वैसा होता है। पानी में योग्यता अनेक प्रकार की है, तो चीनी डालो तो मीठा हो, काली जीरी डालो तो कडुवा लगे, नमक डालो तो खारा लगे, उसमें योग्यता इतनी है कि जैसा निमित्त आवे वैसा हो। यह बात ही झूठी है। समझ में आया ? यह बड़ा विवाद है अभी। उपादान की योग्यता एक ही प्रकार की है, जिस समय में जो होनेवाली है, वह एक ही प्रकार की है। हो निमित्त, निमित्त का किसने इनकार किया है ? परन्तु निमित्त होने पर भी वह निमित्त, उपादान की पर्याय को रचता है, कर्ता करता है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही प्रकार की। द्रव्य में तो योग्यता अनन्त त्रिकाली पर्याय

की योग्यता पड़ी है। पर्याय की योग्यता एक ही प्रकार की है। क्या कहा, चन्दुभाई? द्रव्य है, उसमें तो त्रिकाली पर्याय की योग्यता है सब। परन्तु पर्याय में तो एक समय की जो उत्पन्न होने के योग्य है, उसकी एक ही योग्यता है। आहाहा! ऐसा जहाँ अन्दर निर्णय न करे, उसे कहाँ जाना, बापू! भाई? कोई दे, ऐसा नहीं बाहर में। लोग प्रसन्न हो जायेंगे तेरी व्यवहार की बातों से, तुझे वहाँ लाभ होगा। आहाहा! समझ में आया?

पंचेन्द्रियों के विषयों में मोह नहीं करना,... वहाँ क्या कहते हैं? स्वद्रव्य को विषय बना। आहाहा! पाँचों इन्द्रिय के विषय, वह वस्तु छोड़ दे, भाई! वे सब नाशवान हैं, नाथ! आहाहा! चिमनभाई! ऐसी बात है। लोगों को ऐसा लगता है कि एकदम निश्चय... निश्चय। परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य। परम सत्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसका आश्रय ले नाथ! तब तेरी रक्षा होगी। हें! आहाहा! **विषय का राग सर्वथा त्यागना योग्य है।** आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषयों में से सुखबुद्धि छोड़। आहाहा! **प्रथम अवस्था में यद्यपि धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति का निमित्त...** देखा? निमित्त, हों! **धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति का निमित्त जिनमन्दिर,...** जिनमन्दिर भी धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति का निमित्त है न, ऐसा कहते हैं, देखो! **जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म तथा जैनधर्मी इनमें प्रेम करना योग्य है,...** व्यवहार। समझ में आया? पहले विकल्प होता है, ऐसा कहते हैं। परन्तु विकल्प होता है, इसलिए निश्चय प्रगट होता है—ऐसा नहीं है। परन्तु ऐसा पहले आता है। स्वभाव का भान हुआ होने पर भी देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव, प्रतिमा का भाव आता है। इसलिए उसे निमित्त कहा जाता है। निमित्त से वहाँ कार्य होता है आत्मा में, ऐसा नहीं है। आहाहा! बड़े-बड़े मकान बनाना, मन्दिर बनाना और फिर कहे कि उससे कुछ लाभ नहीं होता। वह प्रथम शुभभाव में निमित्त है। समझ में आया? होता है। परन्तु उसके आश्रय से, उसके लक्ष्य से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा। अनेकान्त मार्ग ऐसा है। वे लोग अनेकान्त ऐसा कहते हैं, उससे लाभ होता है और आत्मा से लाभ होता है, यह अनेकान्त है। यहाँ कहते हैं कि आत्मा के आश्रय से लाभ होता है और पर के आश्रय से धर्म का लाभ होता ही नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। आहाहा! यह तो बापू! अन्तर का मार्ग है, भाई! बाहर में लोग खुशी हो जाये, प्रसन्न हो जाये, ऐसे बोल से, इससे तुझे क्या लाभ? आहाहा! वह पण्डित नहीं

कहता था? तुलसी के व्याख्यान में गया था तो बीस हजार लोग। वह पण्डित कल नहीं आया था? .... भले शुद्ध आम्नाय प्रमाण न हो, ऐसा कहे। दिगम्बर आम्नाय शुद्ध आम्नाय है। ऐसा न हो वहाँ, कुछ सच्चा है नहीं। लोग बीस-बीस हजार इकट्ठे हों। ... ऐसा करो, सेवा करो, देशसेवा करो, दुःखी के आँसू पोंछो, भूखे को अनाज दो, प्यासे को पानी दो, रहने का स्थल दो, रोगी को औषध दो। गुलामीवाले हैं और उसकी बात करे तो अच्छी लगे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या है वहाँ? अरेरे! उसकी श्रद्धा में स्व का आश्रय ले तो धर्म होता है, ऐसी श्रद्धा नहीं। आहाहा! सुनी नहीं, बापू, भाई! आहाहा! होता है, यह बाहर सब—भक्ति, पूजा शुभभाव होता है। वह भी शुभभाव उनसे होते हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। मार्ग तो ऐसा है, भाई! 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' आहाहा! जिसमें वीतरागता प्रगट हो, वह धर्म है और वह वीतरागता, वीतरागमूर्ति भगवान जिनस्वरूपी 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' आहाहा! मार्ग तो यह है। समझ में आया? होता है।

प्रेम करना योग्य है, तो भी शुद्धात्मा की भावना के समय... लो। भगवान आत्मा में अन्तर सन्मुख होने के काल में... आहाहा! है? **वह धर्मानुराग भी नीचे दर्जे का गिना जाता है,...** राग है। धर्मानुराग, वह राग है। आहाहा! स्वयं स्पष्टीकरण किया है। '**शुद्धात्मभावना काले न कर्तव्येति**' इतना शब्द स्पष्ट है। संस्कृत में इतना शब्द है। '**शुद्धात्मभावना काले न कर्तव्येति संबंध।**' वह इकट्ठा हो गया है, कालेन। अन्तर में स्थिर नहीं होता, तब उसे ऐसा शुभभाव होता है। परन्तु अन्दर के ध्यान में स्व के आश्रय में जाता है, तब वह कर्तव्य नहीं है। आहाहा! यह कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है।

वहाँ पर केवल वीतरागभाव ही है। देव-गुरु-शास्त्र, जिनमन्दिर आदि में शुभभाव है और अन्दर में जाने में केवल वीतरागभाव है। आहाहा! जिसे लोग देख नहीं सकते, क्या हुआ अन्दर में। आहाहा! अन्दर क्या हुआ, यह लोग किस प्रकार जाने? लोगों को कैसे खबर पड़े? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

गाथा - १३१

अथ शुद्धात्मद्रव्यादन्यत्सर्वमध्रुवमिति प्रकटयति–

२५४) एक्कु जि मेल्लिवि बंभु परु भुवणु वि एहु असेसु।
पुहविहिँ णिम्मउ भंगुरउ एहउ बुज्जि बुज्झि विसेसु।।१३१।।

एकंमेव मुक्त्वा ब्रह्म परं भुवनमपि एतद् अशेषम्।
पृथिव्यां निर्मापितं भंगुरं एतद् बुध्यस्व विशेषम्।।१३१।।

एक्कु जि इत्यादि। एक्कु जि एकमेव मेल्लिवि मुक्त्वा। किम्। बंभु परु परमब्रह्मशब्दवाच्यं नानावृक्षभेदभिन्नवनमिव नानाजीवजातिभेदभिन्नं शुद्धसंग्रहनयेन शुद्धजीवद्रव्यं भुवणु वि एहु इदं प्रत्यक्षीभूतम्। कतिसंख्योपेतम्। असेसु अशेषं समस्तमपि। कथंभूतमिदं सर्वं पुहविहिँ णिम्मउ पृथिव्यां लोके निर्मापितं भंगुरउ विनश्वरं एहउ बुज्झि विसेसु इमं विशेषं बुध्यस्व जानीहि त्वं हे प्रभाकरभट्ट। अयमत्र भावार्थः। विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं परब्रह्मशब्दवाच्यं शुद्धजीवतत्त्वं मुक्त्वान्यत्पञ्चेन्द्रियविषयभूतं विनश्वरमिति।।१३१।।

आगे शुद्धात्मस्वरुप से अन्य जो सामग्री है, वह सभी विनश्वर हैं, ऐसा व्याख्यान करते हैं–

शाश्वत परम ब्रह्म से भिन्न समस्त वस्तुयें भूतल पर–
जो भी निर्मापित हैं वे सब क्षणभंगुर हैं यह ज्ञातव्य।।१३१।।

अन्वयार्थ :– [एकं परं ब्रह्म एव] एक शुद्ध जीवद्रव्यरुप परब्रह्म को [मुक्त्वा] छोड़कर [पृथिव्यां] इस लोक में [इदं अशेषम् भुवनमपि निर्मापितं] इस समस्त लोक के पदार्थों की रचना है, वह सब [भंगुरं] विनाशीक है, [एतद् विशेषम्] इस विशेष बात को तू [बुध्यस्व] जान।

भावार्थ :– शुद्धसंग्रहनयकर समस्त जीव–राशि एक है। जैसे नाना प्रकार के वृक्षोंकर भरा हुआ वन एक कहा जाता है, उसी तरह नाना प्रकार के जीव–जाति करके एक कहे जाते हैं। वे सब जीव अविनाशी हैं, और सब देहादि की रचना विनाशीक दिखती है। शुभ–अशुभ कर्मकर जो देहादिक इस जगत् में रची गई हैं, वह सब विनाशीक हैं, हे प्रभाकरभट्ट, ऐसा विशेष तू जान, देहादि को अनित्य जान और जीवों को नित्य जान।

निर्मल ज्ञान दर्शस्वभाव परब्रह्म [शुद्ध जीवतत्त्व] उससे भिन्न जो पाँच इंद्रियों का विषयवन वह क्षणभंगुर जानो।।१३१।।

गाथा-१३१ पर प्रवचन

आगे शुद्धात्मस्वरूप को अन्य जो सामग्री है, वह सभी विनश्वर हैं,... आहाहा! १३१।

२५४) एक्कु जि मेल्लिवि बंभु परु भुवणु वि एहु असेसु।
पुहविहिँ णिम्मउ भंगुरउ एहउ बुज्जि बुज्झि विसेसु।।१३१।।

अन्वयार्थ—एक शुद्ध जीवद्रव्यरूप परमब्रह्म को... 'एकं परं ब्रह्म' अपना आत्मा एक परम, हों! सब होकर एक, ऐसा नहीं। आहाहा! एकरूप ध्रुवस्वरूप अनादि-अनन्त। आहाहा! एक शुद्ध। परम का अर्थ शुद्ध किया। **'एकं परं ब्रह्म' एक शुद्ध जीवद्रव्यरूप परमब्रह्म को...** आहाहा! **'मुक्त्वा' छोड़कर... इस लोक में... 'इदं अशेषम् भुवनमपि निर्मापितं' इस समस्त लोक के पदार्थों की रचना है, वह सब विनाशीक है,...** आहाहा! वे तो थोड़े नाम दिये। दस-दस करोड़ के, अरब-अरब के बड़े बँगले। आहाहा! हें! ऐसे सोने के... प्रभु! तेरे अविनाशी के अतिरिक्त सब नाशवान है और नाशवान के प्रेम में अविनाशी का प्रेम चला जाता है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। ठीक है, ऐसा यदि नाशवान पदार्थ में लगा तो भगवान अठीक है, ऐसा हो गया उसे। आहाहा! बाहर की किसी भी विभूति को देखने से उसके वीर्य में कुछ उल्लसित हो जाये... आहाहा! वहाँ भगवानस्वरूप का अनादर हो जाता है। समझ में आया? बाह्य के पदार्थ की विभूति को देखकर... आहाहा! शरीर की विभूति, वाणी की विभूति, मकान की विभूति, आहाहा! वह पत्र आया है न भाई? दरबार का। चमत्कार है। एक दरबार आते हैं। सरवाळावाल। यहाँ का प्रेम है, परन्तु अभी उसे कल्पनायें दूसरी बहुत हैं। वहाँ एक करोड़ इकट्ठे हुए, इलाहाबाद। त्रिवेणी नदी है न, त्रिवेणी। है न, गये थे न। दो इकट्ठी होती हैं, तीन। गये थे, देखने गये थे।.... आया था, एक करोड़ इकट्ठे हुए। नागा बाबा बहुत इकट्ठे हुए। नागा बाबा होते हैं न, वहाँ भी गये थे दरबार। वहाँ से थोड़ा पानी

लाये थे। ... हो गयी बड़ी। कल्पना। कल्पना, दूसरा क्या है? और मैं भान भूल गया उस समय। ... ओहोहो! हजारों लोगों ने मुझे घेर लिया। क्या हुआ? कल्पना है। चमत्कार कैसा? लोगों की कल्पनायें हैं सब। ... ऐई! ऐसे के ऐसे। हें! कल्पना... कल्पना। इस जगत को मार डालती है ऐसे।

चमत्कार तो चैतन्यचमत्कार है। आहाहा! जहाँ अन्दर दृष्टि पड़ने से अकेला ज्ञान का घन चमत्कार भासित हो। जिसके ज्ञान में तीन काल—तीन लोक जाने शक्ति में तो भी कम पड़े उसे। आहाहा! ऐसा चैतन्यचमत्कार भगवान है, उसका भान होने से वह चमत्कार है। बाकी सब थोथा है। समझ में आया? कहो, ...भाई! वे सब चमत्कार तुम्हारे बाबा के। साईंबाबा के ऊपर तो आक्षेप है। ... खोटा है। हाथ में राख... अरे! ऐसा क्या करना है परन्तु भाई तुझे? बनियों के लड़के उलझन में आ गये हैं। ... लड़के वहाँ। आहाहा! पूनमचन्द मर गया बोलते-बोलते। मैं जाता हूँ वहाँ साईंबाबा के पास। आहाहा! वह तो मर गया तब खबर भी नहीं थी उसे—साईंबाबा को। यहाँ यह लोगों को... इसमें हमारे क्या करना? लोग वह भ्रमणा... बनियों की बुद्धि साधारण बुद्धि चाहिए, ऐसी कहाँ है। हें!

मुमुक्षु : चमत्कार बताता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं था चमतकार। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो यहाँ रखते हैं अन्दर। पहनता है न कुर्ता, तुम्हारा भाई कहता था, अपना के.लाल। के.लाल तो जोरदार जादूगर है, लाखों पैदा करता है। हमारे पास आया था, राजकोट आया था। बीनू से छोटा। आहाहा! वह कहता था, रजनीश के लेने आये थे मुझे। ...लोगों को भ्रमणा में डालता है। जादूगरी। कोट निकालकर आवे मेरे पास। वह तो होशियार है न के.लाल तो। उसे माननेवाले बनिया मिले। कहो, धूल में क्या है पैसे में तेरे। वह तो पुण्य हो तो आते हैं। भिखारी को नहीं आते? आहाहा!

एक शुद्ध जीवद्रव्यरूप परब्रह्म को छोड़कर इस लोक के इस समस्त लोक के पदार्थों की रचना है, वह सब विनाशीक है,... आहाहा! .... उस वृक्ष का दृष्टान्त दिया

न। फले-फूले वृक्ष... ओहोहो! परन्तु एक धूप लगे कठोर... समाप्त। बापू! नाशवान में क्या हो? आहाहा! भगवान अनन्त आनन्द का नाथ मुरझाता नहीं, नाशवान नहीं, कभी मुरझाता नहीं। आहाहा! समझ में आया? कठिन बातें, बापू! भाई! मार्ग ऐसा है। अकेला आनन्द का कन्द प्रभु वह महा आत्मा एक अविनाशी है। आहाहा! अनित्य की भावना कहकर नित्य पर दृष्टि कराते हैं। आहाहा! समझ में आया? **इस विशेष बात को तू जान।** है न? आहाहा!

भावार्थ—शुद्धसंग्रहनयकर समस्त जीव-राशि एक है। 'एकं परं ब्रह्म' है न उसमें से निकाला। **शुद्धसंग्रहनयकर समस्त जीव-राशि एक है।** समस्त जीव भगवानस्वरूप है। आहाहा! परमात्मा के स्वरूप से सब जीव भगवान विराजते हैं। पूरा लोक परमात्मस्वभाव से भरपूर है। **शुद्धसंग्रहनयकर समस्त जीव-राशि एक...** परमात्मस्वरूप से है। आहाहा! **जैसे नाना प्रकार के वृक्षोंकर भरा हुआ वन एक कहा जाता है,...** लाखों, करोड़ों वृक्ष हों, परन्तु वन तो एक कहलाये न। **उसी तरह नाना प्रकार के जीव-जाति...** एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय आदि **एक कहे जाते हैं। वे सब जीव अविनाशी हैं,...** आहाहा! वह रजनीश है न, रजनीश। कल उसका एक भक्त आया था। ... मैंने कहा, उसे क्या कहना? लड़के को दर्शन कराने आये थे। वस्त्र बाबा जैसे पहने हुए। ... देखा था न। अब उस रजनीश का फोटो एक बार आया था, ऐसे (देखता है), मानो ऐसे एक व्यापक हो, ऐसा फोटो आया था। सेठ के उसमें था न वह, तारणपंथ में।

मुमुक्षु : भगवान कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पामर है, मर जायेगा। ऐसे मानो व्यापक हो।

यहाँ तो भगवान शक्ति से सब भगवान हैं, ऐसा जो कहते हैं। एक हैं, सब एक ही आत्मा, ऐसा नहीं है। आहाहा! और दूसरे प्रकार से, एक ही आत्मा सर्वव्यापक हो तो उसे ध्यान तो... इसका अर्थ कि एक ही आत्मा यहाँ है। जिसमें ध्यान करना पड़ता है, वहाँ आत्मा है। ऐसा हो तो वहाँ ऐसा ध्यान करे तो मिल जाये, ऐसा तो है नहीं। आहाहा! समझ में आया? अन्तर झुकाव करता है तब तो... आत्मा इतने में है, उसमें झुकाव जाता है। यदि सर्वव्यापक हो तो अन्दर में जाने से एकाग्र होगा ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

वे सब जीव अविनाशी हैं, और सब देहादिक की रचना विनाशीक... आहाहा! **शुभ-अशुभ कर्मकर जो देहादिक इस जगत में रची गई हैं,... जगत में रची गई हैं, यह सब विनाशीक हैं, हे प्रभाकर भट्ट, ऐसा विशेष तू जान,...** खास यह जान। **देहादि को अनित्य जान और जीवों को नित्य जान।** जीवों अर्थात् सब जीव, हों! **निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव परब्रह्म...** भगवान आत्मा निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव शुद्ध जीवतत्त्व, **उससे भिन्न...** है। आहाहा! **जो पाँच इन्द्रियों का विषयवन... विषयवन, वह क्षणभंगुर है।** पाँच इन्द्रियों का विषयवन क्षणभंगुर है। विषयवन। आहाहा! भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप है। सब भगवान परमात्मा हैं, ऐसा देख। इसके अतिरिक्त सब नाशवान हैं, ऐसी दृष्टि कराते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १३२

अथ पूर्वोक्तमध्रुवत्वं ज्ञात्वा धनयौवनयोस्तृष्णा न कर्तव्येति कथयति-

२५५) जे दिट्ठा सूरुग्गमणि ते अत्थवणि ण दिट्ठ।
तेँ कारणिं वढ धम्मु करि धणि जोव्वणि कउ तिट्ठ।।१३२।।

ये दृष्टाः सूर्योद्गमने ते अस्तगमने न दृष्टाः।
तेन कारणेन वत्स धर्मं कुरु धने यौवने का तृष्णा।।१३२।।

जे दिट्ठा इत्यादि। जे दिट्ठा ये केचन दृष्टाः। क्व। सूरुग्गमणि सूर्योदये ते अत्थवणि ण दिट्ठ ते पुरुषा गृहधनधान्यादिपदार्था वा अस्तगमने न दृष्टाः, एवमध्रुवत्वं ज्ञात्वा। तें कारणिं वढ धम्मु करि तेन कारणेन वत्स पुत्र सागारानगारधर्मं कुरु। धणि जोव्वणि कउ तिट्ठ धने यौवने वा का तृष्णा न कापीति। तथथा। गृहस्थेन धने तृष्णा न कर्तव्या तर्हि किं कर्तव्यम्। भेदाभेदरत्नत्रयाराधकानां सर्वतात्पर्येणाहारादिचतुर्विधं दानं दातव्यम्। नो चेत् सर्वसंगपरित्यागं कृत्वा निर्विकल्पपरमसमाधौ स्थातव्यम्। यौवनेऽपि तृष्णा न कर्तव्या, यौवनावस्थायां यौवनोद्रेकजनितविषयरागं त्यक्त्वा विषयप्रतिपक्षभूते वीतरागचिदानन्दैकस्वभावे शुद्धात्मस्वरुपे स्थित्वा च निरन्तरं भावना कर्तव्येति भावार्थः।।१३२।।

आगे पूर्वोक्त विषय-सामग्री को अनित्य जानकर धन, यौवन और विषयों में तृष्णा नहीं करनी चाहिये, ऐसा कहते हैं-

सूर्योदय होने पर जो भी देखा वह नहिं अस्त समय।
धन यौवन में क्यों हो तृष्णा इसीलिए अपनाओ धर्म।।१३२।।

अन्वयार्थ :- [वत्स] हे शिष्य, [ये] जो कुछ पदार्थ [सूर्योद्गमने] सूर्य के उदय होने पर [दृष्टाः] देखे थे, [ते] वे [अस्तगमने] सूर्य के अस्त होने के समय [न दृष्टाः] नहीं देखे जाते, नष्ट हो जाते हैं [तेन कारणेन] इस कारण तू [धर्मं] धर्म को [कुरु] पालन कर [धने यौवने] धन और यौवन अवस्था में [का तृष्णा] क्या तृष्णा कर रहा है।

भावार्थ :- धन, धान्य, मनुष्य, पशु, आदिक पदार्थ जो सबेरे के समय देखे थे, वे शाम के समय में नहीं दिखते, नष्ट हो जाते हैं, ऐसा जगत् का ठाठ विनाशिक जानकर इन पदार्थों की तृष्णा छोड़ और श्रावक का तथा यती का धर्म स्वीकार कर, धन यौवन

में क्या तृष्णा कर रहा है। ये तो जल के बुलबुल के समान क्षणभंगुर हैं। यहाँ कोई प्रश्न करे, कि गृहस्थी धन की तृष्णा न करे तो क्या करे? उसका उत्तर–निश्चय–व्यवहाररत्नत्रय के आराधक जो यति उनकी सब तरह गृहस्थ को सेवा करनी चाहिये, चार प्रकार का दान देना, धर्म की इच्छा रखनी, धन की इच्छा नहीं करनी। जो किसी दिन प्रत्याख्यान की चौकड़ी के उदय से श्रावक के व्रत में भी है, तो देव पूजा, गुरु की सेवा, स्वाध्याय, दान, शील, उपवासादि अणुव्रतरुप धर्म करे, और जो बड़ी शक्ति होवे, तो सब परिग्रह त्यागकर यती के व्रत धारण करके निर्विकल्प परमसमाधि में रहे। यती को सर्वथा धन का त्याग और गृहस्थ को धन का प्रमाण करना योग्य है। विवेकी गृहस्थ धन की तृष्णा न करें। धन यौवन असार है, यौवन अवस्था में विषय तृष्णा न करें, विषय का राग छोड़कर विषयों से पराङ्मुख जो वीतराग निजानंद एक अखंड स्वभावरुप शुद्धात्मा उसमें लीन होकर हमेशा भावना करनी चाहिये।।१३२।।

वीर संवत् २५०२, माघ शुक्ल ३, शनिवार
दिनांक- २२-०१-१९७७, गाथा - १३२, प्रवचन-१९३

परमात्मप्रकाश, १३२ गाथा। **आगे पूर्वोक्त विषय-सामग्री को अनित्य जानकर धन, यौवन और विषयों में तृष्णा नहीं करनी चाहिए,...**

२५५) जे दिट्ठा सूरुग्गमणि ते अत्थवणि ण दिट्ठ।
तेँ कारणिं वढ धम्मु करि धणि जोव्वणि कउ तिट्ठ।।१३२।।

अन्वयार्थ—हे शिष्य! जो कुछ पदार्थ सूर्य के उदय होने पर देखे थे, वे सूर्य के अस्त होने के समय नहीं देखे जाते,... आहाहा! सवेरे उगा, उठा, शाम को नहीं सोता।

मुमुक्षु : यह तो किसी दिन की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी की बात परन्तु होता है न उसे स्वयं को। आहाहा! काल का दृष्टान्त बन गया अपने। ... तो उसे खबर है, रात्रि में देह छूट जायेगी? आहाहा! अविनाशी भगवान आत्मा की दृष्टि कर और सम्हाल कर। यह सब नाशवान हैं, वे तो नाश होंगे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... आहाहा! चले जाते हैं। माँ-बाप छोड़कर लड़के चले जाते हैं। संसार तो ऐसा है नाशवान... नाशवान...

जो कुछ पदार्थ सूर्य के उदय होने पर देखे थे, वे सूर्य के अस्त होने के समय नहीं देखे जाते, नष्ट हो जाते हैं, इस कारण तू धर्म को पालन कर... आहाहा! इस कारण से हे जीव! नाशवान पदार्थ में रुचि छोड़ दे। आहाहा! अपना आत्मा आनन्दकन्द प्रभु ध्रुव स्वरूप नित्यानन्द की रुचि कर। आहाहा! है? **धर्म को पालन कर...** आहाहा! आत्मा का स्वभाव, धर्म उसका त्रिकाली आनन्द और ज्ञानस्वभाव, उसमें धर्म कर न! आहाहा! पर्याय में उसे बुला न! आहाहा! पर्याय में नाशवान को रुचि में लाया है, उसके बदले पर्याय में अविनाशी की रुचि कर न!

मुमुक्षु : धर्म क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म यह, दूसरा कौन सा धर्म है? कहते हैं, अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द अपना स्वभाव, उसमें अनुभव रुचि करना, वह धर्म है। आहाहा!

मुमुक्षु : माता-पिता की सेवा करना, वह धर्म नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब पुण्यभाव है, कौन सेवा करता था? शुभभाव हो।

पच्चीस-पच्चीस वर्ष के जवान, बाप के बाप बैठे हों और चले जाते हैं। आहाहा! नाशवान में तो क्या होगा वहाँ? स्वयं नित्य है, इससे वस्तु को कायम रखना चाहता है। स्वयं कायम है, उस पर दृष्टि नहीं करता। स्वयं भगवान आत्मा टिकता नित्य ध्रुवतत्त्व, उसकी अन्तर्दृष्टि नहीं करता, परन्तु अपने अतिरिक्त परवस्तु जो नाशवान, उसे नित्य अर्थात् टिकता... टिकता बनाने के लिये प्रयत्न करता है। आहाहा! समझ में आया? बहुत काल तो जगत का इसमें—बाहर में जाता है। अरेरे! धर्म कर; धर्म कर का अर्थ—जहाँ अन्तर स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान, अविनाशी भगवान आत्मा, उसमें दृष्टि कर और उसमें लीन हो। यह धर्म। यहाँ ही जो अटक गया है, उसे यहाँ अटकने को, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो! क्या कहते हैं?

पालन कर धन और यौवन अवस्था में क्या तृष्णा कर रहा है। आहाहा! ...भाई!

दो बातें आयीं, लक्ष्मी और यौवन। आहाहा! लक्ष्मी नाशवान है, क्षण में नाश हो जाती है। अथवा तू बैठा और नाश हो और या वह हो और तू चला जाये। आहाहा! किसकी सम्हाल करने जाता है, बापू! अन्दर आत्मा का धन है, उसकी सम्हाल कर! दो बातें लीं—धन और यौवन। जवान अवस्था शरीर की। बापू! उसमें जीते जी कीड़े पड़ेंगे, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! वह तो नाशवान चीज़ है। आहाहा!

वह नहीं था एक बाई का? लाठी की बाई थी। जवान बाई अठारह वर्ष की विवाहित। शीतला निकली। दाने-दाने में ईयल—कीड़े। बिस्तर में डाली, ऐसे करवट बदले तो हजारों कीड़े ऐसे गिरे, ऐसे बदले तो ऐसे। चारों ओर काटे और दुःख, वह दुःख। आहाहा! जवान अवस्था, अठारह वर्ष की उम्र। आहाहा! इतना दुःख। माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में किये नहीं। कुछ सहन होता नहीं, कहीं नजर स्थिर नहीं होती। किसी करवट से सोवे, चैन नहीं। आहाहा! कीड़े... कीड़े... कीड़े। देह छूट गयी। आहाहा! बापू! नाशवान में तू क्या देखने जाता है? नाशवान में टिकता टिकना देखने जाता है? और टिकते तत्त्व को तू देखने जाये तो... आहाहा! अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु की नजर कर, भाई! वहाँ जा, वहाँ तुझे शान्ति होगी। आहाहा! यौवन अवस्था और धन, वह तो सब दुःख के निमित्त और नाशवान। आहाहा! **धन और यौवन अवस्था में क्या तृष्णा कर रहा है।** आहाहा!

भावार्थ :— धन,... लक्ष्मी, **धान्य,...** अनाज, घर। लो सेठ! यह घर तुम्हारा छह लाख का घर। और इन भाई को सत्तर लाख का घर, यह साथ में बैठे। नवनीतभाई का सत्तर लाख का मकान है। हम उनके मकान में उतरे थे न, एक मकान सत्तर लाख का। परन्तु क्या धूल में? आहाहा!

मुमुक्षु : जब तक है, तब तक तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जब तक है, तब तक नाशवान है सब। आहाहा! वह भी साथ में है, उसे प्रयोग करना, वह ममता है। जड़ का प्रयोग आत्मा कर सकता है? आहाहा! ममता करता है कि मैं इसमें रहता हूँ। परन्तु जो मेरा घर है, उसमें रहता नहीं और मैं इसमें रहता हूँ, ऐसा मानता है। आहा! समझ में आया?

धन, धान्य, मनुष्य,... नौकर-चाकर, स्त्री, लड़का-पुत्र, पशु, हाथी, घोड़ा, घर के मकान हो न, **आदिक पदार्थ जो सवेरे के समय देखे थे,...** आहाहा! **वे शाम के समय में नहीं दिखते,...** समाप्त हो जाते हैं। **नष्ट हो जाते हैं, ऐसा जगत का ठाठ...** भगवान आनन्द का ठाठ तेरा ठाठ है अन्दर। आनन्द की पूंजी का पुंज तू है। उस पर दृष्टि दे, तू टिकते को देख, नाशवान को देखना छोड़ दे। मेरा मानना छोड़ दे परन्तु उसे देखना छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? प्रश्न किया था न अभी किसी ने? देखनेवाले को देख। कुछ रखा था, नवरंगभाई ने। सच्ची बात है। देखनेवाला प्रभु है चैतन्यमूर्ति, उसे देख। जिसकी पर्याय है, उसे देख न! आहाहा! यह वस्तु है, वह कहीं आत्मा की पर्याय नहीं और आत्मा की चीज़ नहीं। आहाहा! जिसकी पर्याय है, उसे न देखकर, जो उसमें नहीं, उसकी पर्याय देखने जाता है, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? अकेला परप्रकाशक ज्ञान पर को प्रकाशित करे, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

स्व-परप्रकाशक भगवान जो आत्मा... आहाहा! १७वीं गाथा में नहीं आया? १७-१८। आहाहा! समयसार। भगवान! ज्ञान की पर्याय जो तेरी वर्तमान है, उसमें उसका स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय में स्व ज्ञायक ही ज्ञात होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जो ज्ञान की पर्याय उघाड़—विकास है, उसका स्वभाव तो स्व-परप्रकाशक है। इसलिए वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय में स्व ज्ञायक ही ज्ञात होता है। आहाहा! सूक्ष्म है, रमणीकभाई! ऐसा मार्ग है। कहते हैं कि राग की बात तो छोड़ दे, आहाहा! परन्तु तेरी जो ज्ञान की पर्याय है, उसमें जानने का स्वभाव है, तो ज्ञायक ही ज्ञात होता है। क्योंकि पर्याय का स्वरूप ही स्व-परप्रकाशक है, वह कहाँ जाये? आहाहा! वह पर्याय स्व को ही प्रकाशित करती है, परन्तु अज्ञानी की दृष्टि उसके ऊपर नहीं है, इसलिए वह मानो राग को जानता है, पर को जानता है, ऐसा परप्रकाशक स्वभाव एकान्त करके वह मिथ्यात्व सेवन करता है। ऐसी बात है। राग, दया, दान, व्रत विकल्प आवे, होता है। कहेंगे, श्रावक को आत्मज्ञानसहित वीतरागता का चारित्रपना अंगीकार न करे, तब तक उसे दान, भक्ति, पूजा का भाव उसे होता है। समझ में आया? परन्तु वह सब राग है। यहाँ तो राग को जानना अकेला, वह भी मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

व्यवहाररत्नत्रय का राग, उससे निश्चय होता है, यह तो है नहीं। आहाहा! राग से वीतरागता को सहायता कैसे मिले? प्रभु तो वीतरागस्वरूप है। आहाहा! वह वीतरागस्वरूप राग की सहायता से प्राप्त हो, यह तो नहीं, आहाहा! परन्तु उसकी ज्ञान की पर्याय में अकेला परप्रकाशक हो, इससे स्वप्रकाशक मिले, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि उस पर्याय का सामर्थ्य ही इतना है। आहाहा!

कलश टीका में लिया है कि एक समय की पर्याय को माने, उसने छह द्रव्य को माना। कलश। ज्ञान की एक समय की पर्याय है, उसे छह द्रव्य हैं, उन्हें जानने की सामर्थ्य है, इसलिए पर्याय में छह द्रव्य को उसने जाना है। परन्तु उस पर्याय में ज्ञायक ज्ञात होता है, वह उसकी दृष्टि वहाँ नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा है।

मुमुक्षु : ज्ञायक सन्मुख दृष्टि नहीं तो ज्ञायक किस प्रकार ज्ञात हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञायक ज्ञात होता है, नजर करे तो ज्ञात होता है। ज्ञायक तो है ही पर्याय में, परन्तु दृष्टि वहाँ नहीं है, इसलिए ज्ञायक ज्ञात नहीं होता। दृष्टि पर्याय के ऊपर और पर के ऊपर है। आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : दृष्टि बिना ज्ञात हो तो फिर....

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि बिना ज्ञात नहीं होता। जो है, उसके ऊपर लक्ष्य (जाये नहीं), तब तक ज्ञात कैसे हो? जानने की पर्याय का स्वभाव तो पूरे ज्ञायक का ही हुआ है, रहा है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपने कहा और हमने जाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका जानना पर्याय में तब कहलाता है कि जाननेवाले पर उसकी दृष्टि पड़े, तब उसे जाना कहा जाता है। जानता तो है। आहाहा! ऐसी बातें लोगों को... हें! कठिन लगे। मार्ग तो ऐसा है, बापू! भाई! आहाहा!

पर्याय में... आहाहा! ज्ञान की पर्याय न? उस पर्याय को, जैसे त्रिकाली ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य है, वैसा ही ज्ञान की पर्याय का स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य है। नियमसार में लिया है न, भाई? कि त्रिकाली वस्तु वह स्वयं स्व-परप्रकाशक। अपने को आत्मा जानता है और पर को जानने का भी स्वभाव उसमें है। आहाहा!

त्रिकाली को, हों! आहाहा! इसी प्रकार तेरी वर्तमान पर्याय में, भाई! उसका सामर्थ्य तो इतना ही है। आहाहा! पूरा परमात्मस्वरूप भगवान। यह परमात्मप्रकाश चलता है न! यहाँ नाशवान की दृष्टि छोड़े, ऐसा कहते हैं न! छोड़कर वह पर्याय जिसे जानती है, वह जानने का सामर्थ्य, वहाँ नजर कर। आहाहा! तब वह पर्याय स्व को जाने, ऐसा यथार्थ उसकी दृष्टि में आया। जान तो सकता है। आहाहा! आबाल-गोपाल आत्मा भगवान। उसकी पर्याय वर्तमान ज्ञान की दशा... पर्याय किसे कहना? द्रव्य-गुण (किसे कहना)?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभूति होने पर भी, अर्थात् ज्ञान में ज्ञात होता है, ऐसी अनुभूति। अनुभूति करता है, ऐसा नहीं। ज्ञान की पर्याय में वह ज्ञात होता है, ऐसा होने पर भी, वह ज्ञात होता है, उसके ऊपर उसकी नजर नहीं।

मुमुक्षु : नजर नहीं तो किस प्रकार ज्ञात हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : नजर वहाँ करे तो ज्ञात हो। जाननेवाला जानने में आता है पर्याय में, परन्तु नजर करे, तब जाननेवाला जानने में आता है—ऐसा निश्चित होता है। आहाहा! ऐसी बातें। हें!

मुमुक्षु : भाई का प्रश्न समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं कि अनुभूति तो सबको है, ऐसा कहते हैं। १७-१८ (गाथा) में। अनुभूति कौन सी? ऐसा कहते हैं। अनुभूति में तो आता है, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : उसमें तो है कि सब जानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जानते हैं, परन्तु उसके ऊपर उसकी नजर नहीं, उसका स्वीकार करता नहीं। कितनी? १७-१८। **परन्तु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा...** देखा! वह अनुभूति है न!

मुमुक्षु : वह तो त्रिकाली अनुभूति।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी बात है। **आत्मा आबाल-गोपाल सबको सदाकाल स्वयं ही अनुभव में आता होने पर भी...** अनुभव में आता है, ऐसा कहा। त्रिकाल

अनुभवस्वरूप भगवान अनुभव में ज्ञान की पर्याय में आता होने पर भी **अनादि बन्ध के वश पर (द्रव्यों) के साथ एकत्व के निश्चय से मूढ़ जो अज्ञानी उसे 'यह अनुभूति है, वही मैं हूँ' ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता...** आहाहा! फेरफार पर्यायदृष्टि और द्रव्यदृष्टि का फेरफार कितना, यह बताते हैं। आहाहा! वीतरागमार्ग बापू... आहाहा! तीन लोक के नाथ चैतन्यसूर्य जिसको प्रगट हुआ है, जलहल ज्योति। आहाहा! वह सब प्रगट हुआ, वह स्वरूप में था, उसमें से आया है। आहाहा! कहीं बाहर से आता नहीं। एक न्याय से तो ऐसा है। दूसरे न्याय से, जो प्रगट पर्याय हुई है, वह द्रव्य के आश्रय से हुई नहीं। उसके अपने सामर्थ्य से प्रगट हुई है। आहाहा! ऐसा आत्मा भगवान विराजता है, परन्तु उसके सामर्थ्य की, उसकी शक्ति का सामर्थ्य गुणा का कितना, पर्याय का कितना, उस सामर्थ्य की उसे खबर नहीं। पर में सामर्थ्य करे, उसमें यह कर दिया और यह कर दिया। धूल कर सकता नहीं कुछ। आहाहा! बड़ी मिथ्या शल्य है अन्दर। अर्थात्? पर्याय में अनुभूतिस्वरूप भगवान सदा ही अनुभव में-ज्ञान में ज्ञात होने पर भी। ऐसा। अनुभव में अर्थात् ज्ञान में ज्ञात होने पर भी।

मुमुक्षु : अनुभूति नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभूति नहीं, परन्तु पर्याय का स्वभाव है न प्रगट। स्वभाव है, वह ज्ञान में आता है। पर्याय का स्वभाव है तो ज्ञान उसका आता ही है। परन्तु उसकी दृष्टि उसके ऊपर नहीं है, पर्याय के ऊपर दृष्टि है। आता होने पर भी नहीं आता, उसे मानता है। आहाहा! ऐसी वस्तु है। आहाहा! देखो तो सही! कहीं मिले ऐसा नहीं, ऐसा वीतराग भगवान आत्मा।

धन और यौवन नाशवान, बापू! आहाहा! यह जवानी झोला खाये, वृद्धावस्था आकर खड़ी रहेगी, भाई! आहाहा! मुख फटा रहेगा, हड्डियाँ ऐसे होंगी। मुख में से लार पड़ेगी। आहाहा! बापू! वह तो नाशवान चीज़ है न, भाई! अविनाशी भगवान आत्मा पर्याय में आने पर भी, पर्याय में आता है—ऐसा उसकी नजर में स्वीकार नहीं है।

मुमुक्षु : नजर में आ रहा है....

पूज्य गुरुदेवश्री : आ रहा है, तो भी उसे स्वीकार नहीं। आहाहा! ऐसी बात है

कहाँ? हें! आहाहा! दिगम्बर जैनदर्शन के अतिरिक्त यह बात कहीं है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भगवान के शास्त्र में है न! आहाहा! है न, देखो!

जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा... आहाहा! ऐसी तो भाषा प्रयोग की है। अनुभूतिस्वरूप भगवान त्रिकाल, हों! ७३ गाथा में नहीं कहा? भाई! ७३ में। कहा है, बहुत बार कहा है। अनुभूति षट्कारक से पार होने पर भी उससे... ७३, लो। षट् **कारकों के समूह की प्रक्रिया से पार उतरी हुई जो निर्मल अनुभूति...** यह त्रिकाली। सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है न। कहा था वह। जब दीक्षित होना चाहता है न? प्रवचनसार। स्त्री से कहता है, हे शरीर को रमानेवाली स्त्री! तू मेरे आत्मा को नहीं रमा सकती, भाई! आहाहा! आज्ञा दे माँ, मुझे आज्ञा दे। आहाहा! मेरी अनादि की अनुभूति है, उसके पास मैं जाना चाहता हूँ। आहाहा!

यह थोड़ा तो वैराग्य की बातें की नहीं थी? भर्तृहरि की। तुम थे अभी? भर्तृहरि बड़ा मालवा का अधिपति, ९२ लाख मालवा का अधिपति। उसे खबर पड़ती है कि अरे रे! मैं एक बड़ा राजा। मेरा भाई... अरेरे! मेरी स्त्री इस घुड़सवार के साथ? आहाहा! यह क्या? 'देख्या नहिं कुछ सार जगत में, देख्या नहिं कुछ सार, प्यारी मेरी रानी पिंगला अश्वपाल को यार।' आहाहा! अरे! यह संसार असार। आहाहा! दृष्टि की खबर नहीं, परन्तु वैरागी। उसका गुरु कहता है, राजन्! पिंगला से आहार लेकर आओ। जाओ, जिसे तूने छोड़ा, उसके पास जा। आहाहा! उसे तो अपमान... अपमान हो गया था। हे राजन्! मैंने कुछ किया नहीं। भिक्षा रे दे ने मैया पिंगला। आहाहा! प्रभु! मुझे माँ न कहो। माता! मेरे गुरु ने मुझे आहार लेने को कहा है, जमात चली जाती है। तू भिक्षा दे न मैया! आहाहा! वह कैसी स्थिति होगी। वह जब नाटक में वर्णन करते हैं... अभी तो यह सब फिल्म-बिल्म कुकर्म कर डाले। उस समय तो नाटक वैरागी। आहाहा! वह जिसके साथ सैकड़ों वर्ष भोग लिये हैं, उसे जाकर कहता है, माता! माँ पिंगला! मुझे

आहार दे, मेरे गुरु ने कहा है। राजन्! माँ न कहो। मैं तो आज उदास हूँ, कुछ बनाया नहीं। 'खीर रे बनाऊं एक क्षण में', दूसरा तो कुछ नहीं, राजन! मैं खीर बनाऊँ दूध की, खाकर जाओ। रुकने का समय नहीं है। आहाहा! सेठ! रुकने का समय नहीं, माँ! देना हो तो दे कुछ भी हो तो, नहीं तो जमात चली जाती है, मैं चला जाता हूँ। दृष्टि की खबर नहीं परन्तु वैराग्य तो अन्दर इतना। आहाहा! बहुत नाटक देखे हैं न, ऐसे सब वैराग्य के बहुत देखे हुए हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! आहाहा! पर्याय में षट्कारक का परिणमन जो है निर्मल का, वर्तमान पर्याय में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण—ऐसी एक समय की पर्याय का परिणमन है कारकों का, उससे भिन्न अनुभूति भगवान त्रिकाल, वह अनुभूति है। आहाहा! जिसकी पर्याय में अनुभव है, वह द्रव्य स्वयं अनुभवस्वरूप त्रिकाल है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा, यहाँ कहा न, देखो न! **निर्मल अनुभूति, उस अनुभूतिमात्रपने से शुद्ध हूँ...** आहाहा! पार को प्राप्त, वापस, हों! षट्कारक से पार को प्राप्त। आहाहा! प्रक्रिया से पार। आहाहा! यह वह बात है! प्रभु! परन्तु षट्कारक द्रव्य-गुण में है न शक्तिरूप से, स्वभावरूप से, सत्त्वरूप से? तो पर्याय में षट्कारक का परिणमन आता है या नहीं? आहाहा! समझ में आया? उस पर्याय में षट्कारक का निर्मल हो परिणमन। समझ में आया? आहाहा! **पार को प्राप्त जो निर्मल अनुभूति...** आहाहा! त्रिकाल। पर्याय में अनुभूति षट्कारकरूप से परिणमती है, वह तो पर्याय है, परन्तु उसका द्रव्यस्वभाव त्रिकाल अनुभूतिस्वरूप ही है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा भगवान अनुभवस्वरूप प्रभु, स्त्री से कहता है वहाँ प्रवचनसार में (आता है)। आहाहा! शरीर को रमानेवाली स्त्री! मुझे आज्ञा दे। गुरु के पास दीक्षित होने के लिये जाता हूँ। आहाहा! ऐसा नहीं कहा। मैं मेरी अनुभूति त्रिकाल स्त्री है, उसके पास जाना चाहता हूँ। आहाहा! उस समय वैराग्य का सुनते हुए तो ऐसा हो जाता था, मानो इस स्थान में हम होंवे। ऐसा हो जाता है। आहाहा! देखो न! यहाँ अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा, यहाँ कहा, षट्कारक की परिणति से भिन्न अनुभूति भगवान। वहाँ स्त्री को कहा,

मेरी अनुभूति त्रिकाल जो अनुभवस्वरूप भगवान आत्मा... आहाहा! उसके पास जाना चाहता हूँ, आज्ञा दे। हम वन में चले जायेंगे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **पशु आदिक पदार्थ जो सवेरे के समय देखे थे, वे शाम के समय में नहीं दिखते,...** आहाहा! **ऐसा जगत का ठाठ विनाशीक जानकर...** यौवन, धन, घर, स्त्री और परिवार की तृष्णा छोड़, प्रभु! तुझे कहाँ रहना है? कहाँ जाना है? तेरा भविष्य का अनन्त काल कहाँ रहना है तुझे? हें! प्रभु! तुझे रहना है या नहीं? कहाँ रहना है? भाई! अनन्त काल कहाँ रहना है? जहाँ रहना है, वह ध्रुव है, वहाँ तुझे रहना है, प्रभु! तथा राग और मिथ्यात्व में रहेगा तो दुःखी होकर रहेगा अनन्त काल भविष्य में। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! क्या सन्तों ने जगत को प्रसिद्ध किया है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, आहाहा! जगत के धर्म के स्तम्भ, धर्म के धुरन्धर। आहाहा! जिनके एक-एक वाक्य में अन्दर आत्मा तैरता है। आहाहा!

कहते हैं, **पशु आदिक पदार्थ जो सवेरे के समय देखे थे, वे शाम के समय में नहीं दिखते,...** आहाहा! यह तो प्रवीणभाई का दृष्टान्त आया। भाई कहते थे। रात्रि के दस बजे तक तो भाई के साथ बातें करते थे, वजूभाई और हिम्मतभाई। कहो, उसे तो यहाँ तक कहा... आहाहा! फोन आया था। डॉक्टर लेकर आओ। आहाहा! दूसरा फोन आया, देह छूट गयी। आहाहा! देखो यह चीज़, पर्दा। नाशवान का पर्दा तो ऐसा है, बापू! तू किसे टिकाना चाहता है? भाई! आहाहा! यहाँ कहते हैं, जगत के ठाठ, आहाहा! बड़े बँगले और स्त्री, पुत्र और पाँच-पाँच लड़कियाँ विवाहित, एम.ए. में पास हुई, डॉक्टर का। आहाहा! उसमें बैठा हो तो उसे लगे कि आहा! अरे! प्रभु! यह सब नाशवान है, नाथ! यह तेरी चीज़ में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान ने तो यहाँ तक कहा ३८ (गाथा, नियमसार) में, केवलज्ञान और संवर, निर्जरा की पर्याय नाशवान है न प्रभु! आहाहा! आश्रय करनेयोग्य नहीं। नाशवान का आश्रय किया जाता है? आहाहा! यह श्लोक में है। '**जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।**' आहाहा! संवर, निर्जरा, मोक्ष, वह बहितत्त्वं। अब यह तो मिट्टी कहाँ रही। आहाहा! धन, यौवन, लक्ष्मी वह तो बहिर्तत्त्व। बहिर् में बहिर्। आहाहा! पुण्य-पाप के

विभाव बहिर्तत्त्व विभाविक हैं। परन्तु संवर, निर्जरा और मोक्ष धर्म की पर्याय, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय, आहाहा! भगवान! वह नाशवान है। आहाहा! धर्म की पर्याय नाशवान। ऐई! सेठ! एक समय की अवस्था है न! आहाहा!

मुमुक्षु : बहिर्तत्त्व को आत्मा स्पर्शता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पर्शता नहीं। पर्याय को द्रव्य कैसे स्पर्शे? आहाहा! तो फिर इस शरीर को और स्त्री को और पुत्र को छुवे और स्पर्शे, प्रभु! तुझे भ्रमणा है, भगवान! आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ध्रुव और उत्पाद दोनों अलग-अलग चीज़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग-अलग, दोनों अलग है। उत्पाद-व्यय धर्म भिन्न है, ध्रुव का धर्म भिन्न है। आहाहा! १०१ गाथा में यहाँ तक लिया, १०१ प्रवचनसार। उत्पाद, वह व्यय की अपेक्षा से नहीं। शैली तो देखो! परवस्तु की अपेक्षा से नहीं परन्तु उत्पाद को व्यय की अपेक्षा नहीं। व्यय को उत्पाद की अपेक्षा नहीं, उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं, ध्रुव को उत्पाद की अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसा निरपेक्ष स्वयंसिद्ध तत्त्व भगवान विराजता है न, भाई! अब यह विवाद करे। क्या करे, भाई! उसे सुनने को मिला नहीं न।

मुमुक्षु : गुरुदेव! उत्पाद, व्यय बिना नहीं। ध्रुव, उत्पाद बिना का नहीं, ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पर से भिन्न सिद्ध करने के लिये (बात है)। 'पज्जय विहुत्तं दव्वं।' पंचास्तिकाय में ऐसा आता है, पर्याय बिना का द्रव्य नहीं, द्रव्य बिना की पर्याय होती नहीं। वह सब खबर है न! वह तो पर से भिन्न सिद्ध करने के लिये द्रव्य, पर्याय विजुतं, ऐसा। परन्तु अन्दर से भिन्न सिद्ध (करना), सत् है न? तीनों सत् है न? है उसे, है उसे हेतु नहीं हो सकता। समझ में आया? आहाहा! वस्तु है, उसका कर्ता कौन? उसका हेतु दूसरा कौन? उसी प्रकार पर्याय है, उसे हेतु दूसरा कौन? उस समय की वह पर्याय स्वयं की अपेक्षा से है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा स्वरूप है। अरे! भगवान के घर की बात तो ऐसी है, भाई! लोगों को बेचारों को बाहर चढ़ा दिया है न!

इसलिए (कहते हैं), वे तो भ्रष्ट है सोनगढ़। अरे बापू! ऐसा रहने दे, बापू! तुझे नुकसान होगा, भाई! इसके नुकसान के फल बापू! तुझे कठोर पड़ेंगे, भाई! दुनिया में रास आ जायेगा अभी। पुण्य के कारण, हों! आहाहा!

देखो न! **शाम के समय में नहीं दिखते, नष्ट हो जाते हैं, ऐसा जगत का ठाठ विनाशीक जानकर इन पदार्थों की तृष्णा छोड़...** यहाँ दृष्टि की भावना कर और यह दृष्टि छोड़, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **और श्रावक का तथा यति का धर्म स्वीकार कर,...** यह तो समकितसहित की बात है, हों! जिसे ऐसा भान, प्रतीति हो गयी है अन्दर से, अब उसे कहते हैं कि आगे जा न, बढ़ न, बापू! तब वह कहीं श्रावक के और साधु के व्रत आवे, इसलिए गुणस्थान पाँचवाँ, छठवाँ हो जाये, ऐसा नहीं है। बहुत से ऐसा कहते हैं न। बदला सब, परन्तु अटककर पड़े हो तुम वहाँ। क्या पाँचवाँ छठवाँ? व्रत के विकल्प आवे, इसलिए आ जाये, ऐसा है? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **श्रावक का तथा यति का धर्म स्वीकार कर,...**

मुमुक्षु : धर्म शब्द प्रयोग किया है, व्रत नहीं प्रयोग किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, धर्म स्वीकार कर। धर्म में फिर आयेगा, ऐसा कर व्यवहार। समाधिशतक में आता है न? धूप में बैठने के बदले छाया में बैठना ठीक है। इसी प्रकार अव्रत में रहने के बदले व्रत में रहना, वह छाया है। परन्तु व्रत में छाया कब कहलाये? कि जब अन्दर उसे गुणस्थान की शान्ति बढ़ गयी है पाँचवें और छठवें की, तब उसके व्रत के विकल्प का व्यवहार कहलाता है। आहाहा! अरेरे! क्या है? व्रत अर्थात् यह व्रत लिये, वह छाया—विकल्प, वह छाया है? व्रत किसे होते हैं? कि जिसे अन्दर शान्ति बढ़ गयी है, दूसरे कषाय के अभाव की। आहाहा! उसे व्रत होते हैं।

मुमुक्षु : व्रत का अभ्यास करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभ्यास किस प्रकार करे? अन्दर अपना अभ्यास करे या इसका अभ्यास करे विकल्प का? सूक्ष्म बात है, भाई! इस काल में तो... बापू! आहा! गुणस्थान की दशा उसमें यह विकल्प होता है, उसकी बात करते हैं। देखो! व्रत लेकर बैठे। परन्तु व्रत किसे? आहाहा! जिसे भगवान पूर्ण शक्तिवान, भगवान पूर्ण सामर्थ्यवान

प्रतीति में, अनुभव में, ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय होकर भासित हुआ है, उसे अब स्थिर होने के लिये, आगे स्थिर होता है थोड़ा तो उसे श्रावक के व्रत के विकल्प होते हैं। विशेष स्थिर होता है तो उसे महाव्रत के विकल्प होते हैं। आहाहा! स्व का आश्रय न ले और पंचम गुणस्थान आ जाये विकल्प द्वारा (ऐसा नहीं), ऐसी बात है भाई! समझ में आया? महाव्रत के और बारह व्रत के विकल्प हुए, परन्तु स्व का आश्रय न हो तो हो गया, वह तो थोथा हुआ। और वह विकल्प आया, इसलिए स्व का आश्रय होता है, (ऐसा नहीं है)। व्यवहार से ऐसा कहा जाता है कि पंचम गुणस्थान, चौथे गुणस्थान में साधुपने के व्रत का विचार करे। गुरु दीक्षा दे, वह भी ले। गुणस्थान तो चौथा, पाँचवाँ है। उसमें व्रत के विकल्प आये, परन्तु यदि आश्रय वापस उग्र नहीं किया तो गुणस्थान चौथा और पाँचवाँ रह गया, छठवाँ नहीं आया। समझ में आया? ऐसी बातें सब।

मुमुक्षु : चौथे गुणस्थान में द्रव्यलिंग का अभ्यास नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंग है। द्रव्यलिंग का अभ्यास नहीं, द्रव्यलिंग होता है। अभ्यास है, इसलिए छठवाँ होता है, ऐसा नहीं। अन्दर उग्र आश्रय करना चाहिए, (वह नहीं करता)। यह भी क्या, ग्यारह अंग का जानपना करे, पंच महाव्रत ले, परन्तु यह स्व का आश्रय न करे तो हो गया। वह भगवान की भेंट न करे अन्दर में। आहाहा! ज्ञान, वह ज्ञान नहीं; व्रत, वह व्रत नहीं। हें! ऐसा है।

श्रावक का तथा यति का धर्म स्वीकार कर, धन यौवन में क्या तृष्णा कर रहा है। आहाहा! इस पैसे की धूल में तृष्णा करे। आहाहा! **तो क्या करे?** व्यवहार... **निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक जो यति...** श्रावक हुआ है आत्म—आश्रय में, परन्तु मुनि नहीं हो सकता। हें?

मुमुक्षु : जल के बुदबुदे के समान....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, **जल के बुलबुलपने के समान क्षणभंगुर हैं।** जल में बबूला उठता है न? बबूला उसके बाद फूट जायेगा। गोटो उठे ऐसे पानी में मिलता जाये ऐसे सफेद। हें! एकदम फूट जाये। इसी प्रकार यह सब यौवन और धन जल के बुलबुले समान क्षणभंगुर हैं। आहाहा! परन्तु भाई हमारे पास तो पच्चीस, पचास, सौ

वर्ष रहते हैं, क्षणभंगुर कहाँ है ? अरे ! प्रभु ! नहीं रहते, तुझे खबर नहीं। वह तो बदलती पर्याय रहती है, वह तुझे खबर नहीं। ऐसा का ऐसा तुझे लगा करता है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कोई प्रश्न करे कि गृहस्थी धन की तृष्णा न करे... गृहस्थी हो यहाँ। वजन यहाँ है। **धन की तृष्णा न करे तो क्या करे ? उसका उत्तर—निश्चयव्यवहाररत्नत्रय के आराधक जो यति...** आहाहा ! देखो ! यहाँ व्यवहार का आराधक कहा। यहाँ निश्चय का आराधन है, उसे विकल्प में व्यवहार के आराधन का आरोप दिया है। आहाहा ! समझ में आया ? **निश्चयव्यवहाररत्नत्रय के आराधक...** जो मुनि धर्मात्मा सन्त आनन्दकन्द में रहनेवाले। आहाहा ! जिन्हें प्रचुर स्वसंवेदन है। आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन है, उन्हें मुनि कहा जाता है। आहाहा ! ऐसे मुनियों को **उनकी सब तरह गृहस्थ को सेवा करनी चाहिए,...** ऐसा भाव उस समय होता है, ऐसा। शुभभाव। **चार प्रकार का दान देना,...** होता है न ! व्यवहार का अधिकार आवे, वहाँ ऐसा ही आता है। आहाहा ! पद्मनन्दिपंचविंशति में आता है, अरे ! जिसके घर में सन्तों को आहार नहीं, उस गृहस्थाश्रम को पानी में डुबो दे, पानी में डुबो दे। आहाहा ! उसे मुनि की भावना, मुनिपने की भावना है। मुनिपना हो नहीं सकता, इसलिए मुनिपने की सहायता में ऐसे दानादि के भाव होते हैं। आहाहा ! वहाँ तक भी कहा जाता है कि जिसने दान दिया, वह मोक्षमार्ग दिया। निमित्त से कथन आता है। आहाहा ! **चार प्रकार का दान देना,...** है न ?

धर्म की इच्छा रखनी,... अर्थात् चारित्र प्रगट हो, उसकी भावना रखना। आहाहा ! छहढाला में आता है न ? 'चारित्रमोह वश लेश न संयम, तो भी सुरनाथ जजै हैं।' छहढाला में आता है। जिसे सम्यग्दर्शन आत्मा के आनन्द का अनुभव है, आहाहा ! वह चारित्र मोह के उदय के वश होता है। उसके कारण से नहीं, हों ! चारित्रमोह के उदय के वश के कारण चारित्र जरा भी नहीं है, तो भी सुरनाथ—इन्द्र उसे पूजते हैं। आहाहा !

मुमुक्षु : संयम धार सके नहीं, परन्तु संयम धारण भी उर चटाचटी।

पूज्य गुरुदेवश्री : चटाचटी वह उसमें (भजन में)। छहढाला में ऐसा आता है—चारित्रमोह वश लेश न संयम, तो भी सुरनाथ जजै हैं। लेश न संयम, यह कहा न ! आहाहा !

धर्म की इच्छा रखनी,... देखो! भावना तो शुद्ध चैतन्य के निर्मल होने की भावना रखना। **धन की इच्छा नहीं करनी।** तो क्या करना इन सबका? रमणीकभाई! दुकान बन्द करना? यह सब करोड़पति बैठे, क्या करना, लो? कौन था करोड़पति? जड़ का पति आत्मा होता है।

मुमुक्षु : एक ओर से आप ही कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पहिचानने के लिये कहा। आहाहा!

जो किसी दिन प्रत्याख्यान की चौकड़ी के उदय से श्रावक के व्रत में भी है,... देखा! **तो देव पूजा, गुरु की सेवा, स्वाध्याय, दान, शील, उपवासादि अणुव्रतरूप धर्म करे,...** उस व्यवहार को धर्म कहा—पुण्य को। देव पूजा। सम्यग्दर्शनसहित की बात है, हों! यह तो स्वीकार हो गया है, पहले से, अब यह करे अधिक, ऐसा कहते हैं। देव पूजा, भगवान की पूजा, गुरु की सेवा, शास्त्र का स्वाध्याय, दान हमेशा करना। दान... दान। राग घटाकर दान करना। शील—ब्रह्मचर्य, उपवासादि तप, अणुव्रतरूप धर्म कर। आहाहा! **और जो बड़ी शक्ति होवे, तो सब परिग्रह त्यागकर यति के व्रत धारण करके...** आहाहा! यति के व्रत धारण करके फिर करना क्या? ऐसा कहते हैं। **निर्विकल्प परमसमाधि में रहे।** आहाहा! रागरहित आत्मा की शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... आधि, व्याधि, उपाधि से रहित समाधि। वह बाबा कहता है, वह समाधि नहीं, हों! आहाहा! आधि अर्थात् मन के संकल्प-विकल्प; व्याधि अर्थात् शरीर का रोग; उपाधि अर्थात् डॉक्टरपना और वकालतपना बाहर में रुके वह। उपाधि, व्याधि, आधि, समाधि। तीनों से रहित वह समाधि। आहाहा! लकड़ी कहीं गयी है सफेद। आज लाया है। कौन जाने दिखती नहीं, आज नहीं दिखाई दी, आनेवाली थी।

निर्विकल्प परमसमाधि में रहे। आहाहा! आनन्द की खान में अन्दर में डुबकी मारकर रहे, कहते हैं। इसका नाम मुनिपना है। **यति को सर्वथा धन का त्याग और गृहस्थ को धन का प्रमाण करना योग्य है। विवेकी गृहस्थ धन की तृष्णा न करें।** समझ में आया? **धन, यौवन असार है,...** आहाहा! **यौवन अवस्था में विषय तृष्णा न करें,...** आहाहा! शरीर की जवान अवस्था, पाँच इन्द्रियाँ पुष्ट हों। बापू! वह तो जड़ है

न, भगवान! आहाहा! वह मिट्टी की श्मशान की राख है सब, वह तो श्मशान की राख है। **यौवन असार है, यौवन अवस्था में विषय तृष्णा न करें, विषय का राग छोड़कर विषयों से पराङ्मुख जो वीतराग निजानन्द...** आहाहा! परसन्मुख के आश्रय के विषय का आश्रय छोड़ दे। आहाहा! **वीतराग निजानन्द एक अखण्ड स्वभावरूप शुद्धात्मा...** लो। वहाँ से परान्मुख, यहाँ से सन्मुख। किसके सन्मुख? वीतराग निजानन्द एक अखण्ड स्वभाव। शुद्धात्मा कैसा है? वीतराग निजानन्द, निज आनन्द वीतराग एकरूप वस्तु भगवान, अखण्ड—गुण-गुणी का भेद भी नहीं, अखण्ड ऐसा स्वभावरूप शुद्धात्मा। ऐसे स्वभावस्वरूप रूप शुद्धात्मा **उसमें लीन होकर हमेशा भावना करनी चाहिए।** कल्पना करे, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? भावना अर्थात् विकल्प किये... आतमभावना भावता जीव लहे केवलज्ञान रे। यह नहीं। भावना तो उसे कहते हैं कि आनन्दस्वरूप भगवान में एकाग्रतारूप भावना, वह भावना है। भाव ऐसे विकल्प उठाया कि ऐसा हूँ, वह तो विकल्प हुआ, यह कहाँ भावना है? समझ में आया? आहाहा!

वीतराग निजानन्द एक अखण्ड स्वभावरूप शुद्धात्मा उसमें लीन होकर हमेशा भावना करनी चाहिए। हमेशा उसमें रहना चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा! १३२ (गाथा) हुई। १३३ आयेगी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १३३

अथ धर्मतपश्चरणरहितानां मनुष्यजन्म वृथेति प्रतिपादयति–

२५६) धम्मु ण संचिउ तउ ण किउ रुक्खेँ चम्ममएण।
खज्जिवि जर–उद्देहियए णरइ पडिव्वउ तेण।।१३३।

धर्मो न संचितः तपो न कृतं वृक्षेण चर्ममयेन।
खादयित्वा जरोद्रेहिकया नरके पतितव्यं तेन।।१३३।।

धम्मु इत्यादि। धम्मु ण संचिउ धर्मसंचयो न कृतः, गृहस्थावस्थायां दानशीलपूजोपवासादिरुपसम्यक्त्वपूर्वको गृहिधर्मो न कृतः, दर्शनिकव्रतिकाधेकादशविधश्रावकधर्मरुपो वा। तउ ण किउ तपश्चरणं न कृतं तपोधनेन तु समस्तबहिर्द्रव्येच्छानिरोधं कृत्वा अनशनादिद्वादशविधतपश्चरणबलेन निजशुद्धात्मध्याने स्थित्वा निरन्तरं भावना न कृता। केन कृत्वा। रुक्खें चम्मएण वृक्षेण मनुष्यशरीरचर्मनिर्वृतेन। येनैवं न कृतं गृहस्थेन तपोधनेन वा णरइ पडिव्वउ तेण नरके पतितव्यं तेन। किं कृत्वा। खज्जिवि भक्षयित्वा। कया कर्तृभूतया। जरउद्देहियए जरोद्रेहिकया। इदमत्र तात्पर्यम्। गृहस्थेनाभेदरत्नत्रय–स्वरुपमुपादेयं कृत्वा भेदरत्नत्रयात्मकः श्रावकधर्मः कर्तव्यः, यतिना तु निश्चयरत्नत्रये स्थित्वा व्यावहारिकरत्नत्रयबलेन विशिष्टतपश्चरणं कर्तव्यं नो चेत् दुर्लभपरंपरया प्राप्तं मनुष्यजन्म निष्फलमिति।।१३३।।

आगे जो धर्म से रहित हैं, और तपश्चरण भी नहीं करते हैं, उनका मनुष्य–जन्म वृथा है, ऐसा कहते हैं–

यदि चर्ममय तन–तरु द्वारा धर्मार्जन तुमने न किया।
जरारूप दीमक इसको भक्षण कर नरकों में डाले।।१३३।।

अन्वयार्थ :– [येन] जिसने [चर्ममयेन वृक्षेण] मनुष्य शरीररुपी चर्ममयी वृक्ष को पाकर उससे [धर्मः न कृतः] धर्म नहीं किया, [तपो न कृतं] और तप भी नहीं किया, उसका शरीर [जरोद्रेहिकया खादयित्वा] बुढ़ापारुपी दीमक के कीड़ेकर खाया जायगा, फिर [तेन] उसको मरणकर [नरके] नरक में [पतितव्यं] पड़ना पड़ेगा।

भावार्थ :– गृहस्थ अवस्था में जिसने सम्यक्त्वपूर्वक दान, शील, पूजा, उपवासादिरुप गृहस्थ का धर्म नहीं किया, दर्शनप्रतिमा, व्रतप्रतिमा आदि ग्यारह प्रतिमा

के भेदरुप श्रावक का धर्म नहीं धारण किया, तथा मुनि होकर सब पदार्थों की इच्छा का निरोध कर अनशन वगैरः बारह प्रकार का तप नहीं किया, तपश्चरण के बल से शुद्धात्मा के ध्यान में ठहरकर निरंतर भावना नहीं की, मनुष्य के शरीररुप चर्ममयी वृक्ष को पाकर यती का व श्रावक का धर्म नहीं किया, उनका शरीर वृद्धावस्थारुपी दीमक के कीड़े खावेंगें, फिर वह नरक में जावेगा। इसलिये गृहस्थ को तो यह योग्य है, कि निश्चयरत्नत्रय की श्रद्धाकर निजस्वरुप उपादेय जान, व्यवहार रत्नत्रयरुप श्रावक का धर्म पालना। और यती को यह योग्य है, कि निश्चयरत्नत्रय में ठहरकर व्यवहाररत्नत्रय के बल से महा तप करना। अगर यती का व श्रावक का धर्म नहीं बना, अमुव्रत नहीं पाले, तो महा दुर्लभ मनुष्य-देह का पाना निष्फल है, उससे कुछ फायदा नहीं।।१३३।।

वीर संवत् २५०२, माघ शुक्ल ४, रविवार
दिनांक- २३-०१-१९७७, गाथा - १३३, १३४, प्रवचन-१९४

---

१३३ गाथा। **आगे जो धर्म से रहित है...** धर्म से अर्थात् सम्यग्दर्शनसहित गृहस्थाश्रम में दानादि व्यवहारधर्म, समकित निश्चयधर्म, उससे जो रहित है। आहाहा! **और तपश्चरण भी नहीं करते हैं,...** तपश्चरण शब्द से मुनिपना यति दिगम्बर सन्त। आहाहा! वह **नहीं करते हैं, उनका मनुष्य-जन्म वृथा है,...** आहाहा! चाहे तो दुनिया में इज्जत, कीर्ति प्राप्त करना हो, वह तो वृथा है, थोथा है। जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान की प्रतीति अनुभवसहित जिसे श्रावकपना गृहस्थाश्रम में रहकर व्रतादि, दानादि नहीं किये, आहाहा! और या मुनिपना लेकर आत्मध्यान में नहीं रहा, आहाहा! उसका मनुष्यपना वृथा है। आहाहा! उसकी कुछ कीमत है नहीं। आहाहा! यह कहते हैं।

२५६) धम्मु ण संचिउ तउ ण किउ रुक्खेँ चम्ममएण।
खज्जिवि जर-उद्देहियए णरइ पडिव्वउ तेण।।१३३।।

अन्वयार्थ—जिसने मनुष्य शरीररूपी चर्ममयी वृक्ष को पाकर... यह चमड़े का वृक्ष है। आहाहा! है १३३? मनुष्य शरीररूपी चर्म—चमड़े का वृक्ष प्राप्त करके, आहाहा! **'धर्मः न कृतः' धर्म नहीं किया,...** स्पष्टीकरण करेंगे। **और तप भी नहीं किया, उसका शरीर बुढ़ापारूपी दीमक के कीड़ेकर खाया जायेगा,...** समझ में आया? **फिर जिसको**

मरणकर नरक में पड़ना पड़ेगा। आहाहा! यह बहुत पैसे इकट्ठे किये और बहुत इज्जत इकट्ठी की, वह तो वृथा पाप किये हैं, कहते हैं। आहाहा! अरेरे! मनुष्यपना पाकर, चमड़े का वृक्ष है यह तो एक। आहाहा! उसमें सम्यग्दर्शन। यह कहेंगे, देखो!

भावार्थ—गृहस्थ अवस्था में जिसने सम्यग्दर्शनपूर्वक,... अकेले दया, दान, शील आदि व्यवहार तो अनन्त बार किये। आहाहा! संस्कृत में है, हों! सम्यग्दर्शनपूर्वक। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप का अनुभव करके प्रतीति, ऐसा जो सम्यग्दर्शन। आहाहा! उस सम्यग्दर्शनपूर्वक दान, शील, पूजा, उपवासादि श्रावक की क्रिया जो छह आवश्यक है न? वह गृहस्थाश्रमधर्म नहीं किया। आहाहा! परन्तु सम्यग्दर्शनसहित की बात है, हों! सम्यग्दर्शन न हो और व्रत, तप करे, वह कुछ वस्तु नहीं, वृथा है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा स्वयं अनन्त गुण का धाम, उसका जिसे स्वीकार अन्तर्दृष्टि में आया है, जिसकी निमित्तबुद्धि, रागबुद्धि और पर्यायबुद्धि छूट गयी है। आहाहा! उसे यहाँ सम्यग्दर्शन कहा जाता है। उस सम्यग्दर्शनपूर्वक दान, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, दान, आहाहा! शील, ब्रह्मचर्य एकदेश, भगवान की पूजा। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर और उनकी प्रतिमा की पूजा। आहाहा! **उपवासादिरूप गृहस्थ का धर्म नहीं किया,...** आहाहा! बाद की गाथायें हैं न, एकदम दर्शनपूर्वक व्यवहारधर्म और चारित्रपना—मुनिपना अंगीकार करना, इसके बिना मनुष्यपना वृथा है। आहाहा!

दर्शनप्रतिमा,... देखो! श्रावक की ग्यारह प्रतिमा है न, उसमें पहली दर्शनप्रतिमा है। है पंचम गुणस्थान, वह दर्शनप्रतिमा। परन्तु सम्यग्दर्शन निरतिचार और व्रतादि के परिणाम हो, परन्तु वे निरतिचार नहीं, इसलिए दर्शनप्रतिमा कहने में आता है। आहाहा! **व्रतप्रतिमा...** दूसरी व्रतप्रतिमा अर्थात् बारह व्रतादि, दूसरे कषाय का नाश होकर, अनन्तानुबन्धी का नाश तो सम्यग्दर्शन होने पर होता है। उसके बाद अप्रत्याख्यानी कषाय का नाश होकर बारह व्रत के विकल्प का जो व्रत है, आहाहा! उसे व्रतप्रतिमा कहते हैं। यह तो अभी तो महँगा हो पड़ा, बापू! आहाहा! सम्यग्दर्शनपूर्वक की बात है, हों! सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं और यह व्रत और प्रतिमा ले लेवे, वह तो बालतप और बालव्रत है। आहाहा! भूमिका में शान्ति बढ़ी नहीं। आहाहा! जिसकी भूमिका पर्याय में शान्ति... शान्ति अकषाय स्वभाव प्रगटरूप से शान्ति अकषाय पर्याय हुई नहीं,

उसे व्रत और प्रतिमा वह कुछ हो नहीं सकते, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ग्यारह प्रतिमा के भेदरूप श्रावक का... प्रकार। **श्रावक का धर्म नहीं धारण किया, तथा मुनि होकर सब पदार्थों की इच्छा का निरोध कर...** आहाहा! शुद्धोपयोग को ग्रहण नहीं किया। आहाहा! **अनशन वगैरह बारह प्रकार का तप नहीं किया, तपश्चरण के बल से शुद्धात्मा के ध्यान में ठहरकर...** तप आदि है, वह निमित्त है। उसके बल से अन्दर में शुद्धात्मा में स्थिर हो। आहाहा! शुद्ध आत्मा पवित्र वीतरागमूर्ति भगवान साक्षात् परमात्मा है। उसमें ध्यान में स्थिर होकर। आहाहा! पंच महाव्रत की क्रिया में स्थिर होकर, यह बात नहीं ली। आहाहा! **निरन्तर भावना नहीं की,...** आहाहा! सवेरे आया था, नहीं? सततं सदा। सवेरे आया था। भगवान आनन्दस्वरूप के प्रत्यक्ष सम्यग्ज्ञान में भान होकर, आहाहा! जिसने मुनिपना लेकर इच्छा निरोध करके शुद्धात्मध्यान में स्थिर होना। आहाहा! निरन्तर भावना नहीं की। शुद्धस्वभाव की भेंट करने के बाद भी अन्दर में रमणता—स्थिरता नहीं की। आहाहा! भारी मार्ग ऐसा। आहाहा!

मनुष्य के शरीररूप चर्ममयी वृक्ष को... यह मनुष्य का शरीर चमड़ारूपी वृक्ष है यह तो। आहाहा! यह अवयव खिले सब चमड़े के हैं। वृक्ष को जैसे डालियाँ, पंखुड़ियाँ खिलती हैं न वृक्ष में। आहाहा! इसी प्रकार यह आँख, नाक, कान और शरीर के अवयव चमड़े का वृक्ष है। आहाहा! उसे अपना माने, उसकी तो यहाँ बात है नहीं। समझ में आया? वह तो अभी सम्यग्दर्शन के भी योग्य नहीं, वहाँ चारित्र तो कहाँ से आवे उसे। आहाहा! आत्मा के आनन्द के प्रेम के समक्ष जिसे इन्द्रियों के, पाँच इन्द्रिय के विषय में सुखबुद्धि उड़ गयी है। उल्लसित वीर्य वहाँ स्फुरित हो, यह बात उड़ गयी है। आहाहा! जिसके आनन्दस्वरूप में उल्लसित वीर्य अन्दर स्फुरित होता है। सम्यग्दृष्टि को उल्लसित वीर्य आनन्द में होता है। आहाहा! इस बाहर के सुख में उसकी सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! चाहे तो चक्रवर्ती का राज हो, इन्द्र के इन्द्रासन में समकिती का अवतार हुआ हो, आहाहा! सब में से बुद्धि—हितबुद्धि, ठीकबुद्धि, रुचिबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

शरीररूप चर्ममयी वृक्ष को पाकर यति का व श्रावक का धर्म नहीं किया,

उनका शरीर वृद्धावस्थारूपी दीमक के कीड़े खायेंगे,... आहाहा! वृद्धावस्थारूपी कीड़ा उसे खायेगा। आहाहा! दाँत का ठिकाना न हो, सहारे के बिना बैठ न सके, आँखें जीर्ण हो गयी हो। आहाहा! आँखों में कीड़े पड़े। पीव आता है न। आहाहा! यह तो चमड़े का वृक्ष है। उसमें पीव आयेगा, बापू! वह कहीं आत्मा नहीं। आहाहा! ऐसे ऊँची कोडा जैसी लगे, हिरण की आँखों जैसी। बापू! यह तो कीड़े खायेंगे, कहते हैं। आहाहा! **वृद्धावस्थारूपी दीमक...** दीमक—कीड़ा, **कीड़े खायेंगे...** यह तो ठीक परन्तु **फिर वह नरक में जायेगा।** आहाहा! केवल पाप किये हैं न! स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, व्यापार-धन्धा आदि। आहाहा! मार डाला है इसने आत्मा को। उत्साह से काम लिया है न सब। पर के राग और द्वेष के भाव। आहाहा! प्रभु! तेरा शरीर तो वृद्धावस्थारूपी कीड़े खायेंगे। परन्तु मरकर नरक में जायेगा, हों! बापू! आहाहा! देह तो छूटनेवाली है, कहीं तो रहेगा या नहीं? वह नाश हो ऐसा है आत्मा? आहाहा! उसमें से उड़कर जाना पड़ेगा, बापू! तुझे नरक में। आहाहा!

ब्रह्मचदत्त चक्रवर्ती। छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें हजार। हीरा और माणेक के पलंग, पलंग में सोता हुआ, आहाहा! और रानियाँ ऐसी रूपवान, चमड़ा रूपवान। अरे! भगवान! वह तो चमड़ी है न, नाथ! उसके रूप में मोहित हुआ और स्वरूप में से हट गया। आहाहा! स्वरूप भगवान आत्मा आनन्द है, उसका स्वरूप है, उसमें से भ्रष्ट हुआ और इस शरीर के स्वरूप में मूर्च्छित हो गया। आहाहा! प्रभु! शरीर तो जल जायेगा। आहाहा! नरक में जाना पड़ेगा। आहाहा! यह बात है यहाँ। है? आहाहा!

इसलिए गृहस्थ को तो यह योग्य है कि निश्चयरत्नत्रय की श्रद्धाकर... देखो! अब यह बात तो वापस मुद्दे की ली है। **निश्चयरत्नत्रय की श्रद्धाकर...** स्वरूप आनन्दनाथ परमात्मा, उसकी निजस्वरूप की श्रद्धा, निजस्वरूप का ज्ञान और चारित्र। उसकी श्रद्धा कर, देखा! निजस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की श्रद्धा कर, ऐसा कहते हैं। हें?

मुमुक्षु : संस्कृत में '**स्थित्वा**' लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्थित अर्थात् स्थिर रहकर। यह तो वह का वह है। स्थित कहो या स्थिर रहकर। आहाहा!

गृहस्थ को तो यह योग्य है कि निश्चयरत्नत्रय की श्रद्धाकर निजस्वरूप उपादेय

जान,... स्थित का अर्थ यह है। समझ में आया? आहाहा! १३३ है न? '**रत्नत्रयात्मकः श्रावकधर्मः कर्तव्यः**' देखो, है? '**गृहस्थेनाभेदरत्नत्रयस्वरूपमुपादेयं कृत्वा**' अर्थात् क्या? गृहस्थाश्रम में रत्नत्रय तीन पूर्ण नहीं, परन्तु उसे रत्नत्रय की श्रद्धा बराबर होनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा! '**गृहस्थेनाभेदरत्नत्रयस्वरूपमुपादेयं कृत्वा**' बस। '**भेदरत्नत्रयात्मकः श्रावकधर्मः कर्तव्यः**' ऐसा है। यह स्थित्वा तो दूसरे का है। यह मुनि की बात है, श्रावक की बात नहीं। यहाँ तो श्रद्धा कर्तव्य इतनी पहली बात है। मुनि की लेकर फिर आगे बढ़ेंगे। स्थित्वा, यह बाद में। रत्नत्रय में स्थिर है वह और इस रत्नत्रय में स्थिर नहीं। आहाहा! समझ में आया? १३३ है न? देखो न! '**गृहस्थेनाभेदरत्नत्रयस्वरूपमुपादेयं कृत्वा**' बस। निश्चय आत्मा शुद्ध चैतन्यघन की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें रमणता की श्रद्धा करके। समकित लेना है न! '**मुपादेयं कृत्वा**' प्रगट नहीं। उसे उपादेय '**कृत्वा**' करके। '**भेदरत्नत्रयात्मकः श्रावकधर्मः कर्तव्यः**' ऐसा। निश्चयरत्नत्रय को श्रद्धा में लेकर, फिर व्यवहारधर्म वह करे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन बात है। उसे दया, दान, शील, संयम भाव, छह आवश्यक आते हैं परन्तु उसकी श्रद्धा में निश्चयरत्नत्रय उपादेय है, ऐसा करके व्यवहारधर्म आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

नियमसार में तो यह कहा है, श्रावक को निश्चयरत्नत्रय की भक्ति होती है। आहाहा! भले थोड़ी, परन्तु है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ अनन्त सच्चिदानन्द प्रभु की जिसे रुचि है, उसका जिसे ज्ञान है और उसमें वह स्थिर होता है, इसलिए निश्चयरत्नत्रय की भक्ति उसे भी है। परन्तु यहाँ जरा ऐसा लिया है कि निश्चयरत्नत्रय उसे पूर्ण प्रगट नहीं, इसलिए निश्चयरत्नत्रय की श्रद्धा उसे कर्तव्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् यह कि निश्चयरत्नत्रय अर्थात् शुद्ध आत्मा, वह आदरणीय है, ऐसी श्रद्धा और शुद्धात्मा का ज्ञान, वह आदरणीय है, वह ज्ञान और स्वरूप में रमणता, वह चारित्र—ऐसे निश्चयरत्नत्रय की श्रद्धा उसे उपादेय, कर्तव्य है—ऐसा कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय उपादेय नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में

आया? बापू! मार्ग ऐसा है। यहाँ तो परमात्मप्रकाश है न! आहाहा! अरेरे! इसने ऐसा कुछ किया नहीं और जिन्दगी बाहर में हो...हा, हो...हा। आहाहा! बाद में करूँगा, बाद में करूँगा, अभी जवान अवस्था है, अभी कमा लें, कमाकर, बाप का वासी नहीं खाना, कमाकर ताजा खाना। आहाहा!

मुमुक्षु : बापकमाई से आपकमाई अच्छी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी धूल की कमाई थी! आहाहा! अरेरे! तेरा काल जाता है न, प्रभु! आहाहा!

स्वआश्रय की श्रद्धा, स्वआश्रय का ज्ञान और स्वआश्रय में रमणता, यह उसे पूरी नहीं है, इसलिए उसे तीन की श्रद्धा करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! श्रद्धा में निश्चयरत्नत्रय को उपादेय जानकर श्रद्धा करना। आहाहा! समझ में आया? यह तो मार्ग, बापू! अन्तर्मुख का मार्ग, यह बहिर्मुख से नहीं मिलता—ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसे पहले से गृहस्थाश्रम में निश्चयरत्नत्रय, आहाहा! है? निश्चयरत्नत्रय की परिणति नहीं उसे, मुनि को होती है। इसलिए उसे निश्चयरत्नत्रय उपादेय कृत्वा। आहाहा! आदरणीय तो वह निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान और रमणता पूर्णानन्द के नाथ की वह आदरणीय है, ऐसी श्रद्धा कर। आहाहा! अब यह मूल जो है निश्चय, उसे छोड़कर केवल व्यवहार करे, उसे व्यवहार कहा ही नहीं जाता, वह तो व्यवहाराभास है। आहाहा! बहुत कठिन पड़े, क्या हो? आहाहा! जहाँ मुश्किल से जन्मे, फिर कुछ पढ़े दस वर्ष, पन्द्रह वर्ष, फिर जहाँ बड़ा हो तो कमाने में रुक जाये। आहाहा! उसमें भी स्त्री और पुत्र, आहाहा! मार डाला इसे। रण में, आहाहा! चिल्लाहट मचाकर रोता है रण में। आहाहा! जहाँ भगवान है, वहाँ जाता नहीं। आहाहा! विशिष्टता क्या की है?

निश्चयरत्नत्रय उपादेय कृत्वा। उसका अर्थ यह हुआ कि समझ में आया? गृहस्थ को निश्चयरत्नत्रय, वह उपादेय है। व्यवहार होता है और निश्चयरत्नत्रय की पूर्णता तो मुनि को होती है। तीन—दर्शन, ज्ञान, चारित्र। इससे उसे दर्शन, ज्ञान और चारित्र निश्चयरत्नत्रय को उपादेय करके, वही ग्रहण करनेयोग्य है और वही आदरणीय है। आहाहा! अरे बापू! ऐसा मनुष्यपना मिला, उसका यदि कुछ नहीं किया तो इस तेरे वृक्ष को बुढ़ापा खा जायेगा और मरण करके तू चला जायेगा, बापू! आहाहा! क्योंकि

आत्मा तो टिकनेवाला है। देह छूटा, इसलिए कहीं उसका टिकना चला जाता है? आहाहा! यह बाहर की जंजाल, धन्धा। मार डाला। श्मशान में मर गया। जीवित को जीवित के जीवन को देखा नहीं। जीव का जीवन जीवत्व भगवान का, आहाहा! जीवते, सवेरे आया नहीं था? भावप्राण। आहाहा! ज्ञान, दर्शन, आनन्द के भावप्राण से— भावप्राण से जीवित भगवान को देखा नहीं जीते-जी। आहाहा! वह मरकर नरक में जायेगा कहते हैं, बापू! आहाहा! समझ में आया? उपादेय कृत्वा है न? '**भेदरत्नत्रयात्मकः श्रावकधर्मः कर्तव्यः**' उपादेय तो यह मानना। परन्तु उसे व्यवहार श्रावक का धर्म व्यवहार से उपादेय है, ऐसा इसे जानना। समझ में आया? उपादेय शब्द प्रयोग नहीं किया। व्यवहार श्रावकधर्म कर्तव्य। उस रूप से शुभभाव उसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उपादेय तो ये तीन ही हैं। आहाहा!

चैतन्य चिन्तामणि हीरा भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के रस से भरपूर भरा प्रभु, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता निश्चय स्वआश्रय, उसे ही उपादेय करके व्यवहारधर्म कर्तव्य है। उसे उपादेय करके व्यवहारधर्म आता है। देखा? व्यवहारात्म श्रावकधर्म कर्तव्य है। है न? **व्यवहाररत्नत्रयरूप श्रावक का धर्म पालना।** व्यवहार पालना अर्थात् होता है न, ऐसा कहते हैं। उसे ऐसा होता है। मुनिपना न हो तब तक निश्चयरत्नत्रय को उपादेय करके व्यवहारधर्म करना। ऐसे व्यवहारनय के कथन में तो ऐसा ही आवे न! आहाहा! समझ में आया? कर्तव्य कहा है न? तो पालना कहा।

यति को यह योग्य है... वह गृहस्थ की बात ली। अब मुनि **निश्चयरत्नत्रय में ठहरकर...** आहाहा! उसमें ठहरकर नहीं था। श्रावक को निश्चयरत्नत्रय उपादेय करके, बस। आहाहा! और मुनि को **निश्चयरत्नत्रय में ठहरकर...** यह पर्याय, हों! **व्यवहाररत्नत्रय के बल से महा तप करना।** लो, है? '**व्यवहारिकरत्नत्रयबलेन**' ऐसा पाठ है न अन्दर? वह शुभभाव है न उस जाति का। बारह प्रकार की तपस्या निमित्तरूप से उसमें श्रावक को होती है, उसमें क्या? **अगर यति का व श्रावक का धर्म नहीं बना, अणुव्रत, महाव्रत नहीं पाले, तो महा दुर्लभ मनुष्यदेह का पाना निष्फल है,...** ऐसा मनुष्यदेह अनन्त काल में मिला, उसमें यह नहीं किया तो निरर्थक जायेगा तेरा, बापू! आहाहा! समझ में आया? **मनुष्यदेह का पाना निष्फल है, उससे कुछ फायदा नहीं।** परन्तु यह

सब इज्जत बढ़ी, पैसे बढ़े, स्त्री, पुत्र, पुत्र अच्छी जगह डाले, लड़कियों को—कन्या को अच्छी जगह विवाह किया। वह कुछ किया नहीं ? नुकसान किया है, बापू! तूने आत्मा का नुकसान किया, भाई! आहाहा! हें ?

मुमुक्षु : व्यर्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यर्थ भी नहीं, सफल है नरक के भाव के लिये। आहाहा! धर्म के लिये निष्फल है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। इसलिए कोई पैसेवाला होकर, इज्जतवाला होकर उत्साह करना, वह छोड़ देना।

मुमुक्षु : पैसेवाले को ऐसा मानना कि हम गरीब हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गरीब नहीं, वस्तु गरीब, धनवान आत्मा में कहाँ है ? आहाहा! आत्मा तो अनन्त लक्ष्मी का भण्डार बादशाह है। आहाहा! उस बादशाही पर नजर करके बाहर की बादशाही की रुचि छोड़ दे। आहाहा! आसक्ति रहे परन्तु रुचि छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसका पोषण अन्दर में आ जाये बाहर के आचरण का, इज्जत, कीर्ति, लक्ष्मी, यह सब पसारा, आहाहा! मकान के ऊपर नाम लिखे वापस। अमुकभाई और अमुकभाई। अरे! भाई कहाँ था, बापू ? यह नाम है शरीर का वह कहाँ, वह तो शरीर का नाम, आत्मा को कहाँ नाम है ? नाम वांचे वहाँ, आहाहा! दो-पाँच लाख दिये हों, नाम लिखे धर्मशाला, प्रौषधशाला में, उपाश्रय में या मन्दिर में, लो न! भगवान! वहाँ तू कहाँ गया ? वह नाम तुझे सुनकर, वांचकर हर्ष आता है। तू वहाँ है ? आहाहा! भारी कठिन बातें, बापू! आहाहा!

अरेरे! क्षण में शरीर चला जाये। देखो न यह, प्रवीणभाई अभी रात्रि नौ बजे घूमते थे, कहते हैं। आहाहा! भाई का पत्र आया है न, बहिन के प्रति। आहाहा! हार्ट में दर्द हुआ। आहाहा! बापू! वह तो उसकी पर्याय का काल हो तो होगा ही। उसे कौन रोके ? उसका स्वकाल है। आहाहा! देह छूट जाये। आहाहा! स्त्री, पुत्र को छोड़ा और तड़पे। हाय... हाय... ! कौन है बापू परन्तु तेरा यहाँ ? आहाहा! तेरा है, वह तो तुझमें है। बाहर में तेरा है ? ऐसा भारी मुश्किल भाई गृहस्थाश्रम में। बापू! गृहस्थाश्रम अर्थात् ? उसे धर्म के लिए पूर्ण चारित्र नहीं, परन्तु गृहस्थाश्रम का धर्म समकितसहित स्थिरता का

अंश है, वह तो हो सकता है न? और उसके सहित व्यवहार दया, दान, शील, तप, पूजा, भक्ति होते हैं। आहाहा! जितना निश्चय का आश्रय किया, उतना धर्म और जितने रागादि भाव आये वे पुण्य। दोनों होते हैं। कि जिससे उसे पुण्य की गति में उसे स्वर्ग ही मिले। गृहस्थ श्रावक निश्चयरत्नत्रय की उपादेयपूर्वक स्थिति में व्यवहार दान, पूजा में रहे, वह मरकर देवलोक ही जाता है। आहाहा! समझ में आया? उसे दूसरी गति नहीं हो सकती। आहाहा! और अज्ञानी को कुछ भान नहीं होता, आहाहा! मरता हुए वह दबाव में आ जायेगा। भगवान को भिन्न किया नहीं। आहाहा!

राग और शरीर, आस्रव और अजीव में आत्मा नहीं, आत्मा में वे आस्रव और अजीव नहीं। आहाहा! जिसने आस्रव और अजीव को भिन्न किया नहीं, वह मरते समय आस्रव में एकत्वबुद्धि में दब जायेगा। आहाहा! फिर तड़पेगा का ऐसे। कहीं शरण? कोई दवा लाओ, डॉक्टर को बुलाओ। धूल भी नहीं वहाँ, सुन न अब। आहाहा! उसमें दोनों ओर शूल चढ़े, दायें और बायें ऐसे शूल (दर्द) चढ़े तो, आहाहा! बैठा न जाये, सोया न जाये। आहाहा! बापू! वह तो जड़ का धर्म है। आहाहा! कहा न? बुढ़ापारूपी दीमक—कीड़ा। आहाहा! इस रूपवान शरीर में कीड़े पड़ेंगे, बापू! समझ में आया? आहाहा!

चक्रवर्ती, सनतकुमार चक्रवर्ती। आहाहा! ऐसे रूपवान शरीर। देव आकर कहे, ओहोहो! शरीर बहुत रूपवान। सुन्दर अवयव सब व्यवस्थित, ऐसे मुख और ऐसे मुख नहीं, मुख व्यवस्थित, कान व्यवस्थित। आहाहा! इन्द्र-देव आकर बहुत देखते हैं। आहाहा! उसे जरा रूप का मद आ जाता है। देवों! अभी नहीं, मैं नहाकर—स्नान करके जब बैठूँ, तब देखने आना। आहाहा! वे देव आये देखने और दीवानखाना में बैठे थे। सिंहासन, हीरा-माणेक के सिंहासन में ऐसे बैठा था। उसे ऐसा लगा कि देखो अब मुझे। देवों ने ऐसा किया। ऐ बापू! तेरा रूप सड़ गया, कीड़े पड़कर अब (सड़ गया)। आहाहा! वहाँ माँस में न पड़े तो क्या आत्मा में पड़ें? आहाहा! समझ में आया? भाई! तेरा शरीर कीड़े खायेंगे। यहाँ वृद्धावस्थारूप कीड़ा लिया है, देखो न! आहाहा!

व्यवहाररत्नत्रयरूप धर्म करना। **और यति को यह योग्य है कि निश्चयरत्नत्रय में ठहरकर...** आहा! भाषा देखो! गृहस्थाश्रम में निश्चयरत्नत्रय का स्थिर होना नहीं

परन्तु निश्चयरत्नत्रय की श्रद्धा करके व्यवहारधर्म में वह आता है। दया, दान, शील में। आहाहा! समझ में आया? और ऐसे व्रतादि मुनिपना तो मनुष्यपने में होता है, अन्यत्र तो होता नहीं। नरक और स्वर्ग में होता नहीं। ऐसा धारकर कोई ले लो व्रत। परन्तु समकित बिना वे तेरे व्रत कहाँ थे? यह अभी होली सुलगी है न। चारित्र, वह मुनिपने में, मनुष्यपने में है, नरक में नहीं, स्वर्ग में नहीं। बापू! बात तो ऐसी है परन्तु इससे जिसे ऐकड़ा—सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं हुआ, उसे दोगड़ा कहाँ से आया चारित्र? समझ में आया? तब वह कहता है कि व्यवहार को करते नहीं और जहाँ आये हो, वहाँ अटके हो। अरे प्रभु! सुन तो सही, नाथ! तुझे उसकी कीमत नहीं, बापू! अन्दर स्थिर होना वह कितने पुरुषार्थ से स्थिर हुआ जाता है, (उसकी तुझे खबर नहीं)। आहाहा! वह कुछ व्रत के विकल्प लिये, इसलिए अन्दर पाँचवें (गुणस्थान में) स्थिर हुआ है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा!

सहजानन्द प्रभु भगवान की पर्याय में आनन्द के अंकुर विशेष फूटे, आहाहा! तब उसे स्थिरता कहने में आती है। उस स्थिरता के बिना अकेले व्रत लेकर बैठे, वह तो दुःख के परिणाम हैं। आनन्द के परिणाम उगे नहीं अन्दर से। उसके परिणाम सहित व्यवहार हो तो वह व्यवहार कहने में आता है। समझ में आया?

निश्चयरत्नत्रय में ठहरकर व्यवहाररत्नत्रय के बल से महा तप करना। यह मुनि की बात है, हों! यह मुनि की बात है। **व्यवहाररत्नत्रय के बल से महा तप करना।** ऐसा कहा। और उसको व्यवहाररत्नत्रयात्मक श्रावकधर्म कर्तव्य कहा, श्रावक को। समझ में आया? **अगर यति का व श्रावक का धर्म नहीं बना, अणुव्रत (महाव्रत) नहीं पाले, तो महा दुर्लभ मनुष्य-देह का पाना निष्फल है, उससे कुछ फायदा नहीं।** आहाहा! क्योंकि यह सब पैसे इकट्ठे किये, इज्जत बढ़ी, बड़े कारखाना किये। योगफल निष्फल आयेगा, बापू! आहाहा!

गाथा - १३४

अथ हे जीव जिनेश्वरपदे परमभक्तिं कुर्विति शिक्षां ददाति–

२५७) अरि जिय जिण–पइ भत्ति करि सुहि सज्जणु अवहेरि।
तिं बप्पेण वि कज्जु णवि जो पाडइ संसारि।।१३४।।

अरे जीव जिनपदे भक्तिं कुरु सुखं स्वजनं अपहर।
तेन पित्रापि कार्यं नैव यः पातयति संसारे।।१३४।।

अरि जिय इत्यादि। अरि जिय अहो भव्यजीव जिण–पइ भत्ति करि जिनपदे भक्तिं कुरु गुणानुरागवचननिमित्तं जिनेश्वरेण प्रणीतश्रीधर्मे रतिं कुरु सुहि सज्जणु अवहेरि संसारसुख–सहकारिकारणभूतं स्वजनं गोत्रमप्यपहर त्यज। कस्मात्। तिं बप्पेण वि तेन स्नेहितपित्रापि कज्जु णवि कार्यं नैव। यः किं करोति। जो पाडइ यः पातयति। क्व। संसारि संसारसमुद्रे। तथाच। हे आत्मन्, अनादिकाले दुर्लभे वीतरागसर्वज्ञप्रणीते रागद्वेषमोहरहिते जीवपरिणामलक्षणे शुद्धोपयोगरुपे निश्चयधर्मे व्यवहारधर्मे च पुनः षडावश्यकादिलक्षणे गृहस्थापेक्षया दानपूजादि–लक्षणे व शुभोपयोगस्वरुपे रतिं कुरु। इत्थंभूते धर्मे प्रतिकूलो यः तं मनुष्यं स्वगोत्रजमपि त्यज धर्मसन्मुखं तदनुकूलं परगोत्रजमपि स्वीकुर्विति। अत्रायं भावार्थः। विषयसुखनिमित्तं यथानुरागं करोति जीवस्तथा यदि जिनधर्मं करोति तर्हि संसारे न पततीति। तथा चोक्तम्–''विसयहं कारणि सव्वु जणु जिम अणुराउ करेइ। तिम जिणभासिए धम्मि जइ ण उ संसारि पडेइ।।''।।१३४।।

आगे श्रीगुरु शिष्य को यह शिक्षा देते हैं, कि तू मुनिराज के चरणारविंद की परमभक्ति कर,

सुखमय स्वजन छोड़कर जिन पद में तुम भक्ति करो हे जीव!
जो भवदधि में तुझे गिराये उस पितु से क्या काम तुझे।।१३४।।

अन्वयार्थ :– [अरे जीव] हे भव्य जीव, तू [जिनपदे] जिनपद में [भक्तिं कुरु] भक्तिकर, और जिनेश्वर के कहे हुए जिनधर्म में प्रीति कर, [सुखं] संसार सुख के निमित्तकारण [स्वजनं] जो अपने कुटुम्ब के जन उनको [अपहर] त्याग, अन्य की तो बात क्या है? [तेन पित्रापि नैव कार्यं] उसे महास्नेहरुप पिता से भी कुछ काम नहीं है,

[यः] जो [संसारे] संसार-समुद्र में इस जीव को [पातयति] पटक देवे।

भावार्थ :- हे आत्माराम, अनादिकाल से दुर्लभ जो वीतराग सर्वज्ञ का कहा हुआ रागद्वेष-मोहरहित शुद्धोपयोगरुप निश्चयधर्म और शुभोपयोगरुप व्यवहारधर्म, उनमें भी छह आवश्यकरुप यती का धर्म, तथा दान पूजादि श्रावक का धर्म, यह शुभाचाररुप दो प्रकार धर्म उसमें प्रीति कर। इस धर्म से विमुख जो अपने कुल का मनुष्य उसे छोड़, और इस धर्म के सन्मुख जो पर कुटुम्ब का भी मनुष्य हो उससे प्रीति कर। तात्पर्य यह है, कि यह जीव जैसे विषय-सुख से प्रीति करता है, वैसे जो जिनधर्म से करे तो संसार में नहीं भटके। ऐसा दूसरी जगह भी कहा है, कि जैसे विषयों के कारणों में यह जीव बारम्बार प्रेम करता है, वैसे जो जिनधर्म में करे, तो संसार में भ्रमण न करे।।१३४।।

गाथा-१३४ पर प्रवचन

आगे श्रीगुरु शिष्य को यह शिक्षा देते हैं कि तू मुनिराज के चरणारविंद की परमभक्ति कर,... आहाहा! समकित सहित की बात है, हों!

२५७) अरि जिय जिण-पइ भत्ति करि सुहि सज्जणु अवहेरि।
तिं बप्पेण वि कज्जु णवि जो पाडइ संसारि।।१३४।।

तुझे पिता के साथ क्या काम है? कहते हैं। पिता ने मुझे बड़ा किया और अब मुझे... आहाहा!

अन्वयार्थ—हे भव्य जीव, तू जिनपद में भक्ति कर,... वीतरागस्वभाव में भक्ति कर और बाहर जिनपद में भक्ति कर। आहाहा! **और जिनेश्वर के कहे हुए जिनधर्म में प्रीति कर,...** आहाहा! **संसार सुख के निमित्तकारण जो अपने कुटुम्ब के जन उनको त्याग, अन्य की तो बात क्या है?** आहाहा! **अपने कुटुम्ब के जन उनको त्याग, अन्य की तो बात क्या है?** आहाहा! **'तेन पित्रापि नैव कार्यं'** अरे! **उसे महास्नेहरूप पिता से भी कुछ काम नहीं है,...** आहाहा! बड़ा किया, पैसे खर्च किये, पढ़ाया। बापू! उसके साथ तुझे क्या है? बापू! वह परद्रव्य है, बापू! वह तेरा पिता कहाँ से है? आहाहा! देखो तो सही बात। हें! आहाहा!

'**स्वजनं अपहर**' इन सब स्वजनों को दृष्टि में से छोड़ दे, प्रभु! यह कोई तेरी चीज़ नहीं, तुझमें नहीं, तेरे सगे नहीं। आहाहा! '**तेन पित्रापि नैव कार्यं**' आहाहा! **उस महास्नेहरूप पिता से...** महास्नेह। आहाहा! है न? आहाहा! **स्वजनसुख गोत्र अपहर तिं बप्पेण**' ऐसे पिता का प्रेम ऐसा होता है, आहाहा! और पुत्र को पिता के प्रति उसका प्रेम ऐसा होता है। अरे! छोड़ दे न प्रभु! वह प्रेम क्या? आहाहा! अरे! अरे! ऐसा कठिन। यह तो झगड़े कराते हैं। हें! लड़के को कहते हैं कि पिता का प्रेम छोड़ दे, बापू! वह परद्रव्य है, मर जायेगा तू। उसके राग की चिकनाई में मर जायेगा, बापू! ऐई, चिमनभाई! आहाहा! ऐसा कि, मेरे पिता हैं तो मुझे करना तो पड़े न! हमको बड़ा किया, पैसे खर्च किये, पढ़ा-लिखाकर बड़ा किया, लो। आहाहा! उनका उपकार चुकाना चाहिए न। क्या उपकार किया? बापू! पिता की बात छोड़ दे, कहते हैं। आहाहा! है न? आहाहा! गोत्र '**अपहर**' स्वजन है, उसे छोड़। '**तिं बप्पेण वि तेन स्नेहितपित्रापि कज्जु णवि कार्यं नैव**' भगवान! तेरे पिता के साथ भी तुझे क्या काम है? आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! तू आत्मा है, तेरा पिता कैसा? इस पिता के स्नेह में जिन्दगी गंवाकर मर जायेगा तू। आहाहा!

मुमुक्षु : झगड़ा करावे ऐसा...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न। पिता कहाँ था? पिता कहाँ, पुत्र कहाँ? पिता का आत्मा अलग, शरीर अलग। आहाहा!

पहले तो स्वजन का कहा। स्वजन को छोड़। आहाहा! '**सुखं स्वजनं अपहर**' है न? परन्तु उसमें भी यह और तेरा पिता, यह अधिक डाला। मेरे पप्पा, मेरे पप्पा अभी करते हैं न? मम्मी और पप्पा। भाषा बोलनी पड़ती है न सीधी। मम्मी, मम्मी, पप्पा। इसलिए यहाँ से, कण्ठ में से नहीं। आहाहा! बापू! ऐसा करना पड़े तो वह भी यहाँ है। परन्तु ऐसा जरा होंठ (हिलाने पड़ते हैं)। यह तो मम्मी, मेरी मम्मी। वहाँ तो इसे हो जाता है। आहाहा! मेरी मम्मी, मेरे पप्पा। ऐ... पप्पा कहाँ से आया तेरे? आत्मा को पप्पा कैसा? आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा को नहीं, लड़के को।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़का किसका आत्मा ? आहाहा ! प्रवचनसार में नहीं आया ? पिताजी से आज्ञा माँगता है, हे शरीर के पिता ! आत्मा के नहीं। आहाहा ! मेरे भगवान आत्मा को तो कोई पिता है ही नहीं। हे शरीर के पिता ! आज्ञा दो। मेरा धर्मपिता आत्मा, वहाँ मैं जाना चाहता हूँ। इस शरीर के पिता को तो मैं छोड़ना चाहता हूँ। आहाहा ! देखो न, परन्तु बरबस चले जाते हैं, पैंतीस-पैंतीस वर्ष के जवान मनुष्य। और पिता को भी लड़के को रोग हुआ ऐसा, मुम्बई का पानी लगा हो और छह महीने, बारह महीने खिंच गया हो और मरते-मरते देरी लगे, सात, आठ, दस, पन्द्रह, बीस, दिन, महीना हो जाये। जागना पड़े रात्रि में, उसे अन्दर (ऐसा लगता है), छूट जाये तो ठीक।

मुमुक्षु : लड़का पीड़ित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पीड़ा नहीं, इसे रुकना पड़ता है उसकी इसे पीड़ा है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : उकता जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उकता जाये। कहा न। हमारे एक थे, लड़का था। लड़के का लड़का विवाहित। क्षय लागू पड़ा। पानी मुम्बई का और मरे नहीं। मरने की तैयारी। अब जीयेगा तो नहीं ही, निश्चित हो गया। परन्तु दिन के दिन निकाले। अरेरे ! लड़का दुःखी होता है। दुःखी होता है, इसका अर्थ हम दुःखी होते हैं। यह मर जाये तो (ठीक)। वे खीमचन्दभाई के रिश्तेदार थे। समझ में आया ? आहाहा ! यह जगत के प्राणी। शरीर ऐसा हो गया हो जीर्ण और मरेगा, मरेगा, मरेगा ऐसी तैयारी हो गयी हो। उसमें पन्द्रह, बीस दिन निकाले और रात्रि जागरण करना पड़े। आहाहा ! देखो, यह स्वार्थ के सगे। आजीविका की ठगों की टोली है सब। चिमनभाई ! आहाहा !

यहाँ तो आचार्य ऐसा कहते हैं, स्वजन तो छोड़। आहाहा ! कहा न। आहाहा ! **'सुखं स्वजनं अपहर'।** आहाहा ! परन्तु **'बप्पेण वि कज्जु'।** प्रभु ! तुझे पिता से क्या काम है ? आहाहा ! तेरे आत्मा से तूने काम लिया नहीं और पिता से काम लेना है। क्या है प्रभु ? कहाँ जाना है तुझे ? आहाहा !

मुमुक्षु : लड़के भी बाप की सेवा तो करे न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी... कौन सेवा करता था? सुमनभाई आकर पैर दबाये जरा थोड़े ऐसे... ऐसे। तुम अकेले रोटियाँ खाओ। हमको पढ़ाया, हम वहाँ खायेंगे। आहाहा!

आचार्य महाराज कहते हैं, पुकार करते हैं, तेरा परमात्मा यहाँ है, पिता तो वह है। तेरी निर्मल पर्याय का पिता भगवान आत्मा है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन, ज्ञानादि निर्मल पर्याय—प्रजा, उसका पिता तो द्रव्य है, परमात्मा स्वयं पिता है। उसे तूने शरीर के पिता के साथ कहाँ समानता की? आहाहा! भाई! उसके स्नेह में तेरी जिन्दगी चली जायेगी। आहाहा! तेरे लिये करने का रह जाता है। आहाहा! अरे! अकेला लेकर चला जाता है। आहाहा! नरक में जाये। दृष्टान्त नहीं दिया था?

दो भाई थे। छोटे भाई को कठोर रोग हुआ। बड़ा भाई गुप्तरूप से-गुप्तरूप से अण्डा लावे। उसे खबर न हो। चाय में एक दवा डालते हैं, पीओ। उसे बेचारे को खबर नहीं हो। उसमें मर गया। मर गया तो वह हुआ परमाधामी और (जो) अण्डा लाकर देता था, वह हुआ नारकी। दोनों भाई। मारपीट करे। क्या है?

मुमुक्षु : परमाधामी अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमाधामी की खबर नहीं? अरे! इस देव के परमाधामी। परन्तु परमाधामी तो शास्त्र की भाषा है, गुजराती कहाँ है? परमाधामी, वे नारकी के व्यन्तरदेव। यह तो शास्त्र-शब्द है। समझ में आया? मारफाड़ करे। अरे! परन्तु भाई! मैंने तेरे लिये पाप किये थे न? मैंने तुझे कहाँ कहा था (कि) मेरे लिये कर। आहाहा! मेरे लिये कर, मैंने तुझे कहा था? पानी में अण्डे डालना, चाय में, ढींकणा में। आहाहा! चिमनभाई! बापू! तेरा स्वभाव आत्मा भगवान, उसके प्रेम को छोड़कर तू पिता के प्रेम में कहाँ फँस गया, ऐसा कहते हैं। उसके लिये यह तेरी जिन्दगी जाती है। अरर्र! तुझे क्या करना है, बापू? आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे के लड़के ऐसे हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे के नहीं, सबके लड़के ऐसे ही होते हैं। सही समय पर देखो तो खबर पड़े इसे। कहाँ इसे... आहाहा!

आचार्य तो यहाँ यह पुकारते हैं, देखो न! **जो संसार-समुद्र में इस जीव को पटक देवे।** ऐसा कहते हैं। तेरे पिता के लिये रुकेगा और मर जायेगा और संसार में चला जायेगा। वहाँ कोई शरण नहीं है। आहाहा! क्या करना हमारे पिता बड़े वृद्ध (थे) और उनके लिये मुझे रुकना पड़ा। आहाहा! देह छूटनी हो, तब पिता पड़ा रहे और देह छूटकर चला जाता है। आहाहा! हें! तो है उसमें से स्नेह छोड़कर चला जा न अन्दर में, ऐसा कहते हैं। आहाहा! संसार में पटक देंगे। आहाहा!

भावार्थ—हे आत्माराम, अनादिकाल से दुर्लभ जो वीतराग सर्वज्ञ का कहा हुआ... आहाहा! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वह **राग-द्वेष-मोहरहित शुद्धोपयोगरूप निश्चयधर्म...** देखो! आहाहा! धर्म तो शुद्धोपयोग, वह धर्म है। आहाहा! दया, दान, व्रतादि बीच में आवें, वे तो शुभ व्यवहारधर्म कहा जाता है। वह भी निश्चय हो उसे। निश्चय नहीं, उसके तो व्यवहार भी कहने में नहीं आता। आहा! ऐसी सब बातें। **वीतराग सर्वज्ञ का कहा हुआ राग-द्वेष-मोहरहित....** मिथ्यात्व और राग-द्वेष रहित **शुद्धोपयोगरूप निश्चयधर्म...** आहाहा! यह निश्चय सत्य धर्म। **और शुभोपयोगरूप व्यवहारधर्म,...** आहाहा! उसे व्यवहार होता है। शुभभाव आते हैं। जिनभक्ति, व्रत, पूजा आदि होते हैं न? आहाहा! **उसमें भी छह आवश्यकरूप यति का धर्म,...** यह शुभोपयोग। छह आवश्यकरूप यति का धर्म **तथा दान पूजादि श्रावक का धर्म,...** आहाहा! **यह शुभाचाररूप दो प्रकार धर्म उसमें प्रीति कर।** ऐसा कहते हैं। लो, '**षडावश्यकादिलक्षणे गृहस्थापेक्षया दानपूजादिलक्षणे व शुभोपयोगस्वरूपे रतिं कुरु।**' ऐसा है। व्यवहार है न! '**रतिं कुरु**' शब्द है। आहाहा!

निश्चय आत्मा के शुद्धोपयोगरूपी धर्मसहित जो व्यवहार अन्दर होता है, उसमें प्रीति, प्रेम-प्रीति कर। यह निश्चयसहितवाले की बात है, हों! उसे होता अवश्य है न! आहाहा! अरे! अभी तो ऐसा करूँगा और ऐसा करूँगा, ऐसा करूँगा। और फिर धर्म करूँगा। यह भी कहाँ था? बाद में बात, बाद में बात। वह यह करनेयोग्य है, हमारे पहले। आहाहा!

तथा दान पूजादि श्रावक का धर्म,... है न? दान, देव-गुरु-शास्त्र, भगवान की

पूजा, वह श्रावक का धर्म है। **यह शुभाचाररूप दो प्रकार धर्म उसमें प्रीति कर। इस धर्म से विमुख जो अपने कुल का मनुष्य उसे छोड़,...** आहा! ऐसे धर्म से विमुख जो अपने कुल के मनुष्य, उन्हें छोड़ **और इस धर्म के सन्मुख जो पर कुटुम्ब का भी मनुष्य हो, उससे प्रीति कर।** आहाहा! धर्मात्मा अन्य हो, तो भी प्रीति कर और तेरे पिता आदि अधर्मी हों तो उन्हें छोड़ दे। आहाहा! **धर्म के सन्मुख जो पर कुटुम्ब का भी मनुष्य हो उससे प्रीति कर। तात्पर्य यह है कि यह जीव जैसे विषय-सुख से प्रीति करता है,...** आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषयों में जैसे प्रीति करता है, रूप में, गन्ध में, रस में, स्पर्श में... आहाहा! **वैसे जो जिनधर्म से करे...** आहाहा! **तो संसार में नहीं भटके। ऐसा दूसरी जगह भी कहा है कि जैसे विषयों के कारणों में यह जीव बारम्बार प्रेम करता है,...** आहाहा! **वैसे जो जिनधर्म में करे, तो संसार में भ्रमण न करे।** संसार में भटकना बने नहीं। विशेष है.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १३५

अथ येन चित्तशुद्धिं कृत्वा तपश्चरणं न कृतं तेनात्मा वञ्चित इत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति–

२५८) जेण ण चिण्णउ तव–यरणु णिम्मलु चित्तु करेवि।
अप्पा वंचिउ तेण पर माणुस–जम्मु लहेवि।।१३५।।

येन न चीर्णं तपश्चरणं निर्मलं चितं कृत्वा।
आत्मा वञ्चितः तेन परं मनुष्यजन्म लब्ध्वा।।१३५।।

जेण इत्यादि। जेण येन जीवेन ण चिण्णउ न चीर्णं न चरितं न कृतम्। किम्। तवयरणु बाह्याभ्यन्तरतपश्चरणम्। किं कृत्वा। णिम्मलु चितु करेवि कामक्रोधादिरहितं वीतराग–चिदानन्दैकसुखामृततृप्तं निर्मलं चित्त कृत्वा। अप्पा वंचिउ तेण पर आत्मा वञ्चितः तेन परं नियमेन। किं कृत्वा। लहेवि लब्ध्वा। किम्। माणुसजम्मु मनुष्यजन्मेति। तथाहि। दुर्लभपरंपरारुपेण मनुष्यभवे लब्धे तपश्चरणेऽपि, च निर्विकल्पसमाधिबलेन रागादिपरिहारेण चित्तशुद्धिः कर्तव्येति। येन चित्तशुद्धिर्न कृता स आत्मवञ्चक इति भावार्थः। तथा चोक्तम्–''चित्ते बद्धै बद्धौ मुक्को त्ति णत्थि संदेहो। अप्पा विमलसहावो मइलिज्जइ मइलिए चित्ते।।''।।१३५।।

आगे जिसने चित्त की शुद्धता करके तपश्चरण नहीं किया, उसने अपना आत्मा ठग लिया, वह अभिप्राय मन में रखकर व्याख्यान करते हैं–

जिसने चित् को निर्मल करके तप को धारण नहीं किया।
उसने दुर्लभ नरभव पाकर मात्र ठगा अपना आत्मा।।१३५।।

अन्वयार्थ :– [येन] जिस जीव ने [तपश्चरणं] बाह्याभ्यन्तर तप [न चीर्णं] नहीं किया, [निर्मलं चित्तं] महा निर्मल चित्त [कृत्वा] करके [तेन] उसने [मनुष्यजन्म] मनुष्यजन्म को [लब्ध्वा] पाकर [परं] केवल [आत्मा वंचितः] अपना आत्मा ठग लिया।

भावार्थ :– महान् दुर्लभ इस मनुष्य–देह को पाकर जिसने विषयकषाय सेवन किये और क्रोधादि रहित वीतराग चिदानंद सुखरुपी अमृतकर प्राप्त अपना निर्मल चित्त करके अनशनादि तप न किया, वह आत्मघाती है, अपने आत्मा का ठगनेवाला है। एकेंद्री पर्याय से विकलत्रय होना दुर्लभ है, विकलत्रय से असैनी पंचेन्द्रिय होना, असैनी

पंचेद्रिय से सैनी होना, सैनी तिर्यंच से मनुष्य, होना दुर्लभ है। मनुष्य में भी आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, दीर्घ आयु, सतसंग, धर्मश्रवण, धर्म का धारण और उसे जन्मपर्यन्त निभाना ये सब बातें दुर्लभ हैं, सबसे दुर्लभ (कठिन) आत्मज्ञान है, जिससे कि चित्त शुद्ध होता है। ऐसी महादुर्लभ मनुष्यदेह पाकर तपश्चरण अंगीकार करके निर्विकल्प समाधि के बल से रागादि का त्याग कर परिणाम निर्मल करने चाहिये, जिन्होंने चित्त को निर्मल नहीं किया, वे आत्मा को ठगनेवाले हैं। ऐसा दूसरी जगह भी किया है, कि चित्त के बँधन से यह जीव कर्मों से बँधता है। जिनका चित्त परिग्रह से धन धान्यादिक से आसक्त हुआ, वे ही कर्मबंधन से बँधते हैं, और जिनका चित्त परिग्रह से छूटा आशा (तृष्णा) से अलग हुआ, वे ही मुक्त हुए। इसमें संदेह नहीं है। यह आत्मा निर्मल स्वभाव है, सो चित्त के मैले होने से मैला होता है।।१३५।।

वीर संवत् २५०२, माघ शुक्ल ५, सोमवार
दिनांक- २४-०१-१९७७, गाथा - १३५, १३६, प्रवचन-१९५

---

१३५ गाथा। **आगे जिसने चित्त की शुद्धता करके...** भावार्थ में विशेष लेंगे। **तपश्चरण नहीं किया, उसने अपना आत्मा ठग लिया, यह अभिप्राय मन में रखकर व्याख्यान करते हैं—**

२५८) जेण ण चिण्णउ तव-यरणु णिम्मलु चित्तु करेवि।
अप्पा वंचिउ तेण पर माणुस-जम्मु लहेवि।।१३५।।

अन्वयार्थ—जिस जीव ने... 'तपश्चरणं' बाह्याभ्यंतर... अभ्यन्तर आनन्द का अनुभव। आहाहा! समझ में आया? अभ्यन्तर में निज आत्मा के आनन्द का अनुभव, वह अभ्यन्तर तप। भावार्थ में कहेंगे। आहाहा! बाह्य में बारह प्रकार के तप। **उसने मनुष्य जन्म को पाकर केवल अपना आत्मा ठग लिया।** आहाहा! लो, ऐसे पैसे इकट्ठे करे, बड़ी इज्जत प्राप्त करे। कहाँ गये तुम्हारे चिमनभाई गये? भावनगर गये होंगे। ठीक। हिम्मतभाई के पास ऐसे पैसे नहीं थे और उन्होंने इतने इकट्ठे किये हैं। उनके पिता के पास नहीं थे। आहाहा! क्या किया बापू? आहाहा! यहाँ तो आचार्यदेव मूल बात करना चाहते हैं। आहाहा!

भावार्थ—महान दुर्लभ इस मनुष्य-देह को पाकर... आहाहा! अनन्त काल में महान मनुष्यदेह प्राप्त करना दुर्लभ है। आहाहा! पैसा मिलना, परिवार मिलना, वह कहीं दुर्लभ नहीं। वह तो अनन्त बार मिला है। आहाहा! समझ में आया? इज्जत मिलना और पाँच, पचास करोड़ और अरब रुपये मिलना, वह कहीं दुर्लभ नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे रुपये लाखों तो थे पहले। अब करोड़ों हो गये। परन्तु उस करोड़ की कीमत कितनी? चार लाख, पाँच लाख की। एक करोड़ की कीमत अभी चार, पाँच लाख की। पोपटभाई! पहले के पाँच लाख और अभी के करोड़ समान हैं। आहाहा! वह क्या चीज़ है? आहाहा! मनुष्यपना प्राप्त करके यदि आत्मा....

महान दुर्लभ इस मनुष्य-देह को पाकर जिसने विषयकषाय सेवन किये... आहाहा! विषय और कषाय का सेवन। आहाहा! **और क्रोधादि रहित वीतराग चिदानन्द...** आहाहा! कषायरहित... अब अभ्यन्तर तप किसे कहते हैं, यह बात चलती है। आहाहा! कषायरहित **वीतराग चिदानन्द सुखरूपी अमृतकर प्राप्त अपना निर्मल चित्त...** आहाहा! निर्मल चित्त किसे कहते हैं? कहते हैं। आहाहा! राग की मन्दता की, वह कहीं निर्मल चित्त नहीं है। आहाहा! कषायरहित वीतराग चिदानन्द। आहाहा! वीतराग—रागरहित वीतराग चिदानन्द—ज्ञानानन्द। आहाहा! ऐसा वीतराग चिदानन्दरूपी सुखरूपी अमृत। वह सुखरूपी अमृत। आहाहा! **प्राप्त अपना निर्मल चित्त...** वीतराग चिदानन्दरूपी अमृत का पान करके। आहाहा! **प्राप्त अपना निर्मल चित्त...** वह निर्मल चित्त। निर्मल चित्त की यह व्याख्या। आहाहा! समझ में आया?

विषय-सेवन, पाँच इन्द्रिय के विषय तो जहर का सेवन है। आहाहा! दुःख का सेवन। **और क्रोधादिरहित वीतराग चिदानन्द...** भगवान का सेवन जिसने नहीं किया। आहाहा! वीतराग कौन? सर्वज्ञ नहीं। इस आत्मा में वीतराग चिदानन्दस्वरूप है। आहाहा! वीतराग ज्ञानानन्द सुखरूपी अमृतकर। आहाहा! **वीतराग चिदानन्द सुखरूपी अमृतकर...** उसे प्राप्त करके **अपना निर्मल चित्त करके...** आहाहा! ऐसी बात है। शुभराग है, वह भी मलिन चित्त है। आहाहा! कठिन काम है, भाई! जगत को अनादि यह सत्य वस्तु (प्राप्त

नहीं हुई)। आहाहा! भगवान वीतराग चिदानन्दस्वरूप है, उसका आश्रय करके जिसने वीतराग चिदानन्द सुखरूपी अमृत पीकर जिसने चित्त को निर्मल किया है। आहाहा! समझ में आया? यह चित्त की निर्मलता। आहाहा! लोगों को कठिन लगे।

ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा, ज्ञानानन्दस्वभाव, भगवान आत्मा का ज्ञानानन्दस्वभाव प्राप्त करके चित्त की निर्मलता (की)। आहाहा! यह दया, दान और व्रत, भक्ति करे, उसे चित्त की निर्मलता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन काम है। अरे! इसे अभ्यास अनन्त काल का नहीं न! स्वविषय को छोड़कर वीतराग चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा, वह स्वविषय सम्यग्दर्शन का विषय है, उसे छोड़कर और परविषय में जिसका झुकाव। फिर भले शुभभाव हो या अशुभभाव हो। आहाहा! यह क्षणभंगुर शरीर, अच्छा शरीर क्षण में गिर जायेगा। तुझे निरोग लगे, बापू! भाई! परन्तु किस क्षण में उसका होगा? आहाहा! यह प्रवीणभाई का दृष्टान्त तो अभी ताजा है। आहाहा! जवान अवस्था। ४५ वर्ष अर्थात् अभी की अपेक्षा से, हों! पहले की अपेक्षा से तो ४५ वर्ष अर्थात् अधेड़ हो गये, ऐसा कहते थे। अभी ६०-७० तो साधारण मनुष्य के (होते हैं)। आहाहा! यह देह छूटा। भाई कहते थे, चन्दुभाई डॉक्टर, अन्तड़ियों में रास्ता हो, वह सूखता जाये अन्दर। आहाहा! खून ऐसे घूम नहीं सके, फिर नहीं सके। एकदम सब (सूखी) अन्तडियाँ हो जाये। और पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... आहाहा! किसकी पीड़ा है यह? अन्तड़ियों की नहीं। उसकी ओर के राग और द्वेष की पीड़ा है। आहाहा! उस राग-द्वेष में पिल रहा है। आहाहा!

उसे कहते हैं कि एक बार चित्त की निर्मलता तो कर, प्रभु! ऐसा मनुष्यपना मिला। आहाहा! जो करने का है, वह यह है। चिदानन्द। आहाहा! देखो न, टीका तो करते हैं। चित्त की निर्मलता की यह व्याख्या। आहाहा! वीतराग चिदानन्द ज्ञानानन्द। आहाहा! वीतरागी ज्ञानानन्द एक सुखरूपी अमृत। आहाहा! **अमृतकर प्राप्त...** ऐसे चिदानन्द वीतराग सुखरूपी अमृत को प्राप्त करके। आहाहा! **अपना निर्मल चित्त करके...** आहाहा! **अनशनादि तप न किया,...** यह बाह्यतप बाद में निमित्त है। ऐसा निर्मल करके बारह प्रकार की तपस्या नहीं की... आहाहा! वैसे तो बारह प्रकार के तप तो अनन्त बार किये, व्यवहार। समझ में आया? ध्यान भी अनन्त बार किये। ध्यान

अर्थात् यह आत्मा ऐसा है, ऐसे विकल्प से विचार में रुक जाना वह ध्यान, वह भी अनन्त बार किये। आहाहा! भगवान में—प्रभु में पाताल कुँआ है, उसमें अमृतसुख भरा है। आहाहा! उस पाताल कुँआ को फोड़कर, तोड़कर जिसने अमृत से चित्त को निर्मल किया है। आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़े इसलिए लोगों को। यह तो परमात्मप्रकाश कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : गृहस्थाश्रम में कठिन पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहस्थाश्रम में भी सम्यग्दर्शन है न उसमें। वह भी चिदानन्द वीतराग को प्राप्त करके चित्त निर्मल करना, वह सम्यग्दर्शन है, ऐसा कहते हैं। गृहस्थाश्रम में भी आत्मा कहाँ गृहस्थाश्रम में है? आत्मा तो चिदानन्द वीतराग आनन्दस्वरूप भगवान है। आहाहा! हें!

मुमुक्षु : उपाधि बहुत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाधि मानी है। उपाधि थी कब अन्दर चिपटी है? बबूल को लिपटकर पकड़ा कि बबूल ने मुझे पकड़ा है। उस बन्दर की मुट्ठी नहीं कही? बोर होते हैं बोर उसमें। क्या कहलाता है वह? घड़ा। हें! घड़ा पानी का खाली, उसमें बोर भरे हों। तो बन्दर अन्दर मुट्ठी डाले तो प्रविष्ट तो हो, परन्तु वे बोर पकड़ें हैं तो फिर वापस निकले नहीं। खाली हाथ घुसा और पकड़े बोर, निकले नहीं। मुझे किसी ने पकड़ा है। किसी ने तुझे पकड़ा नहीं। तूने बोर को पकड़कर तू पकड़ा गया है। आहाहा! हें! इसी प्रकार यह स्त्री, पुत्र, परिवर, शरीर जड़ पदार्थ... आहाहा! उन्हें इसने पकड़ा। जिसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। स्वतन्त्र परद्रव्य उनके कारण से परिणम रहे हैं। यह आत्मा अपने कारण से परिणम रहा है। उसे कुछ सम्बन्ध किसी के साथ नहीं है। आहाहा! परन्तु अज्ञानरूप से परवस्तु मेरी, ऐसा पकड़कर और मैं पकड़ा गया और मुझे कर्म ने पकड़ा ऐसा अज्ञानी मानता है। बापू! मार्ग तो यह है। आहाहा! बाहर से मनवा दिया है न कि अपवास करना और दान करना और तप करना, भक्ति करना और मन्दिर बनाना, उसमें मनवाया है धर्म, इसलिए जगत को कठिन पड़ता है। आहाहा!

विषयसुख, कहते हैं कि पर में परसन्मुख झुकाव है, ऐसा कहा। पहले कहा न?

विषयसुख का सेवन वह परसन्मुख के झुकाववाला है। अनादि से जहर का प्याला पीता है। आहाहा! एक बार तेरे सामने तो देख, प्रभु! आहाहा! **वीतराग चिदानन्द सुखरूपी अमृतकर प्राप्त...** आहाहा! ऐसा जो चित्त निर्मल। ऐसी व्याख्या है सुमनभाई! आहाहा! आठ-आठ हजार वेतन और दस-दस हजार वेतन धूल है, कहते हैं। घुस गया उसमें। रामजीभाई कहते हैं न, बारह घण्टे वहाँ रहना पड़ता है। हाय... हाय...!

मुमुक्षु : सवेरे आठ बजे जाना और रात्रि आठ बजे आना।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह नहीं, यह सेठिया सब। दुकान पर बैठकर पैसे उगाहने बैठे। वे सब पकड़ा गये हैं वहाँ। आहाहा! सेठाई में पकड़ा गये। उन्हें समय नहीं मिलता, इसी तरह यह नौकरी में पकड़ा गये, उसमें समय नहीं मिलता। आहाहा! अरे! ऐसे मनुष्यदेह में दुर्लभता.... कहेंगे अभी। आहाहा! हें!

मुमुक्षु : आप उपाय बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उपाय है, बापू! बाहर से हटकर अन्दर में जाना। हें! आहाहा! दुनिया माने, न माने; दुनिया को ठीक लगे, न लगे। उन्हें कुछ दुनिया से रिपोर्ट नहीं लेनी है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा। यह तो पर्याय की बात करते हैं। समझ में आया? क्या कहा? **क्रोधादि रहित वीतराग चिदानन्द सुखरूपी अमृत...** यह वर्तमान पर्याय की बात की, परन्तु वस्तु स्वयं वीतराग चिदानन्द अमृत से भरपूर तत्त्व है। आहाहा! ऐसा धर्म। वे तो कहते थे कि दया पालना, व्रत पालना, भक्ति करना... आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, प्रभु! आचार्य महाराज का पुकार है। योगीन्द्रदेव। योगीन्द्रदेव मुनि हैं। दिगम्बर मुनि वनवास में रहनेवाले जगत को पुकार करते हैं, प्रभु! तेरा चित्त निर्मल कर। निर्मल करके फिर बारह प्रकार की तपस्या निमित्तरूप से होती है। समझ में आया? इस निर्मल की यह व्याख्या। आहाहा!

भरित चिदानन्द ज्ञानानन्द से भरित अवस्था। अवस्था अर्थात् पर्याय नहीं। यह अवस्था की बात है। ज्ञानानन्द भरित-अवस्था। अवस्थ—निश्चय से भरपूर ज्ञान और आनन्द का सागर भगवान। आहाहा! उसके सन्मुख के चिदानन्द वीतराग की अमृतरूपी

सुखरूपी अमृत से प्राप्त। आहाहा! उससे चित्त निर्मल होता है, ऐसा कहते हैं। कहो, भगवानजीभाई! अरे.. अरे! बहिरात्मबुद्धि छोड़कर... बहिरात्म अर्थात् जो आत्मा में नहीं पुण्य-पाप और पुण्य-पाप के फल, वे आत्मा में नहीं। उस बहिर् चीज़ को अपनी मानकर अन्तरात्मा चिदानन्द को भूला है वह। यह कहते हैं कि एक बार अब उन्हें भूल न! भगवान को याद कर न अन्दर से। आहाहा! ऐसी व्याख्या लोगों को कठिन पड़ती है। निश्चय और सत्य तो यह है। क्रियाकाण्ड चाहे जितने करे, व्रत, तप, भक्ति और पूजा, वह सब राग और दुःख है।

'मुनिव्रत धार...' कहा नहीं था? 'मुनिव्रत धार...' वह दुःख है। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण। आहाहा! इस आत्मा के आनन्द की प्राप्ति उसमें नहीं है। समझ में आया? वह दुःख की प्राप्ति। लोगों को यह कठिन पड़ता है न! हें! सत्य तो यह है, प्रभु! आहाहा! टीका तो टीका है न, देखो न! आहाहा! यह राग है, पुण्य-पाप वह दुःख है। उससे रहित चिदानन्द वीतराग सुखरूपी अमृत का प्याला पी। आहाहा! तुझे आनन्द होगा। तेरा चित्त निर्मल होगा। आहाहा! ऐसी बातें हैं। बाहर की चमक शरीर की और पैसे की... आहाहा! फर्नीचर, दस-दस लाख, पचास लाख का बड़ा फर्नीचर। आहाहा! अरेरे! उसमें से निकलना कठिन पड़ेगा, कहा।

वहाँ एक बार नहीं कहा था? तुम्हारे राजकोट में लीलाधरभाई का। लीलाधरभाई के घर में देखो तो लकड़ियाँ साफ और ऐसा सब। पैसे इतने अधिक नहीं। परन्तु पॉलिश... पॉलिश... पॉलिश... पॉलिश। आहाहा! वस्त्र बिछाया हुआ और कुर्सी हो वहाँ रखे। निसरणी क्या कहलाती है तुम्हारे? सीढ़ियाँ। पॉलिश सब पॉलिश। आहाहा! मुझे लगा, अरेरे! इसे निकलना कठिन पड़ेगा। इस साहेबी में से निकलना। आहाहा! और गत वर्ष नहीं कहा? गत वर्ष। रसिकभाई नहीं? शान्ताबेन के बहनोई रसिकभाई, राजकोट, नहीं? उनके बहनोई मणिभाई मुम्बई में, पाँच करोड़ रुपये, छह करोड़। आहार करने (गये थे), प्रार्थना की तो आहार करने गये शाम को। बहुत दूर था। वहाँ से भी जरा आगे गये थे। यह अभी विजय गुजर गया न। विजय तुम्हारे में नहीं, वह तो उस टाटा में। टाटा में नौकरी। लड़का बहुत होशियार था। दिमाग... दिमाग और शान्त... शान्त। बोले नहीं। यहाँ रह गया था, महीना-महीना। कुँवार (था तब) महीनों

रह गया था और विवाह करके आया था। दिमाग बहुत। किडनी का दर्द हो गया। आहाहा! वहाँ गत वर्ष हम मणिभाई के घर में आहार करने गये थे। तब उसके यहाँ गये थे, उसके पास, मांगलिक सुनाने के लिये। आहाहा! लड़के की बहू खड़ी थी, उसके माँ-बाप सब। किडनी का दर्द। आहाहा! अभी बारह महीने हुए नहीं। गुजर गया। उसकी माँ ने किडनी दी थी बेचारी ने। परन्तु ऑपरेशन किया। आहाहा! एक वर्ष का विवाहित और एक वर्ष की पीड़ा। अरेरे! आहाहा! लड़का ऐसा था शान्त, बुद्धिवाला, वाँचन (बहुत)। अरेरे! मनुष्यपना हार गया।

यहाँ कहते हैं कि बापू! तुझे जीत प्राप्त करनी हो न आत्मा में, आहाहा! चित्त की निर्मलता की व्याख्या तो देखो! आहाहा! शुभ-अशुभ विकल्प है शुभ-अशुभ, विषय शब्द से परसन्मुख के विषय चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति भी पर का विषय है। आहाहा! '**जो इंदिये जिणित्ता**' में आया है न? ३१ गाथा में। देव-गुरु-शास्त्र, प्रतिमा, मन्दिर, वह सब पर विषय इन्द्रिय है वह तो। वह वस्तु इन्द्रिय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह इन्द्रिय का विषय है। उस इन्द्रिय के विषय का सेवन चाहे तो शुभ हो या अशुभ, वह दुःखरूप है। ऐसी व्याख्या कठिन, बापू! आहाहा! जगत को मिलना कठिन। आहाहा!

आचार्य महाराज योगीन्द्रदेव १३०० वर्ष पहले हुए, परमात्मप्रकाश के कर्ता। आहाहा! भगवान! एक बार सुन न, प्रभु! आहाहा! दुनिया के साथ मिलान खाये या न खाये, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। तेरा आत्मा वीतराग चिदानन्द से भरपूर प्रभु है। आहाहा! वह तो उसका स्वरूप है। वीतराग चिदानन्द सुखरूपी अमृत, वह तो उसका स्वरूप है। अब उसके स्वरूप-सन्मुख होकर, आहाहा! एक बार चित्त को निर्मल कर। किस प्रकार? किस प्रकार? कि **सुखरूपी अमृतकर प्राप्त अपना निर्मल चित्त करके...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेकर चित्त को निर्मल कर। आहाहा! आहाहा! देखो, यह सन्तों की वाणी! दिगम्बर सन्तों के रामबाण। भगवान! तू एक बार आ जा न अन्दर में। आहाहा! तेरा नाथ अन्दर अमृत के सागर से भरपूर प्रभु है न! अमृत के सागर से भरपूर तेरा आत्मा है। यह कैसे बैठे? विश्वास नहीं होता, प्रतीति नहीं होती।

शुभ-अशुभभाव जो है, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, यह विषय है, राग है। आहाहा! ३१ वीं गाथा में कहा है, '**जो इंदिये जिणित्ता**'। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने (समयसार, गाथा) ३१ में कहा, प्रभु! सुन तो सही। तेरी यह जड़इन्द्रिय, यह मिट्टी और भावेन्द्रिय एक इन्द्रिय एक विषय को जाननेवाली, भाव, और उसका विषय— तीनों को ३१वीं गाथा में इन्द्रिय कहा है। आहाहा! भाई! तेरी बात बहुत कठिन, बापू! आहाहा! इस इन्द्रिय को जीतकर। अर्थात् कि भगवान की वाणी और तीर्थंकरदेव भी इन्द्रिय में डाले भगवान ने। अणीन्द्रिय प्रभु नहीं। आहाहा! उस ओर के विषय का झुकाव छोड़ दे एक बार। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यह आचार्य कहते हैं। टीकाकार है, आचार्य का श्लोक है। योगीन्द्रदेव १३०० वर्ष पहले हुए। दिगम्बर वनवासी। अतीन्द्रिय आनन्द प्रचुर आनन्द को अनुभव करनेवाले। मुनि अर्थात् क्या? कि प्रचुर आनन्द की मोहरछापवाले को मुनि कहते हैं। आहाहा! पाँचवीं गाथा में आया है, समयसार। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं मेरे निज वैभव से समयसार कहूँगा। मेरा निज वैभव क्या है? आत्मा के आनन्द में से झरता प्रचुर स्वसंवेदन, जिसकी अतीन्द्रिय आनन्द की मोहरछाप है। आहाहा! वह हमारा मुनिपना है, वह हमारा निज वैभव है। यह तुम्हारे धूल के वैभव नहीं। पोपटभाई! आहाहा! मार डाला वैभव ने, मेरा-मेरा मानकर। आहाहा!

मुमुक्षु : आप तो ऐसा कहते हो, जितना हमने किया सब उल्टा किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से उल्टा ही किया है। यही यहाँ कहते हैं। नौवें ग्रैवेयक गया, वह भी उल्टा हुआ, शुभभाव से गया, वह उल्टा है। वह आत्मा का स्वाद कहाँ है, वह आत्मा का स्वभाव कहाँ है? आहाहा! भगवान आत्मा चिदानन्द वीतराग है। क्या कहते हैं, देखो न! आहाहा!

सुखरूपी अमृतकर... आहाहा! कठिन पड़े, भाई! क्या हो? वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के सन्त का मार्ग तो यह है। चित्त को निर्मल करके अर्थात्? **वीतराग चिदानन्द सुखरूपी अमृतकर प्राप्त अपना निर्मल चित्त...** आहाहा! एक पंक्ति में तो, अरे! प्रभु! तुझे तेरी चीज़ की खबर नहीं। आहाहा! बाहर में भटक... भटक... शुभ-अशुभभाव

और शुभ-अशुभभाव के फल, वह सब चीज़ तुझमें नहीं। तुझमें नहीं, उसे अपना मानना, वह मिथ्यात्व के दुःख का वेदन है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश किस प्रकार का? बापू! मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा! तेरी तुझे करुणा नहीं आयी, प्रभु! तेरी तुझे दया नहीं आयी, भाई! आहाहा! वह दया यह। आहाहा!

निर्मल चित्त करके अनशनादि तप न किया,... आहाहा! अनशनादि तप तो अनन्त बार किये। समझ में आया? नौवें ग्रैवेयक गया। चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध नहीं किया, ऐसी क्रिया की। परन्तु निर्मल चित्त नहीं किया। रागवाला चित्त मलिन है। शुभराग, वह अशुचि है। आहाहा! ७२ गाथा में आता है न? शुभ-अशुभराग वह अशुचि है। भगवान आत्मा पवित्र शुचि अन्दर है। आहाहा! पुण्य-पाप भाव, वे दुःखरूप हैं। भगवान आत्मा आनन्दरूप है। आहाहा! समझ में आया? ७२ गाथा में है। भगवानरूप से बुलाया है। सन्तों ने तो आत्मा भगवान, ऐसा कहकर कहा है। आहाहा! प्रभु! तेरी भग अर्थात् आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मी, वान, वह तेरा रूप है। यह पुण्य-पाप के भाव, वह तेरा स्वरूप नहीं, रूप नहीं। आहाहा! वह तो कदरूप है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा चित्त करके। आहाहा!

वीतरागी चिदानन्द आनन्द को प्राप्त करके चित्त की निर्मलता करके, आहाहा! **अनशनादि तप न किया, वह आत्मघाती है,...** आहाहा! अपना भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, निर्विकल्प अमृतसागर का पिण्ड प्रभु आत्मा का निर्मल चित्त करके—पवित्र करके, जिसने तपस्या नहीं की... आहाहा! परन्तु यह निर्मल चित्त करके, हों! ऐसा कहा न? संस्कृत है। संस्कृत है न? '**वीतरागचिदानन्दैकसुखामृत**' 'एक' पड़ा रहा है, हों! सबमें 'एक' पड़ा रहता है। एक... एक चाहिए इसमें। पाठ में संस्कृत में ऐसा है। '**वीतरागचिदानन्दैकसुखामृततृप्तं निर्मलं चित्त कृत्वा।**' आहाहा! 'एक' शब्द पड़ा रहा है। प्रत्येक में 'एक' पड़ा रहा है अर्थ करनेवाले को। टीका में है। वीतराग चिदानन्द एकस्वभावरूप अमृतरूप सुख। आहाहा! समझ में आया? दुःख के प्रकार तो अनेक प्रकार हैं। शुभ-अशुभ असंख्य प्रकार के भाव, वे सब दुःखरूप हैं। भगवान का एकरूप सुख है। आहाहा! आहाहा! उस एकरूप स्वभाव के अमृत का स्वाद लेकर

जिसने चित्त की निर्मलता का सम्यग्दर्शन नहीं किया। सम्यग्दर्शन में चित्त की निर्मलता होती है। आनन्द का स्वाद आता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन और चित्त की निर्मलता है। आहाहा! अरेरे! क्या हो? ऐसी बात है, बापू! यह बात तो विरल सुने और विरल को मिले, ऐसी बात है। 'विरला जाने तत्त्व को, विरला सुने कोई' आहाहा! योगीन्द्रदेव में है न? स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में है। आहाहा! विरला सुने कोई। 'विरला जाने तत्त्व को, विरला सुने कोई' श्रद्धा जोई, विरले श्रद्धा जोई। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

वह आत्मघाती है,... आहाहा! **अपने आत्मा का ठगनेवाला है।** आहाहा! **एकेन्द्री पर्याय से विकलत्रय होना दुर्लभ है,...** आहाहा! निगोद में, एकेन्द्रिय में से निकलकर विकलत्रय (अर्थात्) दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय प्राप्त करना दुर्लभ है। **विकलत्रय से असैनी पंचेन्द्री होना,...** दुर्लभ। **असैनी पंचेन्द्रिय से सैनी होना,...** दुर्लभ। **सैनी तिर्यंच से मनुष्य होना दुर्लभ है।** आहाहा! **मनुष्य में भी आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, दीर्घ आयु,...** उसमें भी सच्चा सत्समागम। आहाहा! **धर्मश्रवण...** संग मिला और धर्मश्रवण होना। वीतराग की वाणी का सत्श्रवण। आहाहा! **धर्म का धारण...** श्रवण करके भी फिर धार रखना। यहाँ सुना और निकाल डाले, वह नहीं। आहाहा! दुर्लभ। **और उसे जन्मपर्यन्त निभाना...** आहाहा! सम्यग्दर्शन धारण करके निभाना। आहाहा! समझ में आया? **ये सब बातें दुर्लभ हैं, सबसे दुर्लभ (कठिन) आत्मज्ञान है,...** आहाहा! है? आत्मज्ञान कहा। ऐसा नहीं कहा, राग का ज्ञान, संयोग का ज्ञान, पर्याय का ज्ञान—ऐसा नहीं कहा। आत्मज्ञान। आत्मा जो वस्तु पूरी.... आहाहा! उसका ज्ञान किया नहीं। आहाहा! बाकी तो ग्यारह अंग नौ पूर्व अनन्त बार पढ़ा। वाँच डाला। बापू! मार्ग अलग, भाई! जिनवर वीतराग सर्वज्ञदेव कहते हैं वह। आहाहा!

आत्मज्ञान दुर्लभ। आहाहा! देखा? **जिससे कि चित्त शुद्ध होता है।** आत्मज्ञान से ज्ञान शुद्ध होता है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द प्रभु ध्रुव अनन्त गुण का सागर भगवान आत्मा, उसकी दृष्टि करके आनन्द का वेदन होना, वह सम्यग्दर्शन। वह चित्त को निर्मल किया कहलाता है उससे। आहाहा! कठिन बात, भाई! **जिससे कि चित्त शुद्ध**

होता है। किससे? आत्मज्ञान से। आहाहा! शास्त्रज्ञान भी अनन्त बार किया। आहाहा! समझ में आया? वह परलक्ष्यी ज्ञान है, वह आत्मज्ञान नहीं। आहाहा! जिसने अपनी वर्तमान ज्ञानपर्याय में पूरे आत्मा को ज्ञेय बनाकर ज्ञान किया, वह बड़ा दुर्लभ है। आहाहा! और उसे आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन कहते हैं। मुम्बई में झपाटा बजता हो। कान्तिभाई! आहाहा! इनके पास दस लाख, मेरे पास पाँच लाख। दस लाख हो तो उसके पास बीस लाख, मेरे पास दस लाख। दस लाख की कमी पड़े, कमी पड़े कमी। उसके पास अमुक के पास एक करोड़, मेरे पास सत्तर लाख। तीस लाख की कमी। अरर्र! परन्तु मेरे पास अनन्त आनन्द और ज्ञान है। आहाहा! ऐसी दृष्टि वहाँ इसे नहीं है।

आत्मज्ञान है, जिससे कि चित्त शुद्ध होता है। है? आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह भाव शुभ है। शुभ है, वह मलिन है। आहाहा! ऐसी बात, भगवान वीतराग के घर में। निर्मल चित्त तो राग से रहित चिदानन्द का अनुभव करना, आत्मज्ञान करना, वह चित्त की निर्मलता है। आहाहा! पूजा करना कर्मदहन शक्ति की, सिद्धचक्र की पूजा, वह सब शुभभाव है, भाई! वह परलक्ष्य है, वह स्वलक्षी चीज़ नहीं। आहाहा! कठिन बात है, बापू! प्रभु! इस मार्ग को न देख। पण्डिताई भी अनन्त बार की परन्तु आत्मा की पण्डिताई नहीं की। आहाहा! दुनिया का रंजन किया, स्वयं आप रंजन नहीं हुआ।

ऐसी महादुर्लभ मनुष्यदेह पाकर तपश्चरण अंगीकार करके... तपश्चरण अर्थात् मुनिपना। दीक्षाकल्याणक आता है न? यह तपकल्याणक कहो या दीक्षाकल्याणक—चारित्र (कहो)। आहाहा! सम्यग्दर्शन में चित्त निर्मल करके... आहाहा! आनन्द का अनुभव करके जिसने चारित्र नहीं लिया। आहाहा! मोक्ष का मूलकारण तो चारित्र है और चारित्र का कारण दर्शन, ज्ञान समकित है। चारित्तं खलु धम्मो... समझ में आया? और धर्म का मूल सम्यग्दर्शन। दंसण मूलो धम्मो। यह अष्टपाहुड़ की गाथा है। धर्म के स्वरूप में आचरण—स्थिरता, वह चारित्र। परन्तु उसका मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ चारित्र और व्रत यह कुछ होते नहीं। क्योंकि वह सब अज्ञानभाव है। आहाहा! समझ में आया? **करके निर्विकल्प समाधि के बल से...** आहाहा! निर्विकल्प

शान्ति के बल से **रागादि का त्यागकर परिणाम निर्मल करने चाहिए...** आहाहा! समाधि अर्थात् वे बाबा चढ़ावे, उसकी बात नहीं, हों! अज्ञानी अन्यमत में समाधि कहते हैं न, वह सब थोथा। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरदेव, जो आनन्द का नाथ भगवान, उसमें समाधि लगावे अर्थात् स्थिरता करते हैं, उसका नाम समाधि। आधि, व्याधि, उपाधि से रहित समाधि। उपाधि अर्थात् यह बाह्य के संयोग; व्याधि अर्थात् शरीर के रोग; आधि अर्थात् मन के संकल्प-विकल्प, पुण्य-पाप। यह आधि, व्याधि, उपाधि से रहित समाधि। अन्यमति बाबा कहते हैं, वह नहीं। आहाहा! लोगस्स में आता है, नहीं? समाहिवरमुत्तं दिंतु। लोगस्स में आता है। समाधि, समाधि—शान्ति। आहाहा! शुभाशुभ विकल्प के राग से भिन्न शान्ति... शान्ति... शान्ति... आहाहा!

निर्विकल्प समाधि के बल से रागादि का त्यागकर,... लो, राग कैसे छूटता है? कहते हैं। राग-द्वेष कैसे छूटें? निर्विकल्प समाधि के बल से छूटते हैं। आहाहा! यह परमात्मप्रकाश है। योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त वनवासी अमृत के झूले में झूलनेवाले। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं, हों, दुनिया को। करुणा से कहते हैं, प्रभु! तू दुःखी होकर संसार में भटकता है। अब तो सुख के पंथ में आ। आहाहा! तेरा आत्मा आनन्द का नाथ है, वहाँ जा। तेरा सुखपंथ वहाँ मिलेगा। राग में जायेगा तो दुःखपंथ है। आहाहा! **जिन्होंने चित्त को निर्मल नहीं किया,...** सम्यग्दर्शन और आत्मा के आनन्द का स्वाद लेकर **चित्त को निर्मल नहीं किया, वे आत्मा को ठगनेवाले हैं।** आहाहा!

ऐसा दूसरी जगह भी कहा है, कि चित्त के बन्धन से यह जीव कर्मों से बँधता है। लो! चित्त परसन्मुख के झुकाव में बँधता है। **जिनका चित्त परिग्रह से धन धान्यादिक से आसक्त हुआ,...** जिसका चित्त पैसा, धन, धान्य आदि, शरीर में आसक्त हुआ, **वे ही कर्मबन्धन से बँधते हैं,...** अणगार धर्मामृत, यह श्लोक अणगार धर्मामृत का है।

चित्ते बद्धै बद्धौ मुक्के मुक्को त्ति णत्थि संदेहो।
अप्पा विमलसहावो मइलिज्जइ मइलिए चित्ते॥

आहाहा! (पण्डित) आशाधर, अणगार धर्मामृत में (कहते हैं)।

जिनका चित्त परिग्रह से धन धान्यादिक से आसक्त हुआ, वे ही कर्मबंधन से

बँधते हैं, और जिनका चित्त परिग्रह से छूटा... रागादि सबसे छूटकर अन्दर गये। आहाहा! **आशा (तृष्णा) से अलग हुआ, वे ही मुक्त हुए।** आहाहा!

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥१३१॥

(समयसार कलश)

यह संवर अधिकार में अमृतचन्द्राचार्य का श्लोक है। जो कोई अभी तक मुक्ति को प्राप्त हुए, '**भेदविज्ञानतः सिद्धाः**' राग और शरीर से पर भेदज्ञान आत्मा, उससे मुक्ति को प्राप्त हुए। और बन्ध क्यों हुआ? '**अस्यैवाभावतो बद्धा**' भेदज्ञान के अभाव से, राग की एकताबुद्धि से बँधे। आहाहा! ऐसी बात है।

इसमें सन्देह नहीं है। यह आत्मा निर्मल स्वभाव है,... भगवान आत्मा तो निर्मल चैतन्य-सरोवर, आनन्दसागर है। आहाहा! अनन्त गुण, वे सब पवित्र हैं। पर्याय में राग-द्वेष और अपवित्रता है। वस्तु में और गुण में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? **आत्मा निर्मल स्वभाव है, सो चित्त के मैले होने से मैला होता है।** आहाहा! है तो निर्मल भगवान। राग और पुण्य-पाप के भाव से मलिन होता है। आहाहा! १३५ (गाथा) हुई।

गाथा - १३६

अत्र पञ्चेन्द्रियविजयं दर्शयति–

२५९) ए पंचिंदिय–करहडा जिय मोक्कला म चारि।
चरिवि असेसु वि विसय–वणु पुणु पाडहिँ संसारि।।१३६।।

एते पञ्चेन्द्रियकरभकाः जीव मुक्तान् मा चारय।
चरित्वा अशेषं अपि विषयवनं पुनः पालयन्ति संसारे।।१३६।।

ए इत्यादि। ए एते प्रत्यक्षीभूताः पंचिंदिय–करहडा अतीन्द्रियसुखास्वादरुपात्परमात्मनः सकाशात् प्रतिपक्षभूताः पञ्चेन्द्रियकरहटा उष्ट्राः जिय हे मूढजीव मोक्कला म चारि स्वशुद्धात्म–भावनोत्थवीतरागपरमानन्दैकरुपसुखपराङ्मुखो भूत्वा स्वेच्छया मा चारय व्याघुट्टय। यतः किं कुर्वन्ति। पाडहिं पातयन्ति। कम्। जीवम्। क्व। संसारे निःसंसारशुद्धात्मप्रतिपक्षभूते पञ्चप्रकारसंसारे पुणु पश्चात्। किं कृत्वा पूर्वम्। चरिवि चरित्वा भक्षणं कृत्वा। किम्। विसय–वणु पञ्चेन्द्रिय–विषयवनमित्यभिप्रायः।।१३६।।

आगे पाँच इंद्रियों का जीतना दिखलाते हैं–

इन पञ्चेन्द्रियरूपी ऊँटों को नहिं खुला विचरने दो।
ये सम्पूर्ण विषयवन चरकर जग में पटकेंगे तुमको।।१३६।।

अन्वयार्थ :– [एते] ये प्रत्यक्ष [पंचेन्द्रियकरभकाः] पाँच इंद्रियरुपी उँट हैं, उनको [स्वेच्छया] अपनी इच्छा से [मा चारय] मत चरने दे, क्योंकि [अशेषं] सम्पूर्ण [विषयवनं] विषय–वन को [चारयित्वा] चर के [पुनः] फिर ये [संसारे] संसार में ही [पातयंति] पटक देंगे।

भावार्थ :– ये पाँचो इंद्री अतीद्रिंय–सुख के आस्वादनरुप परमात्मा में पराङ्मुख हैं, उनको हे मूढ़जीव, तू शुद्धात्मा की भावना से पराङ्मुख होकर इनको स्वच्छंद मतकर, अपने वश में रख, ये तुझे संसार में पटक देंगे, इसलिये इनको विषयों से पीछे लौटा। संसार से रहित जो शुद्ध आत्मा उससे उलटा जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरुप पाँच प्रकार का संसार उसमें ये पंचेन्द्रीरुपी उँट स्वच्छंद हुए विषय–वन को चरके जगत के जीवों को जगत में ही पटक देंगे, यह तात्पर्य जानना।।१३६।।

गाथा-१३६ पर प्रवचन

आगे पाँच इन्द्रियों का जीतना दिखलाते हैं—

२५९) ए पंचिंदिय-करहडा जिय मोक्कला म चारि।
चरिवि असेसु वि विसय-वणु पुणु पाडहिँ संसारि।।१३६।।

अन्वयार्थः— भगवान योगीन्द्रदेव कहते हैं, **ये प्रत्यक्ष पाँच इन्द्रियरूपी ऊँट हैं,...** ऊँट। आहाहा! जैसे ऊँट वृक्ष खाता है न? ऊँचा होकर; उसी तरह तेरी पाँच इन्द्रियों की ओर के झुकाव में ऊँट... आहाहा! **उनको अपनी इच्छा से मत चरने दे,...** आहाहा! है? **क्योंकि सम्पूर्ण विषय-वन को चरके...** आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर चरकर **फिर ये संसार में ही पटक देंगे।** आहाहा! विषय शब्द से पंचेन्द्रिय की ओर झुकाव का जो भाव, वह सब विषय है। आहाहा! विषय अर्थात् अकेला स्त्री का भोग नहीं, वह तो पाप ही है। आहाहा! स्वस्त्री का भोग, वह केवल पाप ही है। आहाहा! यह तो पुण्य और पाप का जो परसन्मुख का लक्ष्य होता है, उस सबको छोड़ दे। नहीं तो पाँच इन्द्रिय के विषय को चरकर, उल्टे वे तुझे संसार में पटक देंगे। आहाहा! भारी मिठास परन्तु जगत की। स्त्री ठीक मिली हो, शरीर ठीक मिला हो, पुत्र ठीक हो, पाँच-पचास लाख, करोड़, दो करोड़ पैसे हों, मकान बड़े, बँगले अच्छे हों। कल नहीं कहा था भाई का? रमणीकभाई आये थे न कल? रमणीकभाई को दादर में सत्तर लाख का एक मकान है। आमोद के दिगम्बर हैं। हमारे पालेज के पास आमोद है। हमारे पालेज के पास। मैं पालेज में नौ वर्ष रहा हूँ न! पिताजी की दुकान थी वहाँ। नौ वर्ष मैं दुकान पर रहा हूँ। पालेज, भरूच और वडोदरा के बीच में है।

एक बार तो आमोद के रास्ते निकले थे। हमारे भाई थे न, कुंवरजीभाई भागीदार। वह वहाँ दर्शन करने आये थे। आमोद के बाहर। वहाँ मुम्बई रहते हैं, बड़े गृहस्थ हैं। कल आये थे विनती करने। गाँव में जाना, हमारे दादर में उतरना। गत वर्ष वहाँ अठारह दिन रहे थे। बेचारे नरम व्यक्ति हैं।

मुमुक्षु : मकान कैसा बनाया होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्तर लाख का संगमरमर का। तुम्हारा छह लाख का है, उसका सत्तर लाख का है। सब एक जाति के हैं। धूल... धूल है। मिट्टी का बँगला बड़ा है। चालीस लाख, नहीं? गोवा में चालीस लाख, नहीं? गोवा में है न? गोवा में, शान्तिलाल खुशाल। दो अरब चालीस करोड़ रुपये हैं, उसके पास। बनिया है, अभी गुजर गया। दो अरब चालीस करोड़। चालीस लाख का तो एक बँगला। परन्तु यह तो सत्तर लाख का, मुम्बई में। धूल है। आहाहा!

मुमुक्षु : आकुलता का साधन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! आकुलता क्या, उसे ऐसे सम्हालना और उसका यह करना। आहाहा! संगमरमर अकेला इसलिए शोभा... शोभा... शोभा... धूल में भी नहीं, बापू! शोभा तो अन्दर में आत्मा में है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : रात्रि में निश्चिन्तता से गर्मी में नींद आ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : गर्मी में नींद आ जाये। वहाँ रहे थे न, भाई वहाँ रहे थे, नहीं? अरे! धूल में भी नहीं, बापू! आनन्द का नाथ अन्दर विराजता है, प्रभु! उसमें जा न, तुझे शान्ति मिलेगी। बाहर में सर्वत्र दुःख, दुःख और दुःख है। आहाहा!

भावार्थ—ये पाँचों इन्द्री अतीन्द्रिय-सुख के आस्वादनरूप परमात्मा में पराङ्मुख हैं,... यह व्याख्या की। पाँच इन्द्रियाँ हैं और उनके विषय। **ये पाँचों इन्द्री अतीन्द्रिय-सुख के आस्वादनरूप परमात्मा में पराङ्मुख हैं,...** आहाहा! परमात्मप्रकाश है न! भगवान आत्मा यह परमात्मा ही है। स्वभाव से शक्ति से सामर्थ्य से अतीन्द्रिय सुख के आस्वादनरूप परमात्मा। आहाहा! वह परमात्मा आत्मा कैसा है? अतीन्द्रिय आनन्द के आस्वादनयप परमात्मा से पाँचों इन्द्रियाँ पराङ्मुख हैं। आहाहा! चाहे तो वह चक्रवर्ती के भोग हों या इन्द्र के (इन्द्रासन हो), जहर है, दुःख है, दुःख है। आहाहा! वह आत्मा के आनन्द से पराङ्मुख है। आहाहा! है? **उनको हे मूढ़जीव,...** सन्तों को दया आती है। दिगम्बर सन्त कहते हैं। अरे! प्रभु! तू क्या करता है, भाई? **हे मूढ़जीव! तू शुद्धात्मा की भावना से पराङ्मुख...** भगवान परमानन्द प्रभु की एकाग्रता से सन्मुखता से पराङ्मुख, आहाहा! **होकर इनको स्वच्छन्द मत कर,...** यह पाँचों इन्द्रियों में स्वच्छन्द न कर।

आहाहा! **अपने वश में रख, वे तुझे संसार में पटक देंगे,...** आहाहा! **इसलिए उनको विषय से पीछे लौटा।** इन्द्रिया की ओर के विशय से विमुख हो जा। आहाहा!

संसार से रहित जो शुद्ध आत्मा उससे उलटा... तीन बातें कहते हैं। शुद्धात्मा कैसा है? कि वह तो संसार से रहित है। भगवान तो उदयभाव से रहित परम स्वभावभाव है। आहाहा! **शुद्ध आत्मा उससे उलटा जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप पाँच प्रकार का संसार, उसमें ये पंचेन्द्रीरूपी ऊँट स्वच्छन्द हुए विषय-वन को चरके जगत के जीवों को जगत में ही पटक देंगे,...** आहाहा! कठिन भाई यह। जिसे विषय की मिठास हो न, पद्मनन्दि ने कहा है न, पद्मनन्दि आचार्य दिगम्बर सन्त, उन्होंने ब्रह्मचर्य की बहुत व्याख्या की है। ब्रह्म अर्थात् आत्मा में चरना अर्थात् रमना, वह ब्रह्मचर्य है। पाँच इन्द्रिय के विषय में तो दुःख है, आहाहा! जहर है, पाप है। तो बहुत ब्रह्मचर्य की व्याख्या की। पद्मनन्दि आचार्य, पद्मनन्दि पंचविंशति में। पश्चात् कहा कि हे युवकों! यह मेरी ब्रह्मचर्य की व्याख्या तुमको ठीक न लगे, प्रभु! हम मुनि हैं, क्षमा करना, हों! आहाहा! मुनि ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार यहाँ आचार्य कहते हैं, हमारी यह व्याख्या धर्म की है, वह तुमको न बैठे तो क्षमा करो, बापू! वस्तु तो यह है। आहाहा! समझ में आया?

यह तात्पर्य जानना। लो। पाँच इन्द्रिय की ओर का झुकाव, वनचर इन्द्रियाँ वन में चरकर संसार में पटक देगी। अनीन्द्रिय ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके सन्मुख होकर अनुभव कर, तो तुझे संसार का अभाव होकर मोक्ष होगा। दूसरा कोई उपाय नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १३७

अथ ध्यानवैषम्यं कथयति-

२६०) जोइय विसमी जोय-गइ मणु संठवण ण जाइ।
इंदिय-विसय जि सुक्खडा तित्थु जि वलि वलि जाइ।।१३७।।

योगिन् विषमा योगगतिः मनः संस्थापयितुं न याति।
इन्द्रियविषयेषु एव सुखानि तत्र एव पुनः पुनः याति।।१३७।।

जोइय इत्यादि। जोइय हे योगिन् विसमी जोय-गइ विषमा योगगतिः। कस्मात्। मणु संठवण ण जाइ निजशुद्धात्मन्यतिचपलं मर्कटप्रायं मनो धर्तुं न याति। तदपि कस्मात्। इंदिय-विसय जि सुक्खडा इन्द्रियविषयेषु यानि सुखानि वलि वलि तित्थु जि जाइ वीतरागपरमाह्लादसमरसीभावपरमसुखरहितानां अनादिवासनावासितपञ्चेन्द्रिय- विषयसुखस्वादासक्तानां पुनः पुनः तत्रैव गच्छतीति भावार्थः।।१३७।।

आगे ध्यान की कठिनता दिखलाते हैं-

विषम गति है इस मन की जो रोकें फिर भी नहीं रुके।
पञ्चेन्द्रिय विषयों में ही सुख मान मान उनमें दौड़े।।१३७/२६०।।

अन्वयार्थ :- [योगिन्] हो योगी, [योगगतिः] ध्यान की गति [विषमा] महाविषम है, क्योंकि [मनः] चित्तरुपी बन्दर चपल होने से [संस्थापयितुं न याति] निज शुद्धात्मा में स्थिरता को नहीं प्राप्त होता। क्योंकि [इंद्रियविषयेषु एव] इन्द्रिय के विषयों में ही [सुखानि] सुख मान रहा है, इसलिये [तत्र एव] उन्हीं विषयों में [पुनः पुनः] फिर फिर अर्थात् बार बार [याति] जाता है।

भावार्थ :- वीतराग परम आनंद समरसी भावरुप अतीद्रिंय सुख से रहित जो यह संसारी जीव है, उसका मन अनादिकाल की अविधा की वासना में बस रहा है, इसलिये पंचेन्द्रियों के विषय-सुखों में आसक्त है, इन जगत् के जीवों का मन बारम्बार विषय-सुखों में जाता है, और निजस्वरुप में नहीं लगता है, इसलिये ध्यान की गति विषम (कठिन) है।।१३७।।

वीर संवत् २५०२, माघ शुक्ल ६, मंगलवार
दिनांक- २५-०१-१९७७, गाथा - १३७, १३८, प्रवचन-१९६

परमात्मप्रकाश, १३७। **आगे ध्यान की कठिनता दिखलाते हैं**—आत्मा में अन्तर झुकाव करना, वह ध्यान कठिन है। अशक्य नहीं, परन्तु दुर्लभ है। आहाहा! इसकी बात करते हैं जरा।

२६०) जोइय विसमी जोय-गइ मणु संठवण ण जाइ।
इंदिय-विसय जि सुक्खडा तित्थु जि वलि वलि जाइ।।१३७।।

अन्वयार्थ—हे योगी, ध्यान की गति... स्वरूप सन्मुख की गति। शुद्ध आनन्दघन भगवान, आहाहा! उसकी ओर का झुकाव, उसके ध्यान का विषय आत्मा को बनाकर ध्यान होना, वह कठिन है, कहते हैं। अशक्य नहीं। क्यों? **महाविषम है, क्योंकि चित्तरूपी बन्दर चपल होने से...** आहाहा! मनरूपी बन्दर चपल होने से बाहर में भ्रमा करता है, कहते हैं। शुभ अशुभ विषय में। आहाहा! अन्तर में ध्यान में ढलना कठिन है। आहाहा! मनरूपी माकडुं—बन्दर, आहाहा! **चपल होने से निज शुद्धात्मा में स्थिरता को नहीं प्राप्त होता।** देखा? आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दधाम भगवान शुद्ध आत्मा में मन को स्थापित करना, आहाहा! परसन्मुख के झुकाववाले मन को अन्दर में स्थापित करना, वह बहुत कठिन है, कहते हैं। आहाहा!

क्योंकि इन्द्रिय के विषयों में ही सुख मान रहा है,... आहाहा! पाँच इन्द्रियों के झुकाव में बाहर में जिसे, कुछ ठीक है—ऐसा मान रहा है। आहाहा! समझ में आया? **इन्द्रिय के विषयों में ही सुख...** अर्थात् उल्लसित वीर्य वहाँ उसे दिखता है। वीर्य वहाँ पंचेन्द्रिय की ओर के विषय में जाये तो उसे ठीक लगता है। आहाहा! अनीन्द्रिय ऐसा जो आत्मा, उसमें जाना उसे अशक्य होता है, दुर्लभ होता है। आहाहा! परमात्मप्रकाश है न! परमात्मस्वरूप भगवान अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, सर्वस्व आया था न सवेरे? अनन्त ज्ञान का आनन्द, अनन्त शान्ति-चारित्र का आनन्द, अनन्त स्वच्छता का आनन्द, अनन्त प्रभुता का आनन्द, ऐसे अनन्त गुण का आनन्द, ऐसा सर्वस्व। आहाहा! उसकी

ओर जाना जगत को कठिन है, कहते हैं। समझ में आया? पाँच इन्द्रिय के झुकाव के विषय में मन को—बन्दर को जाना ठीक पड़ता है वहाँ। आहाहा!

भगवान आत्मा तो मन का विषय नहीं। वह तो अनीन्द्रिय आनन्द की परिणति का विषय है। आहाहा! अमृतस्वरूप भगवान आत्मा की ओर का झुकाव, ध्यान का विषय चैतन्य को बनाना। ध्यान विषय कुरु। पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर जाते हुए मन को विमुख कर। आहाहा! भगवान तेरा अन्दर आनन्दकन्द प्रभु, उसमें मन को—बन्दर को वहाँ से मोड़कर इस ओर ले। आहाहा! कहो, चिमनभाई! यह लोहे के धन्धे में स्टील आवे न, आहाहा! बैठे हो वहाँ पाँच, पचास हजार पैदा हों महीने या वर्ष में, मन बन्दर वहाँ घूमता है।

मुमुक्षु : कूदाकूद करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कूदाकूद करता है, बात सच्ची। अरे! कहते हैं, भगवान! तेरा परमात्मा अन्दर विराजता है और उसे छोड़कर पाँच इन्द्रिय के विषय में मन के बन्दर को जोड़ दे, प्रभु!

मुमुक्षु : आर्तध्यान और रौद्रध्यान होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ जाता है, उसकी ओर झुकाव जाता है। लम्बा विचार करे तो लम्बे विचार वहाँ चले उसकी ओर।

मुमुक्षु : ऐसा यह कहता है कि व्यापार में लम्बे विचार चलते हैं, इसमें नहीं चलते।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करता नहीं। उल्टा है, इसके लिये तो कहते हैं यहाँ। आहाहा!

सवेरे एक याद आया था बाद में, व्याख्यान के बाद। कर्म का बन्ध मुझे है, ऐसा जो सन्देह, वह मिथ्यात्व के कारण से है। आहाहा! यह तो ठीक, इससे आगे जरा गया, राग का सम्बन्ध और कर्म का सम्बन्ध मुझे है, वह मिथ्यात्व का भाव है। तो आगे जाकर नोकर्म का सम्बन्ध है। आहाहा! यह जरा व्याख्यान के बाद, यह तो प्रवीणभाई का दिमाग में आया था कि यह किसका सम्बन्ध इसमें? इसके ऊपर से आया था,

व्याख्यान के बाद। वजुभाई! आहाहा! परद्रव्य जो है, पर आत्मा, पर शरीर, वह नोकर्म है। आहाहा! उसका मुझे सम्बन्ध है, यह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! सवेरे गाथा आयी थी न? हीराभाई! भगवान असंग चीज़ है। उसे कर्म और कर्म का मुझे संग है, बन्ध है, सम्बन्ध कहो, बन्ध कहो। आहाहा! ऐसा जो मिथ्यात्वभाव। ऐसा कहा था न वहाँ? हें! उससे धर्मी सम्यग्दृष्टि उससे रहित भाववाला है। आहाहा! पहले श्लोकार्थ... ओहोहो!

भगवान! तू असंग तत्त्व है न अन्दर। आहाहा! उसे कर्म का बन्ध मुझे है अर्थात् कि उसका सम्बन्ध मुझे है, आहाहा! यह भाव मिथ्यात्व है। इस भाव रहित धर्मीजीव को कर्म का बन्ध मुझे है, इस सम्बन्ध बिना का भाव उसे है। आहाहा! तो फिर यह स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी का, तुम्हारे कारखाना लोहे का, पत्थर का, उसे चमड़े का, क्या कहलाता है? प्लास्टिक का। तुम्हारे प्लास्टिक का, इसको पत्थर का, इसको लोहे का। आहाहा!

यहाँ तो कहना है कि प्रभु! अबन्धस्वरूप, असम्बन्धस्वरूप। आहाहा! समकित का जो पहला निःशंक बोल। आहाहा! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! भाई! अरे! लोगों को, पुण्य को विष्टा कहते हो, उसे छोड़ दो, ऐसा कहते हैं। लो, यह शिक्षा के लिये आते हैं। प्रभु! परन्तु पुण्य को तो विष्टा क्या, जहर कहा है न, बापू! भगवान अमृत का सागर, उससे पुण्यभाव, उसे तो विषकुम्भ कहा है न, प्रभु! आहाहा! उसमें अमृत कहाँ है? और १४८ प्रकृति में तो ऐसा कहा, विषतरु फलानि। यह कर्म है, वह सब जहर के फल हैं। आहाहा! विषकुम्भ कहा है न! आहाहा! अमृत का सागर भगवान में से तो अमृत फले। भगवान आत्मा में से तो अमृत का पाक—फल हो। यहाँ कर्म के फल में तो जहर फले। आहाहा! यहाँ तो वहाँ तक कहा, भगवान! शान्ति से उसे... आहाहा! तीर्थंकरप्रकृति है १४८ में, वह जहर का फल लाती है। आहाहा! हें! आहाहा! अरे! लोगों को अमृत के सागर की महिमा नहीं, इसलिए उसे पुण्य के भाव में महिमा जाती है और उसका फल कुछ मिले यह सब अनुकूल और... आहाहा! मोटर और... आहाहा। मकान, मोटर और मकान, मणिरत्न के ढेर, भगवान! वह तो जहर के फल हैं न! वे जहररूपी वृक्ष के फल हैं। वे अमृत के फल नहीं। आहाहा! समझ में आया? अलग जाति है, चिमनभाई!

मुमुक्षु : आपने बताया, नहीं तो कहाँ खबर थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सच्ची, ऐसी ही है। आहाहा!

१४८ प्रकृति को विषतरु फल (कहा है)। आहाहा! वह जहर के वृक्ष के फल। क्या प्रभु कहना है आपको? आहाहा! तीर्थंकरप्रकृति के फल में समवसरण आवे। प्रभु! वह तो परचीज़ है न! आहाहा! परचीज़ का फल है, वह तो जहर के वृक्ष का फल है। आहाहा! गजब! प्रभु! तेरा फल तो अतीन्द्रिय आनन्द आवे, ऐसा तेरा फल है, तेरा खेत वह है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा... भाई! दुनिया से अलग जाति है, बापू! साधारण में मान बैठे हैं न! सामायिक, प्रतिक्रमण और प्रौषध, वह धर्म। दानादि पुण्य, ऐसा कहते हैं। बापू! यह सब विकल्प है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! यह मन का बन्दर वहाँ विकल्प में चला जाता है, कहते हैं। आहाहा! बन्दर चपल होता है न? बन्दर चपल होता है। इसलिए कहा न? **चित्तरूपी बन्दर चपल...** आहाहा! बन्दर ऐसे बैठा हो तो ऐसा-ऐसा किया ही करे चपलाई। पैर, हाथ। आहाहा! देखा है न, बन्दर को नजर से देखा है कि किस प्रकार से बैठता है वह? आहाहा! इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, परमात्मस्वरूप भगवान तू है न! तेरा मनरूपी बन्दर बाहर में ऐसे-ऐसे घूमा करता है चपल, बापू! तू मर जायेगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसी कठिन बातें, भाई! यह बाहर की क्रियाकाण्ड में व्रत और तप...

आज एक लेख आया है, सनावद का, प्रेमचन्द का। समकित की प्राप्ति के लिये व्रत आचरण की आवश्यकता है। उसमें शान्ति होती है पहली उससे। ऐसी-ऐसी बातें डाले, भगवान! क्या हो? आहाहा! ऐसा कि निवृत्ति दिखती है, संयम दिखता है, व्रत दिखते हैं। उससे फिर समकित की प्राप्ति सम्भवित है, ऐसा। अरे! भगवान! बापू! यह भी विकल्प है। यह मन का बन्दर विकल्प में चला गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन ध्यान बिना होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान से। भेदज्ञान का अर्थ यह कि पर से हटा और यहाँ गया। ज्ञान की अपेक्षा से भेदज्ञान है, दृष्टि की अपेक्षा से अन्दर अभेद है। भेद करता है, इससे

उसे एक विकल्प कहा है न! आहाहा! भेदज्ञान को केवलज्ञान जैसा स्वरूप नहीं। आता है न उसमें? भेदज्ञान एक विकल्प है, ऐसा समयसार नाटक में लिखा है। ऐसा-ऐसा करूँ न। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा में ध्यान करने से मन का बन्दर पर में जाये उसमें से यहाँ से मोड़ना कठिन है, बापू! आहाहा! महा पुरुषार्थ है। आहाहा!

मुमुक्षु : 'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचनं।'

पूज्य गुरुदेवश्री : 'किल केचनं' हाँ, कहा है। परन्तु भेदज्ञान में विकल्प लिया है, समयसार नाटक में। अपेक्षा से लिया है। ऐसे भेद है, वह ऐसे अभेद है वास्तव में। परन्तु उससे भिन्न पड़ूँ, इतना जरा अपेक्षित भाव रह जाता है उतना। समयसार नाटक में कहा है। वह भी नाशवान है। आहाहा! समझ में आया? अरे! प्रभु! तेरा मार्ग तो बहुत अलग, बापू! आहाहा! अरे! जगत को सुनने को मिले नहीं। सुख की राह कहाँ है? और दुःख के पंथ से कैसे विमुख होना? आहाहा! ऐसा जिसे सुनने को मिलता नहीं। अरे! कहाँ जाये? क्या करे वह? आहाहा!

यहाँ आचार्य तो (कहते हैं), **इन्द्रिय के विषयों में ही सुख मान रहा है,...** आहाहा! अर्थात् कि इस ओर जाने में ही उसे ठीक लगता है। ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा आनन्द का धाम प्रभु, उस ओर जाना, उसे ठीक नहीं लगता। आहा! वहाँ इसे कष्ट लगता है। ऐसा इसे ठीक पड़ता है। आहाहा! परद्रव्य का संग और सम्बन्ध इसे ठीक पड़ता है, कहते हैं। आहाहा! इसलिए इसे परद्रव्य के सम्बन्ध में से छूटना कठिन पड़ता है। आहाहा! मक्खी मिश्री की डली को चिपटी होती है। उसे लड़का-बालक को शक्कर दी हो और थूक उसे छुआ हो तो डली गीली हो गयी हो। मक्खी चिपटी हो तो डली लेने जाये (उसमें) पंख चिपक जाये तो भी छोड़े नहीं। क्योंकि वहाँ गृद्धि हो गयी। आहाहा! इसी प्रकार यह परपदार्थ के रंग में रंग गया। उसे वापस मुड़ना सुहाता नहीं। भले दुःखी हो, भटके, परन्तु उसे हटना सुहाता नहीं। समझ में आया? यह धर्म बापू कोई अलौकिक चीज़ है। आहाहा! लोग मान बैठे हैं कि दया पालन की और व्रत पालन किये और अपवास किये, बापू! वह तो विकल्प है, भाई! वह तो मन के विकल्प की गति है। आहाहा!

क्योंकि इन्द्रिय के विषयों में ही सुख मान रहा है, इसलिए उन्हीं विषयों में फिर-फिर अर्थात् बार-बार जाता है। जिसमें ठीक लगता है, उसमें बारम्बार जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूत की कोकड़ी होती है न? तानाबाना निकालते हैं। एक के बाद एक सूत उसमें से निकला ही करता है। पुणी में से। इसी प्रकार एक के बाद एक मन बन्दर विकल्प किया ही करता है। आहाहा! स्त्री को छोड़कर लड़के का, लड़के को छोड़कर धन्धे का, धन्धे का छोड़कर इज्जत का, इज्जत का छोड़कर सुविधा का, सुविधा का छोड़कर असुविधा के नाश का किया ही करता है। भगवानजीभाई! ऐसा है। आहाहा! **फिर-फिर अर्थात् बार-बार जाता है।** जिसमें उसे मजा पड़ता है न, उसमें वह बारम्बार जाता है। भगवान आत्मा में उसे मजा नहीं लगता। आहाहा! ऐसा स्वरूप अब। आहाहा!

भावार्थ—वीतराग परम आनन्द समरसी भावरूप अतीन्द्रिय सुख... आहाहा! यह संसारी जीव कैसे हैं? वीतराग परमानन्द समतारस, ऐसा भावरूप अतीन्द्रिय सुख। आहाहा! वीतराग परमानन्द और समरसी। यह वीतराग में आ जाता है परन्तु ऐसे शान्तरस ऐसे भावरूपी अतीन्द्रिय सुख से संसारी रहित है। आहाहा! भले वह करोड़ोंपति, अरबोंपति (हो), देव हो, परन्तु वह अतीन्द्रिय वीतराग आनन्द के सुख से प्रभु रहित है। आहाहा! **जो यह संसारी जीव है,...** आहाहा! यह संसारी जीव की व्याख्या की। आहाहा! वीतरागी परमानन्द ऐसा जो अतीन्द्रिय सुख, उससे जीव—संसारी प्राणी रहित है। आहाहा! समझ में आया? **उसका मन अनादि काल की अविद्या की वासना में...** आहाहा! स्वरूप के अज्ञान के कारण, स्वरूप है, वह क्या है? आनन्दकन्द नाथ जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का खजाना पड़ा है। आहाहा! ऐसा जो स्वरूप उसकी अविद्या—उसका अज्ञान। आहाहा! विद्यमान का अविद्यमान अज्ञान। विद्यमान जो भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, उसकी अविद्या। विद्या की अविद्या। आहाहा! अर्थात् कि राग और द्वेष जो अज्ञान है, उसकी ओर उसका झुकाव है। अविद्या की ओर झुकाव है, विद्या की ओर नहीं। विद्यमान भगवान आत्मा, आहाहा!

थोड़ा काल बालक में खेलने में जाये, तरुण हो तो स्त्री में जाये। आहाहा! 'बालपन खेल में खोया।' हमारे वहाँ पालेज में मुसलमान बहुत हैं न। दुकान के बाहर

खाट डालकर सो रहे हों, जल्दी सवेरे निकले फकीर... फकीर। फकीर, वह क्या कहलाता है? उनके रोजा के दिन होते हैं न। सवेरे निकले। 'बालपन खेल में खायो, जवानी तरुणी में मोह्या, वृद्धपन देखके रोया।' आहाहा! फिर वृद्धपन आया, शरीर जीर्ण (हो गया), कुछ कर सकता नहीं, बापू! सहारे बिना बैठा नहीं जा सकता। कमर टूटती है, कमर टूटते है। चलते हुए और टेढ़ा हो जाता हूँ। आहाहा!

देखो, यह संसार के सब खेल। उसके खेल में खेलता भगवान आत्मा अपने स्वभाव की अविद्या के कारण, आहाहा! समझ में आया? भले वह व्रत और तपादि करता हो तो भी वह राग और विकल्प है। आहाहा! उसमें रंगा हुआ जीव... आहाहा! **अविद्या की वासना में बस रहा है,...** आहाहा! वे संस्कार जम गये हैं, कहते हैं। बाहर की अनुकूलता आवे वहाँ... आहाहा! प्रसन्न... प्रसन्न... प्रसन्न। आहाहा! और उसमें विवाह का प्रसंग हो, शरीर जवान हो, पाँच, पचास हजार, लाख खर्च करना हो, आहा! और कन्या करोड़पति की हो, दस-बीस लाख लानेवाली हो, उसके पिता को दूसरी कन्या न हो और कदाचित् अभी दस-बीस लाख देगा, परन्तु मर जायेगा तो सब यहाँ रहेगा। और उसका उत्साह। पोपटभाई! आहाहा! इसका उसे उत्साह। अरे प्रभु! क्या करता है तू यह? आहाहा! आनन्द के नाथ को विस्मरण करके और ऐसे दुःख के भाव का स्मरण करके तू कहाँ रुक गया है? आहाहा! चिमनभाई! हें! आहाहा!

सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर अनाकुल आनन्द का नाथ अन्दर है न, प्रभु! उसके सामने देखता नहीं। आहाहा! एक बड़ा पुरुष आया हो, करोड़पति, अरबपति मिलने (आया हो)। दस मिनिट की, पाव घण्टे की अवधि दी हो। पाव घण्टा मैं आऊँगा, बैठूँगा। आया और उस समय दो वर्ष के लड़के के साथ खेल में चढ़ गया हो। हें! आहाहा! इसी प्रकार यह तीन लोक का नाथ परमात्मा तू स्वयं है, भाई! आहाहा! उसके सन्मुख देखता नहीं और राग के खेल में रुक गया, बापू! आहाहा! समझ में आया?

इसलिए पंचेन्द्रियों के विषय-सुखों में आसक्त है,... यह कठिन पड़ता है न लोगों को। भगवान और भगवान की वाणी को इन्द्रिय कहा है। (समयसार) ३१वीं गाथा। इन्द्रिय का विषय है तो उसे इन्द्रिय कहा। इसे कठोर पड़ता है। अरे प्रभु! तू

अनीन्द्रिय है और यह है इन्द्रिय का विषय। आहाहा! उसमें भटकने से तुझे भगवान नहीं मिलेगा। हें! आहाहा! हो, शुभभाव होता है। जब तक (पूर्ण) वीतरागता न आवे, पुरुषार्थ से (पूर्ण) वीतरागता प्रगट न हो, तब तक ज्ञाता-दृष्टा रहकर भी शुभभाव दया, पूजा, भक्ति का आवे सही। समझ में आया? परन्तु वह परसन्मुख के झुकाववाला भाव है, भाई! वह तो बन्ध का कारण है। लोगों को कठोर पड़ता है, क्या हो? **पंचेन्द्रियों के विषय-सुखों में आसक्त है,...** आहाहा! **इन जगत के जीवों का मन बारम्बार विषय-सुखों में जाता है,...** आहाहा! **और निजस्वरूप में नहीं...** आता। आहाहा! **निजस्वरूप में नहीं लगता है,...** आहाहा! **इन जगत के जीवों का मन बारम्बार विषय-सुखों में जाता है,...** ऐसे बाहर में जाता है, ऐसा कहते हैं। **और निजस्वरूप में नहीं...** आता। आहाहा! **इसलिए ज्ञान की गति विषम (कठिन) है।** आहाहा! बाहर से समेटकर अन्दर में आना अति कठिन गति है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : वस्तु मौजूद है तो भी इसे रुचती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मौजूद परमात्मा साक्षात् प्रभु है, इसे खबर नहीं। सकल व्यक्त नहीं आया था? पर्याय की अपेक्षा से उसे अव्यक्त कहते हैं परन्तु वस्तु की अपेक्षा से व्यक्त मौजूद चीज़ अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द प्रभु नित्यानन्द ध्रुवानन्द अचलानन्द अनन्तानन्द, आहाहा! अस्ति धराता मौजूद तत्त्व है। उसकी ओर का झुकाव करना अन्दर में सुखबुद्धि होकर। आहाहा! उसका इसे माहात्म्य आया नहीं। बाहर में जरा कुछ पाँच-पच्चीस लाख मिले और धूल मिले और स्त्री, पुत्र (ठीक हो वहाँ) आहा! अरे रे! क्या हुआ तुझे बापू? मिथ्यात्व की मदिरा पीकर पागल हो गया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा स्वरूप ही है, भाई! आहाहा!

इसलिए ध्यान की गति विषम (कठिन) है। आहाहा! १३७ (हुई)।

गाथा - १३७*५

अथ स्थलसंख्याबाह्यं प्रक्षेपकं कथयति–

२६०) सो जोइउ जो जोगवइ दंसणु णाणु चरित्तु।
होयवि पंचहँ बाहिरउ झायंतउ परमत्थु।।१३७*५।।

स योगी यः पालयति (?) दर्शनं ज्ञानं चारित्रम्।
भूत्वा पञ्चभ्यः बाह्यः ध्यायन् परमार्थम्।।१३७*५।।

सो इत्यादि। सो जोइउ स योगी ध्यानी भण्यते। यः किं करोति। जो जोगवइ यः कर्ता प्रतिपालयति रक्षति। किम्। दंसणु णाणु चरित्तु निजशुद्धात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धान–ज्ञानानुचरणरुपं निश्चयरत्नत्रयम्। किं कृत्वा होयवि भूत्वा। कथंभूतः। बाहिरउ बाह्यः। केभ्यः। पंचहं पञ्चपरमेष्ठि–भावनाप्रतिपक्षभूतेभ्यः पञ्चमगतिसुखविनाशकेभ्यः पञ्चेन्द्रियेभ्यः। किं कुर्वाणः। झायंतउ ध्यायन् सन्। कम्। परमत्थु परमार्थशब्दवाच्यं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं परमात्मानमिति तात्पर्यम्। योगशब्दस्यार्थं कथ्यते–'युज्' समाधौ इति धातुनिष्पन्नेन योगशब्देन वीतरागनिर्विकल्प–समाधिरुच्यते। अथवानन्तज्ञानादिरुपे स्वशुद्धात्मनि योजनं परिणमनं योगः, स इत्थंभूतो योगो यस्यास्तीति स तु योगी ध्यानी तपोधन इत्यर्थः।।१३७*५।।

आगे स्थल–संख्या के बाह्य जो प्रक्षेपक दोहे हैं, उनको कहते हैं–

दर्शन ज्ञान और चारित का जो भी नित आचरण करे।
पञ्चेन्द्रिय का लक्ष्य छोड़ परमात्म भजे वह योगी है।।१३७*५।।

अन्वयार्थ :– [स योगी] वही ध्यानी है, [यः] जो [पंचभ्यः बाह्यः] पंचेंद्रियों से बाहर (अलग) [भूत्वा] होकर [परमार्थम्] निज परमात्मा का [ध्यायन्] ध्यान करता हुआ [दर्शनं ज्ञानं चारित्रम्] दर्शन, ज्ञान, चारित्ररुपी रत्नत्रय को [पालयति] पालता है, रक्षा करता है।

भावार्थ :– जिसके परिणाम निज शुद्धात्मद्रव्य का सम्यक्श्रद्धान ज्ञान आचरणरुप निश्चयरत्नत्रय में ही लीन है, जो पंचमगतिरुपी मोक्ष के सुख को विनाश करनेवाली और पांचपरमेष्ठी की भावना से रहित ऐसी पंचेंद्रियों से जुदा हो गया है, वही योगी है, योग शब्द का अर्थ ऐसा है, कि अपना मन चेतन में लगाना वह योग जिसके हो, वही योगी है, वही ध्यानी है, वही तपोधन है, वह निःसंदेह जानना।।१३७*५।।

गाथा-१३७*५ पर प्रवचन

(यह गाथा) प्रेक्षक है, पाँचवीं प्रेक्षक है, पहली चार आ गयी हैं, यह पाँचवीं है।

२६०) सो जोइउ जो जोगवइ दंसणु णाणु चरित्तु।
होयवि पंचहँ बाहिरउ झायंतउ परमत्थु।।१३७*५।।

अन्वयार्थ :— वही ध्यानी... योगी कहा है न! अपने शिष्य को कहते हैं न! अरे योगी! जिसने आत्मा के आनन्द में जिसकी परिणति को झुकाया है—योग किया है, उसे योगी कहते हैं। आहाहा! राग में जुड़े, उसे भोगी कहते हैं। आहाहा! पुण्य-पाप के राग में जुड़े उसे भोगी—संसारी कहते हैं। आहाहा! और तीन लोक के नाथ परमात्मस्वरूप से विराजमान आत्मा, उसमें जिसकी पर्याय दशा योग-जोड़ा है, उसे योगी कहते हैं। आहाहा! ऐसी व्याख्या कभी सुनी नहीं हो अब इसने, भाई! तेरे तिरने का रास्ता अलौकिक है। समझ में आया? यह ऐसे दया पालन की और व्रत पालन किये और अपवास किये और पूजा, भक्ति की, इसलिए धर्म हो गया, भाई! ऐसा नहीं है। इसकी पंच विषयों में ऐसी गति है, वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा!

जो पंचेन्द्रियों से बाहर (अलग) होकर निज परमात्मा का ध्यान करता हुआ... आहाहा! पंचेन्द्रिय है न। **पंचेन्द्रियों से बाहर (अलग) होकर...** आहाहा! **'परमार्थम्' निज परमात्मा का ध्यान करता हुआ दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूपी रत्नत्रय को पालता है,...** आहाहा! पूर्ण स्वरूप भगवान को ज्ञान में लेकर प्रतीति करता है, उसका ज्ञान करता है और उसमें रमणतारूप आचरण करता है, आहाहा! वह निश्चयरत्नत्रय में लीन है। आहाहा! वह पंचम, पाँच इन्द्रिय है न, इसलिए इसमें **पंचम गतिरूपी मोक्ष के सुख को विनाश करनेवाली...** आहाहा! **पंचम गतिरूपी मोक्ष के सुख को विनाश करनेवाली...** पाँच इन्द्रियाँ। **और पाँच परमेष्ठी की भावना से रहित ऐसी पंचेन्द्रियों...** आहाहा! तीनों ही पाँच लिये। समझ में आया? पंचमगतिरूपी मोक्ष के सुख का विनाश करनेवाली पाँच इन्द्रियाँ। आहाहा! लोगों को कठिन पड़ता है, क्या हो? भगवान की वाणी और भगवान भी कान का विषय है। आहाहा! उनकी ओर का भाव मोक्ष के सुख का विनाश

करनेवाला है। आहाहा! कठिन, बापू! परद्रव्यो (दव्वाओ) दुग्गई। आहाहा! स्वद्रव्य के अतिरिक्त भगवान परद्रव्य का आश्रय ले, वहाँ चैतन्य की ज्ञान की गति नहीं है। वहाँ तो राग की गति है। आहाहा! समझ में आया?

पंचम गतिरूपी मोक्ष के सुख को विनाश करनेवाली... पाँच इन्द्रियाँ और **पंच परमेष्ठी की भावना से रहित...** पाँच इन्द्रियाँ। पंच परमेष्ठी आत्मा। भगवान अरिहन्तस्वरूप ही आत्मा है, सिद्धस्वरूप है। पंच परमेष्ठी आत्मस्वरूप में है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसा मार्ग और... एक तो धन्धे के कारण निवृत्त नहीं होता बेचारा। हें! आठ-दस घण्टे धन्धे मे रुके, छह-आठ घण्टे नींद में रुके, दो-तीन घण्टे भोग में रुके, दो घण्टे खाने में रुके, दो-तीन घण्टे कुथली में रुके, व्यापार-धन्धे की कुथली। अरे! हो गया। आहाहा! भाई! तेरे लिये तू समय कब लेगा? बापू! समझ में आया? आहाहा! क्षण में नाश होकर चला जाता है। आहाहा! एकदम जवान शरीर। आहाहा!

मुमुक्षु : नख में दर्द न हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : नख में दर्द न हो और क्षण में चला जाये। वह नहीं कहता था एक मलकापुर का? दो मित्र बैठे थे। पच्चीस वर्ष की उम्र होगी। यों ही बैठे थे। जवान पच्चीस, अट्ठाईस वर्ष की उम्र। कोई रोग नहीं। बात करते-करते ऐसे मैंने जहाँ देखा, फू... बस, इतना (हुआ)। कुछ नहीं। दो मिनिट पहले कुछ दर्द आया या ढींकणा आया, (ऐसा कुछ नहीं)। मलकापुरवाला भाई कहता था। आहा! क्या नाम मलकापुरवाले का? स्वरूपचन्द, स्वरूपचन्द है न? बहुत रस है। मोक्षमार्गप्रकाशक पूरा कण्ठस्थ है। मोक्षमार्गप्रकाशक। कपड़े का बड़ा व्यापारी है। जवान व्यक्ति, परन्तु यह रस है, बहुत रस। कपड़े का बड़ा व्यापारी है। और उसका मित्र था। बैठे थे, बातें करते थे। कुछ नहीं होता। ऐसा जहाँ देखा, मुर्दा। हाय... हाय! यह? बापू! इसकी स्थिति पूरी हो वहाँ, आहाहा! उसे दूसरा काल कहाँ है उसे? देह को छूटने का जो स्वकाल है। आहाहा! यहाँ रहने की पर्याय का नाश हुआ और अन्यत्र रहने की पर्याय का उत्पाद हुआ। आहाहा!

और एक तो यह कि देह छूटकर जाता है, उसे बाद के लोग उनकी सुविधा

जाती है, उसको रोते हैं। वह मरकर कहाँ गया, ऐसा उन्होंने विचारा है? अरेरे! अरे! वह कहाँ गया होगा यहाँ से मरकर? तिर्यंच में या मनुष्य में कोई स्थान, कहाँ होगा? आहाहा! अरे! स्वार्थी सुविधा और सुख के लिये, मेरी सुविधा गयी, उसको रोते हैं। आहाहा! ऐई! चिमनभाई! अलग व्याख्या। मरनेवाले को रोते हैं, बापू! रोनेवाला नहीं रे रहनेवाला रे। रोनेवाला (भी) रहनेवाला नहीं है। बापू! वह कहाँ, परचीज़ में रहना है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! आया था न, पाँच इन्द्रियोंरूपी ऊँट बाहर का चारा चरकर मर जायेगा। मार डालेगा तुझे। आहाहा! अभ्यन्तर भगवान में जाने का तुझे अवकाश नहीं, प्रभु! आहाहा!

यहाँ पंच परमेष्ठी की भावना से रहित इन्द्रियाँ हैं। भगवान पंच परमेष्ठीस्वरूप ही आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? पंच परमेष्ठी है, वे आत्मस्वरूप हैं। उनका शरीर और राग, वह कहीं पंच परमेष्ठी नहीं। आचार्य, उपाध्याय, साधु अतीन्द्रिय आनन्द की रमणता में हैं, वे साधु हैं। कहीं राग और शरीर, वह कहीं सुधापना नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह आत्मा पंच परमेष्ठीस्वरूप ही है। आहाहा! इस पंच परमेष्ठीस्वरूप भगवान से पाँच इन्द्रियाँ विमुख हैं। पंचम गति मोक्ष का कारण ऐसा जो पंच परमेष्ठी अपना स्वभाव, पंचमगति जो मोक्ष... आहाहा! है न? उसके सुख का विनाश करनेवाली पाँच इन्द्रियाँ। आहाहा! भगवान आत्मा निज भावना से रहित पंचेन्द्रियाँ। तो पर की भावना पंचेन्द्रियाँ तो करती हैं। आहाहा! कठिन बातें, बापू! बहुत सूक्ष्म पड़े न लोगों को। इसलिए कोई ऐसा कहे—यह सोनगढ़वालों ने नया निकाला। भाई! नया नहीं, बापू! समझ में आया? मार्ग तो अनादि का यही है। तुझे सुनने को मिला न हो, इसलिए नया कहलाये? हें! आहाहा!

पंचम गति मोक्षसुख का विनाश करनेवाली पाँच इन्द्रियाँ। आहाहा! और पंच परमेष्ठी की भावना से रहित पाँच इन्द्रियाँ। आहाहा! नियमसार में एक जगह आता है न, नहीं? परमपारिणामिक गति ऐसी पंचम गति, उसे परमपारिणामिकभाव की भावना, पंचम भाव की भावना, ऐसा है। आहाहा! भगवान पंचम भाव ज्ञायकभाव पंचम पारिणामिकभाव, वह पंचम भाव की भावना पंचम गति की प्राप्ति का कारण है। आहाहा! दो, तीन बोल लिये हैं। आहाहा! पंचम पारिणामिकभाव का उपाय पारिणामिकभाव

शुद्ध चैतन्य, उसका फल पंचम पारिणामिकभावरूपी पूर्ण दशा, वह मुक्ति। आहाहा! पंचम भाव को वहाँ घूंटा है, वहाँ है एक शब्द में है, लाईन में। आहाहा! ऐसा माल हो वहाँ रह जाये दिमाग। धारणा की साधारण बात हो तो धारणा न रहे। आहाहा! पंचम गति की प्राप्ति के लिये धर्मात्मा पंचम भाव को स्मरण करता है। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! पंचम गति जो मोक्ष... आहाहा!

यहाँ तीन बोल लिये न? पंचम गति मोक्ष का नाश करनेवाली पाँच इन्द्रियाँ। आहाहा! खण्ड-खण्ड इन्द्रियों का लक्ष्य बाहर जाता है। आहाहा! भगवान तो अनीन्द्रिय है। वह पाँच इन्द्रिय मोक्षगति के नाश का कारण और पंचमभाव ऐसा भगवान पंच परमेष्ठीस्वरूप, उसकी भावना रहित पंचेन्द्रिय है। पंचेन्द्रिय से पंचम भाव की भावना नहीं हो सकती। वहाँ तो राग और उदयभाव की भावना होती है। आहाहा! ऐसी बात लोगों को कठिन पड़ती है। बापू! मार्ग तो यह जिनवर त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतरागदेव तो यह फरमाते हैं। आहाहा! स्वयं भी अन्तर में जाकर परमात्मपद प्राप्त किया है। आहाहा! बाहर के किसी क्रियाकाण्ड से नहीं मिला उन्हें। यह बात स्वयं जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा!

बापू! तुझे कल्याण करना हो तो पाँच इन्द्रियों के झुकाव को छोड़ दे। आहाहा! पंचम गति का कारण ऐसा जो परमेष्ठीस्वभाव अपना, उसके सन्मुख देख न! आहाहा! इसलिए ऐसे को ऐसा कहते हैं कि सब निश्चय... निश्चय है। बापू! निश्चय अर्थात् सच्चा। आहाहा! सत्य ही ऐसा है। भगवान पूर्णानन्द का सत्, वह पाँच इन्द्रिय के विषय से रहित अनीन्द्रिय का विषय करे, उसे अनीन्द्रिय की प्राप्ति होती है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे! काल जाता है। मृत्यु के समीप देह जाती है। उसके काल में यदि यह नहीं किया, बापू! कहाँ करेगा? भाई! आहाहा! कहाँ जाकर अवतरित होगा? किस जगह अवतरित होगा? आँधी का तिनका उड़कर कहाँ पड़ेगा? मिथ्यात्वभाव की आँधी में चढ़ा... आहाहा! वह कहाँ जाकर अवतरित होगा? बापू! आहाहा! असंख्य द्वीप, समुद्र एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय के स्थान... आहाहा! भाई! तू कहाँ जायेगा? तेरे स्वभाव के स्थान को नहीं देखा तो इस विषय की वासना के विकल्प से किस स्थान में जायेगा? भाई! आहाहा! ऐसा नहीं मानना कि अभी शरीर ठीक है और अभी योगफल

सब ठीक है, फिर अच्छी जगह जाऊँगा। आहाहा! अच्छा ठिकाना तो भगवान स्वयं है। आहाहा! पंच परमेष्ठी कहा न? आहाहा! पंच परमेष्ठीस्वरूप ही भगवान आत्मा है। पंच परमेष्ठी वीतरागस्वरूप है। पाँचों ही स्वरूप वीतरागस्वरूप है। वे पंच परमेष्ठी। इसी प्रकार भगवान आत्मा पंच परमेष्ठी वीतरागस्वरूप ही है। उससे—भावना से रहित पंचेन्द्रियों के विषयों की भावना। आहाहा!

ऐसी पंचेन्द्रियों से जुदा हो गया है,... ऐसी पंचेन्द्रियों से जुदा हो गया है। आहाहा! **वही योगी है,...** आहाहा! अपने भगवान की ओर जिसका झुकाव हो गया है, आहाहा! वह जिसने योग किया, उसने व्यापार किया, उसे योगी कहते हैं। आहाहा! जिसने भगवान आत्मा की ओर का योग किया, उस योग का करनेवाला, वह योगी, उसने आत्मा का व्यापार किया। आहाहा! जिसके फल में जिसे मुक्ति (मिलेगी) वह उसका व्यापार है। इस धूल के फल में पाँच-पचास लाख मिले। अरे! बापू! आहाहा! **योग शब्द का अर्थ ऐसा है,...** देखो! **कि अपना मन चेतन में लगाना...** आहाहा! मन, वचन, काया योगा है, वह दूसरी चीज़। मन, वचन और काया योग है न? पन्द्रह प्रकार के योग, वह विकारी योग। यह तो निर्विकारी परिणति पंचेन्द्रिय के विषय की ओर के झुकाव को छोड़कर अन्दर वीतरागस्वरूप में वर्तमान परिणति को जोड़ना, उसे योग और योगी कहा जाता है। वह धर्मी। आहाहा! जिसने पंचेन्द्रिय के विषयों में (मन) जोड़ा, वह अधर्मी। आहाहा!

वही ध्यानी है,... हें! आहाहा! चेतन में मन लगाया, वह ध्यानी। आहाहा! पंच परमेष्ठी आदि विकल्प का ध्यान, वह भी नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह योग है। उसने चैतन्य में जोड़ दिया, इसलिए योगी है। आहाहा! अभी उसका वास्तविक ज्ञान भी जिसे नहीं कि किस गति से मोक्ष होगा और किस गति से संसार फलेगा, उसका ज्ञान भी नहीं, उसे क्या होगा? आहाहा! **वही ध्यानी है, वही तपोधन है,...** आहाहा! जिसने आत्मा के आनन्द में दृष्टि जोड़ी, स्थिरता की, वह तपोधन है। उसे आनन्द का धन प्रगट हुआ है, वह तपोधन है। आहाहा! वैसे तो तपोधन ब्राह्मण भी होता है। तपोधन ब्राह्मण होता है, गढडा में है।

मुमुक्षु : उसकी एक जाति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाति है न, तपोधन। आहाहा! यह तपोधन की जाति है आत्मा की। जिसने पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर के मन को छोड़कर जिसने भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु में जिसने अपनी परिणति अर्थात् पर्याय को—परिणाम को जोड़ दिया, पंचम पारिणामिकभाव में, वह तपोधन है। उसे आत्मा का धन—खजाना खिला। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! खजाना खिला अन्दर से, कहते हैं। आहाहा! गुलाब की पंखुड़ी, लाख पंखुड़ी का कमल हो, हजार का हो, वह खिले। आहाहा! वैसे ही मोर भी जब अपने पंख खिलाता है ऐसे, आहाहा! उसी प्रकार भगवान शक्तिरूप से जो सामर्थ्य था, उसके जुड़ान से उसकी पर्याय में खिलावट हो गयी। आहाहा! बात-बात में जगत के साथ बहुत अन्तर। इसलिए ऐसा कि, यह एकान्त है, ऐसा कहते हैं, हों! अरे! भगवान! बापू! एकान्त क्या है? भाई! यह सम्यक् एकान्त है। श्रीमद् ने नहीं कहा? अनेकान्त मार्ग भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपद की प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य कोई हेतु नहीं। (अन्य हेतु से उपकारी नहीं)। आहाहा! उसमें सम्यक् एकान्त की प्राप्ति है। आहाहा!

वही तपोधन है, यह निःसन्देह जानना। लो, है न? आहाहा! **'झायंतउ परमत्थु'।** लो! आहाहा! थोड़ा लिखा बहुत जानना, ऐसा कहते हैं न? इसी प्रकार यहाँ थोड़ा कहा, बहुत मानना। आहाहा! १३७ (गाथा हुई)।

गाथा - १३८

अथ पञ्चेन्द्रियसुखस्यानित्यत्वं दर्शयति-

२६१) विसय-सुहइँ बे दिवहडा पुणु दुक्खहँ परिवाडि।
भुल्लउ जीव म वाहि तुहुँ अप्पण खंधि कुहाडि।।१३८।।

विषयसुखानि द्वे दिवसे पुनः दुखानां परिपाटी।
भ्रान्त जीव मा वाहय त्वं आत्मनः स्कन्धे कुठारम्।।१३८।।

विसय इत्यादि। विसय-सुहइँ निर्विषयान्नित्याद्वीतरागपरमानन्दैकस्वभावात् परमात्म-सुखात्प्रतिकूलानि विषयसुखानि बे दिबहडा दिनद्वयस्थायीनि भवन्ति। पुणु पुनः पश्चाद्दिन-द्वयानन्तरं दुक्खहं परिवाडि आत्मसुखबहिर्मुखेन, विषयासक्तेन जीवेन यान्युपार्जितानि पापानि तदुदयजनितानां नारकादिदुःखानां पारिपाटी प्रस्तावः एवं ज्ञात्वा भुल्लउ जीव हे भ्रांत जीव म वाहि तुहुं मा निक्षिप त्वम्। कम्। कुहाडि कुठारम्। क्व। अप्पण खंधि आत्मीयस्कन्धे। अत्रेदं व्याख्यानं ज्ञात्वा विषयसुखं त्यक्त्वा वीतरागपरमात्मसुखे च स्थित्वा निरन्तरं भावना कर्तव्येति भावार्थः।।१३८।।

आगे पंचेन्द्रियों के सुख को विनाशीक बतलाते हैं-

बस दो दिन के ही इन्द्रिय सुख फिर दुख का ही बहे प्रवाह।
यही ज्ञानकर भोले प्राणी कन्धे पर मत गिरा कुठार।।१३८।।

अन्वयार्थ :- [विषयसुखानि] विषयों के सुख [द्वे दिवसे] दो दिन के हैं, [पुनः] फिर बाद में [दुःखानां परिपाटी] ये विषय दुःख की परिपाटी हैं, ऐसा जानकर [भ्रांत जीव] हे भोले जीव, [त्वं] तू [आत्मनः स्कंधे] अपने कंधे पर [कुठारम्] आप ही कुल्हाड़ी को [मा वाहय] मत चलावे।

भावार्थ :- ये विषय क्षणभंगुर हैं, बारम्बार दुर्गति के दुःख के देनेवाले हैं, इसलिए विषयों का सेवन अपने कंधे पर कुल्हाड़ी का मारना है, अर्थात् नरक में अपने को डुबोना है, ऐसा व्याख्यान जानकर विषय-सुखों को छोड़, वीतराग परमात्म-सुख में ठहरकर निरन्तर शुद्धोपयोग की भावना करनी चाहिये।।१३८।।

गाथा-१३८ पर प्रवचन

आगे पंचेन्द्रियों के सुख को विनाशीक बतलाते हैं—

२६१) **विसय-सुहइँ बे दिवहडा पुणु दुक्खहँ परिवाडि।**
भुल्लउ जीव म वाहि तुहुँ अप्पण खंधि कुहाडि।।१३८।।

आहाहा! यह तेरे कन्धे पर कुल्हाड़ी न मार, भाई! हें! आहाहा! भगवान! तू राग और द्वेष करके सुखी मानता है, वह तेरे कन्धे पर कुल्हाड़ी मारी है, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! तुझे लहुलुहान कर डाला। आहाहा! '**विसय-सुहइँ बे दिवहडा**' '**बे दिवहडा**' आहाहा!

अन्वयार्थ—विषयों के सुख दो दिन के हैं,... आहाहा! दो दिन का अर्थ थोड़े दिन। आहाहा! **फिर बाद में ये विषय दुःख की परिपाटी है, ऐसा जानकर...** आहाहा! क्या कहते हैं? पाँच इन्द्रिय के विषय हैं, वे तो दो दिन, थोड़े दिन हैं, पाँच, दस वर्ष। आहाहा! और उसके फलरूप से दुःख की परिपाटी प्रभु! अनन्त काल। आहाहा! ऐसा व्यापार तुझे ठीक कैसे पड़ता है? आहाहा! समझ में आया? है? उसमें दो दिन कहा था और फिर दुःख की परिपाटी कही। आहाहा! दुःख पर दुःख, एकेन्द्रिय के भव, दोइन्द्रिय के भव, नारकी के भव, तिर्यंच (के दुःख), आहाहा! घण की मार बारम्बार लगे अन्दर से। प्रभु! दो दिन के सुख के फल ऐसे दुःख तुझे कैसे सुहाते हैं? आहाहा! **ये विषय दुःख की परिपाटी है, ऐसा जानकर हे भोले जीव,...** आहाहा! हे मूर्ख जीव! तुझे क्या हुआ? आहाहा! **तू अपने कन्धे पर आप ही कुल्हाड़ी को मत चलावे।** हाथ का शस्त्र गले को काटे, यह वह क्या शस्त्र? आहाहा! ऐसा अवतार मिला और तूने पाँच इन्द्रिय के झुकाव में स्व के झुकाव को छोड़कर पर के झुकाव में रुका प्रभु! तूने कन्धे पर कुल्हाड़ी मारी है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, माघ शुक्ल ७, बुधवार
दिनांक- २६-०१-१९७७, गाथा - १३८, १३९, प्रवचन-१९७

परमात्मप्रकाश, १३८ गाथा है। यहाँ यह कहना है कि आत्मा जो आनन्दस्वरूप नित्यानन्द है, उसकी दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है। परन्तु अपना विषय छोड़कर, विषय अर्थात् अपना आत्मा आनन्दस्वरूप का विषय छोड़कर पंचेन्द्रिय के विषय की ओर जिसका झुकाव है, वे विषय तो क्षणभंगुर हैं। आहाहा! पाँचों इन्द्रियाँ क्षणभंगुर, उनका विषय भी क्षणभंगुर नाशवान है। और **बारम्बार दुर्गति के दुःख के देनेवाले हैं,...** आहाहा! विषय पाँच इन्द्रिय की ओर के विषय, वे तो बहिर्बुद्धि, वे तो **बारम्बार दुर्गति के दुःख के देनेवाले हैं, इसलिए विषयों का सेवन...** अपना विषय भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय, उसे छोड़कर परविषय की ओर के झुकाव से जो विकार होता है, उसका सेवन करना **अपने कन्धे पर कुल्हाड़ी का मारना है,...** अपने कन्धे, गले पर कुल्हाड़ी मारने जैसा है। आहाहा! राग और द्वेष, शुभ और अशुभभाव, वे परसन्मुख के झुकाव से उत्पन्न हुए, वे अपनी शान्ति, आनन्दस्वरूप भगवान पर कुल्हाड़ी मारते हैं। कुल्हाड़ी कहते हैं न? आहाहा!

कुल्हाड़ी का मारना है, अर्थात् नरक में अपने को डुबोना है,... आहाहा! कहाँ जाना? अज्ञानरूप से अपने चीज़ को नहीं मानकर, अपना निधान चिदानन्दस्वरूप भगवान का भान नहीं करके मिथ्यात्वभाव में पाँच इन्द्रिय के विषय में मिठास (आवे), परसन्मुख के भाव में प्रसन्नता होकर मिठास वेदता है, वह अपने चैतन्य आनन्दकन्द में कुल्हाड़ी मारता है। यहाँ स्वविषय और परविषय दो बात है। धर्मी सम्यग्दृष्टि का विषय तो भगवान आत्मा पूर्णानन्द है। आहाहा! वह अपना स्व चिदानन्द भगवान अनाकुल आनन्द का रसकन्द, सुख उसका ध्येय—विषय छोड़कर परसन्मुख पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर झुकना... आहाहा! वह अपने आत्मा—कन्धे पर कुल्हाड़ी मारने जैसा है। आहाहा! कहो, और **नरक में डुबानेवाला है,...** आहाहा! है?

ऐसा व्याख्यान... सुनकर **जानकर विषय-सुखों को छोड़....** आहाहा! परसन्मुख के विषय में मजा—आनन्द मानता है, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? अपना

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप की दृष्टि नहीं करके, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद रुचता नहीं, उसे विषय-सुख रुचता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह विषय-सुख दुःख का कारण है। आहाहा! **विषय-सुखों को छोड़, वीतराग परमात्म-सुख में ठहरकर...** आहाहा! अपना भगवान आत्मा वीतराग परमात्म-सुख, ऐसी अपनी चीज़ ही वीतराग परमानन्दस्वरूप है, उसमें स्थिर होकर। आहाहा! **निरन्तर शुद्धोपयोग की भावना करनी चाहिए।** आहाहा! शुभ और अशुभभाव दोनों बन्ध का कारण है। आहाहा! पुण्यभाव, शुभभाव, पापभाव, अशुभभाव दोनों परसन्मुख के आश्रय से उत्पन्न होनेवाले दुःख के कारण हैं। आहाहा! उसे छोड़ और निज वीतराग परमानन्दस्वरूप में स्थिर हो। आहाहा! जहाँ आनन्दधाम भगवान स्वयं ज्योति सुखधाम ऐसा आत्मा। परन्तु इसे माहात्म्य आना भारी कठिन। यह बाहर के घेराव, आहाहा! पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, स्त्री और पुत्र, राजपाट, आहाहा! उसकी महिमा के समक्ष निज चैतन्यस्वरूप भगवान की महिमा इसे नहीं आती। समझ में आया?

धर्म उसे कहते हैं कि वीतरागी परमात्मा, परमानन्द परमात्मा अपना स्वभाव, उसमें स्थिर होने का नाम धर्म है। आहाहा! उसका नाम जन्म-मरण से रहित होने का वह उपाय है। आहाहा! समझ में आया? **वीतराग परमात्म-सुख में ठहरकर...** आहाहा! अपना स्वरूप ही वीतराग परमानन्द है। अपने में वीतरागी परमानन्द भरा है। आहाहा! उसकी दृष्टि करके उसमें स्थिर हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जन्म-मरण से रहित होने का यह उपाय है। समझ में आया? **निरन्तर शुद्धोपयोग की भावना...** आहाहा! पुण्य और पाप के भाव, दोनों अशुद्धोपयोग हैं। वह परसन्मुख के विषय के लक्ष्य से उत्पन्न होते हैं। उन्हें छोड़कर। आहाहा! यह तो दिगम्बर सन्तों की वाणी तीव्र वचन हैं। भगवान आत्मा वीतराग अनाकुल आनन्दस्वरूप में स्थिर होकर शुद्धोपयोग की भावना कर। ऐसे शुद्धोपयोग... शुद्धोपयोग, ऐसा नहीं, अन्दर स्थिर होकर, ऐसा कहते हैं। **निरन्तर शुद्धोपयोग की भावना करनी चाहिए।** आहाहा! अर्थात्? वीतरागी परमानन्द भगवान आत्मा में स्थिर होना, वही शुद्धोपयोग है। स्थिर होकर, शुद्धोपयोग वह है। आहाहा! **भावना करनी चाहिए।** १३८ (गाथा) हुई।

गाथा - १३९

अथात्मभावानार्थं योऽसौ विधमानविषयान् त्यजति तस्य प्रशंसां करोति–

२६२) संता विसय जु परिहरइ बलि किज्जउँ हउँ तासु।
सो दइवेण जि मुंडियउ सीसु खडिल्लउ जासु।।१३९।।

सतः विषयान् यः परिहरति बलिं करोमि अहं तस्य।
स दैवेन एव मुण्डितः शीर्षं खल्वाटं यस्य।।१३९।।

संता इत्यादि। संतो विसय कटुकविषप्रख्यान् किंपाकफलोपमानलब्धपूर्वनिरुपराग–शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भरुपनिश्चयधर्मचौरान् विधमानविषयान् जु परिहरइ यः परिहरति बलि किज्जउं हउं तासु बलिं पूजां करोमि तस्याहमिति। श्रीयोगीन्द्रदेवाः स्वकीयगुणानुरागं प्रकटयन्ति। विधमानविषयत्यागे दृष्टान्तमाह। सो दइवेण जि मुंडियउ स दैवेन मुण्डितः। स कः। सीसु खडिल्लउ जासु शिरः खल्वाटं यस्येति। अत्र पूर्वकाले देवागमनं दृष्ट्वा सप्तर्द्धिरुपं धर्मातिशयं दृष्ट्वा अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानोत्पत्तिं दृष्ट्वा भरतसगररामपाण्डवा–दिकमनेकराजाधिराजमणिमुकुटकिरणकलापचुम्बितपादारविन्दजिनधर्मरतं दृष्ट्वा च परमात्मभावनार्थं केचन विधमानविषयत्यागं कुर्वन्ति तद्भावनारतानां दानपूजादिकं च कुर्वन्ति तत्राश्चर्यं नास्ति इदानीं पुनः ''देवागमपरिहीणे कालेऽतिशयवर्जिते। केवलोत्पत्तिहीने तु हलचक्रधरोज्झिते।।'' इति श्लोककथितलक्षणे दुष्षमकाले यत्कुर्वन्ति तदाश्चर्यमिति भावार्थः।।१३९।।

आगे आत्म–भावना के लिये जो विधमान विषयों को छोड़ता है, उसकी प्रशंसा करते हैं–

विद्यमान विषयों को भी त्यागें उनकी पूजा करता।
जिसने मुड़ा लिया अपना सिर वह तो दैववशात हुआ।।१३९।।

अन्वयार्थ :– [यः] जो कोई ज्ञानी [सतः विषयान्] विधमान विषयों को [परिहरति] छोड़ देता है, [तस्य] उसकी [अहं] मैं [बलिं] पूजा [करोमि] करता हूँ, क्योंकि [यस्य शीर्षं] जिसका शिर [खल्वाटं] गंजा है, [सः] वह तो [दैवेन एव] दैवकर ही [मुंडितः] मूड़ा हुआ है, वह मुंडित नहीं कहा जा सकता।

भावार्थ :–जो देखने में मनोज्ञ इन्द्राइनिका विष–फल उसके समान ये मौजूद विषय हैं, ये वीतराग शुद्धात्मतत्त्व की प्राप्तिरुप निश्ययधर्मस्वरुप रत्न के चोर हैं, उनको जो ज्ञानी वर्तमान विषयों के प्राप्त होने पर भी उनको छोड़ते हैं, वे महापुरुषोंकर प्रशंसा योग्य हैं, अर्थात् जिनके सम्पदा मौजूद हैं, वे सब त्यागकर वीतराग के मारग को आराधें, वे तो सत्पुरुषों से सदा ही प्रशंसा के योग्य हैं, और जिसके कुछ भी तो सामग्री नहीं है, परंतु तृष्णा से दुःखी हो रहा है, अर्थात् जिसके विषय तो विधमान नहीं हैं, तो भी उनका अभिलाषी है, वह महानिंध है। चतुर्थकाल में तो इस क्षेत्र में देवों का आगमन था, उनको देखकर धर्म की रुचि होती थी, और नाना प्रकार की ऋद्धियों के धारी महामुनियों का अतिशय देखकर ज्ञान की प्राप्ति होती थी, तथा अन्य जीवों को अवधिमनःपर्यय केवलज्ञान की उत्पत्ति देखकर सम्यक्त्व की सिद्धि होती थी, जिनके चरणारविन्दों को बड़े–बड़े मुकुटधारी राजा नमस्कार करते थे, ऐसे बड़े–बड़े राजाओंकर सेवनीक भरत, सगर, राम, पांडवादि अनेक चक्रवर्ती बलभद्र, नारायण तथा मंडलीक राजाओं को जिनधर्म में लीन देखकर भव्यजीवों को जिनधर्म की रुचि उपजती थी, तब परमात्म भावना के लिए विधमान विषयों का त्याग करते थे, और जब तक गृहस्थपने में रहते थे, तब तक दान–पूजादि शुभ क्रियायें करते थे, चार प्रकार के संघ की सेवा करते थे। इसलिये पहले समय में तो ज्ञानोत्पत्ति के अनेक कारण थे, ज्ञान उत्पन्न होने का अचंभा नहीं था। लेकिन इस पंचमकाल में इतनी सामग्री नहीं हैं। ऐसा कहा भी है, कि इस पंचमकाल में देवों का आगमन तो बंद हो गया है, और कोई अतिशय नहीं देखा जाता। यह काल धर्म के अतिशय से रहित है, और केवलज्ञान की उत्पत्ति से रहित है, तथा हलधर, चक्रवर्ती आदि शलाकापुरुषों से रहित है, ऐसे दुःषमकाल में जो भव्यजीव धर्म को धारण करते हैं, यती श्रावक के व्रत आचरते हैं, यह अचंभा है। वह पुरुष धन्य हैं, सदा प्रशंसा योग्य हैं।।१३९।।

गाथा-१३९ पर प्रवचन

१३९। **आगे आत्म-भावना के लिये विद्यमान विषयों को छोड़ता है....** आहाहा! जो कोई प्राणी अपना आत्मा आनन्दस्वरूप की एकाग्रता—भावना के कारण परसन्मुख

के विषय की सम्पदा छोड़ता है। आहाहा! है? **विद्यमान विषयों...** है। चक्रवर्तीपद है, इन्द्रपद है। आहाहा! राजा, महाराजा अरबोंपति। एक-एक क्षण में अरबों की आमदनीवाले। ऐसी सम्पदा है। आहाहा! वह **विद्यमान विषयों को छोड़ देता है,...** जिसे विषय नहीं, गरीब मनुष्य आदि है, वह तो क्या छोड़े? अन्तर की दृष्टि करके परसन्मुख का लक्ष्य छोड़े। परन्तु जिसे लक्ष्मी विद्यमान है। शरीर सुन्दर, पैसा, इज्जत, बड़ी कीर्ति उन सब विद्यमान विषयों को छोड़ता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें सुखबुद्धि छोड़ता है, उसकी रुचि छोड़ता है और विषय को छोड़ता है, **उसकी प्रशंसा करते हैं—** आहाहा! १३९।

२६२) संता विसय जु परिहरइ बलि किज्जउँ हउँ तासु।
सो दइवेण जि मुंडियउ सीसु खडिल्लउ जासु।।१३९।।

आहाहा! **अन्वयार्थ—जो कोई ज्ञानी विद्यमान विषयों को छोड़ देता है,...** आहाहा! अप्सरा जैसी स्त्रियाँ, नीलमणि का क्या कहलाते हैं तुम्हारे? टाईल्स। टाईल्स... टाईल्स। तुम्हारे पत्थर की नहीं, नीलमणि की टाईल्स। आहाहा! जो विद्यमान विषय हैं, उन्हें क्षणभंगुर जानकर छोड़ देता है। आहाहा! समझ में आया? आचार्य महाराज योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त १३०० वर्ष पहले हुए, वे कहते हैं... आहाहा! **छोड़ देता है, उसकी मैं (प्रशंसा) पूजा करता हूँ,...** लो। चारित्रवन्त है न, उनकी बात है। समझ में आया? जिसने अपनी रमणता आनन्द में प्रगट की और पर की रमणता छोड़ दी, ऐसे विषय की सम्पदा विद्यमान होने पर भी उसे छोड़कर अपने आनन्द में जो घुस गये। आहाहा! योगीन्द्रदेव कहते हैं कि (उनकी) पूजा करता हूँ। उन पर बलि(वारी) जाऊँ, बलि (हारी)। उन्हें बलिहारी जाऊँ—पूजा करता हूँ। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि जिसका सिर गंजा है,... आहाहा! **वह तो दैवकर ही मूँडा हुआ है,...** आहाहा! विषय है नहीं, गरीब मनुष्य है, शरीर मुँडा हुआ जन्मा है। मुँडा जन्मते हैं न? क्या कहते हैं? गंजा। भाई है न अपने, नहीं? ताराचन्दभाई थे न? कैसे? ताराचन्दभाई को? मनसुखभाई, मनसुख ताराचन्द। मनसुख बड़ा गृहस्थ और अपने बहुत प्रेम था। उसके लड़के को पहले से बाल ही नहीं है। गंजा। बाल ही नहीं। आहाहा! इसी प्रकार

जिसे पहले से सम्पदा ही नहीं, मुँडा हुआ है। आहाहा! **वह तो दैवकर ही मूँडा हुआ है, वह मुंडित नहीं कहा जा सकता।** अपेक्षित बात है, हों! विशेष। यदि गरीब हो तो भी अपने स्वरूप की दृष्टि करे और राग छोड़े तो वह भी पूज्य है। समझ में आया? यह तो आचार्य जरा सम्पदा मिली ऐसी, उसके प्रति का प्रेम छोड़कर भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप में प्रेम करके शुद्धोपयोग में रमता है (उसकी मैं) पूजा करता हूँ, बलिहारी जाता हूँ, बलिहारी करूँ तेरी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ—जो देखने में मनोज्ञ ऐसा इन्द्राइनिका विष-फल... वनस्पति होती है ऐसी। इन्द्र के फल आते हैं न? जहर **उसके समान ये मौजूद विषय हैं,...** आहाहा! **ये वीतराग शुद्धात्मतत्त्व की प्राप्तिरूप निश्चयधर्मस्वरूप रत्न के चोर हैं,...** आहाहा! वे विषय कैसे हैं? आहाहा! ऐसे खाना, पीना, भोग, विषय, स्त्री, कुटुम्ब। आहाहा! चपल नारी, कोमल नारी, लक्ष्मी, इज्जत, मकान। आहाहा! वे **इन्द्राइनिका विष-फल उसके समान ये मौजूद विषय हैं,...** आहाहा! **ये वीतराग शुद्धात्मतत्त्व की प्राप्तिरूप निश्चयधर्मस्वरूप रत्न के चोर हैं,...** आहाहा! अपना भगवान शुद्धचैतन्यमूर्ति का सम्यग्दर्शन, अपना शुद्ध भगवान आत्मा का दर्शन—सम्यग्दर्शन, अपने शुद्धात्मा का ज्ञान और शुद्धात्मा में रमणता, वह निश्चयरत्नत्रय के, पाँच इन्द्रिय के विषय—सम्पदा चोर है, लुटेरे हैं, लुटेरे। आहाहा! समझ में आया? सेठ!

मुमुक्षु : लुटेरे को तो दण्ड मिलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दण्ड ही मिलता है यहाँ। कहा न, कुल्हाड़ी पड़ती है अन्दर। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आचार्य दिगम्बर सन्त १३०० वर्ष पहले हुए। सभी दिगम्बर सन्त एक ही बात करते हैं—परमार्थ की। समझ में आया? समयसार हो, प्रवचनसार हो, परमात्मप्रकाश हो, समाधिशतक हो, इष्टोपदेश हो। आहाहा! सबकी एक ही आवाज है। भगवान! तेरी चीज़ तो अन्दर पड़ी है न, आहाहा! तेरी चीज़ के दर्शन करना नहीं, तेरी चीज़ का ज्ञान करना नहीं, तेरी चीज़ में रमणता करना नहीं और बाहर की चीज़ में श्रद्धा, ज्ञान, भरोसा करके आनन्दित होना, मजा मानना, वह आनन्द—रत्नत्रय

के चोर हैं। आहाहा! कठिन बात है। समझ में आया? मक्खन जैसा शरीर हो, माँस-हड्डियाँ कोमल, रूपवान, सुकोमल। आहाहा! कहते हैं कि उसके ऊपर लक्ष्य जाता है तो आत्मा का रत्नत्रय लुट जाता है। आहाहा! समझ में आया? स्वविषय को छोड़कर, आहाहा! अपने द्रव्यस्वभाव की दृष्टि छोड़कर, अपने से भिन्न पंच विषय की सामग्री में तेरा लालच हो गया। आहाहा! तू विषयों में ललचा गया तो वे विषय तो आत्मा के रत्न (रत्नत्रय) के चोर हैं। आहाहा! समझ में आया?

निश्चयधर्मस्वरूप... वीतराग शुद्धात्मतत्त्व की प्राप्तिरूप निश्चयधर्म... धर्म की व्याख्या। धर्म किसे कहते हैं वीतराग जैनदर्शन में? **वीतराग शुद्धात्मतत्त्व की प्राप्तिरूप निश्चयधर्म...** आहाहा! वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा शुद्धात्मतत्त्व। वीतराग शुद्धात्मतत्त्व भगवान आत्मा तो है। आहाहा! दया, दान, भक्ति आदि रागभाव है, पुण्यभाव है। हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापभाव है। दोनों भावों से रहित आत्मा वीतराग परमानन्दमूर्ति है। आहाहा! **वीतराग शुद्धात्मतत्त्व की प्राप्तिरूप निश्चयधर्मस्वरूप...** आहाहा! इसका नाम सत्य धर्म। वीतराग शुद्धात्मा की प्राप्ति श्रद्धा, ज्ञान में होना। वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा की प्राप्ति पर्याय में वीतरागधर्म होना, उसका नाम निश्चयधर्म है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे निश्चयधर्म के, पंचेन्द्रिय के विषय जहर के फल, उस ओर के झुकाव से इस रत्न के चोर हैं, वे तो। आहाहा! नियमसार में तो ऐसा कहा, स्त्री, कुटुम्ब, पुत्र, पुत्री—लड़का-लड़की, यह सब आजीविका की ठगों की टोली है। ठगों की टोली है यह तो। ओहोहो!

मुमुक्षु : ठगों की टोली पैर दबाये तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैर दबाये धूल में, पैर जड़ हैं, उसमें क्या है? यह सुमनभाई पैर दबाते हैं न! कितने पाप करके पैसे किये, वे पैसे देकर पढ़ाया। वह अब पैर दबाता है। पैर तो जड़-मिट्टी हैं। ऐई! सेठ! यह घर की बात करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : घर में झगड़ा हो ऐसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर को अपना माना, वही झगड़ा है। आहाहा! बापू! मार्ग बहुत भाई! हें!

मुमुक्षु : पर को मेरा माना वही (झगड़ा)।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर मेरे हैं, ऐसा सम्बन्ध माना, वही झगड़ा है। आहाहा! भले वह पर टिका है, वह तो उसके आयुष्य के कारण से है और मर जाता है तो उसका आयुष्य पूरा होने पर जाता है। तो लोग उसके पीछे रोते हैं, वह कहाँ गया, उसे रोते हैं? मर के नरक में गया हो तो हमारे क्या? हमारी सुविधा जाती है, उसको रोते हैं। आहाहा! समझ में आया? पत्नी रोती है, बीस वर्ष का पति मर जाये उसे। किसलिए रोती है? मेरे साधन गये। आहाहा! वह मरकर नरक में गया, पशु में, किसने पूछा? पूछा है किसी ने? आहाहा!

मुमुक्षु : पूछने का काम भी क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका काम भी क्या है? वह मर जाये, चाहे जहाँ जाये। आहाहा! कान्तिभाई! यह संसार ऐसा है। सब लुटेरे इकट्ठे हुए हैं, कहते हैं।

भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी दृष्टि—सम्यग्दर्शन किया नहीं, स्वभाव के आश्रय से जो निश्चयधर्म उत्पन्न होता है, वह तो किया नहीं, तो पर में तो सब निश्चयधर्म के लुटेरे हैं। आहाहा! **उनको जो ज्ञानी छोड़ते हैं,...** आहाहा! **उनकी बलिहारी योगीन्द्रदेव करते हैं,...** बलिहारी है न? बलि अर्थात् पूजा। बलि बलि जाऊँ, ऐसा नहीं आता? आहाहा! बलि बलि (जाऊँ) आता है न पूजा में? बलि बलि जाऊँ, भगवान! आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ, आपने अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट किया। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य प्रगट किया। प्रभु! मैं बलि बलि जाता हूँ, आपकी बलिहारी करता हूँ। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि जिसने उन विषयों को छोड़ दिया... आहाहा! अकेले स्त्री, कुटुम्ब छोड़कर नग्न हो जाये, इसलिए विषय छोड़े, ऐसा नहीं। अपना स्वविषय छोड़कर परविषय में मजा मानता है, रागादि में, वह विषय है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे नग्न मुनि तो अनन्त बार हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान, निज आतमज्ञान... निज आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं। **बलिहारी योगीन्द्रदेव**

करते हैं, अर्थात् अपना गुणानुराग प्रगट करते हैं,... आहाहा! **जो वर्तमान विषयों के प्राप्त होने पर उनको छोड़ते हैं, वे महापुरुषोंकर प्रशंसा योग्य हैं,...** आहाहा! **अर्थात् जिनके सम्पदा मौजूद हैं,...** आहाहा! हजारों अप्सारा जैसी रानियाँ, नीलमणि की टाईल्स, अरबों रुपये के हार, कपड़े ऐसे ऊँचे, शरीर मणिरत्न जैसा। आहाहा! वह **होने पर भी उनको छोड़ते हैं,...** उसके प्रति का प्रेम छोड़ देते हैं। आहाहा! और भगवान आत्मा के प्रेम में आते हैं। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वह आत्मा, वीतरागस्वरूप आत्मा है, उससे जो प्रेम करते हैं, आहाहा! **वे महापुरुषोंकर प्रशंसा योग्य हैं,...**

जिनके सम्पदा मौजूद हैं, वे सब त्यागकर वीतराग के मारग को आराधें... देखा? त्याग करके भी वीतराग के मार्ग को आराधे। भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु अनाकुल शान्तरस का कन्द आत्मा, उसकी सेवा करते हैं, आराधन—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह आराधना है। आहाहा! समझ में आया? **वे तो सत्पुरुषों से सदा ही प्रशंसा के योग्य हैं, और जिसके कुछ भी तो सामग्री नहीं है, परन्तु तृष्णा से दुःखी हो रहा है,...** उसकी बात ली है। अकेले भले गरीब हो परन्तु तृष्णा से दुःखी है, यह बात ली है। समझ में आया? लक्ष्मी न हो, शरीर सुन्दर न हो, इज्जत, कीर्ति न हो, कोई पहिचानता न हो, आहाहा! परन्तु तृष्णा से दुःखी है। यह लाओ... यह लाओ... यह लाओ। आहाहा! अग्नि, अग्नि की ज्वाला। पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, पुत्र, पुत्री। आहाहा! सब सुन्दर। शत्रु के घेरे में जब अन्दर बैठा हो... आहाहा! तब उसे ऐसा लगे, हम कुछ हैं। शत्रुओं के घर में बैठा, यह सब तो शत्रु हैं। इनके प्रति प्रेम करने से आत्मा का घात होता है। पोपटभाई! वहाँ से मिले ऐसा नहीं वहाँ मुम्बई में। आहाहा! पैसे के—धूल के ढ़ेर हों। तो वह तो उसकी ओर लक्ष्य जाये तो दुःख है। आहाहा! आकुलता है। आहाहा!

यहाँ विशेष कहते हैं, भले कहते हैं, कोई सामग्री न हो परन्तु तृष्णा से दुःखी है। जिसे बाहर की कोई वस्तु न हो, परन्तु अन्दर में आत्मा से सन्तोष हो तो वह धनाढ्य है। समझ में आया? और इसे तृष्णा... तृष्णा... तृष्णा... आहाहा! पाँच लाख मिले तो करोड़ की अभिलाषा, करोड़ मिले तो पाँच करोड़ की अभिलाषा। आहाहा! तृष्णा... तृष्णा... तृष्णा... खादेला, खादेला कहते हैं? खाध... खाध पाड़ते हैं। खाध नहीं

समझते? जैसे अपने पास पाँच लाख हों, दूसरे के दस लाख देखकर खाध पाड़े। अरे! मेरे पास पाँच लाख नहीं।

मुमुक्षु : ईर्ष्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : ईर्ष्या नहीं, ईर्ष्या नहीं। अपना दीनपना बतावे कि मेरे पास इतनी लक्ष्मी नहीं। खाध नहीं कहते तुम्हारी भाषा में? घाटा बतावे। आहाहा! करोड़ मिले तो पाँच करोड़ जिसके पास हों, उसकी ओर लक्ष्य जाये। अरेरे! मेरे पास एक करोड़ और उसके पास पाँच करोड़। वह तो अपने में घाटा ही देखता है। आहाहा!

ऐसे तृष्णा से दुःखी प्राणी... आहाहा! **जिसके विषय तो विद्यमान नहीं है, तो भी उनका अभिलाषी है,...** यह बात ली है, हों! ऐसे तो विषय न हो, राग छोड़कर भगवान के आनन्द में आता है, वह तो प्रशंसा योग्य है। परन्तु विषय की तृष्णा में रहता है। आहाहा! **वह महानिंद्य है।** आहाहा! बारह महीने में पाँच लाख की आमदनी हो, दस लाख चाहिए, पच्चीस लाख की कमायी होनी चाहिए। तृष्णा से दुःखी है।

चतुर्थ काल में तो... अब आचार्य जरा, चौथे काल में तो... आहाहा! **इस क्षेत्र में देवों का आगमन था,...** भरतक्षेत्र में स्वर्ग के देव भी आते थे। आहाहा! समझ में आया? उस समय धर्म करे और त्याग करे, उसमें कुछ विशेषता नहीं, ऐसा कहते हैं। अभी देव आते नहीं और राग का त्याग करके आत्मा के आनन्द में आता है, उसकी बलिहारी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? चौथे काल में तो ऊपर से स्वर्ग के देव आते थे। आहाहा! **उनको देखकर धर्म की रुचि होती थी,...** लोगों को। ओहोहो! स्वर्ग के देव भी यहाँ सुनने आते हैं! इतनी सम्पत्ति और ऋद्धि, यह अरबोंपति भी उनके पास भिखारी हैं। उनके पास इतनी ऋद्धि। आहाहा! एक बैठने के सिंहासन का एक पत्थर यहाँ नीचे रखने का पाया कहते हैं। क्या कहते हैं? अपने पडवायो कहते हैं। हिन्दी में? नीचे पत्थर रखते हैं न? पलंग के पाये के नीचे पत्थर रखे न, ऐसे हिले नहीं। उसे क्या कहते हैं? हमारे गुजराती भाषा में पडवाया कहते हैं। उस पत्थर की कीमत अरबों रुपये की कीमत है। उसके सिंहासन की तो बात क्या करना! समझ में आया? ऐसे देव चौथे काल, पंचम काल में भी आते थे, शुरुआत के काल में। आहाहा! तो कहते हैं कि ऐसे

देव आते हैं तो उनका लक्ष्य करके धर्म की रुचि होती थी। ओहोहो! ऐसी सम्पदा! जिनके शरीर में हजारों सूर्य के प्रकाश पड़े, ऐसा तो देव के शरीर का प्रकाश होता है। समझ में आया? ऐसे देवों को देखकर बहुत से प्राणी धर्म रुचिवान हो जाते थे। अभी दुर्लभ है, ऐसा कहते हैं। ऐसे में जो धर्म—आत्मा की रुचि करते हैं, आहाहा! ऐसा कहते हैं। आहाहा! बाहर के देव नहीं, परन्तु अन्दर का देव भगवान विराजता है। आहाहा!

और नाना प्रकार के ऋद्धियों के धारी महामुनियों का अतिशय देखकर... महा सन्त आत्मध्यानी, ज्ञानी आनन्द के अनुभवी, उनके पास **महामुनियों का अतिशय देखकर...** अतिशय... अतिशय... अतिशय। आहाहा! जिनका ऐसा अतिशय हो, ऊपर से पवन घूमकर जाये और रोगी प्राणी हो तो उसका रोग मिट जाये, ऐसी मुनियों की ऋद्धि थी। आनन्द के नाथ भगवान आनन्द में झूलते भावलिंगी सन्त, जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द की मौज में परीषह और उपसर्ग क्या है, उसका ख्याल भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसे मुनियों के **अतिशय देखकर... नाना प्रकार की ऋद्धियों के धारी महामुनियों का अतिशय देखकर ज्ञान की प्राप्ति होती थी,...** ओहोहो! यह चीज़! ऐसा देखकर अपना आत्मा आनन्दमय है, उसकी दृष्टि होती थी और उसका ज्ञान होता था। आहाहा! समझ में आया? **तथा अन्य जीवों को अवधि, मनःपर्यय केवलज्ञान की उत्पत्ति देखकर...** आहाहा! दूसरे जीवों का अवधिज्ञान, आहाहा! कल का लकड़हारा, आज का केवलज्ञानी हो जाता है। भगवान अन्दर चिदानन्द ऋद्धि पड़ी है अन्दर। आहाहा! अन्तर्मुख दृष्टि करके, लकड़हारा हो लकड़ियों का उठानेवाला, आहाहा! चार आना, छह आना, आठ आना मिलता हो। पहले की बात है, अभी रुपया, डेढ़ रुपया मिले। कल देखो तो केवलज्ञानी! आहाहा! तो आत्मा की ऐसी ऋद्धि देखकर धर्म रुचिवान होते थे। समझ में आया? आहाहा!

अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान की उत्पत्ति। आहाहा! **देखकर सम्यक्त्व की सिद्धि होती थी,...** आहा! ओहो! ऐसे जीव जगत में हैं तो वह आत्मा की ऋद्धि जिसे प्रगट हुई है और बाहर में भी ऋद्धि प्रगट हुई है, ऐसा देखकर स्वयं को समकित

की उत्पत्ति होती थी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **सम्यक्त्व की सिद्धि होती थी,...** आहाहा! इन्द्र ऊपर से उतरते थे भगवान के समवसरण में। आहाहा! इन्द्र अर्थात्, आहाहा! बत्तीस लाख विमान, देव। एक-एक विमान में असंख्य देव, उसका स्वामी ऊपर से नीचे उतरे भगवान के समवसरण में। आहाहा! ओहोहो! यह! ऐसे अवधिज्ञानी, मुनियों को क्षण में अवधिज्ञान उत्पन्न हो। आहाहा! अपनी सम्पदा में सब पड़ा है, उसमें विशेष क्या है? आहाहा! ऐसे मनःपर्ययज्ञानी समानेवाले के मन की बात जाने, ऐसे मुनि आत्मज्ञानी, ध्यानी को देखकर समकित की सिद्धि होती थी। आहाहा! उन सब ऋद्धि का स्वामी तो भगवान है। चैतन्यऋद्धि, हों! ऐसे चैतन्य की परमानन्दस्वरूप भगवान की उसकी सम्यग्दर्शन की सिद्धि होती थी। आहाहा! समझ में आया?

जिनके चरणारविन्दों को बड़े-बड़े मुकुटधारी राजा नमस्कार करते थे,... आहाहा! चरणारविन्द—चरणरूपी अरविन्द—कमल। **बड़े-बड़े मुकुटधारी राजा नमस्कार करते थे, ऐसे बड़े-बड़े राजाओंकर सेवनीक...** बड़े-बड़े राजाओं द्वारा सेवनीय **भरत, सगर, राम, पाण्डवादि...** आहाहा! **अनेक चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण,...** वह तो कहीं साधारण राजा अभी यह राजा, वे तो सब भिखारी जैसे हैं। कोई राजा ही नहीं। यह तो कहते हैं न उसमें। आहाहा! यह राजा तो ऐसा... ओहोहो! जिसकी शरीरसम्पदा माणेक, हीरा, रत्न की चमकार माँगे, इतनी शरीर की चमकार होती है। जिसकी भाषा... आहाहा! मीठी मधुर और अवधिज्ञानी भी गृहस्थाश्रम में राजा होते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **भरत,...** भरत चक्रवर्ती। संसार में तीन ज्ञान के धनी थे। अनुभवी आत्मा के। संसार में भरत वैरागी, नहीं आता? भरतजी संसार में वैरागी। छह खण्ड का राज, मेरी चीज़ नहीं। मेरी चीज़ तो आनन्दस्वरूप मैं आत्मा हूँ। ऐसी अपनी चीज़ की महिमा के समक्ष परचीज़ की महिमा उड़ गयी थी। आहाहा! समझ में आया? **भरत, सगर,...** चक्रवर्ती, **राम,...** बलभद्र। आहाहा! पुरुषोत्तम पुरुष राम। आहाहा! जिनका दिखाव देव जैसा दिखायी दे। आहाहा! जंगल में गये तो भी उन्हें किसी प्रकार की कमी न रहे। पुण्यशाली है न! और शान्त मधुर... मधुर। आहाहा! ऐसे **राम,...**

पाण्डव... महा योद्धा। आहाहा! जिनके शरीर की सुन्दरता का पार नहीं, जिनका

संहनन व्रजनाराचसंहनन शरीर का। आहाहा! ऐसे **अनेक चक्रवर्ती, बलभद्र,...** राजा राम आदि। कृष्ण आदि **नारायण तथा मण्डलिक राजा...** अर्थात् बड़ा चक्रवर्ती आदि राजा नहीं होते? मण्डलिक हो। हजारों गाँव, हजारों शहर। **जिनधर्म में लीन देखकर...** आहाहा! ऐसे चक्रवर्ती भी वीतराग धर्म में लीन हैं! आहाहा! समझ में आया? **भव्यजीवों को जिनधर्म की रुचि उपजती थी,...** आहाहा! ऐसी चीज़ देखकर भव्य जीव, लायक—पात्र—योग्य जीवों को अपने वीतरागी स्वभाव आत्मा की रुचि उत्पन्न होती थी। आहाहा! समझ में आया? आठ-आठ वर्ष के बालक, राजकुमार, जिनके मणिरत्न के तेज जैसे शरीर, वह अन्दर से चल निकलते हैं। आहाहा! एक मोरपिच्छी, एक कमण्डल, नग्न शरीर। ऐसे आनन्द में रमते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द में। भिक्षा के लिये आवे, देखे तो लोगों को ऐसा हो जाये, ओहोहो! यह कौन? उसे देखकर धर्म की रुचि होती थी। समझ में आया? आहाहा! भव्यजीवों को, हों! **जिनधर्म की रुचि उपजती थी,...**

तब परमात्मभावना के लिये विद्यमान विषयों का त्याग करते थे। आहाहा! अपना भगवान शुद्धात्मा परमात्मा। परमात्मप्रकाश है न! अपना स्वरूप ही परमात्मप्रकाश है। आहाहा! परमात्मप्रकाश की भावना के लिये, अपने परमात्मस्वरूप में एकाग्रता होने के लिये। **विद्यमान विषयों का त्याग करते थे।** आहाहा! **और जब तक गृहस्थपने में रहते थे,...** सम्यग्दृष्टि। आहाहा! अपना भगवान शुद्ध आनन्दकन्द का जिसे अनुभव हुआ, वह सम्यग्दृष्टि। आहाहा! वह गृहस्थाश्रम में सम्यग्दृष्टि रहते थे तो अपने आनन्द का अनुभव तो करते थे। योगसार में नहीं आता? योगसार में। गृहस्थाश्रम में जो रहते हैं, परन्तु आत्मा में लीन है। गृहकाम... दो गाथायें हैं। गृहकाम करते हुए भी, बाद में? हेयाहेय का ज्ञान। रागादि हैं, वे हेय हैं। भगवान आनन्दस्वरूप, वह उपादेय—अहेय है। आहाहा! ऐसे गृहस्थाश्रम में भी सम्यग्दृष्टि जीव रहते थे तो आत्मा में लीन रहते थे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। दो हैं, दो जगह गाथा है। आहाहा!

समकिती **तब तक दान-पूजादि शुभ क्रियायें करते थे,...** जब तक वीतरागपना, मुनिपना न आवे अन्दर पुरुषार्थ से, तब सम्यग्दृष्टि अपने आनन्द का अनुभव करते थे।

अशुभ से बचने को ज्ञान को दान, पूजा आदि क्रिया होती है। वह शुभराग होता है, अशुभराग से बचने के लिये (होता है)। आहाहा! समझ में आया? दान, पूजा, भक्ति, भगवान के गुणस्मरण, यह सब शुभभाव है। अशुभ से बचने के लिये सम्यग्दृष्टि जीव अपने आनन्द की प्रतीति होने पर भी अशुभ से बचने के लिये व्यवहार अन्दर आता था। अज्ञानी को तो ऐसा व्यवहार होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भरत चक्रवर्ती, देखो। तीन ज्ञान के धनी, आत्मअनुभव, समकित। भिक्षा के समय अपना बँगला, दैवी बँगला, दैवी बँगला। अरबों रुपये की कीमत क्या? ऐसे पाँच बँगले। बाहर निकलकर आहार के समय बाहर खड़े रहे। आहाहा! दरवाजे पर खड़े रहे। कोई मुनि आत्मज्ञानी, ध्यानी हमारे (महल में) आहाहा! अन्दर प्रवेश (करे)। प्रभु! तिष्ठ... तिष्ठ... तिष्ठ। पधारो हमारे यहाँ। आहाहा! जिसने मणिरत्न के ओढवा क्या कहलाती है पैर की? खड़ाऊ मणिरत्न की होती है। मणिरत्न की, हों! हीरा-माणेक की। आहाहा! जिसके कपड़े करोड़ों-अरबों की कीमत के होते हैं। ऐसे डाले हो और ऐसे जंगल में बाहर निकले। प्रभु! पधारो... पधारो। आहाहा! आत्मज्ञानी ध्यानी आत्मा के अनुभवी, जिन्हें आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर बढ़ गया है, उन्हें मुनि कहते हैं। आहाहा! वे मुनि भिक्षा के लिये निकले। भरत जैसे चक्रवर्ती दीन बालक की भाँति (कहते हैं), प्रभु! हमारे यहाँ प्रवेश करो। प्रभु! तिष्ठ। आहाहा! ऐसा शुभभाव गृहस्थों को भी आता था। परन्तु समकितसहित की बात है, हों! समकित बिना का शुभभाव, वह तो थोथा है। वह तो संसार का कारण है। यह भी संसार का कारण है, परन्तु आता है। शुभभाव है तो उसे पुण्यबन्ध होता है। आहाहा! परन्तु अपने आनन्दस्वरूप के अनुभव में सम्यग्दर्शन तो है, वीतरागता—चारित्र जो अन्दर रमणता पूर्णानन्द के नाथ की, उस चारित्र का अभाव है। तो बीच में ऐसे सन्तों के दान, पूजा आदि शुभभाव करते थे। आहाहा! समझ में आया? धन्य अवतार! ऐसे कहकर कहते हैं, प्रभु! हमारा एक ग्रास लो थोड़ा। आहाहा! भिक्षा (आहार) देते थे। देव दुन्दुभी बजाते थे। आहाहा! मुनि को कुछ नहीं। वे तो आत्मआनन्द में रमते थे। मुनि तो अतीन्द्रिय आनन्द में रमते थे। आहाहा! बाहर के कारण से ऐसी सम्पदा हो, उसे जानते थे, मेरी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

शुभ क्रियायें करते थे, चार प्रकार के संघ की सेवा करते थे। साधु, आर्यिका,

श्रावक और श्राविका, चार। साध्वी नहीं होती, स्त्री साध्वी नहीं होती। श्वेताम्बर साध्वी कहते हैं, वह बात झूठी है। समझ में आया? आर्यिका होती है, आत्मज्ञानी। आत्मा की अनुभवी। आहाहा! भिक्षा के लिये जाये। आहाहा! सीताजी नहीं? सीताजी लो न! सीताजी जब आर्यिका हुईं, एक वस्त्र। आहाहा! राम की रानी। परीक्षा की। तुम रावण के पास रही तो परीक्षा दो। लोग शंका करते हैं। मुझे राज्य में रहना है, अग्नि में परीक्षा दो। अग्नि में परीक्षा दी। सहज ही पुण्य का योग (था तो) सिंहासन हो गया। आहाहा! चलो हमारे घर में। राम! अब बस है। मेरी संसारी की वृत्ति उठ गयी है। हम तो अब आर्यिका—आनन्द में रमनेवाली दशा—पंचम गुणस्थान प्रगट करेंगे। आहाहा! समझ में आया? सर्वार्थसिद्धि के देव एकावतारी समकिती से पंचम गुणस्थान की दशा बहुत उग्र होती है। सच्चे श्रावक ही उसे कहते हैं न! यह वाड़ा के श्रावक तो सब नामधारी हैं। जिसे अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द के अंकुर फूटे हैं। आहाहा! उस शान्ति के समक्ष सीता ने इनकार किया। राम कहे, सीता! मेरे महल में पधारो, तुम्हें पटरानी बनाऊँ। अरे! राम! मैं सीता ब्रह्मचारिणी, एक पति के अतिरिक्त दूसरा स्वप्न में नहीं, तुम पुरुषोत्तम पुरुष ने मेरी परीक्षा ली। अरे संसार! आहाहा! यह मणिरत्न जैसा शरीर। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा। सम्यग्दर्शन तो था, आत्मा के आनन्द का अनुभव सम्यक्त्व तो था, विशेष आनन्द में लीन होने के लिये आर्यिका बने। आहाहा! वह साधारण प्राणी को देखकर, आहाहा! ऐसी सीताजी आर्यिका हुई तो लोगों को धर्मरुचि हो जाये। आहाहा! यह अभी नहीं। और अभी धर्मरुचि करे, उसे धन्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! है?

इसलिए पहले समय में तो ज्ञानोत्पत्ति के अनेक कारण थे,... हें! आत्मज्ञान उत्पत्ति के निमित्तकारण अनेक थे। आहाहा! बिजली के चमक जैसे देव के शरीर हों और सैकड़ों देव ऊपर से उतरते हों। आहाहा! उसे देखनेवाले को अन्दर में धर्मरुचि हो जाये। आहाहा! समझ में आया? **ज्ञान उत्पन्न होने का अचम्भा नहीं था।** आहाहा! **लेकिन इस पंचमकाल में इतनी सामग्री नहीं है।** आहाहा! देवों का आगमन नहीं, अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञान नहीं, मुनिवरों की ऋद्धि, सामग्री, सच्चे मुनि की सामग्री नहीं। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : पहले ऐसे निमित्त मिलते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : थे इतना। करते थे, उन्हें निमित्त कहे जाते थे। आहाहा! बहुत दूसरे प्राणी नहीं थे? वे तो थे। परन्तु जिन्हें देखकर, ओहोहो! जिन्हें चक्रवर्ती की ऋद्धि, बलदेव की रानी, वे जब दीक्षित हों अन्दर में, आहाहा! एक वस्त्र, पूरा एक ही वस्त्र, हों! ओढ़ने का और पहनने का सब एक ही। आहाहा! वह भिक्षा के लिये निकलती हों, आहाहा! वह वस्त्र पैर में पहनने का कुछ नहीं, सिर पर ओढ़ने का कुछ नहीं। आनन्द... आनन्द में उदास... उदास... उदास। पूरी दुनिया से उदास, अन्तर में रमने का प्रयोग। आहाहा! हें! आहाहा! तो कहते हैं कि उस समय भी आत्मज्ञान की उत्पत्ति के निमित्त थे, कारण थे, उत्पन्न करे उसे। आहाहा!

पंचम काल में इतनी सामग्री नहीं है। ऐसा कहा भी है, कि इस पंचम काल में देवों का आगमन तो बन्द हो गया है, और कोई अतिशय नहीं देखा जाता। आहाहा! **यह काल धर्म के अतिशय से रहित है, और केवलज्ञान की उत्पत्ति से रहित है,...** आहाहा! **तथा हलधर, चक्रवर्ती आदि शलाकापुरुषों से रहित है...** आहाहा! जिसे अभी के ये राजा बड़े कहलाते हैं, वे तो वहाँ भिखारी जैसे दिखते हैं। बलभद्र, वासुदेव और चक्रवर्ती के समक्ष। ऐसी ऋद्धि... ऋद्धि... ऋद्धि... उससे रहित हैं। **ऐसे दुषमकाल में जो भव्यजीव धर्म को धारण करते हैं,...** आहाहा! ऐसे दुषमकाल में भव्यजीव आत्मध्यान, समकित प्रगट करते हैं। आहाहा! समझ में आया? है? **ऐसे दुषमकाल में भव्य...** योग्यजीव धर्म को—समकित को धारण करते हैं। मैं पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु परमात्मस्वरूप हूँ, ऐसा अनुभव करते हैं, वे समकिती। आहाहा! वे धर्म धारण करते हैं। आहाहा! समझ में आया? **यति श्रावक के व्रत आचरते हैं,...** देखा! धर्मधारण सम्यग्दर्शन सहित। सम्यग्दर्शन बिना के व्रत और तप, वे सब व्यर्थ बालव्रत और बालतप हैं। आहाहा! समझ में आया? यति और श्रावक के व्रत आचरते हैं, **यह अचम्भा है।** कहते हैं। आत्मा के आनन्द के अनुभवसहित जिसने व्रत धारण किये, वह पंचम काल का अचम्भा है। आहाहा! समझ में आया?

वे पुरुष धन्य हैं.... आहाहा! **सदा प्रशंसा योग्य हैं।** आहाहा! अन्तर भगवान

आत्मा शुद्धोपयोग में आया, आहाहा! पुण्य-पाप के भाव में तो आत्मा आता नहीं। समझ में आया? शुद्धोपयोग। पुण्य-पाप के भाव अशुद्ध हैं। उससे रहित भगवान की ओर का शुद्धोपयोग में आत्मा ज्ञात होता है। यह चमत्कार पंचमकाल में अद्भुत है, कहते हैं। बाहर की सामग्री नहीं, साधन नहीं, ऐसे कोई चक्रवर्ती, बलभद्र, इन्द्र आते नहीं। आहाहा! ऐसे काल में जो आत्मा का धर्म करता है और धर्मसहित, आत्मज्ञानसहित व्रत लेता है, वह धन्य है! आहाहा! समझ में आया? वह **सदा प्रशंसा योग्य हैं।** लो। १३९ (गाथा) हुई, १४० कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १४०

अथ मनोजये कृते सतीन्द्रियजयः कृतो भवतीति प्रकटयति–

२६३) पंचहँ णायकु वसिकरहु जेण होंति वसि अण्ण।
मूल विणट्ठइ तरु–वरहँ अवसइँ सुक्कहिं पण्ण।।१४०।।

पञ्चानां नायकं वशीकुरुत येन भवन्ति वशे अन्यानि।
मूले विनष्टे तरुवरस्य अवश्यं शुष्यन्ति पर्णानि।।१४०।।

पंचहं इत्यादि। पदखण्डनारुपेण व्याख्यानं क्रियते। पंचहं पञ्चज्ञानप्रतिपक्षभूतानां पञ्चेन्द्रियाणां णायकु रागादिविकल्परहितपरमात्मभावनाप्रतिकूलं दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षा–रुपप्रभृतिसमस्तापध्यानजनितविकल्पजालरुपं मनोनायकं हे भव्याः वसिकरहु विशिष्टभेद–भावनाङ्कशबलेन स्वाधीनं कुरुते। येन स्वाधीनेन किं भवति। जेण होंति वसि अण्ण येन वशीकृतेनान्यानीन्द्रियाणि वशीभवन्ति। दृष्टान्तमाह। मूलविणट्ठइ तरु–वरहं मूले विनष्टे तरुवरस्य अवसइं सुक्कहिं पण्ण अवश्यं नियमेन शुष्यन्ति पर्णानि इति। अयमत्र भावार्थः। निजशुद्धात्म–तत्त्वभावनार्थं येन केनचित्प्रकारेण मनोजयः कर्तव्यः तस्मिन् कृते जितेन्द्रियो भवति। तथा चोक्तम्–''येनोपायेन शक्यते सन्नियन्तुं चलं मनः। स एवोपासनीयोऽत्र न चैव विरमेत्ततः।।''।।१४०।।

आगे मन के जीतने से इन्द्रियों का जय होता है, जिसने मन को जीता, उसने सब इन्द्रियों को जीत लिया, ऐसा व्याख्यान करते हैं–

वश में सदा करो अपना मन जिसके वश पञ्चेन्द्रिय है।
यथा मूलक्षय से तरुवर के पत्ते स्वयं सहज सूखें।।१४०।।

अन्वयार्थ :– [पंचानां नायकं] पाँच इन्द्रियों के स्वामी मन को [वशीकुरुत] तुम वश में करो [येन] जिस मन के वश होने से [अन्यानि वशे भवंति] अन्य पाँच इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। [तरुवरस्य] जैसे कि वृक्ष की [मूले विनष्टे] जड़ के नाश हो जाने से [पर्णानि] पत्ते [अवश्यं शुष्यंति] निश्चय से सूख जाते हैं।

भावार्थ :– पाँचवाँ ज्ञान जो केवलज्ञान उससे पराङ्मुख स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु, क्षोत्र, इन पाँच इन्द्रियों का स्वामी मन है, जो रागादि विकल्प रहित परमात्मा की

भावना से विमुख और देखे, सुने, भोगे हुए भोंगों की वाँछारुप आर्त, रौद्र, खोटे ध्यानों को आदि लेकर अनेक विकल्पजालमयी मन है। यह चंचलमनरुपी हस्ती उसको भेदविज्ञान की भावनारुप अंकुश के बल से वश में करो, अपने आधीन करो। जिसके वश करने से सब इन्द्रियां वश में हो सकती हैं, जैसे जड़ के टूट जाने से वृक्ष के पत्ते आप ही सुख जाते हैं। इसलिये निज शुद्धात्म की भावना के लिये जिस तिस तरह मन को जीतना चाहिये। ऐसा ही अन्य जगह भी कहा है, कि उस उपाय से उदास नहीं होना। जगत् से उदास और मन जीतने का उपाय करना।।१४०।।

वीर संवत् २५०२, माघ शुक्ल ८, गुरुवार
दिनांक- २७-०१-१९७७, गाथा - १४०, १४१, प्रवचन-१९८

परमात्मप्रकाश, १४० गाथा। **आगे मन के जीतने से इन्द्रियों का जय होता है, जिसने मन को जीता, उसने सब इन्द्रियों को जीत लिया, ऐसा व्याख्यान करते हैं—**

२६३) पंचहँ णायकु वसिकरहु जेण होंति वसि अण्ण।
मूल विणट्ठइ तरु-वरहँ अवसइँ सुक्कहिं पण्ण।।१४०।।

अन्वयार्थ—पांच इन्द्रियों के स्वामी मन को तुम वश में करो... क्या कहते हैं ? कि यह आत्मा परमात्मस्वरूप है, उस ओर ढलने के लिये पंचेन्द्रिय के विषय के झुकाव को छोड़। पाँच इन्द्रिय के विषय में मुख्य मन है। मन का झुकाव पर की ओर जाता है। आहाहा! उसे छोड़ और अन्तर भगवान ज्ञायकस्वरूप परमात्मा में परिणति को जोड़। यहाँ छोड़ और यहाँ जोड़। आहाहा! क्योंकि (समयसार की) १५वीं गाथा में आया न ? **'जो पस्सदि अप्पाणं'** आत्मा को जो अबद्धस्पृष्ट सामान्य देखता है, वही बात शास्त्र की वाणी में भी यह आया है। शास्त्र की वाणी आगम में यह आया है। द्रव्य-भाव कहा है न ? आहाहा! आगम में परमागम में दिव्यध्वनि में यह आया है। क्योंकि जो कोई आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, पर के झुकाव के विकल्प से बन्द करके, आहाहा! अपना भगवान आत्मा अबद्धस्पृष्ट है, उसे जो अन्तर में विकल्प से रहित होकर देखता है, जैनशास्त्र में यह कहना है। और भावशासन में भी यह कहा है। वह भावशासन है, आहाहा! जैनशासन है। समझ में आया ?

भगवान! परमात्मप्रकाश है न? इसलिए परमात्मा का स्वरूप जो है अपना, उसे जानना अबद्धस्पृष्ट। वे मन के विकल्प जो पाँच इन्द्रियों का नायक है मन। आहाहा! उसे छोड़कर और शास्त्र में यह कहा और आत्मा अबद्धस्पृष्ट जो जाने, वह भावशासन—जैनशासन को जानता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है।

पाँच इन्द्रियों के स्वामी मन को तुम वश में करो... अपने आत्मपदार्थ के अतिरिक्त मन जो परपदार्थ में भटकता है, संकल्प-विकल्प से, आहाहा! उसे तू वश कर। इसका अर्थ यह कि तू आत्मा के ज्ञायक अबद्धस्वरूप की ओर जा। तुझे आत्मा की प्राप्ति होगी। और वह जैनशासन का मूल है। आहाहा! अब ऐसी बात संक्षिप्त बहुत। समझ में आया? उसमें आया है न? यह कहते हैं यहाँ। द्रव्य से और भाव से जैनशासन वह देखता है। आहाहा! द्रव्य में जिनागम में ऐसा कहा है और भाव में वह अबद्धस्पृष्ट को अनुभव करे, वह जैनशासन है। समझ में आया? इसमें वाद-विवाद को कोई स्थान नहीं है। उसे ऐसा कहे कि यह व्यवहार से होता है और मोक्षमार्ग दो प्रकार से है। वह बात यहाँ रहती नहीं। आहाहा!

यहाँ तो मन का संकल्प-विकल्प जो परसन्मुख झुकता है, वह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा भी परद्रव्य की ओर के झुकाववाला वह विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? उस मन को वश कर। अर्थात् कि परसन्मुख के संकल्प-विकल्प को बन्द कर दे। आहाहा! ऐसा मार्ग। क्योंकि **जिस मन के वश होने से अन्य पाँच इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं।** जहाँ परसन्मुख के विकल्प को वश किया तो पाँच इन्द्रियाँ तो वश हो गयीं। आहाहा! उस ओर का लक्ष्य छूट गया। ऐसी बातें अब। अरे भाई! ऐसा मनुष्यपना मिला, जैनदर्शन का सम्प्रदाय मिला, जैनदर्शन की बात करन में पड़ी तो वह कान में पड़ी में द्रव्यशासन जो जैनवाणी है, वह ऐसा कहती है। आहाहा! समझ में आया? बारह अंग का सार वीतरागता है न! ऐसा आया न पंचास्तिकाय में? इसका अर्थ क्या हुआ? आहाहा! परसन्मुख के शुभ और अशुभ जो विकल्प मन के हैं, उन्हें वश कर अर्थात् कि उनके आधीन न हो। आहाहा! और उन्हें वश करने से पाँच इन्द्रियाँ आधीन हो जाती हैं। इसलिए उसे परमात्मा जो अनीन्द्रियस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी ओर उसका जुड़ान होने से उसकी प्राप्ति होती है। देवीलालजी! ऐसा मार्ग है, भाई! वाद-

विवाद से मारकर ऐसा अटक (मरा है)। आहाहा! निमित्त से होता है। बापू! निमित्त से होता है, वह तो असद्भूतव्यवहार के कथन हैं। आहाहा! शास्त्र का सार तो यह है। लाख शास्त्र पढ़ा हो और वांचन किया हो।

परसन्मुख के मन के विकल्प को छोड़ दे और स्वसन्मुख में परिणति को झुका। इस सिद्धान्त को आगम में कहना है। समझ में आया? आहाहा! अर्थात् कि परद्रव्य तो कर्म भी परद्रव्य है, राग भी परद्रव्य है, देव-गुरु-शास्त्र, वे परद्रव्य हैं। आहाहा! उस परद्रव्य की ओर के विकल्प को, मन को छोड़—वश कर, कहते हैं। आहाहा! गजब बात है न! हें! संकल्प-विकल्प छोड़। अर्थात् कि जो परसन्मुख के, स्वद्रव्य के अतिरिक्त मन के विकल्प परद्रव्य सन्मुख थे, वे तो अनादि से थे, कहते हैं। समझ में आया? अब तुझे कुछ करना है? आहाहा! उस विकल्प को अर्थात् मन के भाव को परसन्मुख झुकते भाव को वश कर अर्थात् वहाँ से हट जा। आहाहा! समझ में आया?

मन के वश होने से अन्य पाँच इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। जैसे कि वृक्ष की जड़ नाश हो जाने से... वृक्ष का जड़—मूल। 'मूल नास्ति, कुतो शाखा', जहाँ मूल नाश हुआ, वहाँ फिर पत्तों की बात क्या करना? आहाहा! **पत्ते निश्चय से सूख जाते हैं।** आहाहा! यह पीपल का या ईमली का वृक्ष, जिसने मूल से तोड़ा, उसके पत्ते तो अब सूखते हुए अल्पकाल में सूख जायेंगे। इसी तरह जिसने भगवान आत्मा को परसन्मुख के मन के विकल्प को... बात ऐसी करते हैं कि व्यवहाररत्नत्रय वह भी परसन्मुख का विकल्प है। यह लोगों को ऐसा लगता है न, यह साधन है। बापू! वह तो आरोपित कहा, भाई! आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय, वह भी विकल्प है, वह तो शुभराग है। आहाहा! वह मन का विषय है वह तो, देव-गुरु और शास्त्र। आहाहा! उनकी ओर के मन को तू वश कर। भगवान परमात्मा स्वयं अन्दर विराजता है। आहाहा! वहाँ से वश करके यहाँ जा। आहाहा! ऐसी संक्षिप्त बात है। हें! आहाहा! पर से हट, स्व में बस, टूंकूं टच, इतना बस। आहाहा! इसकी सभी टीकायें बाद में। आहाहा!

परमात्मप्रकाश है न, इसलिए मन ऐसे जाता है, उसे मोड़ तो परमात्मप्रकाश में परिणति जायेगी। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। कहो, कान्तिभाई! यह रुपये मिलना, यह मिलना, उसमें उत्साह का पार नहीं होता। आहाहा! कहते हैं कि

यहाँ तो परद्रव्य की ओर के विकल्प को भी छोड़। मन को वश करने का अर्थ यह है। आहाहा! हें!

मुमुक्षु : किस गुण की पर्याय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सी?

मुमुक्षु : मन को वश करना वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विकल्प है, चारित्रमोह के उदय के विकल्प हैं वे सब। चारित्रमोह और दर्शनमोह की उल्टी दशा, वह सब विकल्प है। समझ में आया? परद्रव्य का सम्बन्ध, वह दर्शनमोह है और सम्बन्ध के आश्रय से विकल्प हो, वह चारित्रमोह है। बहुत सूक्ष्म, बापू! इसलिए बेचारे लोग विरोध... विरोध... विरोध करते हैं। भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! और बहुत पढ़े हों, उन्हें ऐसा कहना कि तुमको खबर नहीं, उसे दुःख लगे। क्या हो? आहाहा! प्रभु! मार्ग यह है और आगम को यह कहना है। लाख बात की हो न। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, परसन्मुख के झुकाववाले मन को वश कर। आहाहा! उससे तुझे आत्मा की ओर का स्ववशपना प्रगट होगा। ओहोहो! कहो, ऐसा मार्ग है। भगवानजीभाई! बापू! कहीं (नहीं है)। क्या हो? वीतराग जैनशासन को वीतरागता कहनी है। आहाहा! वह वीतरागता कैसे प्रगट हो? कि परद्रव्य के लक्ष्यवाले विकल्प जो राग है, आहाहा! उसे छोड़कर अर्थात् वश करके। आहाहा! आत्मा अबन्धस्वरूपी परमात्मा है, उसे पकड़। श्रद्धा और ज्ञान द्वारा उसे पकड़ तो तुझे वीतरागता होगी। यह सिद्धान्त का सार है। आगम को यह कहना है, चारों अनुयोगों को यह कहना है। वे ऐसा कहते हैं, तुम समयसार वाँचते हो। समयसार मुख्य चीज़ है, प्रभु! समयसार अर्थात् भगवान आत्मा। आहाहा!

अनन्त स्वभाव के सामर्थ्य से भरपूर ताजा भाव पड़ा है, आहाहा! उसे देख और इसे सुखा डाल, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिसने जड़ को काटा, उसके पत्ते थोड़े समय में सूख जायेंगे। आहाहा! इसी प्रकार जिसने परसन्मुख के मन के विकल्प को वश किया, उसे दृष्टि में जुड़ान भगवान के प्रति हो गया। उसे थोड़ी अस्थिरता रही हो,

वह भी चली जाएगी—नाश हो जाएगी। आहाहा! समझ में आया? **निश्चय से सूख जाते हैं।**

भावार्थ—पाँचवाँ ज्ञान जो केवलज्ञान... आहाहा! केवलज्ञान वह उपाय का उपेय—फल है। अब केवलज्ञान की प्राप्ति कैसे हो? **केवलज्ञान उससे पराङ्मुख स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, इन पाँच इन्द्रियों का...** आहाहा! इन **पाँच इन्द्रियों का स्वामी मन है,...** क्या कहते हैं? यह तो अध्यात्मभाषा है न, भाई! बहुत सूक्ष्म, बापू! केवलज्ञान की पर्याय से विपरीत पाँच इन्द्रियाँ। है न? **इन पाँच इन्द्रियों का स्वामी मन है, जो रागादि विकल्परहित परमात्मा की भावना से विमुख...** आहाहा! वह मन कैसा है? रागादि विकल्परहित परमात्मा की भावना से विमुख है, वह विकल्प मन का। आहाहा! भगवान आत्मा की भावना तो वीतरागी है और यह मन आदि राग उसका विपरीत है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कब देह छूटेगी? बापू! आहाहा! इस देह का क्षण का भरोसा नहीं। तुझे ऐसा लगता हो कि अभी मुझे कुछ नख में भी रोग नहीं। आहाहा! शरीर में तो रोग नहीं परन्तु नख में भी रोग नहीं, ऐसा। आहाहा! बापू! आयेगा तब देर नहीं लगेगी। संकट पड़ जाएगा तुझे, प्रभु! आहाहा! परसन्मुख के विकल्प में जुड़ान से यह देह छूटने से तुझे दबाव पड़ जायेगा। और उसके विकल्प को छोड़कर भगवान की ओर जा तो वहाँ तेरी पीड़ा मिट जायेगी। आहाहा! समझ में आया? यह देह छूटने के समय तुझे आनन्द होगा। समझ में आया? आहाहा!

श्रीमद् ने कहा न अन्त में भाई को—मनसुख को। मनसुख! माँ को चिन्ता करने देना नहीं। ३३ वर्ष चार महीने की उम्र। आहाहा! मैं मेरे स्वरूप में—ध्यान में लीन होता हूँ। आहाहा! यह बात शब्द नहीं, बापू! आहाहा! समझ में आया? भाई! मनसुख! मेरी उम्र छोटी है, ऐसा देखकर माँ को दुःख होगा, चिन्ता होगी, चिन्ता होने देना नहीं, भाई! मैं निश्चिन्त चीज़ में अब रमना चाहता हूँ। आहाहा! मैं स्वरूप में लीन होना चाहता हूँ। आहाहा! बाह्य से अस्थिरता के विकल्प थे, वे छोड़कर... आहाहा! जहाँ मण्डप भरा है भगवान का, आहाहा! अब तो उस मण्डप में प्रवेश करता हूँ। आहाहा! समझ में आया? यह वाणी नहीं, अन्दर भाव है, अन्दर। लोग नहीं देख सकते। समझ में आया? आहाहा!

जहाँ वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा ऐसा जो मेरा स्वरूप, उसमें मैं ध्यान में जाता हूँ। आहाहा! समझ में आया? देह तो छूटेगी। हें! आहाहा! यह क्षण तो प्रत्येक को आयेगा। हें! अकस्मात् आयेगा। नहीं जानने की अपेक्षा से (अकस्मात् कहा है)। आहाहा! भगवान जिसे मिले अन्दर से, कहते हैं, ऐसे मोड़कर ऐसे झुकाया, ऐसे झुके वश करके ऐसे झुकाया। आहाहा! उसने जैनशासन देखा। हें! लो! **'जो पस्सदि अप्पाणं'** है न वहाँ। अबद्धस्पृष्ट। आहाहा! शास्त्र को यह आत्मा है, वहाँ ले जाना है उसे। बारह अंग की बात में यह है। आहाहा! और जिसने उस अबद्धस्पृष्ट पर के विकल्प को छोड़कर मन के विकल्प को अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भी विकल्प, वह मन का विकल्प है। आहाहा! परद्रव्य की ओर के झुकाव को छोड़कर मन को वश कर। आहाहा! जिससे तेरा भगवान तुझे अन्दर में मिले। आहाहा! यह कर्तव्य है। आहाहा! समझ में आया? यह तो देशसेवा करना और रोगी का यह करना और अमुक। अरे बापू! क्या कर सकता है? भाई! आहाहा! यहाँ तो भगवान कहते हैं, मेरे स्मरण का तुझे जो मन का विकल्प उठता है, आहाहा! उसे वश कर अर्थात् छोड़ दे। आहाहा! पोपटभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! यह बड़े पण्डित और ऐसे होकर, यह वस्तु ऐसी नहीं, बापू! अन्तर का ज्ञान और भान करे, वह पण्डित है। बाकी शास्त्र के चाहे जो पृष्ठ फिराये हों और वाँचे हो। आहाहा!

पाँचवाँ ज्ञान जो केवलज्ञान... आहाहा! **उससे पराङमुख...** पाँच इन्द्रियों, उनका स्वामी मन। आहाहा! कि जो रागादि विकल्प से रहित परमात्मा की भावना से विमुख है, वह तो। आहाहा! परसन्मुख का झुकाव तो भगवान परमात्मा से विमुख है। आहाहा! परमात्मा जो स्वरूप आनन्दघन, वीतराग अकषायस्वरूप मूर्ति प्रभु, ऐसा जो परमात्मा स्वयं का, आहाहा! उसकी एकाग्रता से पाँच इन्द्रिय का स्वामी ऐसा मन, उससे तो विमुख है। आहाहा! **और देखे, सुने, भोगे हुए भोगों की वांछारूप आर्त, रौद्र, खोटे ध्यानों को आदि लेकर अनेक विकल्पजालमयी मन है।** आहाहा! बाहर की जितनी कोई चीज़ सुनी हुई, कोई देखी हुई। आहाहा! उसके विकल्प के जाल में यह मन है। आहाहा! समझ में आया? **देखे, सुने, भोगे...** आँख से देखा, कान से सुना, मन से भोगा, इन सबकी वांछारूप आर्त-रौद्रध्यान। आहाहा! **खोटे ध्यानों को आदि लेकर अनेक**

विकल्पजालमयी मन है। भावमन की बात है न यह, संकल्प-विकल्प। जड़ तो परमाणु है। आहाहा!

वह चंचलमनरूपी हस्ती... यह चंचलमनरूपी हाथी, आहाहा! **उसको भेदविज्ञान की भावनारूप अंकुश के बल से वश में करो,...** आहाहा! वश की व्याख्या करो। मन को वश करो, क्योंकि इन्द्रियों का नायक है। वश करो अर्थात् क्या? यह व्याख्या की। आहाहा! चंचलमनरूपी हाथी **उसको भेदविज्ञान की भावनारूप अंकुश...** राग से भिनन करने की जो भावना, आहाहा! फिर उसमें तो शुभराग से भिन्न करने का आया या नहीं? आहाहा! हें! आहाहा! चंचलमनरूपी हाथी को भेदविज्ञान की भावना। मैं तो राग से भिन्न भगवानस्वरूपी आत्मा हूँ, ऐसे भेदज्ञान की भावनारूपी अंकुश के बल से वश करो। यह वश किया कहलाता है। वश की व्याख्या की। आहाहा! समझ में आया? **बल से वश में करो, अपने आधीन करो।** आहाहा!

जिसके वश करने से सब इन्द्रियाँ वश में हो सकती हैं,... भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और उसका विषय, उसे वश करने से सब वश हो जाता है। आहाहा! वहाँ से हट जाता है, ऐसा कहते हैं। ओहोहो! दिगम्बर आचार्यों की शैली, गागर में सागर भर दिया है। गागर होती है न गागर, सागर। आहाहा! समुद्र नक्शे में चित्रित किया हो समुद्र, वह समुद्र नक्शे में डाला हो। आहाहा! इसी प्रकार भगवान को पहिचानने के लिये गागर में सागर संक्षिप्त शब्दों में भर दिया है। भगवान महासागर प्रभु में जाना हो और प्राप्त करना हो तो परसन्मुख के झुकाव को भूल जा, आहाहा! तो तुझे भगवान मिलेगा। समझ में आया? ऐसा धर्म, भाई! यह किस प्रकार का ऐसा धर्म? वे कहें, नया निकाला है। प्रभु! नया नहीं, हों! प्रभु! तेरे हित की बात है, भाई! आहाहा! वह तुझे ऐसा लगता है कि यह ऐसा नहीं, एकान्त हो जाता है, अकेला निश्चय हो जाता है। व्यवहार से होता है, ऐसा मानो तो अनेकान्त होगा। अरे प्रभु! ऐसा नहीं है। इस व्यवहार के विकल्प को छोड़ तो अन्दर जाया जायेगा, वह तो बात यहाँ चलती है। आहाहा! समझ में आया?

जिसके वश करने से सब इन्द्रियाँ वश में हो सकती हैं,... आहाहा! **जैसे जड़ के टूट जाने से...** मूल... मूल। वृक्ष की जड़-मूल। **वृक्ष के पत्ते आप ही सूख जाते हैं।** आप ही सूख जाते हैं। आहाहा! **इसलिए निज शुद्धात्मा की भावना के लिये...** देखा!

पर भगवान नहीं, निज शुद्धात्मा। आहाहा! निज शुद्धात्मा पवित्र भगवान आत्मा। आहाहा! विषय में तुझे विनोद लगता है, वह आत्मा में विनोद कर अब, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आहाहा! विषय के वश.... परन्तु कूद पड़ता है ऐसे राग में। वह कूद पड़ता है, वहाँ आत्मा को नुकसान है। आहाहा! इसलिए एक बार पर की ओर का झुकाव छोड़। आहाहा! समझ में आया? **निज शुद्धात्मा की भावना के लिये जिस तिस तरह मन को जीतना चाहिए।** किस प्रकार? कहते हैं, **जिस तिस तरह...** किसी भी प्रकार से पर से झुकाव छोड़कर अन्दर में जाना, एक ही बात है। आहाहा! समझ में आया? यह बाह्य के व्रत, तप, भक्ति, पूजा और दान से अन्दर में जाया जायेगा, यह बात नहीं है, भाई! वह सब तो विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? दो, पाँच, दस लाख खर्च करे तो ऐसा हो जाये कि हमने कुछ धर्म किया। बापू! वह तो विकल्प है। वह तो परसन्मुख का विकल्प है। कठिन लगे इसे। वह तो अधर्म है। अधर्म के विकल्प को छोड़ और स्वरूप में जा तो धर्म होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **जिस तिस तरह मन को जीतना चाहिए।**

ऐसा ही अन्य जगह भी कहा है,... श्लोक दिया है। **उस उपाय से उदास नहीं होना।** आहाहा! परसन्मुख से विकल्प को छोड़ना, यह उपाय है, उसमें उदास नहीं होना। आहाहा! समझ में आया? परसन्मुख के भाव हैं, उन्हें छोड़ना, उसमें उदास नहीं होना। चाहे जैसा होगा, भले हो। ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **उस उपाय से उदास नहीं होना। जगत से उदास...** होकर। आहाहा! उपाय से उदास नहीं होना। परसन्मुख के विकल्प को छोड़ना, उसमें उदास नहीं होना। आहाहा! जगत से उदास होकर। पूरा जगत, आत्मा के अतिरिक्त पूरी दुनिया राग से लेकर परपदार्थ सब। आहाहा! **मन जीतने का उपाय करना।** जगत से उदास होकर। आहाहा! **मन जीतने का उपाय करना।** लो, यह उपाय। आहाहा! विकल्प को जीतना अर्थात् छोड़ना, वह उपाय है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अनअभ्यास से कठिन लगता है, परन्तु वस्तु तो स्वयं है, पड़ी है। आहाहा! साक्षात् सर्व प्रकार से सकल व्यक्त। आहाहा! मौजूद परमात्मा अस्ति मौजूद धराता है, अस्ति धराता है। आहाहा! उसमें उन्मुख होने को उदास न होना। आहाहा! प्रयत्नवान होना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लो, १४० (गाथा हुई)।

गाथा - १४१

अथ हे जीव विषयासक्तः सन् कियन्तं कालं गमिष्यसीति संबोधयति–

२६४) विसयासत्तउ जीव तुहुँ कित्तिउ कालु गमीसि।
सिव–संगमु करि णिच्चलउ अवसइँ मुक्खु लहीसि।।१४१।।

विषयासक्तः जीव त्वं कियन्तं कालं गमिष्यसि।
शिवसंगमं कुरु निश्चलं अवश्यं मोक्षं लभसे।।१४१।।

विसय इत्यादि। विसयासत्तउ शुद्धात्मभावनोत्पन्नवीतरागपरमानन्दस्यन्दिपारमार्थिक–सुखानुभवरहितत्वेन विषयासक्तो भूत्वा जीव हे अज्ञानिजीव तुहुं त्वं कित्तिउ कालु गमीसि कियन्तं कालं गमिष्यसि बहिर्मुखभावेन नयसि। तर्हि किं करोमीत्यस्य प्रत्युत्तरमाह। सिव–संगमु करि शिवशब्दवाच्यो योडसौ केवलज्ञानदर्शनस्वभावस्वकीयशुद्धात्मा तत्र संगमं संसर्गं कुरु। कथंभूतम्। णिच्चलउ घोरोपसर्गपरीषहप्रस्तावेडपि मेरुवन्निश्चलं तेन निश्चलात्मध्यानेन अवसइं मुक्खु लहीसि नियमेनानन्तज्ञानादिगुणास्पदं मोक्षं लभसे त्वमिति तात्पर्यम्।।१४१।।

आगे जीव को उपदेश देते हैं, कि हे जीव, तू विषयों में लीन होकर अनंतकाल तक भटका, और अब भी विषयासक्त है, सौ विषयासक्त हुआ कितने काल तक भटकेगा, अब तो मोक्ष का साधन कर, ऐसा संबोधन करते हैं–

विषयासक्त जीव तू जग में कितना काल बिताएगा?
शिव स्वरूप आतम का संगम करने से शिव पाएगा।।१४१।।

अन्वयार्थ :– [जीव] हे अज्ञानी जीव, [त्वं] तू [विषयासक्तः] विषयों में आसक्त होके [कियंतं कालं] कितना काल [गमिष्यसि] बितायेगा [शिवसंगमं] अब तो शुद्धात्मा का अनुभव [निश्चलं] निश्चलरुप [कुरु] कर, जिससे कि [अवश्यं] अवश्य [मोक्षं] मोक्ष को [लभसे] पावेगा।

भावार्थ :– हे अज्ञानी, तू शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न वीतराग परम आनंदरुप अविनाशी सुख के अनुभव से रहित हुआ विषयों में लीन होकर कितने काल तक भटकेगा। पहले तो अनंतकाल तक भ्रमा, अब भी भ्रमण से नहीं थका, सो बहिर्मुख परिणाम करके कब तक भटकेगा? अब तो केवलज्ञान दर्शनरुप अपने शुद्धात्मा का

अनुभव कर, निज भावों का संबंध कर। घोर उपसर्ग और बाईस परीषहों की उत्पत्ति में भी सुमेरु के समान निश्चल जो आत्म-ध्यान उसको धारण कर, उसके प्रभाव से निःसंशय मोक्ष पावेगा। जो मोक्ष-पदार्थ अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्यादि अनंत गुणों का ठिकाना है, सो विषय के त्याग से अवश्य मोक्ष पावेगा।।१४१।।

गाथा-१४१ पर प्रवचन

१४१। **आगे जीव को उपदेश देते हैं कि हे जीव! तू विषयों में लीन होकर अनन्त काल तक भटका,...** आहाहा! बापू! परसन्मुख के झुकाव के विषय में रुकने से अनन्त काल भटका। आहाहा! चौरासी लाख योनि में कहीं कोई साधन नहीं, परिचित नहीं, इन्द्रियाँ भी पाँच नहीं, ऐसी एकेन्द्रिय में अवतरित हुआ। आहाहा! समझ में आया? यह विषय शब्द से बाह्य पदार्थ के झुकाव में रुककर अनन्त काल भटका। आहाहा! **और अब भी विषयासक्त है, सो विषयासक्त हुआ कितने काल तक भटकेगा,...** प्रभु! तुझे क्या करना है अब? आहाहा! परसन्मुख के झुकाव का जो विषय, आहाहा! विषय शब्द से शरीर का भोग एक ही नहीं, पाँच इन्द्रिय की ओर के कर्ण-श्रवण, देखना, उस ओर का झुकाव। आहाहा! ऐसे विषय के कारण चौरासी लाख में भटका है। आहाहा! ऐसा यहाँ का स्पष्टीकरण हो, इसलिए लोगों को कठिन लगता है। वास्तव में तो यह देव-गुरु और शास्त्र वह मन का विषय है। आहाहा! उससे तू भटका। समझ में आया?

तूने ध्यान में स्वविषय नहीं बनाया। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप को वर्तमान ज्ञान की पर्यायरूपी ध्यान, उसे ध्येय नहीं बनाया तूने और इस विषयासक्ति में भटका, प्रभु! आहाहा! यह भोगादि विषय, वह तो स्थूल महापाप है। आहाहा! जिसमें रमने से पाप लगे। भगवान की रमणता छोड़कर पर की रमणता में रुका, आहाहा! उसे तो अकेला पाप है। परन्तु यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र के झुकाव में रुका, तो पुण्य है। आहाहा! समझ में आया? इन्द्रियाँ कही हैं न? हें? यह जड़इन्द्रिय, भावेन्द्रिय एक-एक विषय को जाने, ऐसा जो क्षयोपशम का अंश और उसका विषय। आहाहा! वह सब इन्द्रियाँ कहने

में आती हैं। समझ में आया? तो **विषयों में लीन होकर अनन्त काल भटका, और अब भी विषयासक्त है,...** पाँच इन्द्रियों की ओर की आसक्ति में, आहाहा! **विषयासक्त हुआ कितने काल तक भटकेगा,...** तुझे कहाँ तक भटकना है? प्रभु! अब क्या करना है तुझे? आहाहा! ऐसी बातें हैं। हें! आहाहा! **अब तो मोक्ष का साधन कर,...** भटकने के साधन तो किये तूने प्रभु! आहाहा! दुःख के समुद्र में डोल गया बापू तू, भाई! आहाहा! विकल्प जो शुभ-अशुभ है, वे सब दुःख के समुद्र हैं। दुःख के समुद्र में डूब गया, प्रभु! और सुख के सागर को तूने याद नहीं किया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **ऐसा सम्बोधन करते हैं**—१४२ न? १४१। आहाहा!

२६४) विसयासत्तउ जीव तुहुँ कित्तिउ कालु गमीसि।
सिव-संगमु करि णिच्चलउ अवसइँ मुक्खु लहीसि।।१४१।।

आहाहा! **अन्वयार्थ—हे अज्ञानी जीव! तू विषयों में आसक्त होके कितना काल बितायेगा,...** अब तुझे कितना काल बिताना है? आहाहा! भगवान! तूने अनन्त काल अनन्तानन्त, अनन्तानन्त काल परसन्मुख के विषय की आसक्ति में व्यतीत किया, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? **अब तो शुद्धात्मा का अनुभव... 'शिवसंगमं'** शिव अर्थात् कल्याणस्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव कर। आहाहा! परसन्मुख के विकल्प को, विषय को तो बहुत सेवन किये। और कहाँ तक तुझे सेवन करना है प्रभु? क्या है अब उसे? आहाहा! अब शिवसंगम कर। आहाहा! शुद्धात्मा का अनुभव कर। देखा! शिव शब्द से शुद्धात्मा और संगम शब्द से अनुभव। आहाहा! शिवसंगम। शिव अर्थात् वे शंकर नहीं, हों! भगवान आत्मा निरुपद्रव कल्याणमूर्ति ऐसा जो भगवान कल्याणमूर्ति—शंकर-सुखदायक आत्मा का संग कर अब। आहाहा! अनुभव कर। संगम अर्थात् अनुभव। आहाहा! कहो, ऐसी व्याख्या, इसलिए लोगों को कठिन पड़े। परन्तु क्या हो बापू? मार्ग तो यह है। आहाहा!

संसार के व्यापार-धन्धे के पाप के विषय तो एक ओर गये, परन्तु यह पुण्य के विषय भी वे सब इन्द्रिय के विषय हैं। समझ में आया? उस सब विषयासक्ति में रहकर, प्रभु! तूने अनन्त काल बिताया। बापू! तूने देखा नहीं। आहाहा! यह नजरें डाल भूतकाल

में तो दुःख बिना का, भव बिना का कहीं काल गया नहीं। आहाहा! समझ में आया? भूतकाल आज से पीछे देख तू ऐसे... आहाहा! तो कहीं दुःख और भव बिना का काल तुझे नहीं दिखेगा। आहाहा! आहाहा! यह तो मार्ग को जिसे समझना हो, उसकी बात है, बापू! आहाहा! वाद-विवाद करके व्यवहार से होगा और निमित्त से होगा, यह आगमसम्मत है न, अरे प्रभु! सुन न भाई! आगमसम्मत तो यह है। अपना आत्मा अबद्धस्पृष्ट है, उसे देखना, वह आगमसम्मत है। द्रव्यआगमसम्मत है और भावआगम में वह जाना, वह भावआगम है। आहाहा! बापू! विवाद से पार नहीं आता, भाई! आहाहा! इसमें कहीं कोई पण्डिताई की इसमें आवश्यकता नहीं कि बहुत अधिक जाना हो, इसलिए अन्दर झुक सकता है। हें! आहाहा!

शिवसंगम। आहाहा! और वह **निश्चलरूप कर, जिससे कि अवश्य मोक्ष को पावेगा।** आहाहा! यह विषयों के साधन करके भटक मरा अनन्त काल से, अब एक बार भगवान शिव-निरुपद्रव भगवान शान्ति का सागर, आनन्द की मूर्ति वीतरागस्वरूप का संग कर, संग कर। संग कर अर्थात् अनुभव कर, ऐसा। आहाहा! कहो, ऐसा एक ही निश्चय का मोक्ष का मार्ग-उपाय है, ऐसा कहते हैं। हें! तुझे कठिन लगे, कठोर लगे, परन्तु प्रभु! मार्ग तो यह है, हों! दूसरा सरल करके कोई रखेगा कि ऐसे प्राप्त होता है और ऐसे प्राप्त होता है और ऐसे प्राप्त होता है, बापू! सरल में सरल हाथ आायेगा। राख हाथ आयेगी। आहाहा! ओहो! परमात्मप्रकाश! उसमें लिखा है, नहीं? राजमलजी की टीका में, नहीं? कलश की टीका में। समयसार से भी उसमें... उसमें लिखा है न? शीतलप्रसाद ने अर्थ किये हैं न? कलशटीका। बहुत विशेषता है कितनी ही। ग्रन्थकर्ता धर्मात्मा समकिती अनुभवी सन्त जिस लक्ष्य से बात करते हैं, उस प्रकार के अभेद को पहुँचने के लिये बहुत बातें करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वीतरागता का संगम कर। वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा का संग कर अर्थात् उसका अनुभव कर, ऐसा। जरूर कहते हैं, **अवश्य मोक्ष को पावेगा।** अवश्य अल्पकाल में केवलज्ञान की प्राप्ति तुझे होगी। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान का तेज अन्दर में प्रगट होने पर तुझे केवलज्ञान होगा, तुझे मुक्ति होगी। आहाहा! चैतन्य भगवान जलहल

ज्योति पर्याय में केवलज्ञानरूप से प्रभु तुझे प्रगट होगा। आहाहा! परन्तु यह उपाय है, बापू! आहाहा! कोई कहे, अपने व्यवहार करते-करते होगा। व्यवहार को शास्त्र में निमित्त कहा है। निमित्त वह कर्ता है, ऐसा नहीं है। यह बड़ा विवाद है। निमित्त हो। परन्तु निमित्त होता है, इसका अर्थ क्या? दूसरी चीज़ राग की मन्दता, वह शुद्धोपयोग का साधन करनेवाले को रागमन्दता के व्यवहार में उसे उसका आरोप किया जाता है व्यवहार से। इतनी बात है। परन्तु उसका इसे लक्ष्य करना है, यह कहीं नहीं है। आहाहा!

आठवीं गाथा में कहा न कि व्यवहार से हमने, व्यवहार बिना उपदेश नहीं दिया जा सकता, बापू! क्या कहें? परन्तु व्यवहार हमारे और सुननेवाले को अनुसरण योग्य नहीं है। आहाहा! 'न अनुसर्तव्य।' ऐसा पाठ है। (समयसार) ८वीं गाथा। '**जह ण वि सक्कमणज्जो ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं।**' आहाहा! अनार्य को समझाने के लिये दूसरी कोई पद्धति नहीं। ऐसे व्यवहार को समझाये बिना निश्चय समझ में नहीं आता, इसलिए व्यवहार साधन है, ऐसा नहीं। भेद पाड़कर उसे समझाते हैं कि देख भाई! तेरा भगवान दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। उसे हम व्यवहार भेद से आत्मा को समझाते हैं, परन्तु इससे तुझे (और) हमें भेद का अनुसरण नहीं कराना है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब। पूरे संसार में डूब पड़े हों पूरे दिन, आहाहा! हें! आहाहा! जलेबी और मिठाई उड़ती हो (खाता हो)। आहाहा! मण्डप में विवाह हो लड़के का, पाँच-पचास हजार खर्च करना हो न, देखो! तुम महिलायें वस्त्र पहनकर आवाज बैठ जाये तो भी चिल्लाया करे। आहाहा! हें! आहाहा! क्या करता है? प्रभु! तू कहाँ जाना चाहता है? भाई! आहाहा! गहरे गड्डे में उतरना चाहता है। या भगवान ऊर्ध्व स्वभाव है, उसमें जाना चाहता है? आहाहा! यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की ही यह सब शैली है। मुनियों की शैली, वह सब शैली ही यह है। आहाहा! अवश्य तुझे मोक्ष होगा। आहाहा!

भावार्थ :— हे अज्ञानी!... अर्थात्? भगवान शुद्धात्मा को नहीं जाननेवाला। आहाहा! चाहे जितना जाना हो परन्तु शुद्धात्मा को जाना नहीं तब तक अज्ञानी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **हे अज्ञानी! तू शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न...** आहाहा! भगवान

आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप, उसकी अन्तर सन्मुख की एकाग्रता से उत्पन्न **वीतराग परम आनन्दरूप...** आहाहा! **अविनाशी सुख के अनुभव से रहित हुआ...** आहाहा! शुद्धात्मा की भावना। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप की सन्मुखता से उत्पन्न हुए वीतराग परमानन्दरूप अविनाशी सुख। आहाहा! उसके अनुभव से रहित। आहाहा! **विषयों में लीन होकर कितने काल तक भटकेगा?** कहाँ तक तुझे भटकना है, भाई? आहाहा! दुःख में तुझे कहाँ तक जाना है? कहते हैं। आहाहा! कहा न कि, शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ वीतरागी परमानन्द सुख। आहाहा! उसमें पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर जाने से दुःख है। तो उससे विरुद्ध में कहाँ तक तुझे दुःख में जाना है? आहाहा! समझ में आया?

टीकाकार जयसेनाचार्य की शैली ऐसी है कि विषय हैं, वे कैसे हैं? कि वीतराग परमानन्दस्वयप अविनाशी सुख के अनुभव से रहित। आहाहा! ऐसे **विषयों में लीन होकर कितने काल तक भटकेगा।** क्यों? **पहले तो अनन्त काल तक भ्रमा,...** अभी तक तो भटका, भाई! आहाहा! शरीर जवान हो, इन्द्रियाँ ऐसे पुष्ट हों, आहाहा! वह सब माँस का, हड्डियों का दिखाव है। आहाहा! भूतावल है। उसके प्रेम में तू भटका, बापू! अनन्त काल। आहाहा! आनन्द के नाथ के अनुभव से विरुद्ध है वह तो, कहते हैं। समझ में आया? **अनन्त काल तक भ्रमा, अब भी भ्रमण से नहीं थका,...** आहाहा! प्रभु! तुझे अभी भ्रमणा की थकान नहीं लगी? आहाहा! देखो न उलहाना! यह तो अनन्त बार तूने दुःख को वेदन किया और भोगा। आहाहा! अभी थका नहीं?

सो बहिर्मुख परिणाम करके कब तक भटकेगा? आहाहा! भाषा देखो। यह मन के विकल्प परसन्मुख वे बहिर्मुख विकल्प हैं। आहाहा! बहिर्मुख परिणाम हैं। आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उससे पुण्य-पाप के विकल्प, वे बहिर्मुख विकल्प हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात तो सुनने को मिलती नहीं बेचारे को। भटक-भटककर मर गया ऐसा का ऐसा। आहाहा! हें! आहाहा! वास्तविक बात की खबर नहीं होती, वास्तविक की खबर नहीं होती और खोटे के चतुर का पुत्र होकर घूमता है। आहाहा! हें! आहाहा! भाई! तू भटका न अनादि से। आत्मा शुद्धात्मा की एकाग्रता से उत्पन्न होनेवाला परमानन्द सुख वीतरागी आनन्द से विमुख पाँच इन्द्रिय के विषयोंरूपी

दुःख, प्रभु! उस दुःख में बहुत काल गया अब तेरा। अब तो थकान ला, थकान कर। आहाहा!

अब तो केवलज्ञान दर्शनरूप अपने शुद्धात्मा का अनुभव कर,... देखा! भगवान केवलज्ञान, केवलदर्शनस्वरूप भगवान तो आत्मा है। आहाहा! अकेला ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञाता... ज्ञाता... ज्ञाता... ज्ञाता... ज्ञाता... दृष्टा... दृष्टा... दृष्टा... आहाहा! उसका अनुभव तो कर। **अपने शुद्धात्मा का अनुभव कर, निज भावों का सम्बन्ध कर।** देखा! इस ओर सम्बन्ध है, उसे छोड़कर इस ओर सम्बन्ध कर। आहाहा! विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, माघ शुक्ल ९, शुक्रवार
दिनांक- २८-०१-१९७७, गाथा - १४१, १४२, प्रवचन-१९९

परमात्मप्रकाश, १४१ का अन्तिम चार पद है, चार लाईन। कहाँ खोजते हैं, वहाँ कहाँ है? **अब तो केवलज्ञान दर्शनरूप अपने शुद्धात्मा का अनुभव कर,...** आहाहा! अनादि से राग का, विकल्प का, मन का सम्बन्ध किया। उससे तो वह भटका चौरासी के अवतार में। आहाहा! अब तो ये केवलज्ञान आत्मा। केवलज्ञान अर्थात् पर्याय नहीं, एक ज्ञान केवल, अकेला दर्शन—ऐसा ज्ञान, दर्शनस्वरूप शुद्धात्मा। वापस अपना शुद्धात्मा। भगवान केवलज्ञान, दर्शन है, वह अलग बात, दूसरे सब आत्मायें भी केवलज्ञान, दर्शन सम्पन्न है। परन्तु यह केवलज्ञान—अकेला ज्ञानस्वभाव, दर्शनस्वभाव केवल एक, ऐसा जो निजशुद्धात्मा—अपने शुद्धात्मा का अनुभव कर। आहाहा! यह बात है। तब कहते हैं कि परन्तु वह व्यवहारसाधन हो तो यह होता है। व्यवहार, साधन है ही नहीं। आहाहा! वह तो राग है। वह तो पर के सम्बन्धवाली बात है। आहाहा!

निज भावों का सम्बन्ध कर। पहला आत्मा लिया न! **केवलज्ञान दर्शनरूप अपने शुद्धात्मा का अनुभव कर,...** अब कहते हैं, वह **निज भावों का सम्बन्ध कर।** निजभाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द का सम्बन्ध कर। आहाहा! अपना जो भाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द त्रिकाली स्वभावभाव का सम्बन्ध कर। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय आदि वह राग है। उस राग का सम्बन्ध छोड़, कल्याण करना हो तो। आहाहा! यह है। समझ में आया? दो बातें ली। केवलज्ञान, दर्शनरूप अपना शुद्धात्मा द्रव्य लिया। भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शनस्वरूप आत्मा का अनुभव कर। वह पर्याय, अनुभव वह पर्याय है। फिर कहा, निज भावों का सम्बन्ध कर। राग का अनुभव नहीं, त्रिकाल का अनुभव और त्रिकाल जो वस्तु ज्ञान, दर्शन, उसका सम्बन्ध कर। राग का सम्बन्ध नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, वह निजभाव के साथ सम्बन्ध जोड़, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, बापू! बाहर के इस क्रियाकाण्ड से दया, दान, व्रत, तप, भक्ति और पूजा से आत्मा प्राप्त होगा, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। उससे धर्म हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! जिसे तिरना है, संसार से निकलना है, उसे तो भगवान शुद्ध ज्ञान, दर्शन,

आनन्द का सम्बन्ध कर। वह सम्बन्ध टूटे और यह सम्बन्ध हो। आहाहा! समझ में आया?

घोर उपसर्ग और बाईस परीषहों की उत्पत्ति में भी... बाहर में प्रतिकूलता घोर उपसर्ग आवे मनुष्य के, तिर्यंच के, देव के। आहाहा! ऐसे उपसर्ग, आहाहा! और बाईस परीषह, उनकी **उत्पत्ति में भी सुमेरु के समान निश्चल...** जैसे मेरु चलित नहीं होता, आहाहा! उसी प्रकार भगवान नित्यानन्द प्रभु अपना ऐसा अचल दृढ़ होता है कि परीषह और उपसर्ग के काल में भी वहाँ से चलित नहीं होता। आहाहा! उसका कल्याण हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निजस्वभाव का अनुभव और निजस्वभाव का सम्बन्ध। आहाहा! वह (पर का) सम्बन्ध तोड़ और यहाँ सम्बन्ध जोड़। राग का अनुभव छोड़ और भगवान का अनुभव कर। आहाहा! ऐसी बात है। लोगों को उसमें लगे, यह तो निश्चय है। परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य यही है। व्यवहार करते-करते होगा और.... अभी आया है न वह? सनावद में से आया है, उस प्रेमचन्द ने लिखा है, व्रताचरण करने से जरा शान्ति मिलती है, निवृत्ति मिलती है, उसमें से समकित होता है, अरे! भगवान! एक ओर पहले लेख लिखा कि निमित्त से कुछ होता नहीं। लोगों को कुछ.... आहाहा! राग की क्रिया, वह तो निमित्त है। निमित्त कर्ता नहीं, निश्चय का कर्ता वह नहीं। आहाहा! सत्य का—निश्चय का कर्ता तो भगवान आत्मा अन्तर्मुख ज्ञान और दर्शन का सम्बन्ध करे, अन्तर्मुख आत्मा का अनुभव करे, वह धर्म और वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! उसके ज्ञान में, श्रद्धा में वह श्रद्धा तो करे कि अन्तर में एकाग्र होना, वही मुक्ति का मार्ग है। क्रियाकाण्ड में रागादि में तो दुःख होगा। आहाहा! ऐसा मार्ग है। हें?

मुमुक्षु : क्रियाकाण्ड से .... प्राप्त हो, ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो निमित्त का कथन है। चरणानुयोग की शैली है न! उसकी रुचि छोड़े, तब ज्ञायक चिदानन्द भगवान अतीन्द्रिय अनाकुल शान्त और आनन्द रसकन्द प्रभु है, उसका अनुभव करे, तब सम्यग्दर्शन, ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, बापू! आहाहा!

घोर उपसर्ग और बाईस परीषहों की उत्पत्ति में भी सुमेरु के समान निश्चल जो आत्म-ध्यान उसको धारण कर,.... आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान अमृतसागर प्रभु, उसके ध्यान की धारणा कर। आहाहा! उसे ध्येय में लेकर ध्यान कर। ऐसी बात है।

व्यवहारनय के रसीले लोगों को तो ऐसा कठिन लगे कि यह तो निश्चय... निश्चय... निश्चय। परन्तु निश्चय वही सत्य है। आहाहा! समझ में आया? **उसके प्रसाद से...** अन्दर शब्द छपने में भूल हो गयी है। प्रमाद हो गया न? प्रसाद चाहिए प्रसाद। **उसके प्रसाद से....** 'मा' की जगह 'सा' चाहिए। **निःसंशय मोक्ष पायेगा।** आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु की सेवा अनुभव से अवश्य तुझे अनन्त ज्ञान, दर्शन, ऐसा मोक्ष प्राप्त होगा। आहाहा! समझ में आया?

जो मोक्ष-पदार्थ... कैसा है अब? **अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यादि अनन्त गुणों का ठिकाना है,...** मोक्ष अनन्त आनन्द का ठिकाना है। आहाहा! ऐसे मोक्ष को तू आत्मा के अन्तर आनन्दस्वभाव के ध्यान से प्राप्त होगा, उसके अनुभव से प्राप्त होगा। आहाहा! समझ में आया? आठ-आठ वर्ष के राजकुमार, चक्रवर्ती के पुत्र राज में से निकल गये हैं। आहाहा! जिसे पाँच-पाँच देव, बड़े महल देवों ने बनाये हुए, उसमें रहनेवाले। आहाहा! उन्होंने घर पहला देखा कि मेरे घर में तो अतीन्द्रिय आनन्द है। ऐसे आनन्द को देखा, माना सम्यग्दर्शन में। पश्चात् उसमें जो शक्तिरूप से पूर्णानन्द है, उसे प्रगटरूप से पूर्णानन्द करने के लिये अन्तर में रमने को वनवास में चले गये। आहाहा! समझ में आया? आठ-आठ वर्ष के राजकुमार, मणिरत्न के पुतले जैसे तो शरीर, अरे! यह नहीं, यह मेरी चीज़ नहीं। जहाँ मैं हूँ, वहाँ तो राग भी नहीं। दया, दान, व्रत, तपस्या का विकल्प है, वह राग, मैं हूँ वहाँ नहीं। आहाहा! जहाँ वह नहीं और जहाँ आनन्द है, वहाँ मैं जाना चाहता हूँ अब। आहाहा! समझ में आया? ऐसा ध्यान धारण कर। प्रसाद से अनन्त ज्ञान मोक्ष होगा।

सो विषय के त्याग से अवश्य मोक्ष पावेगा। विषय शब्द से पर की ओर के विषय के विकल्प के त्याग से अवश्य तुझे मोक्ष होगा। आहाहा! आत्मा का स्वविषय आनन्द-भगवान, उसके अतिरिक्त पर विषय के विकल्पों से तू छूटेगा और अवश्य तुझे आत्मा में आनन्द आयेगा और मुक्ति होगी। कहो, पोपटभाई! यह वहाँ कहीं सुख नहीं, ऐसा कहते हैं। हसमुख में और अमुक में और रुपये में। आहाहा! यहाँ तो यह कहते हैं, दया, दान, व्रत, और तप के भाव होते हैं, विकल्प—राग, वह नहीं। वह भी परविषयवाली वस्तु है, छोड़ उसे। ऐसा मार्ग है। आहाहा! यह १४१ (गाथा) हुई।

गाथा - १४२

अथ शिवशब्दवाच्यस्वशुद्धात्मससंसर्गत्यागं मा कार्षीस्त्वमिति पुनरपि संबोधयति-

२६५) इहु सिव-संगमु परिहरिवि गुरुवड कहिँ वि म जाहि।
जे सिव-संगमि लीण णवि दुक्खु सहंता वाहि।।१४२।।

इमं शिवसंगमं परिहृत्य गुरुवर क्वापि मा गच्छ।
ये शिवसंगमे लीना नैव दुःखं सहमानाः पश्य।।१४२।।

इहु इत्यादि। इहु इमं प्रत्यक्षीभूतं सिव-संगमु शिवसंसर्गं शिवशब्दवाच्योऽनन्त-ज्ञानादिस्वभावः स्वशुद्धात्मा तस्य रागादिरहितं संबन्धं परिहरिवि परिहृत्य त्यक्त्वा गुरुवड हे तपोधन कहिं वि म जाहि शुद्धात्मभावनाप्रतिपक्षभूते मिथ्यात्वरागादौ कवापि गमनं मा कार्षीः। जे सिव-संगमि लीण णवि ये केचन विषयकषायाधीनतया शिवशब्दवाच्ये स्वशुद्धात्मनि लीनास्तन्मया व भवन्ति दुक्खु सहंता वाहि व्याकुलत्वलक्षणं दुक्खुं सहमानास्सन्तः पश्येति। अत्र स्वकीयदेहे निश्चयनयेन तिष्ठति योऽसौ केवलज्ञानाधनन्तगुणसहितः परमात्मा स एव शिवशब्दत्वेन सर्वत्र ज्ञातव्यो नान्यः। कोऽपि शिवनामा व्याप्येको जगत्कर्तेति भावार्थः।।१४२।।

आगे निजस्वरुप का संसर्ग तू मत छोड़, निजस्वरुप ही उपादेय है, ऐसा ही बार-बार उपदेश करते हैं-

शिव संगम को छोड़ जीव अन्यत्र कहीं भी मत जाओ।
जो शिव संगम से विरक्त हैं उन्हें दुखी जग में देखो।।१४२/२६५।।

अन्वयार्थ :- [गुरुवर] हे तपोधन, [शिवसंगमं] आत्म-कल्याण को [परिहृत्य] छोड़कर [क्वापि] तू कहीं भी [मा गच्छ] मत जा, [ये] जो कोई अज्ञानी जीव [शिवसंगमे] निजभाव में [नैव लीनाः] नहीं लीन होते हैं, वे सब [दुःखं] दुःख को [सहमानाः] सहते हैं, ऐसा तू [पश्य] देख।

भावार्थ :- यह आत्म-कल्याण, प्रत्यक्ष में संसार-सागर के तैरने का उपाय है, उसको छोड़कर हे तपोधन, तू शुद्धात्मा की भावना के शत्रु जो मिथ्यात्व रागादि हैं, उनमें कभी गमन मत कर, केवल आत्मस्वरुप में मगन रह। जो कोई अज्ञानी विषय-कषाय के वश होकर शिवसंगम (निजभाव) में लीन नहीं रहते, उनको व्याकुलतारुप

दुःख भव-वन में सहता देख। संसारी जीव सभी व्याकुल है, दुःखरुप हैं, कोई सुखी नहीं है, एक शिवपद ही परम आनंद का धाम है। जो अपने स्वभाव में निश्चयनयकर ठहरनेवाला केवलज्ञानादि अनंत गुण सहित परमात्मा उसी का नाम शिव है, ऐसा सब जगह जानना। अथवा निर्वाण का नाम शिव है, अन्य कोई शिव नाम का पदार्थ नहीं है, जैसा कि नैयायिक वैशेषिकों ने जगत् का कर्ता-हर्ता कोई शिव माना है, ऐसा तू मत मान। तू अपने स्वरुप को अथवा केवलज्ञानियों को अथवा मोक्षपद को शिव समझ। यही श्रीवीतरागदेव की आज्ञा हैं।।१४२।।

गाथा-१४२ पर प्रवचन

अब १४२। **आगे निजस्वरूप का संसर्ग तू मत छोड़,...** आहाहा! १४२। **निजस्वरूप ही उपादेय है, ऐसा ही बार-बार उपदेश करते हैं**—आहाहा!

२६५) इहु सिव-संगमु परिहरिवि गुरुवड कहिँ वि म जाहि।
जे सिव-संगमि लीण णवि दुक्खु सहंता वाहि।।१४२।।

गुरुवर... गुरुवर कहकर मुनि को बुलाते हैं। हे मुनि! आत्मध्यानी, ज्ञानी। आहाहा! हे गुरुवर! योगीन्द्रदेव ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अन्वयार्थ :— हे तपोधन!... मुनि को लक्ष्य करके अपना शिष्य है न, उसे— प्रभाकर भट्ट को लक्ष्य कर कहते हैं, हे मुनिवर! गुरुवर! ऐसी भाषा कही है। आहाहा! शिष्य को गुरुवर अर्थात् मुनिराज। आहाहा! '**शिवसंगमं**' शिव अर्थात् भगवान आत्मा, उसका संगम, कल्याण न छोड़। आहाहा! उसे छोड़कर **तू कहीं भी मत जा,...** आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! उपदेश के रामबाण हैं न! प्रभु! तू तेरे आनन्द के स्वभाव का संग छोड़कर बाहर के विकल्प में न जा, न जा, भाई! तुझे दुःख होगा। आहाहा! समझ में आया? हे तपोधन! जिसे आनन्दरूपी धन है। जिसे इच्छा के अभावस्वभावरूप आनन्द का धन है। ऐसे तपोधन को भी सम्बोधकर दूसरे को कहते हैं। भगवान! शिव—आत्मा का कल्याण, संगम। देखो! भाषा है न! शिव—आत्मा शिवस्वरूप ही है। शिव अर्थात् वे शंकर, वह नहीं। जिसमें निरुपद्रवपना भरा है। जिसमें राग का

उपद्रव भी नहीं। आहाहा! ऐसा तेरा भगवान है, विराजता है सच्चिदानन्द प्रभु। आहाहा! उसका संगम। उसका परिचय अर्थात् कि मोक्षमार्ग अर्थात् कि कल्याणमार्ग। आहाहा! समझ में आया? श्रद्धा में और ज्ञान में उसका निधार तो करे। जिसे यह ठिकाना नहीं, उससे होगा और निमित्त से होगा, व्यवहार करते-करते होगा। अरे! प्रभु! कहाँ तुझे भटकना है? समझ में आया?

'**शिवसंगमं**' है न? शिव—वह परमआनन्द का धाम है भगवान। स्वयं ज्योति सुखधाम, आता है न? आत्मसिद्धि। भगवान! तू स्वयं ज्योति है न! कौन आया? जगजीवनभाई? ठीक। बाहर गये थे, अभी नहीं थे। इन्हें इस ओर बैठाओ। आँख कच्ची है न! आहाहा! आँख का कच्चा अनादि का है। राग और विकल्प को, पर को देखने के लिये अटका। अपने को देखने को नेत्र बन्द किये। यहाँ तो आचार्य महाराज योगीन्द्रदेव कहते हैं, हे तपोधन! शिवसंगम छोड़कर। आहाहा! भगवान आत्मा का परिचय, अनुभव छोड़कर, प्रभु! कहीं अन्यत्र न जा। भगवानजीभाई! आहाहा! प्रभु! तू अतीन्द्रिय आनन्द का खजाना है, नाथ! तेरी बात सर्वज्ञ भी वाणी में पूरी नहीं कह सके। आहाहा! ऐसी यह चीज़ अन्दर है न प्रभु तू! आहाहा! ऐसा अनाकुल आनन्द और वीतरागमूर्ति प्रभु का संग छोड़कर बाहर न जा। आहाहा! बाहर जायेगा तो बहिरात्मा होकर भटक मरेगा। आहाहा! समझ में आया?

तू कहीं भी मत जा, जो कोई अज्ञानी जीव निजभाव में नहीं लीन होते हैं,... शिवसंगम। शिव अर्थात् निज और संगम अर्थात् अनुभव, भाव। आहाहा! दो है न? पहले में यह कहा था, '**सिव-संगमु परिहरिवि गुरुवड कहिँ वि म जाहि, जे सिव-संगमि लीण णवि दुक्खु सहंता**' देख। आहाहा! भगवान आत्मा पहला शिवसंगम का अर्थ आत्मकल्याण किया। यह ही दूसरी भाषा में निजभाव किया। निजभाव आनन्द भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप ऐसा जो तेरा निजभाव। आहाहा! **नहीं लीन होते हैं,...** जो निजभाव में लीन नहीं होते। आहाहा! और परभाव में जो जाते हैं, चाहे तो शुभराग हो, आहाहा! **वे सब दुःख को सहते हैं, ऐसा तू देख।** आहाहा! आनन्द भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु का परिचय, भाव—अनुभव छोड़कर जो बाह्य में जाता है। आहाहा! वह दुःख को सहता है। आहाहा! वह शुभभाव भी दुःखरूप है। आहाहा!

शैली तो देखो! हें! आहाहा! लोगों को कठिन लगे परन्तु बापू! मार्ग यह है, भाई! आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु है न तू। आहाहा! परमात्मस्वरूप से विराजमान तेरा तत्त्व अनादि-अनन्त ऐसा है। उसका संग छोड़कर निजभाव का अनुभव छोड़कर बाहर में न जा। आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं कि तेरा स्वभाव छोड़कर हमारे सामने भी न देख। आहाहा! हें! आहाहा! भगवान! तेरी निज चीज़ है न अन्दर। उसका अनुभव और उसका परिचय ऐसा निजभाव, उसे छोड़कर जो बाहर में जाता है, वह दुःखी है, ऐसा देख। अन्दर में जाता है, वह सुखी है, ऐसा तू मान। आहाहा! कहो, भगवानजीभाई! यह सब पैसेवाले और शुभभाव में जाये वे सब दुःखी हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पैसेवाला था ही कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : माना है न सबने, अभिमान चढ़ जाये अन्दर। आहाहा! दो-दो लाख पैदा होते हों दिन के। वह नहीं था एक कल्याणजीभाई? पोरबन्दर का कल्याणजी गोविन्दजी। गोविन्दजी न? बहुत पैसे थे। बीस-पच्चीस लाख थे, उसमें दस लाख गये। हमारा चातुर्मास पोरबन्दर। ऐसे बेचारा नरम व्यक्ति था। उसमें अमुक समय रहे और फिर गये मुम्बई। व्यापार किया, एक दिन में एक लाख पैदा किये। कल्याणजीभाई थे। पोपटभाई! पोरबन्दर के। नरम व्यक्ति थे। शेयर बाजार में बड़े व्यापारी। एक दिन में... हमारा चातुर्मास था। सुना कि भाई व्यापार में गये हैं और एक दिन में एक लाख पैदा किये। पैदा किये और शाम को ऐसा हुआ, देह छूट गयी। भाई! नवरंगभाई! एक कल्याणजीभाई थे। देवीदासभाई थे न? वे सब साथ में (रहनेवाले)। वहाँ हमारा चातुर्मास था, (संवत्) १९८७ में। हें!

मुमुक्षु : उसे कहे, ऐ... कलु।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह... कलु, ऐसा हो गया। एक लाख, एक दिन में लाख। बड़ा धन्धा। भाई को कहा, लक्ष्मीदास थे, लक्ष्मीदास पिताम्बर। ऐ... कलु। ऐसा कहा वहाँ देह छूट गयी। आहाहा! लो, यह एक दिन की आमदनी बनिये को। धूल में क्या है? दुःखी हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु : घरवालों को तो सुख हो गया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सुख नहीं घरवालों को, सब दुःखी हैं। यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, अशुभभाव में जाये तो बड़ा दुःखी है, परन्तु शुभभाव में जाये, वह भी दुःखी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आनन्द के नाथ के घर में से निकलकर, नाथ! तुझे कहाँ जाना है? आहाहा! आहाहा! मार्ग ऐसा है, बापू! भाई! आहाहा! लोगों को यहाँ की बात निश्चय की लगे और फिर विरोध करे। अरे! प्रभु! तू विरोध न कर, भाई! यह तो मोक्ष के मार्ग की बातें, नाथ! तेरे हित की बात है, भाई! आहाहा! आहाहा! क्या आचार्यों—दिगम्बर सन्तों ने करुणा करके, भगवान! जो कोई निज स्वरूप में से हटकर बाहर जाता है, शुभविकल्प में आता है, उसे तू दुःखी देख। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले उसमें आना, वह उपाय तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल उपाय नहीं। सीधे आत्मा में आना, वह उपाय है। आहाहा! कहो, व्यवहार उपाय है या नहीं? राग उपाय है अराग का? आहाहा! निरपेक्ष आत्मा का अनुभव राग की अपेक्षा बिना होता है। माने, न माने जगत स्वतन्त्र है। समझ में आया? जिसे आत्मा अतीन्द्रिय अनन्त... अनन्त... अनन्त आनन्द। आत्मा अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द, अनन्त ज्ञान की परिमितता—हद नहीं, ऐसा उसका स्वभाव, अनन्त शान्ति ऐसी वीतरागता स्वभाव, अनन्त स्वच्छता ऐसा स्वभाव, अनन्त ईश्वरता—प्रभुता अनन्त ऐसा स्वभाव, उसके परिचय में, अनुभव में जा। आहाहा! जहाँ अनन्तपना पड़ा है। आहाहा! भाषा समझते हो? गुजराती समझ में आती है? आहाहा!

देखो न, सन्तों के करुणा के शब्द तो देखो! हें! जैसे पिता कहे कि भाई! इस जगह न जा, वहाँ तू लुट जायेगा। आहाहा! इसी प्रकार पिता—धर्मपिता, गुरु / सन्त धर्मात्मा दिगम्बर मुनि वनवास में रहनेवाले, आहाहा! वे ऐसी पुकार करते हैं। भाई! तेरा स्वभाव पूर्ण है न अन्दर। उसकी प्रतीति करके अन्दर में जा। आहाहा! और जो कोई उसमें से बाहर निकले, विकल्प में आये, वे सब दुःखी हैं, ऐसा तू देख। अन्दर में जाये, वह सुखी है—ऐसा तू देख। आहाहा! कहो, देवीदासभाई! आहाहा! हें! ऐसी बात है, भाई! बापू! तेरे संसार का जहर उतारना हो तो अमृतसागर में जा। वहाँ जहर

उतरेगा। बाहर निकलेगा तो राग का जहर आयेगा। आहाहा! अब यहाँ तो शुभभाव को दुःख कहा है। कहा इन्होंने? आहाहा!

मुमुक्षु : शुभभाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मिले तो अनन्त बार मिला, यह अभी कहेंगे। एक जिनवर मिले नहीं और समकित हुआ नहीं, अभी कहेंगे। जिनवर मिले नहीं अर्थात्? समकित प्राप्त करे, उसे जिनवर मिले कहलाते हैं। जिनराजस्वामी, समकिती के जिनराजस्वामी होते हैं, मिथ्यादृष्टि के जिनराजस्वामी नहीं होते। आहाहा! अभी बाद में कहेंगे, १४३। आहाहा! भव-भव में पूजियो। शिष्य प्रश्न करेगा, प्रभु! आप कहते हो कि जिनराज और समकित, दो प्राप्त नहीं हुए अनन्तभव में भटकते हुए, प्रभु! आप एकबार ऐसा कहते हो, भव-भव में पूजियो। पीछे आता है, देखो! १४३ में देखो, आता है। '**भवि भवि जिण पुज्जिउ वंदिउ।**' प्रभु! आप एक ओर ऐसा कहते हो कि जिनवरस्वामी मिले नहीं और एक ओर ऐसा कहते हो कि जिनराज के समवसरण में तू अनन्त बार गया और पूजायें भगवान के समवसरण में ऐसे साक्षात् तीन लोक के नाथ की पूजायें कीं, और मिले नहीं जिनराज, ऐसा कैसे कहते हो? प्रभु! हम ऐसा कहते हैं, सम्यग्दृष्टि को ही जिनराज मिले कहते हैं। जिसे वीतरागी स्वभाव भगवान आत्मा का प्राप्त हुआ, उसके स्वामी जिनराज हैं। समकिती को जिनराज की भावभक्ति सच्ची होती है। समझ में आया? जिसे अन्दर के सम्यग्दर्शन का भान नहीं, वह भगवान की भक्ति ऊपर से थोथा... थोथा करता है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

सन्त कहते हैं, प्रभु! शान्ति में से बाहर न निकल, भाई! आहाहा! हमने यह विकल्प किया है, वह दुःख है, ऐसा कहते हैं। टीका करने, गाथा बनाने में इतने हम बाहर आये हैं तो हमको भी तू इतना दुःखी देख। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड पड़ा है न। आहाहा! जैसे गुड़ की भेली होती है न, भेली? भेली कहते हैं? गुड़। हें! वह भेली है, उसी प्रकार आत्मा आनन्द की भेली है, भगवान। भाई! तुझे तेरी खबर नहीं, प्रभु! आहाहा! यह अतीन्द्रिय आनन्द की भेली है, उसे चूस न! बाहर

कहाँ धूल खाने जाता है ? आहाहा ! तब कोई ऐसा कहता है कि आप जब ऐसा कहते हो तो फिर इस विकल्प में लिखते किसलिए हो ? भाई ! ऐसा नहीं देखा जाता। समझ में आया ? आहाहा ! हें ! उसका आशय क्या है ? बापू ! आहाहा !

भगवान ! तेरी महिमा का पार नहीं, नाथ ! तू कौन है और कितना है, यह तुझे खबर नहीं। आहाहा ! तेरे स्वभाव में तो अनन्त सिद्ध स्थित हैं। सिद्ध, पर्याय है न ? आहाहा ! अनन्त सिद्ध का स्वरूप है, वह तेरा स्वरूप प्रभु ! ऐसा कहा है न ? पंच परमेष्ठी, वह तू है। योगीन्द्रदेव में आया है, अन्यत्र आया है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, वे सब आत्मपद हैं। यह पंच महाव्रत के विकल्प और नग्नपना, वह कहीं पंच परमेष्ठी नहीं। आहाहा ! ऐसा जो आनन्दस्वभाव भगवान जिसे पूर्ण प्रगट हुआ, वह अरिहन्त, सिद्ध और अपूर्ण प्रगट हुआ परन्तु पूर्ण को अल्पकाल में लेनेवाले हैं, वे आचार्य, उपाध्याय, साधु। आहाहा ! वह सब स्वरूप तेरा अन्दर में है। आहाहा ! अरे ! परन्तु कहाँ देखना किस प्रकार से ? अभी तो इसे... वर्तमान एक समय की पर्याय जो अवस्था है, उसकी रुचि में उसकी लीनता वहाँ पर्याय में है। आहाहा ! इससे एक समय की पर्याय के पीछे तीन लोक का नाथ परमात्मा साक्षात् प्रगट पर्याय को नहीं स्पर्शनेवाला ऐसा भगवान विराजता है। आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ तो आचार्य कहते हैं... आहाहा ! यह फिर आगे कहेंगे। **ऐसा तू देख।** आहाहा !

भावार्थ—यह आत्म-कल्याण, प्रत्यक्ष में संसार-सागर के तैरने का उपाय है,... आहाहा ! है न ? संगम, शिवसंगम। पहला आया था न, शिवसंगम, आत्मकल्याण। वह आत्मकल्याण रागादि का व्यापार व्यवहार का, वह नहीं। आत्मज्ञान, आत्मकल्याण, आत्मपरिचय, आत्मस्वभाव का अनुभव, वह कल्याण, वह प्रत्यक्ष में प्रत्यक्ष है—ऐसा कहते हैं। आहाहा ! **संसार-सागर के तैरने का उपाय है,...** संसार-समुद्र का, भवसिन्धु अपार चौरासी के अवतार, एक-एक योनि में अनन्त बार चींटी, कौआ, कुत्ता, कंथवा, निगोद का जीव, ऐसे अनन्त हुए, भाई ! ऐसा जो संसार-सागर भवसिन्धु। आत्मा का कल्याण भवसिन्धु को तिरने का प्रत्यक्ष उपाय है। आहाहा ! प्रत्यक्ष ही यह है, कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

अलिंगग्रहण में कहा है न ? अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता आत्मा

है। आहाहा! ऐसी बात, परन्तु लोगों को मिलती नहीं, क्या करे? धर्म के नाम से बेचारे गड़बड़ करते हैं। आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, वह अपने शुद्धस्वभाव द्वारा ज्ञात हो, ऐसा है। यह व्यवहार और निमित्त से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। देव, गुरु और उनकी वाणी से भी ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मुर्दे खड़े हो जायें, ऐसा है यह तो। अरे! भाई! तू जीवती ज्योति प्रभु है न! तूने राग और अल्पज्ञता में अपना मानकर जीवत्व ज्योति जो अनादि शान्त वीतराग, उसका तो तूने अनादर किया है। आहाहा! अब एक बार तो ऐसे जा न, भाई! आहाहा! करवट तो बदल। एक करवट से सो रहा है अज्ञान में, अब ऐसे तो जा। आहाहा! करवट तो बदल। वहाँ तुझे आनन्द का नाथ प्रभु मिलेगा। आहाहा! राग, विकल्प और पर्यायबुद्धि के पक्ष में खड़ा, भगवान का तुझे अनादर हुआ है। आहाहा! ऐसा मार्ग, भाई! बापू! इसे क्या करना है? व्यवहार से होता है, ऐसा मानो नहीं तो एकान्त है। निमित्त से होता है, ऐसा न मानो तो एकान्त है। प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा! तू किसके साथ विरोध करना चाहता है, बापू? तेरे स्वभाव के साथ? दूसरे का क्या करे? आहाहा! भाई! परमानन्द के नाथ की तुझे महिमा आयी नहीं, प्रभु! आहाहा!

आचार्य तो, ओहोहो! **यह आत्म-कल्याण,...** इसका कल्याण तो अन्दर स्व का आश्रय ले, (उसमें है)।

अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप,
अनुभव मार्ग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।

यह बात दूसरी है। बापू! आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, शुभभाव में जानेवाले को हे नाथ! तू ध्यान में रहनेवाला, उसे दुःख देख। आहाहा! अब इसमें ऐसा मानता है, निश्चय से ही होता है और व्यवहार से नहीं होता तो एकान्त है। परन्तु निश्चय से होता है और व्यवहार से नहीं होता, यह अनेकान्त है। आहाहा! इन युवकों को अब ऐसा रस आने लगा है, लो। वह पण्डित विरोध करते हैं। प्रभु! तू क्या करता है? भाई! यह तो सत्य परमात्मा का सन्देश आया है, बापू! उनके सन्देश को ना नहीं किया जाता। आहाहा! देखो न! तीन लोक के नाथ

केवली की भाँति सन्त पुकारते हैं। आहाहा! लड़का जरा साधारण हो और कन्या अच्छे घर की मिले, पचास-साठ नारियल लेकर आये हों और करोड़पति की कन्या हो और उसको लड़का न हो, और दस-बीस लाख लेकर आती हो और (पिता के) मर जाने के बाद सब आयेगा, तो उसका नारियल स्वीकार करता है। पोपटभाई! यह तो सब तुम्हारे घर की बातें हैं। हें!

मुमुक्षु : मालामाल हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मालामाल हो जाये। अरे! माल तो यहाँ है न, प्रभु! माल कहा, धूल है वहाँ। आहाहा!

उसी प्रकार यहाँ परमात्मा का सन्देश आया, प्रभु! तुझे विवाह करने का। आहाहा! तीन लोक के नाथ भगवान के साथ सगाई कर। 'समकित साथे सगाई कीधी, सपरिवार शुं गाढी।' आहाहा! आनन्दघनजी में आता है। भगवान तुझे आत्मा के साथ सगाई कराते हैं। आहाहा! और राग की सगाई तुड़वाते हैं। आहाहा! मूल अध्यात्म की बातें बहुत घट गयी और सब विपरीत हो गया। इसलिए लोगों को यह बात ऐसी लगे। परिचय में नहीं, श्रवण में नहीं, अभ्यास में नहीं, उसकी उसे अन्तर चीज़ है, उसकी कीमत नहीं। आहाहा! हें!

मुमुक्षु : परिचय में नहीं तो कीमत कहाँ से आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए कहते हैं न, अब यह परिचय कर न इसका! धूल का किया तम्बाकू का बहुत (किया), ऐसा कहते हैं। चिमनभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : कुछ मर्यादा बाँधो तो होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मर्यादा यह कि बाहर से हटकर अन्दर जाये, वह मर्यादा। जहाँ तेरा घर है, वहाँ जा। उस परघर में अब व्यभिचारी होकर घूम नहीं, बापू! आहाहा! शुभभाव को व्यभिचार कहा है। निर्जरा अधिकार में २०३ (गाथा)। पुण्य-पाप (अधिकार में) चाण्डालिनी का पुत्र कहा है। आहाहा! जरा विष्टा कहा, तो कठोर लगा। परन्तु जहर कहा है न, प्रभु! आहाहा! तेरा अमृत का सागर प्रभु, अमृत का समुद्र, उसमें राग वह जहर है। आहाहा! समझ में आया? वह ककड़ी खाते हैं न, ककड़ी? काकड़ी को

क्या कहते हैं ? ककड़ी। काटकर, ऊपर घूँटकर जहर निकाल डाले। ऐसे अन्दर भरा है अमृत, उसे राग का जहर घूँटकर निकाल डाला है, कहते हैं। अन्दर में घूँटकर राग का जहर निकाल (बाहर कर)। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! ठीक लगे, न ठीक लगे। समझ में आया ? यह इसे मानना पड़ेगा, कल्याण करना हो तो। दुनिया की सुविधावाले मार्ग बताकर उसमें प्रसन्न होगा और यह मार्ग ऐसा, बापू! वहाँ कहीं लाभ नहीं। यह कहते हैं, देखो न! आहाहा!

आत्म-कल्याण, प्रत्यक्ष में संसार-सागर के तैरने का उपाय है, उसको छोड़कर हे तपोधन! तू शुद्धात्मा की भावना के शत्रु... आहाहा! शुद्धात्मा भगवान परमानन्द की एकाग्रता के शत्रु मिथ्यात्व और राग-द्वेष हैं। आहाहा! लो, **उनमें कभी गमन मत कर,...** आहाहा! हें! उनमें गमन न कर। आहाहा! मिथ्यात्व में—विपरीत मान्यता में—राग से धर्म होगा और पुण्य से कल्याण होगा, ऐसी मान्यता में गमन न कर और फिर राग होगा, उसमें गमन न कर। आहाहा! समझ में आया ? है ? यह पुस्तक तो पहले की है, यह कहीं सोनगढ़ की नहीं। आहाहा! क्या ?

मुमुक्षु : सोनगढ़ में वाँचन की जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहे जहाँ वाँचन हो, उसमें क्या है ? श्मशान में वाँचन हो तो भी क्या है ? आहाहा! कलेवर जलते हों, द्वारिका नगरी। आहाहा! गजसुकुमार वहाँ गये हैं। आहाहा! श्रीकृष्ण के भाई गजसुकुमार। गज अर्थात् हाथी का तलुवा हो, ऐसा तो उनका शरीर लाल कोमल... कोमल लाल। आहाहा! गजसुकुमार। जिन्हें दर्शन करने आते हुए नेमिनाथ के। एक सोनी की कन्या थी बहुत रूपवान और बहुत एकदम जवान जैसी। सोने की गेंद से खेलती थी ऐसे। गेंद... गेंद। दर्शन करने जाते थे। कृष्ण और गजसुकुमार को गोद में बैठाया हुआ। ऐसे कन्या देखी, बहुत रूपवान और सोनी की पुत्री। आदमी को हुकम किया कि इस कन्या को अन्तःपुर में ले जाओ। इसका गजसुकुमार से विवाह करूँगा। गजसुकुमार सुनते हैं, गोद में बैठे हैं। आहाहा! वे जहाँ भगवान के निकट जाते हैं और सुनते हैं। प्रभु! आपकी आज्ञा हो तो मैं मुनि होना चाहता हूँ। आहाहा! अरे! भाई! परन्तु यह सगाई करने के लिये भेजा और यह क्या हुआ ?

आहाहा! प्रभु! मैं तो मुनि होना चाहता हूँ। उन लोगों—श्वेताम्बर के शास्त्र में ऐसी भाषा है, ... देवानुप्रिया! देवकी के निकट जाते हैं, माता! मुझे आज्ञा दे, मैं तो मुनि होना चाहता हूँ। आहाहा! वे दीक्षा लेते हैं। प्रभु से आज्ञा माँगते हैं, मेरे नाथ! मैं श्मशान में... श्मशान में जाता हूँ। लोग मुर्दे को लेकर जाते हैं, मैं जीवित जाता हूँ श्मशान में। ध्यान में खड़े रहते हैं। बारहवीं प्रतिमा की ऐसी लम्बी बात है। बारहवीं प्रतिमा होती है न? तीन दिन तक श्मशान में अन्दर ध्यान में रहते हैं। आहाहा! वहाँ वह सोमल आता है, उनका ससुर। अरर्र! यह राज की कन्या, अन्तःपुर में ले गये, यह दीक्षा ले। इसने सब भटकाया। वह राख की पाल बाँधता है, अग्नि डालता है। आनन्द के सागर में डूब गये हैं अन्दर। आहाहा! वहाँ केवलज्ञान होता है। अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान होता है। देव की दुन्दुभी बजती है। ओहो! धन्य अवतार! धन्य सफल किया। जिसका मोक्ष हुआ अन्तर्मुहूर्त में। ऐसी ऋद्धि अन्दर पड़ी है, भाई! तुझे निकालने में देरी लगती है। आहाहा! वह आत्मा क्या चीज़ है, इसकी लोगों को खबर नहीं। आत्मा, यह हिले, चले और बोले, वह आत्मा। दया पाले और हिंसा करे। अरे! वह तो सब राग है। वह तो आस्रव-राग है। भगवान आत्मा!

यहाँ कहते हैं, शुद्धात्मा की भावना के शत्रु मिथ्यात्व और राग। आहाहा! तो व्यवहाररत्नत्रय राग भी आत्मा की भावना के शत्रु हैं, ऐसा कहा। है या नहीं इसमें यह? अरे प्रभु! तेरा मार्ग तो यह है न, भाई! अन्तर में आत्मा वहाँ अन्तर्मुख होना है। हें! आहाहा! यह कठिन होता है परन्तु करना ही पड़ेगा। आहाहा! दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **केवल आत्मस्वरूप में मगन रह।** आहाहा! अकेला भगवान आत्मा में मग्न रहना। आहाहा! दृष्टि और स्थिरता, बस यह करना है, कहते हैं। आहाहा! पूर्णानन्द का स्वीकार और फिर उसमें स्थिरता। बाहर न निकल। आहाहा! अन्तिम पीछे की गाथायें हैं न, एकदम ऊँची-ऊँची बात की है। आहाहा! **जो कोई अज्ञानी विषय-कषाय के वश होकर शिवसंगम (निजभाव) में लीन नहीं रहते,...** आहाहा! बाहर का जो राग है, उसमें लीन होकर... आहाहा! उस निजभाव में लीन नहीं रहकर। आहाहा! **उनको व्याकुलतारूप दुःख भव-वन में सहता देख।** आहाहा! समयसार नाटक में कहा न, मुनि को भी महाव्रत का विकल्प, वह जगपंथ है। आहाहा!

यह लोगों को, बनारसीदास और टोडरमल और उनकी बातें ऐसी लगे। बड़े पढ़े हैं न, पंड्या अर्थात्। बापू! यह ऐसा कहते हैं, प्रभु! आत्मा के आनन्द में से महाव्रत का विकल्प उठता है, वह जगपंथ है, संसार है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, देखो!

उनको व्याकुलतारूप दुःख भव-वन में सहता देख। आहाहा! धर्मात्मा भी मुनि होकर भी जब विकल्प में आयेंगे तो दुःख है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, वह तो पाप है, तीव्र दुःख है, आकुलता है परन्तु पंच महाव्रत के दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव भी आकुलता है। आहाहा! अब उस आकुलता से निराकुल (दशा) प्राप्त होगी? विवाद यहाँ सोनगढ़ के सामने यह है। अरे! भगवान! मार्ग है यह, बापू! तुझे स्वीकार करने में दिक्कत उठे अभी, तो स्थिरता तो कहाँ से हो? आहा! **विषय-कषाय के वश होकर शिवसंगम (निजभाव) में लीन नहीं रहते,...** आहाहा! **उनको व्याकुलतारूप दुःख भव-वन में सहता देख।** भव-वन में सहता देख। वह दुःख को सहता है, ऐसा देख। वह प्रसन्न होता है व्यवहार में, ऐसा न देख। आहाहा! समझ में आया? यह ऐसी बात। यहाँ तो भवछेद की बात है। हें! और अभवभाव की, अभवभाव की बात है। आहाहा! यह तो आ गया था न? बाहर के विकल्प में तो अनन्त काल से रुका है, प्रभु! अब तो मुड़। इसका किया और इसका किया और इसका किया। मर गया है ऐसा का ऐसा तू। आहाहा! भगवान ज्ञाता-दृष्टा का तूने अनादर किया है। आहाहा! अब तो उसमें से बाहर निकले, उसे दुःखी देख, कहते हैं। आहाहा! उसकी वाणी तो देखो। बाहर व्यवहार है, वह बाहर निकलना है, वह भी दुःखी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अब यह व्यवहार से निश्चय होगा, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। यह अनेकान्त है, ऐसा कहते हैं। आहा! आहाहा! परन्तु यहाँ तो स्पष्ट कहा, अन्तर की लीनता में से बाहर निकले, उसे दुःखी देख। आहाहा! होता है विकल्प, परन्तु वह दुःख है, ऐसा देख। आहाहा! हें! आहाहा!

संसारी सभी जीव व्याकुल हैं, दुःखरूप हैं,... आहाहा! स्वर्ग के देव दुःखरूपी दुःखी हैं। सब संसारी जीव कहे न? उसमें देव आये न? और यह सब सेठिया आये। आहाहा! संसारी जीव भी व्याकुल हैं। आहाहा! जिसके राग के कर्तव्य हैं शुभाशुभभाव

के, वे सब व्याकुल और आकुलता में हैं। आहाहा! **दुःखरूप हैं, कोई सुखी नहीं है, एक शिवपद ही परम आनन्द का धाम है।** आहाहा! लो। मोक्ष शिवपद, मोक्ष ही **परम आनन्द का धाम है।**

जो अपने स्वभाव में निश्चयनयकर ठहरनेवाला केवलज्ञानादि अनन्त गुण सहित परमात्मा उसी का नाम शिव है,... निश्चय से भगवान आत्मा में लीन हो गये हैं, वे शिव हैं। वह शिव—शंकर नहीं। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा कहा, वैसे आत्मा में लीन हुए, वे शिव हैं। समझ में आया? **अथवा निर्वाण का नाम शिव है, अन्य कोई शिव नाम का पदार्थ नहीं है, जैसा कि नैयायिक वैशेषकों ने जगत का कर्ता-हर्ता कोई शिव माना है, वह नहीं। ऐसा तू मत मान। तू अपने स्वरूप को अथवा केवलज्ञानियों को अथवा मोक्षपद को शिव समझ।** तेरा स्वरूप शिव है, ऐसा समझ (और) केवलज्ञानी और मोक्षपद को शिव है, ऐसा समझ। आहाहा! है? **अपने स्वरूप को...** शिव समझ, त्रिकाली और केवलज्ञानी और मोक्षपद को शिव समझ पर्याय में। आहाहा! **यही श्री वीतरागदेव की आज्ञा है।** आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनवरदेव का यह हुकम है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १४३

अथ सम्यक्त्वदुर्लभत्वं दर्शयति-

२६६) कालु अणाइ अणाइ जिउ भव-सायरु वि अणंतु।
जीविं बिण्णि ण पताइँ जिणु सामिउ सम्मत्तु।।१४३।।

कालः अनादिः अनादिः जीवः भवसागरोडपि अनन्तः।
जीवेन द्वे न प्राप्त जिनस्वामी सम्यक्त्वम्।।१४३।।

कालु इत्यादि। कालु अणाइ गतकालो अनादिः अणाइ जिउ जोवडप्यनादिः भव-सायरु वि अणंतु भवः संसारस्य एव समुद्रः सोडप्यनादिरनन्तश्च। जीविं बिण्णि ण पत्ताइं एवमनादिकाले मिथ्यात्वरागाधधीनतया निजशुद्धात्मभावनाच्युतेन जीवेन द्वयं न लब्धम्। द्वये किम्। जिणु सामिउ सम्मत्तु अनन्तज्ञानादिचतुष्टसहितः क्षुधाघष्टादशदोषरहितो जिनस्वामी परमाराध्यः 'सिवसंगमु सम्मत्तु' इति पाठान्तरे स एव शिवशब्दवाच्यो न चान्यः पुरुषविशेषः, सम्यक्त्वशब्देन तु निश्चयेन शुद्धात्मानुभूतिलक्षणं वीतरागसम्यक्त्वम्, व्यवहारेण तु वीतरागसर्वज्ञप्रणीतसद्द्रव्यादिश्रद्धानरुपं सरागसम्यक्त्वं चेति भावार्थः।।१४३।।

आगे सम्यग्दर्शन को दुर्लभ दिखलाते हैं-

काल अनादि जीव अनादि और अनादि भव सागर।
किन्तु जीव को मिले न अब तक जिनवर देव और सम्यक्त्व।।१४३।।

अन्वयार्थ :- [कालः अनादिः] काल भी अनादि है, [जीवः अनादिः] जीव भी अनादि हैं, और [भवसागरोडिप] संसार-समुद्र भी [अनंतः] अनादि अनंत है। लेकिन [जीवेन] इस जीव ने [जिनः स्वामी सम्यक्त्वम्] जिनराजस्वामी और सम्यक्त्व [द्वे] ये दो [न प्राप्ते] नहीं पाये।

भावार्थ :- काल, जीव और संसार ये तीनों अनादि हैं, उसमें अनादि काल से भटकते हुए इस जीव ने मिथ्यात्व-रागादिक के वश होकर शुद्धात्मस्वरुप अपना न देखा, न जाना। यह संसारी जीव अनादि काल से आत्म-ज्ञान की भावना से रहित है। इस जीव ने स्वर्ग, नरक, राज्यादि सब पाये, परंतु ये दो वस्तुयें न मिलीं, एक तो सम्यग्दर्शन न पाया, दूसरे श्रीजिनराजस्वामी न पाये। यह जीव अनादि का मिथ्यादृष्टि है, और क्षुद्र देवों का उपासक है। श्रीजिनराज भगवान् की भक्ति इसके कभी नहीं हुई,

अन्य देवों का उपासक हुआ सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। यहाँ कोई प्रश्न करे, कि अनादि का मिथ्यादृष्टि होने से सम्यक्त्व नहीं उत्पन्न हुआ, यह तो ठीक है, परन्तु जिनराजस्वामी न पाये, ऐसा नहीं हो सकता? क्योंकि ''भवि भवि जिण पुज्जिउ वंदिउ'' ऐसा शास्त्र का वचन है, अर्थात् भव भव में इस जीव ने जिनवर पूजे और गुरु वंदे। परंतु तुम कहते हो, कि इस जीव ने भव-वन में भ्रमते जिनराजस्वामी नहीं पाये, उसका समाधान-जो भाव-भक्ति इसके कभी न हुई, भाव-भक्ति तो सम्यग्दृष्टि के ही होती है, और बाह्य लौकिक भक्ति इसके संसार के प्रयोजन के लिये हुई वह गिनती में नहीं। ऊपर की सब बातें निःसार (थोथी) हैं, भाव ही कारण होते हैं, सो भाव-भक्ति मिथ्यादृष्टि के नहीं होती। ज्ञानी जीव ही जिनराज के दास हैं, सो सम्यक्त्व बिना भाव-भक्ति मिथ्यादृष्टि के नहीं होती। ज्ञानी जीव ही जिनराज के दास हैं, सो सम्यक्त्व बिना भाव-भक्ति के अभाव से जिनस्वामी नहीं पाये, इसमें संदेह नहीं है। जो जिनवरस्वामी को पाते, तो उसी के समान होते, ऊपरी लोग-दिखावारुप भक्ति हुई, तो किस काम की, यह जानना। अब श्रीजिनदेव का और सम्यग्दर्शन का स्वरुप सुनो। अनंत ज्ञानादि चतुष्टय सहित और क्षुधादि अठारह दोष रहित हैं। वे जिनस्वामी हैं, वे ही परम आराधने योग्य हैं, तथा शुद्धात्मज्ञानस्वरुप निश्चयसम्यक्त्व (वीतराग सम्यक्त्व) अथवा वीतराग सर्वज्ञदेव के उपदेशे हुए षट् द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ और पाँच अस्तिकाय उनका श्रद्धानरुप सराग सम्यक्त्व यह निश्चय व्यवहार दो प्रकार का सम्यक्त्व है। निश्चय का नाम वीतराग है, व्यवहार का नाम सराग है। एक तो चौथे पद का यह अर्थ है, और दूसरे ऐसा ''सिवसंगमु सम्मत्तु'' इसका अर्थ ऐसा है, कि शिव जो जिनेन्द्रदेव उनका संगम अर्थात् भावसेवन इस जीव को नहीं हुआ, और सम्यक्त्व नहीं उत्पन्न हुआ। सम्यक्त्व होवे तो परमात्मा का भी परिचय होवे।।१४३।।

वीर संवत् २५०२, माघ शुक्ल १०, शनिवार
दिनांक- २९-०१-१९७७, गाथा - १४३, प्रवचन-२००

परमात्मप्रकाश, १४३ गाथा। **आगे सम्यग्दर्शन को दुर्लभ दिखलाते हैं—**

२६६) कालु अणाइ अणाइ जिउ भव-सायरु वि अणंतु।
जीविं बिण्णि ण पताइँ जिणु सामिउ सम्मत्तु।।१४३।।

अन्वयार्थ—काल भी अनादि है, जीव भी अनादि हैं और संसार-समुद्र भी अनादि है। भवसागर—संसार भी अनादि है। आहाहा! **लेकिन इस जीव ने जिनराजस्वामी और सम्यक्त्व ये दो नहीं पाये।** अनन्त काल में भटकते अनन्त काल से जीव भटकता है और अनन्त काल से भव में रहता है। आहाहा! एक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया। बाकी स्वर्ग, सेठाई, वह अनन्त बार मिली, परन्तु एक सम्यग्दर्शन नहीं मिला। आहाहा!

मुमुक्षु : याद नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : याद नहीं परन्तु है या नहीं? अनन्त काल का है न? अनन्त काल का है न? कहाँ रहा? चार गति में रहा। आहाहा! मोक्ष हुआ होता तो वापस संसार नहीं होता। क्या कहा?

मुमुक्षु : कहीं तो रहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रहा न, चार गति। मनुष्यगति अनन्त बार मिली, तिर्यंचगति अनन्त बार मिली, स्वर्ग भी अनन्त बार मिला और मनुष्य भी अनन्त बार हुआ, तिर्यंच भी अनन्त बार हुआ। आहाहा! अनन्त बार द्रव्यलिंगी साधु भी हुआ। दिगम्बर साधु द्रव्यलिंगी, नग्नमुनि, पंच महाव्रत वह अनन्त बार हुआ। परन्तु एक सम्यग्दर्शन बिना वह सब निष्फल गया। आहाहा! समझ में आया? दो नहीं मिले।

भावार्थ—काल, जीव और संसार ये तीनों अनादि हैं,... योगसार में आता है पहली गाथा। योगसार। हिन्दी, गुजराती में। काल अनादि, जीव अनादि, संसार अनादि। उसमें आता है। आहाहा! काल जो अनादि **उसमें अनादि काल से भटकते हुए इस जीव ने मिथ्यात्व-रागादिक के वश...** आहाहा! मिथ्याश्रद्धा के वश, रागादि के वश होकर, आहाहा! **शुद्धात्मस्वरूप अपना न देखा,...** क्या कहते हैं, समझ में आया? चार गति में अनन्त भव हुए, सेठाई अरबोंपति भी अनन्त बार हुआ, नरक के भव अनन्त किये, उससे असंख्यगुणे तो स्वर्ग के किये। आहाहा! मनुष्यभव अनन्त हुए, उससे असंख्यगुणे से अनन्तगुणे नारकी के हुए, नारकी। नारकी अनन्त बार हुआ मनुष्य की अपेक्षा। एक बार मनुष्य और असंख्य बार नरक में (ऐसा) अनन्त बार और एक बार नरक और असंख्य बार स्वर्ग, ऐसा भटकते हुए अनन्त बार हुआ। परन्तु यह आत्मा—शुद्धात्मा भगवान आत्मा कौन है, उसे इसने देखा नहीं।

छहढाला में आता है न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो पै (निज) आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' निज आत्मज्ञान। 'लेश सुख न पायो।' दुःख है दुःख, चार गति, चौरासी (लाख योनियों में) अवतार। **शुद्धात्मस्वरूप अपना न देखा,...** आहाहा! शास्त्र का ज्ञान भी अनन्त बार किया, परन्तु शुद्धात्मा भगवान अन्दर पवित्र परमात्मस्वरूप अपने निज शुद्धात्मा को कभी देखा नहीं। आहाहा! समझ में आया? **न देखा, न जाना।** आहाहा! विकार के वश होकर विकाररहित शुद्धात्मा पवित्र प्रभु को नहीं देखा, नहीं जाना, नहीं श्रद्धा की। आहाहा! समझ में आया? **यह संसारी जीव अनादि काल से आत्मज्ञान की भावना से रहित है।** आहाहा! आत्मज्ञान। परमात्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द ऐसे भगवान आत्मा का ज्ञान। पर का ज्ञान हुआ, आत्मज्ञान नहीं हुआ। आत्मज्ञान (नहीं) करके क्या किया? राग का ज्ञान किया, पर का किया, पर्याय का किया, परन्तु आत्मज्ञान—वस्तु जो आत्मा अखण्ड, उसका ज्ञान नहीं किया। आत्मा की पर्याय का किया, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा

अनन्त-अनन्त काल में संयोगी चीज़ का ज्ञान (किया), जाना, राग को जाना, एक समय की पर्याय को भी जाना, परन्तु आत्मा नहीं जाना। आत्मा शुद्ध चैतन्यघन अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु। आहाहा! उसका ज्ञान नहीं किया। समझ में आया? आत्मज्ञान की भावना। भावना अर्थात् आत्मज्ञान वस्तु की एकाग्रता। स्वभाव-सन्मुखता, स्वभाव-सन्मुखता कभी नहीं की। आहाहा! स्वभाव से विमुख होकर पर्याय और राग के आधीन होकर अनन्त बार चौरासी के अवतार में भटका। आहाहा!

यह संसारी जीव अनादि काल से आत्मज्ञान की भावना से रहित है। इस जीव ने स्वर्ग, नरक, राज्यादि सब पाये,... स्वर्ग भी—नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। इकतीस सागरोपम की जिसकी स्थिति देव की। एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम जाते हैं। और एक पल्य के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष होते हैं। आहाहा! ऐसी इकतीस सागर की स्थिति अनन्त बार मिली, आत्मज्ञान बिना। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा की तो उस शुभभाव से स्वर्ग मिला। परन्तु आत्मज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया? **इस जीव ने स्वर्ग, नरक, राज्यादि...** यह मनुष्य में। राजा आदि। बड़ा अरबोंपति एक दिन की आमदनी, कमाई। ऐसा राजा। एक दिन की अरबों की आमदनी, ऐसा

राजा अनन्त बार हुआ। पोपटभाई! हें! आहाहा! अभी है न वह एक राजा, नहीं? ईराक। एक घण्टे की दो करोड़ की आमदनी है। अरब, अरब, अरब देश है, ईराक। देश छोटा है परन्तु पेट्रोल के कुँए बहुत निकले। उसे ऐसा कहते हैं, कच्चा सोना। काला सोना, काला सोना। कच्चा तो वह, कपास। एक घण्टे में दो करोड़ की आमदनी अभी है। आरब। वह अनार्य है। परन्तु आर्य देश में होकर भी अरबपति अनन्त बार हुआ। आहाहा! फिर मरकर तिर्यंच में, ढोर में, नरक में चला गया। आहाहा! एक आत्मज्ञान बिना।

अन्तर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्होंने आत्मा कहा, ऐसा आत्मा। अज्ञानी को तो आत्मा की खबर ही नहीं। जिसके मत में सर्वज्ञ नहीं, उसके मत में आत्मा क्या, उसकी खबर ही नहीं। आहाहा! जिसके मत में सर्वज्ञ हैं, और उन्होंने आत्मा देखा पूर्णानन्द अनन्त आत्मा, अनन्त आत्मा सिद्ध समान देखे। आहाहा! ऐसा आत्मा अज्ञानी ने अपना देखा नहीं। आहाहा! **परन्तु ये दो वस्तुयें न मिली, एक तो सम्यग्दर्शन न पाया, दूसरे श्री जिनराजस्वामी न पाये।** वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर स्वामी नहीं मिले।

यह जीव अनादि का मिथ्यादृष्टि है,... अनादि की श्रद्धा विपरीत है। आहाहा! या तो पुण्य से धर्म होगा, पाप में हर्ष—आनन्द आता है, निमित्त से मेरा कल्याण होगा, मैं दूसरे का कल्याण करा देता हूँ, मैं दूसरे को जिला सकता हूँ, मार सकता हूँ—ऐसी मिथ्यादृष्टि। आहाहा! **यह जीव अनादि का मिथ्यादृष्टि है, और क्षुद्र देवों का उपासक है।** नीचे हल्के देव का सेवक है। आहाहा! व्यन्तर और भूतड़ा और देव-देवला, वीतराग सिवाय। **श्री जिनराज भगवान की भक्ति इसके कभी नहीं हुई,...** देखो! इसमें से सिद्धान्त निकालेंगे। श्री जिनराज भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ महाविदेह में तो सदा निरन्तर विराजते हैं। महाविदेह में वर्तमान विराजते हैं, सीमन्धरस्वामी तीर्थंकरदेव। करोड़ पूर्व का आयुष्य, पाँच सौ धनुष का देह, दो हजार हाथ ऊँचे भगवान विराजते हैं महाविदेह में, मनुष्यरूप से। उस महाविदेह में सदा तीर्थंकर का विरह नहीं होता। वहाँ अनन्त बार जन्मा और अनन्त बार महाविदेह में आया। आहाहा! परन्तु **श्री जिनराज भगवान की भक्ति इसके कभी नहीं हुई, अन्य देवों का उपासक हुआ, सम्यग्दर्शन नहीं हुआ।**

यहाँ कोई प्रश्न करे कि अनादि का मिथ्यादृष्टि होने से सम्यक्त्व नहीं उत्पन्न हुआ, यह तो ठीक है, परन्तु जिनराजस्वामी न पाये, ऐसा नहीं हो सकता। जिनराजदेव स्वामी नहीं मिले, (ऐसा नहीं है)। है? '**भवि भवि जिण पुज्जिउ वंदिउ**' शास्त्र में तो ऐसा है कि अनन्त-अनन्त भव में जिनराज के समवसरण में भगवान की पूजा की। आहाहा! समझ में आया? है? '**भवि भवि जिण पुज्जिउ वंदिउ' ऐसा शास्त्र का वचन है,...** शिष्य का प्रश्न है कि तुम कहते हो कि सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया, यह तो बराबर है, परन्तु जिनराजस्वामी नहीं मिले, यह बात बराबर नहीं। क्योंकि भव-भव में जिनवर अनन्त बार पूजे हैं। आहाहा! समवसरण में साक्षात् तीन लोक के नाथ जिनवरदेव विराजते हैं, वहाँ मणिरत्न के दीपक से और हीरा के थाल और कल्पवृक्ष के फूल से भगवान की पूजा की। समझ में आया? ऐसा शास्त्र का वचन है। **अर्थात् भव-भव में इस जीव ने जिनवर पूजे और गुरु वंदे।** साक्षात् धर्मात्मा वीतरागी सन्त अनुभवी, आत्मा के आनन्द के अनुभवी सन्त, उन्हें भी वन्दन किया। समझ में आया? आहाहा! **परन्तु तुम कहते हो, इस जीव ने भव-वन में भ्रमते जिनराजस्वामी नहीं पाये, उसका समाधान... परन्तु तुम कहते हो, इस जीव ने भव-वन में भ्रमते...** समझ में आया?

जो भाव-भक्ति इसके कभी न हुई,... आहाहा! जिनवरदेव, जिनवर की प्रतिमा, जिनवर के मन्दिर, जिनवर के समवसरण में अनन्त बार पूजा, भक्ति की। परन्तु आत्मा वीतरागमूर्ति है, ऐसी भाव-भक्ति कभी नहीं की। आहाहा! समझ में आया? हें!

मुमुक्षु : भक्ति के दो प्रकार।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो प्रकार। बाहर से भगवान की पूजा व्यवहार, वह व्यवहार है, वह शुभभाव है। वह तो अनन्त बार की। आत्मा आनन्द वीतरागमूर्ति प्रभु की एकाग्रता, स्वसन्मुख में एकाग्रता, आनन्द का स्वाद आना—ऐसी जिनराज की भक्ति कभी नहीं की। आहाहा! पर की भक्ति करता है तो शुभभाव होता है। शुभभाव है, वह तो दुःख है। आहाहा! कठिन बात, भाई! अनन्त काल से भटकता है। भगवान की शक्ति, पूजा भी अनन्त बार की परन्तु भावभक्ति नहीं। शुभभाव की भक्ति व्यवहार से की। आहाहा! आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा, वह आप स्वयं जिनराज है। उसकी भक्ति अर्थात् उसका आदर करके कभी लीन नहीं हुआ। आहाहा! समझ में आया? समन्तभद्रस्वामी कहते हैं,

प्रभु! आपको अभव्य नहीं पूजता। अभव्य शब्द से (आशय) राग के रसिक प्राणी आपको नहीं पूज सकते। जिसे राग का रस और विकार का प्रेम है, वह आपकी परमार्थ पूजा नहीं कर सकता। वह राग की पूजा करता है, भगवान के समय भी। आहाहा! समझ में आया?

भाव-भक्ति इसके कभी न हुई,... आहाहा! वीतराग परिणति से भगवान की अन्तर पूजा करना, वह भाव-भक्ति है। वीतराग परिणति से अकषायस्वभाव की दशा से, अकषाय स्वभावस्वरूप की एकाग्रता—भक्ति कभी नहीं की। वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा की वीतरागी परिणति से कभी भक्ति नहीं की। आहाहा! कहो, सेठ! शास्त्र भी अनन्त बार पूजे, ऐसा कहते हैं। चैत्यालय में किये हैं न शास्त्र।

मुमुक्षु : भूल कहाँ रह गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : भूल रह गयी, अन्दर नहीं गया। बाहर लाभ मानकर अन्दर नहीं जाता।

मुमुक्षु : काललब्धि नहीं पकी।

पूज्य गुरुदेवश्री : काललब्धि तो इसका पुरुषार्थ करे, तब काललब्धि पकती है। काललब्धि में स्वभाव-सन्मुख न हुआ तो पुरुषार्थ नहीं किया। तो स्वभाव की श्रद्धा नहीं हुई, काललब्धि भी नहीं पकी और भवितव्यता का भाव भी नहीं हुआ। पाँचों समवाय एक समय में हैं। समझ में आया? मैं तो बहुत कहता था, (संवत्) १९७२ के वर्ष से। काललब्धि है, उसका ज्ञान किसे हुआ? धार रखा... भाई ने ऐसा कहा न, टोडरमलजी ने (कहा कि) काललब्धि और भवितव्यता कोई वस्तु नहीं। आहाहा! इस प्रश्न की तो बहुत चर्चा हुई थी, ८३ के वर्ष में दामोदर सेठ के साथ। दामोदर सेठ थे न? सेठ। गृहस्थ थे। उस ओर में पैसेवाले वे थे। तब दस लाख रुपये। तब अर्थात्? अभी के पच्चीस गुने गिनना, पच्चीस गुने। उसके साथ बहुत चर्चा हुई थी। वह कहे, काल पाके तब होगा। उसमें हम पुरुषार्थ कैसे कर सकते हैं? ऐसा कहता था। समझ में आया? परन्तु काल में काल की पर्याय का ज्ञान किसे होता है? धारणा कर रखी है कि काललब्धि है? समझ में आया? काललब्धि तो जिस काल में निज स्वभाव का

शुद्ध पुरुषार्थ करके स्वभाव का पुरुषार्थ हुआ, पुरुषार्थ हुआ (उस समय में) कर्म का भी उस प्रकार का उतना अभाव है और उस काल में उस समय पर्याय हुई, भाव से भवितव्यता का भाव हुआ। एक समय में पाँचों हैं। आहाहा! दुनिया को कहाँ पड़ी है? बाहर में धमाधम, स्त्री, पुत्र, परिवार, पैसा, आहाहा! साठ, साठ वर्ष हो तो भी निवृत्त नहीं होता। पाप करने में प्रवीण, उत्साह। आहाहा! नौकरी में भी ५५ वर्ष में निवृत्ति मिलती है। नौकरी करे, उसमें ५५ वर्ष में। क्या कहलाता है वह? रिटायर्ड होता है। यहाँ तो साठ-साठ, पैंसठ हो तो भी निवृत्त नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? अवधि होगी किसी से? आहाहा! जीवे वहाँ तक करना यह व्यापार और धन्धा। आहाहा! मर गया उसमें अनन्त काल हुआ। 'क्षण क्षण भयंकर भावमरण...' राग की रुचिवाला, भगवान आत्मा राग की रुचि करता है, उसमें भावमरण होता है। आहाहा! इसे कहाँ खबर है कि क्या करता हूँ? आहाहा!

कहते हैं, समझ में आया? **भाव-भक्ति इसके कभी न हुई,...** आहाहा! **भाव-भक्ति तो सम्यग्दृष्टि के ही होती है,...** आहाहा! देखो! जिसने अपना भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु के अन्तर में ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाकर जो प्रतीति हुई, उस सम्यग्दृष्टि को ही यथार्थ भक्ति होती है। आहाहा! समझ में आया? समन्तभद्र कहते हैं वहाँ, प्रभु! वह अभव्य आपको वन्दन नहीं करता। क्योंकि उसे राग की रुचि है। आप वीतराग हो। प्रभु! राग की रुचिवाले आपका आदर नहीं करते। बाहर से करते हैं, वह राग का आदर करते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग लोगों को कठिन पड़ता है। आज बड़ी चर्चा आयी है। भाई नहीं? हिम्मतभाई। हें? गये हों, मेहमान आये होंगे। मोक्ष उपाय है, बन्ध उपाय नहीं, आता है न भाई गाथा? पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। इसकी बड़ी चर्चा आज आयी है। उसका राग है, वह मोक्ष का ही कारण है। आहाहा! वह कोई दूसरे ने कहा है। भाई ने कहा था न वह? प्रेमचन्दजी, सनावद। उसने बहुत बड़ा लेख लिखा था। समकिती का पुण्य मोक्ष का कारण है। अतिशय पुण्य ऐसा है। फिर भाई ने—कैलाशचन्दजी ने जवाब दिया था कि तुम्हारी बात झूठी है। बड़ा लेख था। उनके सामने आज लेख है, किसी दूसरे का। तुम सम्पादक ने जो यह जवाब दिया है, वह झूठा है। कहो। हें! आहाहा! टोडरमलजी ने तो स्पष्ट अर्थ किया है, पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। स्पष्ट। राग है, वह बन्ध

का उपाय है और जितने अंश राग, उतने अंश बन्धन, जिसे आंशिक सम्यग्दर्शन उसे आंशिक मोक्षमार्ग। यह तो गाथायें हैं। यह तो लेख है। तो उसका अर्थ गाथा का यह करना? जैनशास्त्र के अर्थ करने में बड़ी भूल। आहाहा! आज बड़ा लेख है। उसको अनुमोदन दिया है सनावदवाले को, प्रेमचन्दजी ने बहुत अच्छा लेख लिखा था। तुम जैन सन्देशवालों ने उसका खोटा सिद्ध किया, इसलिए तुम्हारी बात खोटी है। अभी पण्डितों और पण्डितों के बीच (मतभेद)। हें?

मुमुक्षु : अपना न हुआ हो इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेक होते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि भाव-भक्ति। वीतराग शुद्धात्मस्वरूप की अन्तर्दृष्टि की लीनता का नाम भावभक्ति। समझ में आया? ऐसे तो करोड़ों-अरबों रुपये खर्च किये भगवान के नाम से मन्दिर बनाये, भक्ति की। आहाहा! समझ में आया? सोना में बनाये, नहीं? भरत ने। आता है न? तीन काल की (चौबीसी की) मूर्तियाँ बनायीं। तीन काल की चौबीसी बनायी। वह तो बाहर की क्रिया हुई रजकण से। आते हैं अब। जल्दी आना चाहिए न, आधा घण्टा तो हो गया। इसके लिये रुका जाये? उसे भी सुनने का (जाये)। मेहमान को सुनने का जाये, अपने को जाये। ऐसा धन्धा हो? अब आता है। समझ में आया? ऐसा है यह सब जगत। अरेरे!

कहते हैं, **भाव-भक्ति इसके कभी न हुई, भाव-भक्ति तो सम्यग्दृष्टि के ही होती है,...** जिनराज की भाव-भक्ति सम्यग्दृष्टि को ही होती है। आहाहा! समझ में आया? जिसे दया, दान, व्रत के राग का प्रेम है, रुचि है, उसे भगवान की भक्ति नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! आधा घण्टा मेहमान का गया, आधा घण्टा तुम्हारा गया सुनने का। ऐसा घाटे का धन्धा हो? उसे भी सुनने को मिले न आधा घण्टा। ऐई! यहाँ आये तो सुने तो सही, क्या है यह। यह तो सब परायण मांडी है राग की। आहाहा!

यहाँ प्रभु कहते हैं, वे सन्त कहते हैं आड़तिया होकर। भगवान आत्मा अनादि काल से भवभ्रमण अनन्त किये, तथापि कहीं समकित और जिनराजस्वामी नहीं पाये। बाकी सब मिला। आहाहा! तो शिष्य का प्रश्न है कि जिनराजस्वामी नहीं मिले?

जिनराज के समवसरण में तो अनन्त बार गया है। महाविदेह में भगवान विराजते हैं, जिनवरदेव त्रिलोकनाथ, महाविदेह में कभी विरह नहीं होता। अरे! तीन काल में तीन लोक में जाननेवाले का विरह नहीं होता। तीन काल ज्ञेय है न, तो उसके जाननेवाले का विरह कभी तीन काल में नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? तो तीर्थंकर के समवसरण में भी अनन्त बार गया। पूजा अनन्त बार की और आप कहते हो कि जिनराजस्वामी मिले नहीं। ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

गुरु कहते हैं कि अनन्त बार मिले, वह द्रव्य-भक्ति की, भाव-भक्ति नहीं। भाव-भक्ति तो सम्यग्दृष्टि ही कर सकता है। आहाहा! जिसे वीतरागभाव रुचा और राग की रुचि गयी, वह जिनराजस्वामी की भाव-भक्ति कर सकता है। आहाहा! भगवान की द्रव्य-भक्ति वह राग है, उस राग की जिसे रुचि है, उसे भाव-भक्ति नहीं हो सकती। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : इस हिसाब से देशनालब्धि और प्रायोग्यलब्धि मिली नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिली अनन्त बार। देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि अनन्त बार मिली है, करणलब्धि नहीं की। आहाहा! अन्तर्मुख हुआ नहीं। जहाँ भगवान शुद्ध चैतन्यघन विराजता है। आहाहा! अन्तर आनन्दकन्द प्रभु है, उस ओर का झुकाव एक समय भी अनन्त काल में कभी किया नहीं। आहाहा! है?

भाव-भक्ति तो सम्यग्दृष्टि के ही होती है, और बाह्यलौकिकभक्ति इसके संसार के प्रयोजन के लिये हुई, वह गिनती में नहीं। आहाहा! शुभराग के प्रयोजन के लिये भक्ति की। शुभराग का फल तो संसार के भोग हैं। आहाहा! भोग के लिये की, ऐसा आता है न? बन्ध अधिकार में आता है। धर्म भोग हेतु। धर्म शब्द से पुण्य भोग हेतु, बाहर के अनुभव के लिये। स्व के अनुभव के लिये नहीं। आहाहा! समझ में आया? 'शुद्धता विचारे ध्यावे, शुद्धता में केलि करे' यह भक्ति है। अन्दर परमात्मस्वरूप भगवान विराजता है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' समझ में आया? बहिर्मुख की दृष्टि छोड़कर अन्तर्मुख की एकाग्रता करता है, उसे भावभक्ति होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यही भाव-भक्ति

है। यह जिनराज स्वयं है। स्वयं जिनराज है। आहाहा! कैसे बैठे? एक पावसेर चाय पीकर न आवे तो मस्तिष्क घूमे। दो बीड़ी पीकर न आवे तो मस्तिष्क ठिकाने न रहे। इतने तो अपलक्षण इसके। आहाहा! अब इसे कहे कि तीन लोक का नाथ आनन्द का सागर प्रभु अन्दर है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम राग के, उनकी रुचि छोड़। वह राग की रुचि है। आहाहा! वह राग की रुचि सम्यग्दृष्टि ही छोड़ सकता है। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त बार भक्तिभाव बाहर के तो किये, भव-भव में पूजियो। भगवान के समवसरण में भी अनन्त बार गया। परन्तु वह तो शुभभाव था, राग था, वह कोई आत्मा के कल्याण का पंथ नहीं है। आहाहा! तब वे कहते हैं, सम्यग्दृष्टि का शुभभाव परम्परा से मोक्ष का कारण है। परन्तु किस अपेक्षा से? आहाहा! परन्तु क्या करे? जिसे अन्दर फुरसत-निवृत्ति, भगवान आत्मा राग से निवृत्तस्वरूप है। राग की प्रवृत्तिस्वरूप वह आत्मा का स्वरूप ही नहीं। आहाहा! निवृत्तस्वरूप है। निवृत्त आता है, नियमसार के पाँचवें भावार्थ में। निवृत्तस्वरूप। नियमसार में व्यवहार अधिकार है न? वह निवृत्तस्वरूप है, राग से निवृत्तस्वरूप प्रभु है। आहाहा! बाहर की तो बात ही क्या करना? जड़ और पर आत्मा के साथ तो कुछ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! परन्तु राग के साथ सम्बन्ध-बन्ध नहीं। राग के साथ सम्बन्ध-बन्ध नहीं। सम्बन्ध करे तो बन्ध होता है। आहाहा!

भगवान आत्मा राग का सम्बन्ध छोड़कर स्वभाव का सम्बन्ध—अबन्ध का सम्बन्ध करे... आहाहा! समझ में आया? भगवान अबन्धस्वरूप है। उसके साथ राग का भी सम्बन्ध नहीं। आहाहा! ऐसी सम्बन्धरहित चीज़ आत्मा, परन्तु वह करने की दरकार भी कहाँ है? इस दुनिया में कुछ कमाया और पाँच-पच्चीस लाख मिले और कुछ मकान ठीक और इज्जत ठीक (हुई तो) फूले। भले मरकर नरक में जाये, ढोर में जाये, कौन पूछता है वहाँ? यह तो अभी तो यहाँ रास आया। हें! धूल में नहीं रास आया, सुन न। भगवान आत्मा की लक्ष्मी, निजसम्पदा जो परमात्मस्वरूप परमात्मा, उस सम्पदा की सम्पदा में एकाग्रता नहीं हुई, एकान्त उस सम्पदा का अन्तर में स्वीकार नहीं किया और आपदा रागादि का स्वीकार किया, उसे भाव-भक्ति होती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

बाह्य लौकिक भक्ति इसके संसार के प्रयोजन के लिये हुई... लो! इसलिए वह मूल राग का हेतु, राग की रुचि है न, वह संसार का ही प्रयोजन है उसमें। राग जो दया, दान आदि का है, उसमें प्रेम है, वह संसार का प्रेम है, उसमें संसार का ही प्रयोजन है। आहाहा! और जिसे राग का प्रेम है, उसे अरागी वीतराग के प्रति द्वेष है। आहाहा! मार्ग ऐसा है। अरेरे! वीतराग क्या मार्ग कहते हैं, इसकी खबर नहीं। वाडा में जन्में और ऐसे के ऐसे मर जाये, हो गया, जाओ। फू... हड्डियाँ राख होकर चली जायें। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि भाव-भक्ति समकिती को होती है अर्थात् उसे राग की रुचि नहीं होती और वीतरागस्वभाव की रुचि होती है, तो उसे भाव-भक्ति है। और जिसकी राग में रुचि है, उसे स्वभाव के प्रति द्वेष है, उसे भाव-भक्ति नहीं हुई। आहाहा! शुभराग के पक्ष में चढ़ गया। पडखे, क्या कहते हैं हिन्दी में? हें? राग के पक्ष में चला गया। आहाहा! अपना भगवान पूर्णानन्द है, उसे तो दृष्टि में से छोड़ दिया। आहाहा! तो बाह्य भक्ति अज्ञानी को होती है, **वह गिनती में नहीं।** आहाहा! **ऊपर की सब बातें निःसार (थोथी) हैं,...** आहाहा! भगवान का स्मरण करना, भगवान की पूजा करना और भगवान का वन्दन करना, गुरु को वन्दन करना। आहाहा! यह सब सम्यग्दर्शन बिना निःसार है, आहाहा! उसमें कुछ सार नहीं है। आहाहा! '**(थोथी) है...** है? **भाव ही कारण होते हैं।** अन्तर भगवान वीतरागस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, वीतराग परिणति से भाव-भक्ति काम आती है। आहाहा! है? **भाव ही कारण होते हैं। सो भाव-भक्ति मिथ्यादृष्टि के नहीं होती।** आहाहा!

ज्ञानी जीव ही जिनराज के दास हैं,... वीतराग के दास तो ज्ञानी हैं। क्योंकि जिसे वीतराग की दृष्टि हुई, वीतरागस्वभाव का आदर हुआ, वे जिनराज के दास हैं। अज्ञानी तो राग का दास है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अभी तो पाप के कारण निवृत्ति करके देव-शास्त्र-गुरु के दर्शन और भक्ति का भी ठिकाना नहीं। यहाँ तो यह हो तो कहते हैं कि वह आत्म-भक्ति नहीं। आहाहा! समझ में आया? चौबीस घण्टे में स्त्री, पुत्र, पैसा, खाना, भोग, इज्जत, कीर्ति और बहियाँ जाँचना लेने-देने की। अरेरे! क्या करता है भाई तू? कहाँ जा चढ़ा तू? तेरा मार्ग छोड़कर कहाँ जाता है? आहाहा!

रुचि अनुयायी वीर्य। जिसे राग की रुचि है, उसका वीर्य राग में काम करेगा। आहाहा! बात तो बहुत थोड़ी है परन्तु कीमती यह है। जिसे वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा की जिसे रुचि है, उसे व्यवहाररत्नत्रय की रुचि नहीं। आगे कहेंगे थोड़ा। अभेदरत्नत्रय से मुक्ति है, भेदरत्नत्रय से स्वर्ग मिलेगा। फिर मुक्ति होगी। भेदाभेदरत्नत्रय। है, है न गाथा, नहीं? भेदाभेदरत्नत्रय, १४७, **भेदाभेदरत्नत्रय की भावना से रहित जीव का मनुष्य-जन्म निष्फल है,...** वहाँ है, १४७ में है। पहली ही लाईन में है। **वैसे ही इस असार शरीर के आधार से...** टीका है पीछे १४७ में। **वीतराग परमानन्द शुद्धात्मस्वभाव का सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप निश्चयरत्नत्रय की भावना के बल से मोक्ष प्राप्त किया जाता है, और निश्चयरत्नत्रय का साधक...** निमित्त, **जो व्यवहाररत्नत्रय उसकी भावना के बल से स्वर्ग मिलता है, तथा परम्परा से मोक्ष होता है।** अर्थात् उसका अभाव करके, ऐसा। वहाँ लोग जोर देते हैं। आहाहा!

यहाँ तो निश्चयसम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र—स्वरूप की रमणता, आनन्द के धाम में आनन्द की परिणति, वही पूर्ण आनन्द का कारण है। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का धाम आत्मा, उसकी अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति—पर्याय, वह अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्णता की प्राप्ति उससे है। आहाहा! समझ में आया? राग है, वह तो बन्ध का कारण है। परन्तु सम्यग्दृष्टि को, राग छोड़नेयोग्य है, ऐसी दृष्टि हुई है तो वह राग छोड़कर अभेदरत्नत्रय को पूर्ण करेगा। समझ में आया? लो!

ज्ञानी जीव ही जिनराज के दास हैं, सो सम्यक्त्व बिना भाव-भक्ति के अभाव से जिनस्वामी नहीं पाये,... यह स्पष्टीकरण किया। अनन्त काल में एक समकित नहीं पाया और जिनराजस्वामी नहीं पाया। जिनराजस्वामी नहीं पाया, उसकी स्थिति क्या? कि राग की रुचि रही, उसे जिनराजस्वामी नहीं हुए। जिसे आत्मा वीतराग की रुचि हुई और वीतराग परिणति हुई, उसके जिनराजस्वामी हुए। समझ में आया? अज्ञानी तो राग का स्वामी हुआ। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! अनन्त काल में भटकते... भटकते... **जो जिनवरस्वामी को पाते, तो उसी के समान होते,...** यह स्पष्टीकरण आया। जिसे जिनराज वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा की जिसे दृष्टि, सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुए, वह तो भगवान समान हो जाता है। **ऊपरी लोक-दिखावारूप भक्ति हुई,...** ऊपरी लोक दिखावारूप

भक्ति हुई **तो किस काम की...** लोग कहे, ओहो! भक्ति करे मानो जोर से शोर करे भगवान के पास... आहाहा! मानो भारी भक्ति होगी भगवान की। समझ में आया? यह लोक दिखाव की भक्ति है। आहाहा! **तो किस काम की, यह जानना।**

अब श्री जिनदेव का और सम्यग्दर्शन का स्वरूप सुनो। अब जिनदेव और सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहते हैं। **अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय सहित और क्षुधादि अठारह दोष रहित...** यह जिनस्वामी। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। चतुष्टय कहे न चार? **क्षुधादि अठारह दोष रहित...** सर्वज्ञ परमेश्वर को क्षुधा नहीं होती, तृषा नहीं होती, रोग नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? अठारह दोषरहित है। आहाहा! यह जिनस्वामी है। भगवान को रोग हुआ और दवा ली, यह सब मिथ्या बातें हैं। वे जैनशास्त्र ही नहीं। वीतराग बतलानेवाले वे शास्त्र नहीं। समझ में आया? भगवान को रोग हुआ, आता है न? चिमनभाई ने वहाँ सुना होगा या नहीं? फुरसत में नहीं सुना होगा। भगवान को रोग हुआ था। छह महीने तक खूनी दस्त। सब झूठ है। सर्वज्ञ जिनराज को रोग नहीं होता, क्षुधा नहीं होती, वे आहार नहीं लेते। अनन्त आनन्द के भोग में आहार क्या? आहाहा!

मुमुक्षु : ग्यारह परीषह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन ग्यारह परीषह का अभाव है। निमित्त कहकर दिखलाया है। है नहीं। असाता का इतना उदय है, बतलाया जरा। परमार्थ से नहीं। ऐसी बात है। विशाल समुद्र हो, समुद्र मीठा, समुद्र में जरा राख की चिमटी इतनी पड़े, उसकी कोई गिनती नहीं। यह मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह असाता का उदय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह असाता का उदय सातारूप परिणम जाता है। अनन्त गुणी साता का रसरूप से हो जाता है। ऐसी बात है, परन्तु यह तो अन्तर वस्तु की स्थिति ऐसी है। वाडा बाँधकर बैठे और विवाद करे तो पार आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर क्षुधा, तृषा रहित है। है?

वे जिनस्वामी हैं, वे ही परम आराधने योग्य हैं,... आहाहा! वे वीतरागस्वभावी

परमात्मा आराधनेयोग्य हैं। **तथा शुद्धात्मज्ञानरूप निश्चयसम्यक्त्व...** देखो! सत्य समकित, सत्य निश्चय समकित, वीतराग समकित शुद्धात्मज्ञानरूप है। आहाहा! शुद्ध चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप की जो श्रद्धा, वह निश्चयसमकित। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि वह तो राग विकल्प है। समझ में आया? अरे! ऐसी कठिन बातें। हैं? **शुद्धात्मज्ञानरूप निश्चयसम्यक्त्व अथवा...** व्यवहार कहते हैं अब। **वीतराग सर्वज्ञदेव के उपदेशे हुए...** भगवान त्रिलोकनाथ जिनवरदेव ने कहे हुए **षट् द्रव्य,...** भगवान के ज्ञान में छह द्रव्य आये हैं। भगवान ने कहे हुए छह द्रव्य। आत्मा, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल छह द्रव्य हैं। आहाहा! उन छह द्रव्य की श्रद्धा—शुभराग, वह व्यवहारसमकित है। वह सरागसमकित है, यह वीतरागसमकित है। सराग कहो या व्यवहार कहो। समझ में आया? वीतरागसमकित कहो या निश्चयसमकित कहो। आहाहा!

नौ पदार्थ... है न? सात तत्त्व में आस्रव में पुण्य-पाप डाल दिये, भिन्न करके नौ पदार्थ। **पाँच अस्तिकाय उनका श्रद्धानरूप सराग सम्यक्त्व...** वह सराग समकित है। रागरूपी भाव में समकित का आरोप है, आरोप है। वह समकित की पर्याय नहीं है। सरागसमकित कोई समकित की (पर्याय नहीं), वह तो चारित्र की पर्याय भी नहीं। चारित्र की विरुद्ध पर्याय राग है, उसे व्यवहार समकित कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **यह निश्चय-व्यवहार दो प्रकार का सम्यक्त्व है। निश्चय का नाम वीतराग है,...** देखो! **व्यवहार का नाम सराग है।** लो। आहाहा! सराग आता है, है हेय। परन्तु आता है। जब तक वीतराग न हो, तब तक निश्चयसम्यग्दर्शनपूर्वक व्यवहारसमकित अर्थात् रागभाव आता है। वह तो दुःखरूप है, हेय है, उपचार से समकित कहा गया है। आत्मा का सम्यग्दर्शन वीतरागी दृष्टि निर्मल, उसके साथ सहचर-साथ में और निमित्तरूप से गिनकर उपचार से व्यवहारसमकित कहा गया है। वह सरागसमकित कहो या व्यवहारसमकित कहो। ऐसा सब कहाँ अब पढ़ने जाना। आहाहा! संसार के कारण निवृत्त कहाँ, पाप के कारण। परन्तु इसे दुनिया में, महिमा हो, लो। बाहर में। इसे कौन पहिचाने? अच्छी जगह लड़के का विवाह हो, लड़की अच्छे ठिकाने आवे। यह माने कि मैंने व्यवस्थित किया, मेरे पुण्य के कारण किया। आहाहा!

अरे! बापू! तेरी 'समकित के साथ सगाई कीधी, सपरिवार शुं गाढी', वह सगाई

है। सपरिवार—अनन्त गुण के साथ सगाई। आहाहा! राग के साथ सगाई, वह तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? निश्चय का नाम वीतराग, व्यवहार का नाम सराग। यह व्याख्या। जहाँ देखो वहाँ सर्वत्र यह लेना। व्यवहार का नाम सराग, निश्चय का नाम वीतराग। आहाहा! तब वह कहता है न, चौथे गुणस्थान में वीतराग समकित नहीं होता। ऐई! चेतनजी! हें! पत्र के पत्र आया करते हैं, विकासचन्दजी के महीने, दो महीने में। वीतरागसमकित तो सातवें में होता है। चौथे में सरागसमकित होता है। बस, सरागसमकित होता है? और उसमें श्रीमद् भी भूले हैं, टोडरमल भूले हैं, बनारसीदास भूले हैं और साथ में तुम भी भूले हो। चेतनजी के मित्र थे, सहचर। (वे ऐसा कहते थे)। आहाहा! कहो, भाई! तुमको ठीक लगे, वैसा कहो।

मुमुक्षु : जयसेनाचार्य ने तो कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जयसेनाचार्य क्या कहते हैं? वह तो निश्चय है तो व्यवहार साथ में होता है, ऐसा कहा है। राग की प्रधानता के दोष से वहाँ वर्णन किया है। समकित है, वह वीतराग ही होता है। आहाहा! निश्चयसमकित चौथे से होता है और वह वीतराग होता है, इतनी पर्याय। आहाहा! समझ में आया?

एक तो चौथे पद का यह अर्थ है, और दूसरे ऐसा 'सिवसंगमु सम्मुत्तु' इसका अर्थ ऐसा है कि शिव जो जिनेन्द्रदेव उनका संगम अर्थात् भावसेवन इस जीव को नहीं हुआ,... आहाहा! भगवान जिनेन्द्रदेव प्रभु आत्मा स्वयं आत्मा स्वयं जिनेन्द्रदेव ही है। आहाहा! उसका सेवन नहीं किया। संगम अर्थात् सेवन। **और सम्यक्त्व नहीं उत्पन्न हुआ।** लो। **सम्यक्त्व होवे तो परमात्मा का भी परिचय होवे।** आहाहा! क्या कहते हैं? कि सम्यग्दर्शन जो स्वरूप की रुचि और अनुभव हो तो परमात्मा का परिचय हो। अज्ञानी को राग का परिचय है। आहाहा! समझ में आया? १४३ (गाथा) हुई। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १४४

अथ शुद्धात्मसंवित्तिसाधकतपश्चरणप्रतिपक्षभूतं गृहवासं दूषयति-

२६७) घर-वासउ मा जाणि जिय दुक्किय-वासउ एहु।
पासु कयंतें मंडियउ अविचलु णिस्संदेहु।।१४४।।

गृहवासं मा जानीहि जीव दुष्कृतवास एषः।
पाशः कृतान्तेन मण्डितः अविचलः निस्सन्देहम्।।१४४।।

घरवासउ इत्यादि। घर-वासउ गृहवासम् अत्र गृहशब्देन वासमुख्यभूता स्त्री ग्राह्या। तथा चोक्तम्-''न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।।'' मा जाणि जिय हे जीव त्वमात्महितं मा जानीहि। कथंभूतो गृहवासः। दुक्किय-वासउ एहु समस्तदुष्कृतानां पापानां वासः स्थानमेषः, पासु कयंते मंडियउ अज्ञानिजीवबन्धनार्थं पाशो मण्डितः। केन। कृतान्तनाम्ना कर्मणा। कथंभूतः। अविचलु शुद्धात्मतत्त्वभावनाप्रतिपक्षभूतेन मोहबन्धनेनाबद्धत्वादविचलः णिस्संदुहु संदोहो न कर्तव्य इति। अयमत्र भावार्थः। विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाव-परमात्मपदार्थभावनाप्रतिपक्षभूतैः कषायेन्द्रियैः व्याकुलक्रियते मनः, मनःशुद्धयभावे गृहस्थानां तपोधनवत् शुद्धात्मभावना कर्तुं नायातीति। तथा चोक्तम्-''कषायैरिन्द्रियैर्दुष्टै-र्व्याकुलीक्रियते मनः। यतः कर्तुं न शक्यते भावना गृहमेधिभिः।।''।।१४४।।

आगे शुद्धात्मा का साधक जो तपश्चरण उसके शत्रुरुप गृहवास को दोष देते हैं-

अरे नहीं गृहवास वास यह दुष्कृत वास इसे जानो।
बहुपाशों से बना हुआ यह यमकृत अविचल घर मानो।।१४४।।

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव, तू इसको [गृहवासं] घर वास [मा जानीहि] मत जान, [एषः] यह [दृष्कृतवासः] पाप का निवासस्थान है, [कृतांतेन] यमराज ने (काल ने) अज्ञानी जीवों के बाँधने के लिये यह [पाशः मंडितः] अनेक फाँसों से मंडित [अविचलः] बहुत मजबूत बंदीखाना बनाया है, इसमें [निस्संदेहम्] सन्देह नहीं है।

भावार्थ :- यहाँ घर शब्द से मुख्यरुप स्त्री जानना, स्त्री ही घर का मूल है, स्त्री बिना गृहवास नहीं कहलाता। ऐसा ही दूसरे शास्त्रो में भी कहा है, कि घर को घर मत जानो, स्त्री ही घर है, जिन पुरुषों ने स्त्री का त्याग किया, उन्होंने घर का त्याग किया।

यहाँ घर मोह के बँधन से अति दृढ़ बँधा हुआ है, इसमें संदेह नहीं है। यहाँ तात्पर्य ऐसा है, कि शुद्धात्मज्ञान दर्शन शुद्ध भावरुप जो परमात्मपदार्थ उसकी भावना से विमुख जो विषय कषाय हैं, उनसे यह मन व्याकुल होता है। इसलिये मन का शुद्धि के बिना गृहस्थ के यति की तरह शुद्धात्मा का ध्यान नहीं होता। इस कारण घर का त्याग करना योग्य है, घर के बिना त्यागे मन शुद्ध नहीं होता। ऐसी दूसरी जगह भी कहा है, कि कषायों से और इन दुष्ट इन्द्रियों से मन व्याकुल होता है, इसलिये गृहस्थ लोग आत्मभावना कर नहीं सकते।।१४४।।

वीर संवत् २५०२, माघ शुक्ल ११, रविवार
दिनांक- ३०-०१-१९७७, गाथा - १४४, प्रवचन-२०१

परमात्मप्रकाश, १४४ गाथा। **आगे शुद्धात्मज्ञान का साधक...** आत्मा शुद्धस्वरूप परमात्मस्वरूप का साधक चारित्र है और चारित्र, वह मोक्ष का कारण है। उसका साधक **तपश्चरण...** अर्थात् मुनिपना—चारित्रपना। दीक्षाकल्याणक कहते हैं न? वह तपकल्याणक कहलाता है। तप अर्थात् यह अपवास, वह नहीं। आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द में सम्यग्दर्शनसहित रमणता में उग्रता इच्छा के निरोध की, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आना, उसका नाम चारित्र और उसका नाम तप कहलाता है। आहाहा! यह कहते हैं कि **शुद्धात्मज्ञान का साधक तपश्चरण उसके शत्रुरूप गृहवास को दोष देते हैं—** यह गृहस्थाश्रम है वह, चारित्र जो आत्मा का साधक है, उसका गृहस्थाश्रम वैरी है।

२६७) घर-वासउ मा जाणि जिय दुक्किय-वासउ एहु।
पासु कयंतहँ मंडियउ अविचलु णिस्संदेहु।।१४४।।

अन्वयार्थ—हे जीव! तू इसको घरवास मत जान, यह पाप का निवासस्थान है,... घरवास में मुख्य स्त्री ली है। समझ में आया? स्त्री मुख्य घरवास में और उसका परिवार वाडा सब बाहर की। आहाहा! **हे जीव! तू इसको घरवास मत जान, यह पाप का निवासस्थान है,...** आहाहा! स्त्री का संग और परिचय, वह पाप का वास—घर है सब। आहाहा! उसके कारण सब गृहस्थाश्रम खड़ा—तूफान हुआ है। आहाहा! यहाँ तो जो मुनि के योग्य जो चारित्र चाहिए, वह चारित्र गृहस्थाश्रम में नहीं होता, ऐसा सिद्ध

करना है। आहाहा! और शुद्धात्मा का साधक तो वह चारित्र है। स्वरूप में रमणता, शुद्धोपयोग की रमणता, वही मोक्ष का साधन तो वह है। गृहस्थाश्रम में ऐसा साधन नहीं हो सकता। इसलिए गृहस्थाश्रम, अब तुम्हारा गृहस्थाश्रम यह कारखाना और टाईल्स और सब कहीं रह गया, यह स्त्री के कारण, ऐसा कहते हैं। उसमें सब आ गया। भले रहा, उसकी तो कुछ गिनती नहीं, ऐसा भाई कहते हैं। यह गिनती यहाँ से शुरु होती है। बात सच्ची। आहाहा! भाई ने लिखा है न? जयपुर, हुकमचन्दजी। (भगवान) महावीर ने विवाह नहीं किया था। क्योंकि स्त्री से विवाह करना, वह तो बड़ा पाप का स्थान खड़ा करता है। दुर्घटना, सब दुर्घटना खड़ी होती है। आहाहा! दूसरा एक कहते थे वर्णीजी, दो पैरवाला मनुष्य है, यह स्त्री हो तो चार पैर का ढोर हुआ। आहाहा! कल शाम को विचार आया था कि यह चार पैर होते हैं ढोर को और छह पैर, स्त्री को लड़का हो तो छह पैरवाला भंवरा हुआ वह। और उसे स्त्री हो तो आठ पैरवाला मकड़ी हुआ वह। वह लार निकाला करे और फँसा करे। आहाहा! भगवान निवृत्तस्वरूप में यह सब प्रवृत्ति है। आहाहा!

घर में स्त्री मुख्य है, ऐसा कहते हैं। यह कहेंगे। यह **पाप का निवासस्थान है, यमराज ने...** आहाहा! यम ने—यमराज अर्थात् काल। **अज्ञानी जीवों के बाँधने के लिये यह अनेक फाँसों से मण्डित...** आहाहा! उसके लिये रुकना। अरे! स्त्री है, वह मेरी है, यही मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? एक द्रव्य का दूसरा द्रव्य कहाँ से हो सकता है? आहाहा! ऐसी बात! उसमें स्त्री में सर्वस्व अर्पण कर दे। आहाहा! कहते हैं कि, यमराज ने बाँधा हुआ वह जेलखाना है। मुनिराज को तो चारित्र जो साधक है, स्वरूप की रमणता चारित्र, हों! चारित्र अर्थात् नग्नपना हो जाना और पंच महाव्रत (पालना) वह कहीं चारित्र नहीं है। आहाहा! स्वरूप का अनुभव होकर स्वरूप में रमणता—चरना, रमना, आनन्द का भोजन करना। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का भोग अन्दर करना। आत्मा भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप है। उस आनन्द के भोग में स्त्री गृहवास मुख्य जेलखाना है। उसमें राग जाने से तू आनन्द में नहीं जा सकेगा। आहाहा! समझ में आया? यह तो मुनिराज दिगम्बर सन्त हैं।

अनेक फाँसों से... 'पाशः मण्डितः' बहुत मजबूत बन्दीखाना... आहाहा!

'**अविचलः**' है न? चलित नहीं हो ऐसा पक्का बन्दीखाना। आहाहा! स्त्री से विवाह किया अब दुर्घटना हुई, सब पूरी। आहाहा! एक मर जाये तो दूसरी और दूसरी मर जाये तो तीसरी। करते हैं न? हें! आहाहा! चार-चार तो हमारे भानेज को थी। रूपचन्द है, हमारी बहिन का पुत्र, नहीं? भावनगर। चार-चार छोटी उम्र में चार। यह तो हमारे घर में था। लड़के रहते हैं, पूना। हमारे दादा, पिता के बड़े भाई थे न, उनका पुत्र यह भूपेन्द्र, उससे बड़े थे। उसके पिता से बड़े थे। उनकी पुत्री वहाँ थी, उनके इस पुत्र ने चार विवाह किये थे। एक, पहली हमारे मामा की पुत्री। क्योंकि वैसे तो दूर। दादा की पुत्री का पुत्र इसलिए मामा की पुत्री से पहला विवाह किया। वह मर गयी तो दूसरा विवाह किया। दूसरी मर गयी तो तीसरा विवाह भावनगर में किया। तब मैं वहाँ था उसके विवाह में। मुझसे बड़े थे। भानेज होते हैं, बहिन का पुत्र परन्तु चार वर्ष बड़ा। आहाहा! उसने वहाँ तीसरा विवाह किया। वहाँ सामने रखी पुतली। पुतली पर पैर रखा कि यह मर गयी और अब घर रहेगा। आहाहा! भावनगर में घर है, घर। ऐसा कि यह मर गयी, अब यह चौथी होती है। यह तीसरी मर गयी। परन्तु वह सचमुच मर गयी। यह सब खेल देखे थे, हों! आहाहा! चौथी वहाँ विवाह किया, नहीं? भावनगर। भाई नहीं पहिचानते होंगे। वे रामजीभाई नहीं? स्थानकवासी रामजीभाई हैं। रामजी पानातर नहीं, दूसरे रामजीभाई थे। वे अलग, बहुत वर्ष हो गये। साठ वर्ष पहले की बात है। एक रामजीभाई हैं। बाजार में घर था। यह तो बहुत वर्ष पहले की बातें हैं न! आहाहा! फिर उन्हें लड़का हुआ। अब वह घर रहा, लो। आहाहा! दिगम्बर में भी एक गृहस्थ था। चार मर गयी और पाँचवीं से विवाह किया। वहाँ गाँव है, सब खबर है, उसके गाँव में घर में गये हैं। कौन सा गाँव? व्याख्यान में आते थे। उस ओर है कोई महाराष्ट्र में। बहुत जगह घूमने के बाद कुछ याद (नहीं रहता)। यह आत्मा की बात याद रहे, इतनी वह बात याद नहीं रहती। नाम भी भूल जाते हैं अब। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, स्त्री, वह तो मजबूत बन्दीखाना है। आहाहा! यमराज ने अनेक फाँसा से मण्डित पकड़ रखा है इसे। आहाहा! ऊँची नजर कर सके नहीं, अब कहाँ जाना, क्या करना? स्त्री हुई, अब उसे पुत्र होगा, उसके लिये तो व्यापार करना पड़े आजीविका का (साधन), और अपने मभा (इज्जत) प्रमाण दुकान चलायी जाये,

इज्जत प्रमाण पुत्र का विवाह किया जाये। आहाहा! यह बड़ी विपरीतता घुस गयी है। चिमनभाई! आहाहा! मभा समझते हो? इज्जत। अपनी जो इज्जत हो, उसके प्रमाण में कन्या आवे तो ली जाये, साधारण कन्या नहीं ली जाये।

मुमुक्षु : गृहस्थाश्रम नही हो तो मुनियों को आहार कौन देगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पैसेवाले का कहा था न एक बार? (संवत्) १९७८ में यह प्रश्न हुआ था, चूड़ा में, चूड़ा। चूड़ा का उपाश्रय बाजार में है। अब जरा बदल डाला। दरवाजा बाजार में था। अब जरा बदल डाला है। वह दरवाजा बाजार में। व्याख्यान वाँचते थे। (संवत्) १९७८ की बात है। लोग थे। पहले से हमारी तो इज्जत बड़ी है न! लोग बहुत भरते हैं। उपाश्रय खचाखच भरता है। और चूडा में कौन जाने ऐसा पानी है वहाँ का कि वृद्ध ८०-८०, ९०-९० वर्ष के वृद्ध बहुत। ब्राह्मण, राजपूत, स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी। ८०-८०, ९०-९० वर्ष के तब, हों! यह तो ७८ के वर्ष की बात है। पहले ७१ में गये थे, चूडा। फिर ७८ में। बाद में भी गये होंगे। व्याख्यान चलता था। मार्ग तो अन्दर में निवृत्ति लेना का है। आहाहा! चारित्र बिना मुक्ति नहीं। तब एक पुलिस सुनने बैठा था बाहर। दरवाजा बाहर पड़े बाजार में। बड़ा चबूतरा था, वहाँ बैठा, सुना। पूरा हुआ तो प्रश्न किया, महाराज! सब साधु हों तो आहार देनेवाला कौन रहेगा? सब साधु हो जाये तो? यह ७८ की बात है। कितने वर्ष हुए? ५५। उस पुलिस ने प्रश्न किया, ऐसा यह सेठ ने प्रश्न किया। पुलिस को ऐसा कहा, भाई! कोई करोड़पति, लखपति कब कहते, करोड़पति तब कहाँ था। कहा, कोई लखपति हो, वह ऐसा विचार करे कि मैं लखपति हुआ, फिर रसोई और बर्तन माँजनेवाला कौन रहेगा? ऐसा विचार नहीं करता। वह रहेंगे पीछे सब। आहाहा! तू कर न चारित्र। पीछे आहार देनेवाले रहेंगे। आहाहा! ऐसा प्रश्न किया था।

अरे! बापू! जहाँ राजा, महाराजा, आहाहा! छोड़कर चल निकले, जंगल में चले जाये। आहाहा! वे जंगल में से अनजाने, जाने बिना किसी को साथ में लिये बिना आनन्द के कन्द में झूलते हुए... आहाहा! एक विकल्प शरीर के निभाने का उठा है। आहाहा! भिक्षा के लिये जाते हैं, राजा, महाराजा, सेठिया (कहे), पधारो... पधारो... नाथ! आहाहा! अहो! हमारे घर में आज कल्पवृक्ष फला। ऐसा कहकर सब मिले।

बापू! सेठिया भी मिले। आहाहा! यह आत्मा स्वयं राग का त्याग करे और चारित्र ले तो उसे शरीर को निभाने के लिये निभानेवाला नहीं मिलेगा? आहाहा! हें?

मुमुक्षु : शरीर की आयुष्य हो तो आहार मिले ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे ही। दूसरे प्रकार से कहें तो शरीर को टिकना हो तो वहाँ के परमाणु उसे, नहीं आता नाम? परमाणु और परमाणु पर नाम लिखा है। दाने-दाने पर भोजन करनेवाले का नाम लिखा है। इसका अर्थ क्या? नाम है अन्दर? परन्तु जो रजकण वहाँ आनेवाले हैं, वे आयेंगे ही। आहाहा! समझ में आया? और तेरा प्रयत्न आहार लाने का है, ऐसा है ही नहीं। आहाहा! जगत से धर्ममार्ग बहुत अलग प्रकार है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **बहुत मजबूत बन्दीखाना बनाया है, इसमें सन्देह नहीं है।** कालरूपी यमराज। कालरूपी यमराज, हों! आहाहा! समझ में आया? है न? यमराज का अर्थ काल किया है। यमराज को अर्थात् काल को अज्ञानी जीवों को, ऐसा। यम का अर्थ भी काल होता है। आहाहा! **अनेक फाँसों से मण्डित बहुत मजबूत बन्दीखाना बनाया है, इसमें सन्देह नहीं है।** दिगम्बर सन्त है, आनन्दकन्द में झूलते हैं। उसे कहते हैं कि अरे! जीवो! स्त्री का संग करके तुम कहाँ जाओगे? जेलखाने में पड़े, बापू! तुमको महाबन्धन होगा। आहाहा!

रात्रि में तो विचार यह आया था कि आठ पैरवाले को मकड़ी कहा, परन्तु यह पच्चीस, पचास लड़को के पैर और स्त्री और बहू के पैरवाले को क्या कहना? हें! फिर कानखजूरा का याद आया था। कानखजूरा होता है न? कानखजूरा, उसके बहुत पैर होते हैं। आहाहा! सैकड़ों पैर होते हैं बारीक-बारीक, कानखजूरा को सूक्ष्म पतले। आहाहा! कल कोई नहीं कहता था? चमड़ी को चिपटाये तो उखड़े नहीं वह। आहाहा! यह तो बहुत देखे हों न, जंगल में तो बहुत (होते हैं)। दिशा को जाते हैं वहाँ जंगल में मील, डेढ़ मील बाहर जाते हैं, बहुत प्रकार देखे हों। जंगल में अकेले। आहाहा! यहाँ कहते हैं।

भावार्थ—यहाँ घर शब्द से मुख्यरूप स्त्री जानना,... आहाहा! **स्त्री ही घर का मूल है,...** स्त्री बिना....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है, यहाँ आयेगा। आहाहा! **'न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते'** नीति का वाक्य है, नीति वाक्यामृत—३१, ३२। लिखा है अन्दर। **'न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते'** घर से घर नहीं परन्तु स्त्री से घर कहते हैं। आहाहा! एक और दो हुए। एक तो भगवान आत्मा स्वयं अकेला है। उसे दूसरी स्त्री... आहाहा! उसे बन्दीखाना पड़ा है। अकेली स्त्री छोड़े तो भी कुछ त्याग किया, ऐसा नहीं है। स्त्री परसम्बन्धी सम्बन्ध का जो राग है, वह राग छोड़े तो स्त्री को छोड़ा, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? ऐसे तो स्त्री अनन्त बार छोड़ी है। गृहस्थाश्रम में हजारों रानियाँ छोड़कर साधु अनन्त बार हुआ है। दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ, वह कोई नयी चीज़ नहीं। परन्तु अन्दर जो आत्मा आनन्दकन्द प्रभु है, उसमें जो राग होता है, उसका बन्दीखाना है, उसमें स्त्री मुख्य है। समझ में आया? आहाहा!

दो पैर का मनुष्य कहलाता है और स्त्री से विवाह करे, तब चार पैर होते हैं। दो अपने और दो उसके। चार पैर तो पशु को होते हैं। अब वह ढोर हुआ। आहाहा! पशु। चार पैर तो पशु को होते हैं। आहाहा! यह मेरी स्त्री, अर्थात् तेरे दो पैर और उसके दो पैर, चार पैर हुए, तू ढोर हुआ। आहाहा! अकेली स्त्री के विवाह का प्रसंग नहीं। पर के प्रति जो राग और मोह है, वही बात घर के बन्धन का मुख्य साधन है, कारण है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान का ब्रह्मचर्य—ब्रह्म अर्थात् आनन्द में चरना, उसमें रमना, वह ब्रह्मचर्य, उससे विरुद्ध जो राग है, वह अब्रह्म है। वह वास्तव में स्त्री का घर है। परिणति—राग की परिणति, वह स्त्री है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ घर शब्द से... आहाहा! ऐसा कहकर, आत्मा के अतिरिक्त सब परचीज़ पृथक् है, उसकी एकताबुद्धि छोड़। प्रभु! तुझे मिथ्यात्व का महापाप लगता है। आहाहा! समझ में आया? मिथ्या अर्थात्? जो परद्रव्य अपना नहीं, उसे अपना मानना, वह मिथ्याश्रद्धा, असत् मान्यता, झूठी मान्यता, पाप के घर की मान्यता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहकर कोई स्त्री छोड़ दे, इसलिए त्यागी हो गया—ऐसा नहीं है।

अन्दर में राग की परिणति व्यभिचारी जो है, उसके साथ का संग छोड़कर स्वभाव आनन्द कन्द का संग करना, इसका नाम घर का त्याग-पर का कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? जाति अलग है, बापू! यह सब बाहर में मजा मानते हैं न! शरीर कुछ ठीक हो और पाँच-पचास लाख पैसे हों, स्त्री ठीक, पुत्र हो, बस। मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो गयी सब। आठ लड़के हों तो जमीन चाहिए। लाओ, गरीब व्यक्ति को चाहिए है, चाहिए है स्वयं को, लाओ, परन्तु भाईसाहेब, हमारी जमीन प्रमाण कीमत तो हमको दो। नहीं, कीमत इतनी मिलेगी। और सिफारिश सेठिया की चले, वहाँ अमलदार अधिकारियों में। ऐसे भैंसे जैसे दूसरे को दबाव करके मारे। आहाहा! बापू! यह जगत की चीज़ के प्रति मोह महापाप है, महापाप है। जो भगवान आत्मा तो राग से रहित चीज़ है। आहाहा! उसे रागवाला मानना, वह भी मिथ्यात्व है। आहाहा! झूठा है, असत्य है, तो स्त्रीवाला मानना, वह तो महाझूठा है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? ऐसी वस्तु है, बापू!

ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा वह ब्रह्म अर्थात् भगवान स्वयं आनन्द में चरना, रमना। आहाहा! वह वस्तु की स्थिति की मर्यादा है। राग के साथ रमणता करना, वह तो व्यभिचार है। आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो, वह विकल्प है, राग है। उसके साथ रमण, वह व्यभिचार है। आहाहा! मार्ग अलग प्रकार का, बापू! ऐसे बाहर से कुछ पैसा मिले और शरीर ठीक रूपवान हुआ, आहाहा! मर गये। आहाहा! प्रभु! तू तो राग से रहित तेरी चीज़ है न! तेरा स्वरूप ही राग से रहित वीतरागमूर्ति प्रभु तू है। तुझे तेरी खबर नहीं। उसमें राग को अपना मानना, वह भी व्यभिचार और मिथ्यात्व है। आहाहा! तो स्त्री तो पर कहीं रह गयी। आहाहा! उसके प्रेम में फँसा वहाँ फन्दे (जाल) में फँस गया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, पोपटभाई! अरे! परन्तु ऐसा कैसा धर्म?

बापू! भगवान! तू निवृत्तस्वरूप है। राग से भी निवृत्तस्वरूप है तो परद्रव्य का तो तुझमें अभाव है। पर्याय में राग होता है, वह स्व अस्तिपने है, उसमें—स्वरूप में राग की नास्ति है। पहले तो स्वरूप अपना जो है, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्ति है, परद्रव्य के क्षेत्र, काल, भाव से नास्ति है। क्या कहा यह? जैसे यह अँगुली है, यह अँगुली

अपनी वस्तु से है और इस अँगुली से नहीं। अपने से अस्ति है और पर से नास्ति है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने स्वरूप से अस्ति है, परस्वरूप से उसमें नास्ति है। आहाहा!

उसमें एक भावअभाव नाम का गुण है। अर्थात् पर का अभाव होने के लिये अभाव है, ऐसा नहीं। उसमें अभाव नाम का गुण ही है। अपने भावस्वरूप है, वह भावगुण है। सूक्ष्म बात है, बापू! धर्म की बातें कोई सूक्ष्म है। आहाहा! भगवान आत्मा भावस्वरूप है, वह अस्ति है और स्त्री आदि परद्रव्य से नास्ति है, इसलिए अभावस्वरूप है, ऐसा भी नहीं है। उसका तो अभावस्वरूप स्वअपेक्षित गुण-धर्म है। आहाहा! समझ में आया? उसे पर की अपेक्षा इतना कथन समझाने में आवे। तथापि पर की अपेक्षा से अभाव है, ऐसा नहीं। अभाव अपना ही गुण है। क्या कहा यह? आहाहा! हें?

आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञायकस्वरूप अपने से है और राग तथा परवस्तु से, वह नहीं। आहाहा! समझ में आया? आगे यदि ले जायें तो... आहाहा! त्रिकाली भगवान अपने से है, एक समय की पर्याय परकाल है। आहाहा! कहाँ ले गये? स्त्री से रहित, राग से रहित, एक समय की पर्याय परकाल से रहित। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, बापू! लोगों ने माना है धर्म, साधारण यह दया पालना और व्रत करना, अपवास करना। धूल भी धानी नहीं उसमें। वह तो राग की क्रियायें हैं। आहाहा! जिसकी वर्तमान पर्याय निर्मल जो है त्रिकाल की अपेक्षा से उस पर्याय को भी जहाँ परकाल कहा। आहाहा! परकाल का स्वकाल में अभाव है। त्रिकाल में एक समय की पर्याय का अभाव है। आहाहा! ऐसा जिसका गुण है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर का मार्ग बहुत बारीक-सूक्ष्म है, भाई! लोगों को मिला नहीं। वाडा में पड़े, उन्हें जैनपना क्या है, यह बात मिली नहीं। समझ में आया? आहाहा! एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया... कामाणी! आता है न? इच्छामि पडिक्कमणा में? यह सब किया। एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिया... आता है या नहीं? जीविया बहरविया तस्समिच्छामि दुक्कडं, हो गयी सामायिक, लो। धूल भी नहीं। सुन न! आहाहा!

सामायिक में तो पहला भगवान आत्मा पूर्णानन्द से है और परद्रव्य से नहीं। फिर अपने से है, राग से नहीं। फिर त्रिकाल से है, एक समय की पर्याय से नहीं। आहाहा!

यह तो स्त्री को घर कहा न? मुख्य तो राग की पर्याय है, वह व्यभिचारिणी स्त्री है। समझ में आया? जिनेश्वरदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का मार्ग कोई अलौकिक लोकोत्तर है। दुनिया के साथ कहीं मेल और मिलान खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **स्त्री बिना गृहवास नहीं कहलाता।** ऐसा भी कहते हैं न, पूछे तब क्या कहे? यह कौन है? हमारे घर में से है। इसके घर में से, ऐसा कहे न? आहाहा! तेरे घर में से है वह? आहाहा! व्यभिचार घर माँडा उसमें से कहते हैं कि यह हमारे घर में से है। आहाहा! अरे! यह वह पागलपन। ऐसी बात है, भाई! हें! यह लड़के किसके हैं? तब उसमें चतुराई करे, कि परमेश्वर के पुत्र हैं। ऐसा कहते हैं न? पोपटभाई! सब देखा है न, संसार पूरा देखा है। संसार में नाचे नहीं परन्तु नाचनेवाले को देखा है। आहाहा! किसका पुत्र? और ऐसा सीखे, मेरा कहेंगे, तो कहे, नहीं परमेश्वर के पुत्र, परमेश्वर के पुत्र हैं। आहाहा!

एक बात याद आयी थी। वीरचन्दभाई हैं न अपने? रमणीकभाई के पिता। वीरचन्दभाई को पूछा। लड़के का लड़का आया था। तुम्हारा लड़का आया था। कहा, यह कौन? ब्याज का ब्याज। रमणीकभाई! बापू ऐसा बोले थे, वीरचन्दभाई। भाई खड़े थे या तो, नहीं? कपूरभाई! तुम वहाँ खड़े थे। उनके पुत्र का पुत्र होता है न। उसका पुत्र। इसलिए कहा, यह कौन है? ब्याज का ब्याज है। रमणीकभाई ब्याज, उनका यह ब्याज, ऐसा। अरे! दुनिया में भी गजब... मूल की पूँजी नहीं, पूँजी का ब्याज है यह, ऐसा। कामाणी! ऐसा सब चलता है न! यह संसार के खेल। आहाहा! ऐसा कि मूल की पूँजी तो स्वयं। ऐसा। और पुत्र हुआ वह ब्याज आया। और उसे भी पुत्र, वह ब्याज का ब्याज कहलाता है। सेठ! यह भाषा तो समझते हो या नहीं? आहाहा! संसार की क्रीड़ा ऐसी है, बापू!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तेरी पूँजी तू अकेला आत्मा, शरीर—ऐसा नहीं। तेरी पूँजी तो अन्तर आनन्द और ज्ञान से भरपूर भण्डार आत्मा है। बापू! तुझे खबर नहीं। समझ में आया?! आहाहा! पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण प्रभुता, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण ईश्वरता, वह तेरी पूँजी है। और उस पूँजी का ब्याज निर्मल परिणति है। राग नहीं। आहाहा! पूँजी को सम्हालने से पर्याय उपजती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **स्त्री बिना गृहवास नहीं कहलाता। ऐसा ही दूसरे शास्त्रों में भी कहा है,...** है न? यह नीति का वाक्य है। नीति वाक्यामृत है। **घर को घर मत जानो,...** नीति वाक्य में ऐसा आया है। है उसमें? पण्डितजी! '**न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते**' घर, घर नहीं, परन्तु स्त्री ही घर है। आहाहा! ऐकड़े एक और बिगड़े दो। एक था, वह बिगड़े लाया, यह मेरी, उसमें वह बिगड़ा। एक द्रव्य भगवान आत्मा अनादि-अनन्त स्वतन्त्र पदार्थ, उसमें दूसरे द्रव्य को मेरा माना, वह यह बिगड़ा है। आहाहा! अरे! ऐसी व्याख्या। कहो, कालीदासभाई! उसमें दो, पाँच, दस लाख, बीस लाख पैसे हों, अपने बढ़े। पाप में। आहाहा! बापू! तुझे खबर नहीं। तेरा नाथ अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति से भरपूर, उसमें यह सब निमित्त हैं, वे तो दुःख के निमित्त हैं। अन्दर तेरी शान्ति को चोट मारते हैं। आहाहा! तुझे खबर नहीं। समझ में आया? वह यहाँ आचार्य यह कहना चाहते हैं। राग का घर है, अपना राग होता है न उसके प्रति, उस राग को अपना मानना, वह तो मिथ्यात्व है, परन्तु स्त्री के संग में राग हुए बिना रहेगा नहीं। इसलिए उसे वीतरागपने का भाव प्रगट नहीं होगा। आहाहा! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा उपदेश कैसा परन्तु यह? मुश्किल से समझ में भी नहीं आये।

आज्ञाकारी कुटुम्ब इकट्ठा हुआ हो ऐसा। आहाहा! पुंजाभाई का पुत्र मरने की तैयारी थी न, भाई! वहाँ अपने राजकोट, नहीं? अमुलख, अमुलख। ... नानालालभाई के काका का पुत्र। नया विवाह किया और फिर एकदम रोग हुआ। हमारा चातुर्मास वहाँ था। फिर कहे, मांगलिक सुनाने आओ महाराज। दिये जाये ऐसे अन्दर से। और परिवार सब गृहस्थ। करोड़पति, नानालालभाई करोड़पति तीन भाई, बहुएँ, पुत्र पूरा कमरा भर गया। आज्ञाकारी परिवार। और महाराज को दर्शन (के लिये बुलाओ)। आहाहा! बेचरभाई थे न? नानालालभाई के भाई बेचरभाई। उनके हाथ में काँच की वह (प्लेट) दी। वह लेता जाये। मरने की तैयारी। आहाहा! काँच की प्लेट, उसमें मौसम्बी या कुछ था। ऐसा कि महाराज को हाथ से दे। ऐसे हाथ में दी। हाथ काँपे। आज्ञाकारी परिवार इकट्ठा हुआ, सब करोड़पति। नानालालभाई, मोहनभाई और बेचरभाई और उनके पुत्र और उनकी बहुएँ, पूरा कमरा भर गया। अरेरे! अब यह जाता है। यह कोई साथ में नहीं आते। आहाहा! नया विवाह किया था नया। हो गया, जाओ! बापू! कब तेरी

चीज़ थी, वह तेरे साथ रहे? तेरे साथ तो ज्ञान, आनन्द स्वभाव है तो तेरे साथ रहेगा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, गृहस्थाश्रम में **स्त्री ही घर है, जिन पुरुषों ने स्त्री का त्याग किया,...** मूल तो उसकी ममता का त्याग, हों! स्त्री छोड़ी हो, परन्तु अन्दर राग की ममता न छोड़ी हो तो छोड़ा नहीं। **उन्होंने...** श्रीमद् ने ऐसा कहा है, नहीं? 'वह त्यागी त्यागा सब, वह समस्त संसार की...' अपेक्षा से बात की है। 'वह सारे संसार की रमणी नायकरूप, वह त्यागी त्यागा सभी, केवल शोकस्वरूप' १६वें वर्ष में आता है न? १६ वर्ष में मोक्षमाला आती है, श्रीमद् में आता है। परन्तु वह स्त्री छोड़ी, इसलिए हो गये त्यागी-साधु, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ा नहीं भाई ने? तुम्हारे वेदान्ती गुजर गये, नहीं? मोतीलाल। रेल के अधिकारी। राजकोट... राजकोट। माधवानन्द हुए बाद में। परमहंस हुए। हमारे व्याख्यान में आते थे, वैष्णव थे इसलिए। स्त्री के साथ कुछ विवाद उठा तो हो गये परमहंस। फिर आये हमारे पास, राजकोट आये थे, यहाँ आये थे, आये थे न यहाँ। कहा, तुम यह एक आत्मा मानते हो तो एक आत्मा है तो यह दोष किसका? ब्रह्म है, ऐसा कहो तो, ब्रह्म है तो ब्रह्म है क्या वह? वेदान्त तो एक ही आत्मा माने न! परमहंस थे, उनके दो-तीन साधु आये थे। हमारे पहले के परिचित थे। (संवत्) १९९५ में, उससे पहले ९९ में ठेठ आने के बाद, पहले ८९ में आते थे। सम्प्रदाय में थे तब। राजकोट, बड़ी सभा, तीन-तीन हजार व्यक्ति तब, ८९ में। तब सब आते थे। सम्प्रदाय में थे न! तब वह कहे... फिर यहाँ कहा, बापू! आत्मा सर्वव्यापक एक ही हो, दो आत्मा नहीं तो फिर यह दोष है, ऐसा शास्त्र कहता है कि तुम अत्यन्तिक दुःख से मुक्त होओ। तो दुःख है या नहीं? तो एक ओर भगवान आनन्दस्वरूप है और पर्याय में दुःख है, तो दो हो गये, द्वैत हो गया, एकपना नहीं रहा तुम्हारा। बड़ी चर्चा होती थी स्वाध्यायमन्दिर में। परमहंस साधु थे। दशाश्रीमाली, हों! परन्तु वैष्णव। फिर ऐसा स्वीकार अवश्य किया कि बात बराबर। परन्तु तुम न्याय से विचारोगे? वेदान्त ने कहा

कि आत्मा एक सर्वव्यापक है, इसलिए आत्यन्तिक दुःख से मुक्त होओ। तो आत्यन्तिक दुःख से मुक्त हो तो दुःख है या नहीं? दुःख न हो तो अभी आनन्द हो। तो दुःख है तो आत्मा आनन्दस्वरूप है और यह दुःख पर्याय में है, दो हो गये। अद्वैत नहीं रहा। ऐई! रवजीभाई! कहा, भाई! यहाँ तो न्याय से बात चलेगी। ऐसे का ऐसा शास्त्र कहे और दूसरे मान लें, ऐसी बात नहीं है। अन्दर न्याय से भावभासन होना चाहिए। तब सच्चा माना। ऐसा का ऐसा मान लेना, वह कहीं वस्तु है?

मुमुक्षु : आप कहो तो बात मान ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। इसके ख्याल में आना चाहिए न, कि यह चीज़ ऐसी है और यह चीज़ ऐसी है और ऐसी नहीं, ऐसा भाव का भासन हुए बिना इसे यथार्थपना बैठे कहाँ से? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **जिन पुरुषों ने स्त्री का त्याग किया, उन्होंने घर का त्याग किया। यह घर मोह के बन्धन से अति दृढ़ बँधा हुआ है,...** आहाहा! स्त्री के घर के मोह से **बन्धन से अति दृढ़ बँधा हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। यहाँ तात्पर्य ऐसा है कि शुद्धात्मज्ञान दर्शन शुद्ध भावरूप जो परमात्मपदार्थ...** अब क्या कहते हैं? भगवान जो आत्मा शुद्धात्मज्ञान, शुद्ध आत्मा, पवित्र आत्मा परमानन्द प्रभु, उस शुद्धात्मा का दर्शन, शुद्धात्मा का ज्ञान। शुद्धात्मा का दर्शन, हों! देव-गुरु-शास्त्र का नहीं। आहाहा! शास्त्र का नहीं। शुद्धात्मा परम पवित्र भगवान मूर्ति अन्दर है। आत्मा का स्वभाव ही ऐसा परमात्मस्वरूप है। उसका ज्ञान, उसकी प्रतीति और उसका आचरण। आहाहा! है? **शुद्धात्म ज्ञान...** आहाहा! वहाँ तो ऐसा भी लिया (कि) निमित्त का ज्ञान भी नहीं, राग का ज्ञान भी नहीं, पर्याय का ज्ञान भी नहीं। आहाहा! करे ज्ञान... ज्ञान, परन्तु वह ज्ञान पर्याय का नहीं, परन्तु शुद्धात्मा का ज्ञान। आहाहा! परन्तु बात यह है, अनादि से एक समय की पर्याय जो आत्मा में प्रगट—व्यक्त है, उसमें अज्ञानियों की सब लीनता है। आहा! वह लीनता छोड़कर अन्दर भगवान पूर्णानन्द कौन है, ऐसा इसने अन्दर से सुना नहीं। ऐसा कहा है न? श्रुत, परिचित, अनुभूता। तूने यह बात सुनी भी नहीं, भाई! आहाहा!

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं, तू पूर्णानन्द का नाथ अन्दर

सच्चिदानन्द प्रभु है। आहाहा! कैसे जँचे? दो बीड़ी, सिगरेट ठीक से पीवे, तब भाईसाहेब को पाखाने में दस्त उतरे, इतने तो इसके अपलक्षण। बड़े मुख से बुलावे जहाँ बड़े नाम से, वहाँ इसे गलगलिया हो जाता है। सेठसाहेब... सेठसाहेब। आहाहा! किसका सेठ था परन्तु सुन न!

मुमुक्षु : पैसे का।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसेवाला भिखारी है। पैसा चाहिए वह तो याचक है, भिखारी है। ऐई! पोपटभाई! यहाँ तो बात ऐसी है, बापू! आहाहा! जिसे अन्तर आनन्द का नाथ भगवान लक्ष्मी से भरपूर स्वरूप, उसका जिसे ज्ञान नहीं। आहाहा! उसकी जिसे भावना नहीं, उसके बिना बाहर की भावनावाले तो सब याचक हैं। आहाहा! मोहनभाई! संसार में कोई ऐसा कहे, ऐसा कोई नहीं, सब मक्खन चोपड़े, ऐसा है। आहाहा!

यहाँ तो शुद्धात्मा भगवान पूर्णानन्द प्रभु वस्तु है, वह अनादि-अनन्त है, अकृत्रिम है, अकृत है। आहाहा! ऐसा जो त्रिकाली ज्ञायकभाव भगवानस्वरूप विराजमान स्वयं आत्मा, उसका ज्ञान, उसका दर्शन—उसकी प्रतीति और शुद्धभावरूप आचरण। **जो परमात्मपदार्थ...** आहाहा! शुद्धभावरूप परमात्मपदार्थ। आहाहा! **उसकी भावना से...** पूर्ण शुद्ध चैतन्यप्रभु की अन्तर में एकाग्रता बिना, आहाहा! **भावना से विमुख जो विषय कषाय हैं,...** स्त्री सम्बन्धी का लक्ष्य, वह विषयकषाय है। वह सब आत्मा के स्वभाव की भावना से विरुद्ध है। आहाहा! अरे! ऐसा है। पिता के पास पूँजी न हो और लड़कों के पास पूँजी हुई हो तो मानो हम फावे, चढ़ती आमदनी अपनी है। ऐई! यह सब कहते हैं, सब सुना हुआ है। आहाहा! अच्छे घर की कन्या आवे, करोड़पति की तो अपनी चढ़ती आमदनी है, देखो! अपनी इज्जत कितनी बढ़ गयी है! आहाहा! करोड़पति नारियल लेकर आये हैं। यह क्या हुआ परन्तु अब? सुन न! इसे गलगलिया हो जाता है अन्दर से। हें! यह सब चीजें आत्मा के शुद्धात्मज्ञान से विमुख है। आहाहा! यह सब पैसेवाले के पानी उतर जाये ऐसा है इसमें तो। पानी था कब? आहाहा! ऐसे परमात्म पदार्थ से विमुख विषय-कषाय। **उनसे यह मन व्याकुल होता है।** आहाहा! परसन्मुख के लक्ष्यवाला विषय-कषाय भाव, उससे तो भगवान व्याकुल रहता है। आहाहा!

उसका स्वरूप तो अनाकुल—अव्याकुल आनन्दस्वरूप है। उसमें यह पर के लक्ष्य के विषय-कषाय के परिणाम... आहाहा! यह कमाने के परिणाम, पैसे मिले उसकी प्रसन्नता के परिणाम, प्रसन्नता के परिणाम और लाख, दो लाख मिले हों तो, बनाओ आज लापसी बनाओ आज जलेबी, बनाओ जलेबी। जलेबी कहते हैं? जलेबी? घी में जलेबी करो, घी में जलेबी। धूल भी नहीं, सुन न। आहाहा! ऐसे मन के आकुलता के भाव हैं, वे तो सब। आहाहा!

इसलिए मन की शुद्धि के बिना गृहस्थ के... है? **यति की तरह शुद्धात्मा का ध्यान नहीं होता।** मुनि को जैसा शुद्धात्मध्यान होता है, वैसा गृहस्थाश्रम में नहीं रहता, यह बात कहते हैं। समकिती हो गृहस्थाश्रम में, उसे दृष्टि निर्मल होती है, परन्तु मुनि को जो निर्मलदशा हो, ऐसी गृहस्थाश्रम में निर्मलदशा नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? **मन की शुद्धि के बिना गृहस्थ के यति की तरह...** यति अर्थात् मुनि। जिन्होंने आत्मा के आनन्द का उफान प्रगट किया है। आहाहा! जिन्हें वर्तमान पर्याय में, जैसे समुद्र में बाढ़ आवे, ज्वार... ज्वार, उसी प्रकार जिनकी दशा में आनन्द का ज्वार आता है, उसे यहाँ मुनि कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात कहाँ होगी यह वह? यह वीतराग की होगी? जैनपने में तो अभी तक पचास, साठ हुए, हम सुनते नहीं थे। दया पालना और व्रत करना, उपवास करना, रात्रिभोजन नहीं करना, कन्दमूल नहीं खाना—ऐसा सुनते थे। आहाहा! बापू! यह बात थी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जितना परसन्मुख में विकल्प का झुकाव जाता है, वह विकल्प—राग है, वह सब आकुलता है, कहते हैं। आहाहा! इसलिए गृहस्थ को **यति की तरह शुद्धात्मा का ध्यान नहीं होता।** मुनि को आनन्दकन्द का नाथ, मुनि सच्चे, हों! मात्र नग्न होकर घूमे वस्त्र छोड़कर, वे मुनि नहीं। जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का अन्दर उछाला मारता है पर्याय में, भरपूर भरचक समुद्र आनन्द से भरा है। आहाहा! कहाँ होगा यह? भाई! तेरे स्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण भरा है। छलाछल भरा है। उसका जिसे सम्यग्दर्शन और चारित्र हुआ, उसकी पर्याय में आनन्द का उफान आता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी उग्र दशा गृहस्थाश्रम में नहीं होती, ऐसा कहना है। समझ में आया? उसे

चौथा गुणस्थान है। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ, उतनी शान्ति और आनन्द है। परन्तु मुनि को जो आनन्द चाहिए (हो) वह आनन्द उसे नहीं होता।

शुद्धात्मा का ध्यान नहीं होता। यति जैसा, हों! देखा! दूसरी जगह आता है न? गृहस्थ को शुद्धात्मा की भावना होती है। परन्तु वह शुद्धात्मा की भावना हो, वह मुनि को होती है, वैसी नहीं होती, ऐसा। शुद्धात्मा नहीं होता, ऐसा नहीं है। है न। भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन-अनुभव होता है, वहाँ तो उसे शुद्ध होता है। शुद्ध का ध्यान भी होता है। गृहस्थाश्रम समकिती। भरत चक्रवर्ती जैसे छह खण्ड के राजा भी अन्दर के आत्मा के अनुभव में... आहाहा! उसे आनन्द शुद्धात्मा का ध्यान था। आनन्द का वेदन भी था। परन्तु मुनि के योग्य वेदन गृहस्थाश्रम में नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? यह आठ-आठ वर्ष के बालक राजकुमार, जिनके मणिरत्न जैसे शरीर, चन्द्र के प्रकाश की मूर्ति, वह भी आत्मा के ध्यान के लिये चल निकलते हैं। आहाहा! समझ में आया? जहाँ बाघ और भालू, जहाँ जाकर वहाँ ध्यान में बैठे। इसे आनन्द की मौज करने के लिये। आहाहा! गृहस्थाश्रम तब त्यागा कहलाये। समझ में आया? यह कहा न?

इस कारण घर का त्याग करना योग्य है, घर के बिना त्यागे मन शुद्ध नहीं होता। मुनि को जो मन शुद्ध हो, उतनी शुद्धता नहीं होती, ऐसा। **ऐसी दूसरी जगह भी कहा है, कि कषायों से और इन दुष्ट इन्द्रियों से मन व्याकुल होता है,...** आहाहा! दुष्ट। **इसलिए गृहस्थ लोग आत्मभावना कर नहीं सकते।** मुनि को जो हो, समकिती हो गृहस्थाश्रम में, परन्तु मुनि को जो आत्मध्यान (होता है), सच्चे सन्त की बात है, हों! बाबा होकर नग्न होकर बैठे, इसलिए मुनि हुए, ऐसा नहीं है। अन्तर के आनन्द का उफान जिसे आवे, ऐसी उफान की दशा गृहस्थाश्रम में समकिती को भी नहीं होती। इसलिए उसे त्याग करके विशेष अनुभव करने के लिये गृहस्थाश्रम का त्याग करना, ऐसा कहना चाहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १४५

अथ गृहममत्वत्यागानन्तरं देहममत्वत्यागं दर्शयति-

२६८) देहु वि जित्थु ण अप्पणउ तहिँ अप्पणउ किं अण्णु।
पर-कारणि मण गुरुव तुहुँ सिव-संगमु अवगण्णु।।१४५।।

देहोडपि यत्र नात्मीयः तत्रामीयं किमन्यत्।
परकारणे मा मुह्य (?) त्वं शिवसंगमं अवगण्य।।१४५।।

देहुवि इत्यादि। देहु वि जित्थु ण अप्पणउ देहोडपि यत्र नात्मीयः तहिं अप्पणउ किं अण्णु तत्रात्मीयाः किमन्ये पदार्था भवन्ति, किं तु नैव। एवं ज्ञात्वा पर-कारणि परस्य देहस्य बहिर्भूतस्य स्त्रीवस्त्राभरणोपकरणादिपरिग्रहनिमित्तेन मण गुरुव तुहुं सिव-संगमु अवगण्णु हे तपोधन शिवशब्दवाच्यशुद्धात्मभावनात्यागं मा कार्षीरिति। तथाहि। अमूर्तेन वीतरागस्वभावेन निजशुद्धात्मना सह व्यवहारेण क्षीरनीरवदेकीभूत्वा तिष्ठति योडसौ देहः सोडपि जीवस्वरुपं न भवति इति ज्ञात्वा बहिःपदार्थे ममत्वं त्यक्त्वा शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवीतरागनिर्विकल्पसमाधौ सिथत्वा च सर्वतात्पर्येण भावना कर्तव्येत्यभिप्रायः।।१४५।।

आगे घर की ममता छुड़ाकर शरीर का ममत्व छुड़ाते हैं-

जब यह देह नहीं है अपनी तो कैसे अपने हों अन्य।
अतः मोह पर-द्रव्यों का तज शिव संगम ही है कर्त्तव्य।।१४५।।

अन्वयार्थ :- [यत्र] जिस संसार में [देहोडपि] शरीर भी [आत्मीयः न] अपना नहीं है, [तत्र] उसमें [अन्यत्] अन्य [आत्मीयं किं] क्या अपना हो सकता है? [त्वं] इस कारण तू [शिवसंगमं] मोक्ष का संगम [अवगण्य] छोड़कर [परकारणे] पुत्र, स्त्री, वस्त्र, आभूषण आदि उपकरणों में [मा मुह्य] ममत्व मत कर।

भावार्थ :-अमूर्त वीतराग भावरुप जो निज शुद्धात्मा उससे व्यवहारनयकर दूध-पानी की तरह यह देह एकमेक हो रही है, ऐसी देह, जीव का स्वरुप नहीं है, तो पुत्र-कलत्रादि धन-धान्यादि अपने किस तरह हो सकेंगे? ऐसा जानकर बाह्य पदार्थों में ममता छोड़कर शुद्धात्मा की अनुभूतिरुप जो वीतराग निर्विकल्पसमाधि उसमें ठहरकर सब प्रकार से शुद्धोपयोग की भावना करनी चाहिये।।१४५।।

वीर संवत् २५०२, माघ शुक्ल १३, सोमवार
दिनांक- ३१-०१-१९७७, गाथा - १४५, १४६, प्रवचन-२०२

परमात्मप्रकाश, १४५ गाथा। **आगे घर की ममता छुड़ाकर शरीर का ममत्व छुड़ाते हैं**—शरीर भी पर है। वह तेरी चीज़ कहाँ है, वह तो पर है। उसकी ममता छोड़ और स्वभाव का ध्यान कर, स्वभाव-सन्मुख का झुकाव कर, ऐसा कहते हैं।

२६८) देहु वि जित्थु ण अप्पणउ तहिँ अप्पणउ किं अण्णु।
पर-कारणि मण गुरुव तुहुँ सिव-संगमु अवगण्णु।।१४५।।

अन्वयार्थ—जिस संसार में शरीर भी अपना नहीं है,... शरीर तो परमाणु जड़-मिट्टी है। आहाहा! ९६ (गाथा समयसार) में तो ऐसा कहा, अमृतसागर भगवान आत्मा मृतक कलेवर में मूर्च्छित है। आहाहा! आत्मा तो अमृतसागर है। अतीन्द्रिय आनन्द का अमृत का सागर भगवान आत्मा, इस मृतक कलेवर में मूर्च्छित, यह (शरीर) तो मुर्दा है। आहाहा! कब? अभी। यह तो मिट्टी-जड़ का पुतला है, हड्डियाँ और चमड़ी। आहाहा! उसमें चमड़ी ऊपर की मिट्टी है। प्रभु! तुझे आत्मा का करना हो तो उसकी तो ममता छोड़, ऐसा कहते हैं। **जिस संसार में शरीर भी अपना नहीं है,...** आहाहा! **उसमें अन्य क्या अपना हो सकता है? 'आत्मीयः न'** है न? **अन्य... 'आत्मीयः किं' क्या अपना हो सकता है?** ऐसा है।

मुमुक्षु : यह तो साधु हो तो काम आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधु न हो तो भी पहला, मेरा शरीर नहीं—ऐसा तो निर्णय, अनुभव करे। यहाँ तो विशेष साधु की बात करते हैं। अन्त में तो शरीर का भी ममत्व छोड़कर, राग का ममत्व छोड़कर, स्वयं परमानन्दमूर्ति प्रभु है, उसकी दृष्टि को स्वीकार तो जब करेगा, तब कल्याण होगा, बाकी सब दुःख के रास्ते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... दसवैकालिक में यह वचन है, श्वेताम्बर में। देह को दुःख कहाँ? वह तो जड़-मिट्टी है। यह मेरी है—ऐसी ममता, वह दुःख है। आहाहा! और

उसका फल वह दु:ख है। समझ में आया? ऐसा मार्ग।

इस कारण तू... जब शरीर भी तेरा नहीं तो **अन्य क्या अपना हो सकता है?** दृष्टान्त देंगे। **पुत्र-कलत्रादि...** स्त्री आदि **धन-धान्यादि अपने किस तरह हो सकेंगे?** आहाहा! अर्थ भावार्थ में आयेगा। पुत्र, यह मेरा पुत्र, यह मेरी स्त्री और यह मेरी लक्ष्मी और यह मेरा मकान। फँस गया है न।

मुमुक्षु : जंगल में रहने जाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : रहता है कहाँ जंगल में? अन्दर में जंगल में ही है यह। शरीर में कहाँ है और पर में कहाँ है? आहाहा! देहातीत, जिसमें देह नहीं। देह में आत्मा नहीं, आत्मा में देह नहीं। आहाहा! तो शरीर की हलन-चलन की क्रिया भी आत्मा नहीं करता। आहाहा! वह भिन्न चीज़ है, उसे क्या करे? आहाहा!

कहते हैं, **पुत्र, स्त्री, वस्त्र, आभूषण आदि...** है न? **'परकारणे'।** भावार्थ से पहले। **मोक्ष का संगम छोड़कर...** प्रभु! तेरा आत्मा आनन्दस्वरूप है न! आहाहा! उस मोक्ष का परिचय, स्वभाव का परिचय छोड़कर **पुत्र, स्त्री, वस्त्र, आभूषण...** यह सब आ गया। पुत्र, स्त्री, वस्त्र, गहने वस्त्र पहने हो ऐसे। सर्दी में कोट, मखमल का कोट।

मुमुक्षु : मोटरगाड़ी नहीं आयी इसमें।

पूज्य गुरुदेवश्री : आदि में सब आ गया। आदि है न? मोटरगाड़ी (आ गयी)। वह अभी मोटर हुई, पहले मोटर थी कब? घोड़ागाड़ी थी। मुम्बई में, वड़ोदरा में जाते थे, तब घोड़ागाड़ी थी। विक्टोरिया। स्टेशन उतरें तो विक्टोरिया गाड़ी हो। तब कहाँ मोटर थी। हम माल लेने जाते थे, तब विक्टोरिया थी, मुम्बई। आहाहा! किसकी विक्टोरिया? किसकी गाड़ी? कहते हैं। आहाहा! अभी लाखों रुपये की मोटरें और बैठा हो अन्दर। हें! ५००० वस्तु रखे। नीचे की धूल न आवे, ऊपर की हवा आवे।

मुमुक्षु : अन्दर में एयर कंडीशन हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी होता है। आहाहा! अरे भाई! वह तो परवस्तु है, बापू! तू उसे छूता भी नहीं और वह चीज़ तुझे छूती नहीं। वह कहाँ से तेरी हुई? मिथ्या भ्रम

में, आहाहा! भगवान अपनी सम्पदा को भूलकर पर की सम्पदा, वह मेरी (है, ऐसा) माना है। आहाहा! मरण के समय ऐसे मुँह फटा रहेगा। दबाव पड़े अन्दर से। आहाहा! बड़ा एडवर्ड था न? एडवर्ड या जॉर्ज, रात्रि में सो रहा था तो सवेरे उठा नहीं था। ...जॉर्ज न? मर गया न? पहले था वह। रात्रि में सोया वह सवेरे... साढ़े तीन करोड़ रुपये का बँगला, तब। अब तो अधिक (हो गया)। बँगला, साढ़े तीन करोड़ का बँगला। उसकी साहेबी... सोने के साधन दूसरे हों। ... दूसरे प्रकार के। आहाहा! वह सोया, वह सोया, सवेरे देखा तो मुर्दा। क्या हुआ? यह भाई को हुआ न अभी। वजुभाई के भाई का। आहाहा! ग्यारह बजे सोया तो सवेरे देखा वहाँ मुर्दा। आहाहा! परन्तु वह तो जड़ है तो उसकी स्थिति पूरी होती है तो वह छूट ही जाता है, उसमें क्या? उसका ज्ञान और आनन्दस्वभाव कहीं छूटे ऐसा है? आहाहा!

ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, वह गुण का समुद्र प्रभु। वह गुण कहाँ छूटे ऐसा है? आहाहा! पर्याय बदल जाये, परन्तु कहीं गुण बदलते होंगे? आहाहा! गुण और गुणी भगवान अविनाशी को अपना न मानकर, उसका अनुभव न करके, पुत्र, स्त्री, आभूषण—गहने (को अपना मानता है)। आहाहा! उसमें अभी तो गहने न पहने तो यहाँ घड़ी लगी हो। हें! दूसरा क्या होता है वह? कन्दोरा कहते हैं। दांतीयो... दांतीयो। ऐसे-ऐसे किया ही करे। नीम के नीचे देखा है। दांतीया... दांतीयो समझे? ऐसा करे। क्या है परन्तु यह? यह तो बड़े-बड़े खड़े हों न। उस नीम के नीचे खड़े हों, ऐसा करे। अरे! क्या है यह? ऐसा पहले था ही नहीं। कलाई में घड़ी, ...दूसरा क्या? वह सब पर जड़, बापू! भूतावल को तू शोभित करता है? गहने पहने, यहाँ पहने और यहाँ पहने। गले में तो यहाँ पहने। सोने के। हें! ... किसका उत्साह? बापू! अरे प्रभु! तेरे नहीं, बापू! वह तो जड़ की दशा है। आहाहा! यह कान के फूल। यह सेठ बैठे न, देखो! गांडाभाई रखते थे। फावाभाई के पिता। आहाहा! यह लड़कियाँ छोटी ... छिद्र करें। यहाँ छिद्र, यहाँ छिद्र। आहाहा! मुर्दे को शृंगार करने के लिये। भगवान को भूला। कितने ही यह दाँत भी स्वर्ण के बनाते हैं। सोने के। शरीर तो सोने का नहीं होता। आहाहा! प्रभु! तू कहाँ है? उस वस्तु में तू है? वह तेरी है? आभूषण आदि। आदि में सब आ गया। घोड़ागाड़ी और... वह क्या कहलाता है? फर्नीचर और... आहाहा! चारों

ओर ऐसे फर्नीचर हो, हिरण के वे होते हैं और सिंह के वे होते हैं। आहाहा! उसमें... हें!

मुमुक्षु : मोहरा रखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोहरा रखे। वहाँ तो गये थे न? मणिभाई। शान्ताबेन के बहिन के ननदोई। मणिभाई नहीं? क्या कहलाता है वह? कोलाबा? गये थे न? पाँच-छह करोड़ रुपये और... सर्वत्र चरण कराये। क्या कहलाता है वह? मखमल बिछाया हुआ। ...बड़ा पाँच लाख का तो ऊपर कमरे में फर्नीचर। पाँच लाख रुपये का। नहीं जानते मणिभाई को? मणिभाई नहीं अपने? बहिन के बहनोई नहीं? रसिकभाई, राजकोट। राजकोट रसिकभाई नहीं? बहिन के... वे रसिकभाई के बहनोई। ऐसे नरम व्यक्ति है, परन्तु पैसे की खुमारी। ... हम गृहस्थ हैं, धनाढ्य हैं। अरे! प्रभु! परन्तु तू कौन है? आहाहा!

आभूषण आदि उपकरणों में... है न? पाठ में है, हों! **स्त्री, वस्त्र, आभूषण आदि उपकरणों में...** पाठ में है। उपकरण अर्थात् तुम्हारा फर्नीचर। आहाहा! अलमारी के अन्दर लड़के के लिये खिलौने रखे हों। आहाहा! दवा की शीशियाँ भरी हों पूरी ऊपर, नीचे, नीचे। आहाहा! भस्म, लोहे की भस्म, हीरा की भस्म, मणि की भस्म। आहाहा! शीशियाँ भरी हों। चाहिए तब तैयार। बिच्छू के डंक ऊपर के तुम्हारे होते हैं न? क्या? ग्रामोफोन... ग्रामोफोन (की प्लेट) उसके टुकड़े किये हुए। सब देखा है न। पड़ा हो। अरे रे! बापू! तू कहाँ है भाई? वह चीज़ तो जड़ की है। उसे तू कहाँ लगा भाई? भूतावल लगा है तुझे। यह **आदि उपकरणों में... 'मा मुह्य' ममत्व मत कर।** भाई! तुझे जाना है यहाँ से बाहर। आहाहा! तू बाहर रहा हुआ है और यहाँ से बाहर जाना है। आहाहा! उस चीज़ से बाहर रहा है तू। आहाहा! वापस जाना है बाहर अकेले। निराधार अशरण... भाई! छोड़, कहते हैं।

भावार्थ—अमूर्त वीतरागभावरूप जो निज शुद्धात्मा... यह आत्मा की व्याख्या की। आत्मा कौन है? कैसा है? क्यों है? अमूर्त है, वीतरागभावरूप है। आहाहा! वह तो वीतरागस्वरूप प्रभु है। ज्ञाता-दृष्टा स्वभाववाला प्रभु है। उसमें राग और परवस्तु है नहीं। आहाहा! ऐसी तेरी स्थिति में **अमूर्त वीतरागभावरूप जो निज शुद्धात्मा...** निज

शुद्धात्मा कैसा है ? कि अमूर्त वीतरागभावरूप। वह रागरूप और पुण्यरूप और कर्मरूप वह नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय से नहीं, व्यवहार से तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से अर्थात् निमित्त से है, ऐसा जानने के लिये है।

मुमुक्षु : दोनों नय प्रमाणिक हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाण अर्थात् वह तो निमित्त का ज्ञान करने के लिये है। उसका है इसलिए नहीं। एक चीज़ दूसरी है। वह स्व को जानने से पर को जानने का अपना स्वभाव है। इससे दूसरी चीज़ है, वैसा वह जानता है, बस। उसे जानना, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! अपने को जानने से वह ज्ञात हो जाता है। आहाहा! उसमें वह चीज़ जानना, वह भी व्यवहार, तो फिर चीज़ तेरी है, यह है कहाँ ? आहाहा! मूलजीभाई को मृत्यु की तैयारी थी न, राजकोट, लाखाणी। मूलजीभाई और दामोदरभाई। पैसेवाले। बहुत वर्ष पहले सोलह, अठारह लाख मुम्बई में पैदा किये। पैसे लेकर चले आये। फिर यहाँ साधारण धन्धा (किया)। मरते हुए, ऐसी शरीर की स्थिति खड़ी हुई कि ऐसा... बस, अब छूटने की तैयारी। लोग कहे, बुलाओ डॉक्टर को। लोग कहे, हों! लोग। वे नहीं। सगे-सम्बन्धी। यह कहे, लालभाई को बुलाओ। लालचन्दभाई को। उन्हें लालचन्दभाई का बहुत प्रेम। यहाँ तो कहते थे, महाराज! आपके बाद लालचन्दभाई को रखो, ऐसी उनकी योग्यता है। एक बार मोटर में कहा था। लालभाई नहीं ? पहिचानते हो तुम ? लालचन्दभाई!

मुमुक्षु : हिन्दी में समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा सादी है, उसमें हिन्दी क्या था ? लालचन्दभाई को बुलाओ, ऐसा कहा, उसमें क्या हिन्दी कहना ? उनके शरीर की अन्तिम स्थिति हुई। दूसरे लोग। स्त्री, कुटुम्ब, भाई सब आये थे। ...डॉक्टर को बुलाओ, यह कहे— लालचन्दभाई को बुलाओ। लालचन्दभाई कहे, भाई! शरीर में रोग है, वह जाननेयोग्य है, आत्मा का नहीं। शरीर में रोग होता है, वह आत्मा में जाननेयोग्य है। तब स्वयं कहते हैं, मरने की तैयारी, व्यक्ति बहुत वीर्यवाला था। पैसेवाला। खबर है नवरंगभाई ? अन्त

में क्या बोले थे? यह थे। लालचन्दभाई! शरीर का धर्म है वह ज्ञान में ज्ञात होता है। तब स्वयं कहते हैं, क्या शरीर जानना है? या जाननेवाले को जानना है? यह अन्तिम स्थिति। जाननेवाला अपने को जानता है या शरीर को, रोग को जानता है? भाई थे न? आहाहा! अन्त में यह आना... ऐसे ठीक था तब ९९ बुखार आवे, ९९.५ तब .... पैसेवाले व्यक्ति, बहुत वर्ष से पैसेवाले और सब साता में पले हुए। आहाहा! और फिर मस्तिष्कवाले व्यक्ति, कोई भोले थे और पैसे हुए हैं, ऐसा नहीं। वे भाई मरते, लालचन्दभाई कहते हैं, मूलजीभाई! शरीर का धर्म जीवपद में ज्ञात होता है। आता है न श्रीमद् में? क्या आत्मा शरीर के रोग को जानता है? या अपने को जानता है? पोपटभाई! अपने को जाने। ज्ञान ऐसे जाने? या यहाँ जाने? मरने की तैयारी, हों! हें! उस समय ऐसा जवाब, साताशील व्यक्ति, पैसेवाला व्यक्ति, बहुत लाखोंपति।

आत्मा अपने को जाने। शरीर में रोग है, उसे जानना, वह तो परवस्तु है। आहाहा! पर में तन्मय होकर नहीं जानता, इसलिए उसे नहीं जानता। अपनी पर्याय में तन्मय होकर जानता है, इसलिए उसे जानता है। आहाहा! देवीलालजी! आहाहा! समझ में आया? बहुत समय का परिचय। दामोदरभाई का वाँचन बहुत, उनके बड़े भाई को। उन्हें बुद्धिबल बहुत। उनकी समझने की शक्ति बहुत। उसमें क्या? देह तो छूटनेवाला है, वह तो पर है। आहाहा! उसमें ममता करेगा तो मर जायेगा वहाँ। हाय.. हाय..! ऐसा होता है, मुझे ऐसा होता है, तुझे क्या होता है? तुझे तो जानने का होता है। तुझे तेरा जानने का होता है, ऐसा कह न! जो रोगादि था, उसका यहाँ ज्ञान था, नहीं था, उसके बदले ज्ञान हुआ। समझ में आया? आहाहा! शरीर में रोग था, तब ज्ञान नहीं था, परन्तु हुआ तब ज्ञान... वह तो ज्ञान यहाँ आया। यहाँ रोग कहाँ आया? द्विरूपता नहीं कहा सर्वविशुद्ध अधिकार में? ज्ञानस्वरूप भगवान अपने को जानता था, उस समय दूसरी चीज़ को जानने के काल में दूसरी चीज़ का ज्ञान स्वयं से स्वयं का हुआ है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, एक बार छोड़ तो सही, प्रभु! वह उसमें तू नहीं, हों! **शुद्धात्मा उससे व्यवहारनयकर दूध-पानी की तरह यह देह एकमेक हो रही है,...** आहाहा! असद्भूतव्यवहारकर, हों! झूठे व्यवहारनयकर। दूध और पानी, तथापि पानी, वह पानी

और दूध, वह दूध। आहाहा! लोग नहीं कहते ऐसा? कि दूध का दूध रहेगा और पानी का पानी। आहाहा! **दूध-पानी की तरह यह देह एकमेक हो रही है, ऐसी देह, जीव का स्वरूप नहीं है,...** आहाहा! तुझे कहाँ देखना है? वह तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! तू तो वीतरागमूर्ति जीवात्मा। वह (देह) तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! **ऐसी देह, जीव का स्वरूप नहीं है, तो पुत्र-कलत्रादि धन-धान्यादि...** पुत्र, कलत्र अर्थात् स्त्री आदि और पुत्रियाँ आदि, धन-धान्य आदि। लक्ष्मी, धान—अनाज। कोठी में तिल भरे हों, कोठी में अनाज भरा हो, बाजरा भरा हो, चने भरे हों, बड़े गृहस्थ हों इसलिए। आहाहा! **अपने किस तरह हो सकेंगे?** तेरे कब थे वे? आहाहा! **ऐसा जानकर बाह्य पदार्थों में ममता छोड़कर...** जो तुझसे बाह्य—भिन्न है, उनकी ममता छोड़। भिन्न हैं, वे मेरे—ऐसा कहाँ से हुआ?

शुद्धात्मा की अनुभूतिरूप... क्या करना तब? शुद्धात्मा का अनुभव। पूर्णानन्द नाथ वीतरागस्वरूप आत्मा का अनुभव कर। आहाहा! वीतराग निर्विकल्प शान्ति। अनुभूति कैसी है? कि **वीतराग निर्विकल्पसमाधि...** अभेद राग बिना की शान्ति। आहाहा! कितना पुरुषार्थ स्वसन्मुख ढला है न! आहाहा! उसे भगवान आत्मा का अनुभव जो **वीतराग निर्विकल्पसमाधि उसमें ठहरकर...** क्या कहते हैं? ऐसे शुद्धोपयोग... शुद्धोपयोग, ऐसा नहीं, परन्तु उसमें स्थिर होकर भावना कर, ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं यह? शुद्धात्मा की भावना। 'आत्मभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान।' अर्थात् क्या परन्तु? कहते हैं। वह **वीतराग निर्विकल्पसमाधि उसमें ठहरकर...** आहाहा! **सब प्रकार से शुद्धोपयोग की भावना करनी चाहिए।** आहाहा! यह स्वयं ने अधिक डाला है। **'वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा च सर्वतात्पर्येण भावना कर्तव्येत्यभिप्रायः'।** आहाहा! भगवान पूर्णानन्द प्रभु की एकाग्रता की अनुभूति में रहकर शुद्धात्मा की भावना कर, ऐसा कहते हैं। शुभ विकल्प में रहकर, ऐसा आत्मा, ऐसा आत्मा—ऐसा नहीं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

सन्त सत् के सन्देश देते हैं। बापू! तुझे मोक्ष करना हो तो यह है। आहाहा! बन्धन से छूटना हो, संसार के दुःख से छूटना हो... आहाहा! सम्बन्ध से छूटना हो तो

स्वसम्बन्ध का उपयोग कर। ऐसा लोगों को ऐसा लगे। बापू! है तो तेरे घर की चीज़, भाई! है, उसे सम्हालना है। है वह चीज़ अन्दर। है, उसका विश्वास करके उसमें स्थिर होना है। वह कहीं पर की चीज़ कोई नहीं। ऐसा मार्ग।

सब प्रकार से शुद्धोपयोग की भावना करनी चाहिए। आहाहा! शुद्ध आत्मपरिणति का व्यापार करना चाहिए। आहाहा! भावना अर्थात् एकाग्रता। भावना अर्थात् चिन्तवन, ऐसा नहीं कि ऐसा, ऐसा—ऐसे नहीं। देखा! '**वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा च सर्वतात्पर्येण भावना कर्तव्येत्यभिप्रायः**'। भावना में... **सब प्रकार से शुद्धोपयोग की भावना करनी चाहिए।**

गाथा - १४६

अथ तमेवार्थं पुनरपि प्रकारान्तरेण व्यक्तीकरोति–

२६९) करि सिव–संगमु एक्कु पर जहिँ पाविज्जइ सुक्खु।
जोइय अण्णु म चिंति तुहुँ जेण ण लब्भइ मुक्खु।।१४६।।

कुरु शिवसंगमं एकं परं यत्र प्राप्यते सुखम्।
योगिन् अन्यं मा चिन्तय त्वं येन न लभ्यते मोक्षः।।१४६।।

करि इत्यादि। करि कुरु। कम्। सिवसंगमु शिवशब्दवाच्यशुद्धबुद्धैकस्वभावनिज–शुद्धात्मभावनासंसर्गं एक्कु पर तमेवैकं जहिं पाविज्जइ सुक्खु यत्र स्वशुद्धात्मसंसर्गे प्राप्यते। किम्। अक्षयानन्तसुखम्। जोइय अण्णु म चिंति तुहुं हे योगिन् स्वभावत्वादन्यचिन्तां मा कार्षीस्त्वं जेण ण लब्भइ येन कारणेन बहिश्चिन्तया न लभ्यते। कोडसौ। मुक्खु अव्याबाधसुखादिलक्षणो मोक्ष इति तात्पर्यम्।।१४६।।

आगे इसी अर्थ को फिर भी दूसरी तरह प्रगट करते हैं–

मात्र एक शिव संगम ही कर्त्तव्य प्राप्त हो सुख जिससे।
ऐसा चिन्तन करो न योगी! जिससे शिव पद नहीं मिले।।१४६।।

अन्वयार्थ :– [योगिन्] हे योगी हंस, [त्वं] तू [एकं शिवसंगमं] एक निज शुद्धात्मा की ही भावना [परं] केवल [कुरु] कर, [यत्र] जिसमें कि [सुखम् प्राप्येत] अतीन्द्रिय सुख पावे, [अन्यं मा] अन्य कुछ भी मत [चिंतय] चिंतवन कर, [येन] जिससे कि [मोक्षः न लभ्यते] मोक्ष न मिले।

भावार्थ :– हे जीव, तू शुद्ध अखंड स्वभाव निज शुद्धात्मा का चिन्तवन कर, यदि तू शिवसंग करेगा तो अतीन्द्रिय सुख पावेगा। जो अनंत सुख को प्राप्त हुए वे केवल आत्म–ज्ञान से ही प्राप्त हुए, दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलिये हे योगी, तू अन्य कुछ भी चिन्तवन मत कर, पर के चिंतवन से अव्याबाध अनंत सुखरुप मोक्ष को नहीं पावेगा। इसलिये निजस्वरुप का ही चिन्तवन कर।।१४६।।

गाथा-१४६ पर प्रवचन

१४६। **आगे इसी अर्थ को फिर भी दूसरी तरह प्रगट करते हैं—** आहाहा!

२६९) **करि सिव-संगमु एक्कु पर जहिँ पाविज्जइ सुक्खु।**
जोइय अण्णु म चिंति तुहुँ जेण ण लब्भइ मुक्खु।।१४६।।

आहाहा! **अन्वयार्थ—हे योगी!...** मुनि। शिष्य है न प्रभाकर (भट्ट)। **तू एक निज शुद्धात्मा की ही भावना...** शिव अर्थात् शुद्धात्मा और संगम अर्थात् भावना, ऐसा। तीन शब्द पड़े हैं। '**एकं शिवसंगमं**' एक शिव अर्थात् शुद्धात्मा, उपद्रवरहित आनन्दस्वरूप भगवान शिवस्वरूप—ऐसा जो शुद्धात्मा, संगम—उसकी संगम अर्थात् भावना करना। आहाहा! उसका परिचय करना। श्रुत परिचित अनुभूत आता है न? उस राग का (परिचय) किया है परन्तु यह परिचय किया नहीं, कहते हैं। आहा! (समयसार) चौथी गाथा आती है। '**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।**' '**सव्वस्स वि कामभोग**' सर्व को—एकेन्द्रिय से लेकर सब। '**एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।**' भगवान स्वभाव में एकत्व और विकल्प से विभक्त, प्रभु! यह तूने कभी नहीं किया। आहाहा! **एक निज शुद्धात्मा की ही भावना केवल... 'परं'** अर्थात् एक ही कर, एक ही यह करनेयोग्य है। बाकी तो विकल्प में आकर दुःखी होना है। आहाहा! दुःख के पन्थ इसे प्रेम में अच्छे लगते हैं। भगवान के पन्थ में प्रविष्ट होने से वह दुःख के पन्थ दुःखरूप लगेंगे। आहाहा! समझ में आया?

शिवसंगम। भाषा की, देखा? एक निज शुद्धात्मा, (यह) शिव की व्याख्या की और संगम अर्थात् परिचय, भावना। आहाहा! **केवल कर, जिसमें कि... 'सुखम् प्राप्येत' अतीन्द्रिय सुख पावे,...** आहाहा! भगवान! तुझे अतीन्द्रिय सुख मिलेगा। आत्मा में क्रीड़ा कर। आहाहा! उस क्रीड़ा से तुझे अतीन्द्रिय सुख प्राप्त होगा। आहाहा! राग में रमने से तुझे नरक और निगोद मिलेंगे। हमारे वहाँ उमराला में घर है न, कणबीवाड में, किसान की लड़की जब ससुराल जाये न, ससुराल, तब उन्हें प्रत्येक का रिवाज उन लोगों को, ऐसा करे। बहुत रोवे। वैसे तो उत्साह है कि मुझे ससुराल जाना है। उन लोगों

का रिवाज किसानों का, भाई! कणबीवाड में मकान है न जन्म का। छोटी उम्र में बहुत देखा हुआ है। उसकी माँ बाल सँवारे तेल डालकर, फिर रोवे। वह रोने की ढंग ही होता है उनका इस प्रकार से रोवे। चिल्लाहट करके रोवे वापस, हों! अन्दर में तो ससुराल जाना है पति पास में, वहाँ कहाँ रोना है उसे। यह सब ढोंग। आहाहा! कहते हैं कि वहाँ जाना है और तू रोती है, इसकी अपेक्षा मोक्ष में जाना, उसके लिये अन्दर क्रीड़ा तो कर एक बार। आहाहा! तुझे मोक्ष जाना है, बापू! परमानन्द की प्राप्ति के घर में तुझे जाना है, भाई! एक बार उत्साह और हर्ष से तू क्रीड़ा तो कर आत्मा के साथ। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग, बापू! यह तो ऐसा मार्ग है। लोगों को ऐसा लगे कि यह तो एकान्त है रे एकान्त है। ऐसा करके लोग विरोध करते हैं। सोनगढ़ का एकान्त है। वहाँ जाकर पूछो।

मुमुक्षु : लोकोत्तर मार्ग हो, उसका लोगों को विरोध ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया के साथ कुछ मेल नहीं। सम्प्रदाय में विद्वानों के साथ मेल नहीं, त्यागी के साथ मेल नहीं, प्रभु! क्या करे? आहाहा! लोग सम्यग्दर्शन बिना व्रत और तप से कल्याण करना चाहते हैं, उसे यहाँ ना करते हैं, वह उन्हें एकान्त लगता है। बापू! यह मार्ग नहीं, भाई! आहाहा! समझ में आया? वह तो सब विकल्प और दुःख का जाल है।

यहाँ तो कहते हैं, एक जिससे अतीन्द्रिय सुख पावे। **अन्य कुछ भी मत चिन्तवन कर,...** आहाहा! दूसरा विकल्प चिन्तवन छोड़ दे। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के धाम में तुझे जाना है, भाई! आहाहा! 'स्वयं ज्योति सुखधाम।' भगवान आत्मा स्वयं ज्योति— चैतन्य ज्योति जलहल ज्योति भगवान है। आहाहा! 'जलहल ज्योतिस्वरूप तू' आता है न? श्रीमद् में आता है, श्रीमद् में आता है। श्रीमद् को छोटी उम्र में से पूर्व के संस्कार बहुत न! एकदम अन्दर से रस और रुचि थी। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, अतीन्द्रिय सुख को प्राप्त करेगा। **कुछ भी मत चिन्तवन कर,...** आहाहा! यह दया का, व्रत का और तप का विकल्प छोड़ दे। वह विकल्प तो राग है, दुःख है, भाई! और उससे कर्म का बन्धन होगा। आठ कर्म दुःख के फल हैं। उन कर्म

का पाक, वह दुःख है। आहाहा! प्रभु! ऐसा कहते हो तो तीर्थंकर प्रकृति है न? उसका फल क्या? बापू! वह बाहर का संयोग वह कहीं आत्मा को होता नहीं और वह भी तीर्थंकरप्रकृति का उदय, आहा! स्वयं केवलज्ञान की प्राप्ति, अनन्त आनन्द को प्राप्त करे, तब प्रकृति का फल बाहर दिखे समवसरण आदि में, उसमें आत्मा को क्या आया? यह कहते हैं न, तीर्थंकरप्रकृति को हेय मानना? वह तो परम्परा मोक्ष का कारण है। अरे! बापू! भाई! किस अपेक्षा से है? प्रकृति के फल तो, १४८ प्रकृति के फल विष के फल कहा है। कर्ममात्र का फल जहर है, ऐसा कहा। अमृत का सागर फले, उसका फल अतीन्द्रिय आनन्द / सुख की प्राप्ति है, ऐसा कहते हैं। कहा न? **अतीन्द्रिय सुख पावे, अन्य कुछ भी मत चिन्तवन कर, जिससे कि मोक्ष न मिले।** ऐसा चिन्तवन छोड़दे, ऐसा कहते हैं। जिसमें आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति न हो वह विकल्प छोड़ दे, भाई! आहाहा! ऐसा काम।

भावार्थ—हे जीव! तू शुद्ध बुद्ध अखण्ड स्वभाव... 'एक' का अर्थ यहाँ किया जरा। 'एक' शब्द न डालकर, अखण्ड किया। यहाँ किया इतना अर्थ। पाठ में यह ही है। है न? '**शुद्धबुद्धैकस्वभाव**'। संस्कृत टीका है। एक का अर्थ अखण्ड किया, वह बराबर है। बहुत सी जगह एक शब्द (का अर्थ रह गया है)। यहाँ एक अर्थात् अखण्ड, यह बराबर है। भगवान आत्मा... आहाहा! शुद्ध है, पवित्र है, बुद्ध है—ज्ञान का पिण्ड है, अखण्ड स्वभाव है। आहाहा! जिसका पर्याय में भेद भी नहीं पड़ता, ऐसा त्रिकाली स्वभाव है। अरे! ऐसा। **निज शुद्धात्मा का चिन्तवन कर...** आहाहा! कैसा है प्रभु? वह तो शुद्ध पवित्र भगवान है। अनादि का वह पवित्र स्वभाव उसका है। आहाहा! पर्याय में जो अपवित्रता राग दिखता है, वह वस्तु में कहाँ है? आहाहा! शुद्ध, बुद्ध, अखण्ड स्वभाव **निज शुद्धात्मा का चिन्तवन कर...**

यदि तू शिवसंग करेगा तो... देखा? **शिवसंग करेगा तो...** अर्थात्? आत्मा के आनन्द का परिचय करेगा तो। आहाहा! श्रुत परिचित अनुभूता। आहाहा!... ऐसी बातें हैं। हें!

मुमुक्षु : मूल बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल बात है।

शिवसंग करेगा,... शिवसंग अर्थात्? पहले अर्थ आ गया, निजशुद्धात्मा, वह शिव। संग अर्थात् भावना। है न शब्दार्थ में? आहाहा! अतीन्द्रिय अमृत का सागर भगवान आत्मा को शिव कहते हैं और उसका संग अर्थात् उसकी एकाग्रता को संगम कहते हैं। आहाहा! **यदि तू शिवसंग करेगा...** आहाहा! कल्याणस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर नाथ, उसका संगम अर्थात् भावना करेगा (तो) अतीन्द्रिय सुख प्राप्त करेगा। समझ में आया? यह व्रतादि के परिणाम भी बन्ध के कारण हैं। आहाहा! मोक्ष का कारण यह नहीं। आहाहा! ऐसी बात कठिन पड़े। व्रत और तप यही होते हैं। आहाहा! जहाँ-तहाँ यह अधिक, बस। यह अपवास किये और यह किया और सोलह अपवास किये और महीना (किया), परन्तु मिथ्यादृष्टि, तेरे अपवास-बपवास कहाँ थे? आहाहा! जिसकी दृष्टि में भगवान आया नहीं और उसकी दृष्टि में तो राग और पर्याय और परवस्तु आयी, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसा मार्ग सूक्ष्म है, बापू! आहाहा! पूरा संसार दुःखरूप उथल जाये-नाश हो जाये और अनन्त... अनन्त... अनन्त आनन्द, कहा न? अतीन्द्रिय सुख प्राप्त हो। आहाहा!

शिवसंग करेगा तो अतीन्द्रिय सुख पावेगा। आहाहा! ऐसा वहाँ कहा नहीं कि व्यवहार कर और दया पाल तो तुझे अतीन्द्रिय सुख मिलेगा। हें! आहाहा! समझ में आया? श्वेताम्बर में तो ऐसा कहे, धर्म के चार प्रकार—दान, शील, तप, भावना। बस हो गया। आहाहा! दान करना, वह धर्म; शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह धर्म; तप करना, अपवास (करना), वह धर्म और भगवान के पास-मूर्ति के पास भावना भाना। वह सब राग है। आहाहा! ऐसी बात न बैठे उन लोगों को। यहाँ तो कहते हैं, यह पर का संग छोड़ और स्व संग कर। आहाहा! शिवस्वरूप तेरा प्रभु। शान्त... शान्त... शान्त... शान्ति का सागर अकषायभाव से भरपूर। कहा न यहाँ? वीतरागभाव कहा न? उसमें, १४५ में, भावार्थ में। **अमूर्त वीतरागभावरूप जो निज शुद्धात्मा...** है न? **अमूर्त वीतरागभावरूप जो निज शुद्धात्मा...** आहाहा! ऐसा वीतरागरस जिसका अनादि-अनन्त। आहाहा! उसका संग कर। अर्थात् कि एकाग्र हो। तुझे अतीन्द्रिय सुख मिलेगा। यह इन्द्रिय के

सुख तो जहर है। जहर के प्याला। आहाहा! गजब बातें हैं, भाई! स्त्री अनुकूल हो, पैसा ठीक हो, मकान-बकान ठीक हो, रूपवान स्त्री हो। आहाहा! उसके साथ खाये। आहाहा! पेड़ा, बर्फी उड़ावे आधा सेर, पौन सेर पहले। आहाहा! फिर माने आनन्द में। प्रभु! क्या है यह? किसकी तेरी क्रीड़ा भाई? यह जहर के प्याला पीने का खेल है बापू! आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो जैसे वह खाकर विष्टा उड़ावे और फिर भोग ले। ऐसे अनुभूति को उड़ावे तो... आहाहा! भगवान का भोग, वह अनुभूति है। उस अनुभूति का फल अनन्त सुख है। आहाहा! अरे! अभी जिसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता। आहाहा!

जो अनन्त सुख को प्राप्त हुए, वे केवल आत्म-ज्ञान से ही प्राप्त हुए,... देखो! स्पष्टीकरण। उसमें आया है न? '**भेदविज्ञानः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन**'। ऐसे अनन्त सिद्ध अभी तक हुए, वे एक आत्मज्ञान—भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसका ज्ञान, प्रतीति और रमणता, यह आत्मज्ञान में तीनों आ गये। है? **आत्मज्ञान से ही...** एकान्त नहीं होता? 'ही' कहते हैं।...हो, राग हो, जब तक वीतराग नहीं होता, तब तक ज्ञानी को भी राग आता है परन्तु है उसमें मोक्ष के मार्ग का अभाव। आहाहा!

जो अनन्त सुख को प्राप्त हुए, वे केवल... भाषा है? देखो! आहाहा! '**जेण ण लब्भइ येन कारणेन बहिश्चिन्तया न लभ्यते। मुक्खु अव्याबाधसुखादिलक्षणो मोक्ष।**' यह तो आत्मा के आनन्द से पाता है, आत्मा के ज्ञान से पाता है, ऐसा कहते हैं। अनन्त सुख को प्राप्त हुए परमात्मा अनन्त आत्मायें णमो सिद्धाणं, सिद्ध भगवान अनन्त मुक्ति को प्राप्त हुए, वे सब **आत्म-ज्ञान से ही प्राप्त हुए,...** व्यवहार से प्राप्त हुए, व्यवहारमोक्षमार्ग से, ऐसा कहा नहीं। यह सब विवाद पण्डितों के शास्त्र पढ़-पढ़कर। अरे! प्रभु! स्वआश्रित मार्ग एक ही सच्चा है। पराश्रित मार्ग तो बन्ध का कारण है। यह कहा न? **आत्मज्ञान से ही...** ऐसा शब्द है। **दूसरा कोई उपाय नहीं है।** आहाहा! यह एक ही उपाय, दो उपाय नहीं। मार्ग एक, दो मार्ग नहीं, ऐसा कहते हैं। आगम प्रमाण आत्मा की श्रद्धा चाहिए, वह श्रद्धा कहीं दिखाई नहीं देती तथा आत्मा की श्रद्धा और आत्मज्ञान, उसके वक्ता दिखाई नहीं देते। वक्ता आत्मज्ञान को बतावे, ऐसे वक्ता भी दिखते नहीं।

आहाहा! सेठ! दीपचन्दजी (कासलीवाल) २५० वर्ष पहले (हुए)। यह अनुभवप्रकाश यह बनाया न! मुख से कहें तो मानते नहीं। हें!

मुमुक्षु : इसकी अपेक्षा तो आज का काल अच्छा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है। ऐसा पुण्य है न भगवान के पास बाँधा हुआ। आहाहा! ऐसा कहे कि, मैं तो लिख जाता हूँ। उसकी अपेक्षा तो अभी सुनते हैं। हें! बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई!

आत्मज्ञान एक ही मोक्ष का (उपाय) है, दूसरा कोई उपाय नहीं। है न? .... **इसलिए हे योगी! तू अन्य कुछ भी चिन्तवन मत कर,...** आहाहा! यह भगवान का स्मरण भी छोड़ दे। आहाहा! णमो अरिहंताणं, यह विकल्प है, चिन्ता है। आहाहा! तेरे भगवान के पास जाने के लिये पर भगवान की चिन्ता का विकल्प छोड़ दे। समझ में आया? वहाँ जयसेनाचार्य में कहा, शुभ और शुद्ध बिना कोई निर्जरा नहीं। आता है न? शुभ और शुद्ध से निर्जरा होती है। वह तो प्रमाण का ज्ञान कराया है। आहाहा! वह डाले। भाई! बापू! तुझे उल्टे रास्ते ले जाये, वह बात निकाल दे। शास्त्र के अर्थ में ऐसा अर्थ नहीं होता। समझ में आया? यहाँ तो कहा, देखो, आहाहा! **अन्य कुछ भी चिन्तवन.... अन्य कुछ भी चिन्तवन मत कर,...** आहाहा! **पर के चिन्तवन से अव्याबाध अनन्त सुखरूप मोक्ष को नहीं पावेगा।** यह पंच परमेष्ठी का चिन्तवन करेगा तो उससे मोक्ष नहीं मिलेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **अन्य कुछ भी चिन्तवन मत कर, पर के चिन्तवन से अव्याबाध अनन्त सुखरूप मोक्ष को नहीं पावेगा।** आहाहा! पर के चिन्तवन से तो बाधावाले दु:ख की प्राप्ति होगी। उससे अव्याबाध सुख—मोक्ष नहीं पायेगा। आहाहा! **इसलिए निजस्वरूप का ही चिन्तवन कर।** देखा! आहाहा! '**बहिश्चिन्तया न लभ्यते।**' है न! '**येन कारणेन बहिश्चिन्तया न लभ्यते। कोडसौ। मुक्खु**' मोक्ष अर्थात्? '**अव्याबाधसुखादिलक्षणो मोक्ष।**' आहाहा! स्वरूप का ध्यान कर, स्वरूप की दृष्टि कर, स्वरूप का ज्ञान कर, स्वरूप में रमणता एक ही अनन्त सुख की प्राप्ति का उपाय एक ही है, दूसरा कोई है नहीं। मोक्षमार्ग दो है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। एक ही उपाय है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ कृष्ण ३, शुक्रवार
दिनांक- १६-०७-१९६५, गाथा - १४६, १४७, प्रवचन-१७१

१४६ गाथा, परमात्मप्रकाश का भावार्थ। थोड़ा चला है। फिर से देखो! लो, यह परमात्मप्रकाश है। अर्थात् यह आत्मा परमात्मस्वरूप है। परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। परमात्मा का आत्मा भाग है, ऐसा नहीं। ऐसा नहीं। स्वयं ही परमात्मस्वरूप है अन्दर। उसका ध्रुवस्वरूप, द्रव्यस्वरूप, स्वभावस्वरूप, नित्यस्वरूप, वह एकदम परमात्मस्वरूप ही है। जिसमें संसार का उदयभाव नहीं, जिसमें कर्म-शरीर का भाव भी उसमें नहीं। अकेला चैतन्यघन आनन्दकन्द वस्तु है। वह स्वयं ही वस्तु परमात्मा है। उसे पर्याय में परमात्मा प्रगट करने के लिये उपाय क्या, वह यहाँ बताते हैं। कहो, समझ में आया? क्योंकि होवे वह प्रगट होता है। प्राप्त की प्राप्ति होती है। परमात्मा पर्याय में प्राप्त होता है। पर्याय में परमात्मा प्रगट होता है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द आदि, वह कहाँ से प्राप्त होगा? वह चीज़ कहीं बाहर से नहीं आती।

मुमुक्षु : गुरु की कृपा हो तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु की कृपा किसी की कृपा, केवली की कृपा वहाँ काम नहीं आती। कृपा कहाँ उसे केवली को? कृपा सबके ऊपर वर्तती है। कहो, समझ में आया इसमें? यह इसकी इसके ऊपर कृपा चाहिए। निहालभाई!

कहते हैं कि, **हे जीव! तू शुद्ध (बुद्ध) अखण्ड स्वभाव...** लो, भगवान आत्मा अन्दर शुद्ध निर्मल है। विकल्प जो मलिन है, वह तो उदयभाव है, वह स्वभाव में नहीं। शुद्धस्वरूप में नहीं। ऐसा भगवान आत्मा तू शुद्ध, बुद्ध—अकेला ज्ञान का रसिक, ज्ञान का पिण्ड तू है, अखण्ड है, एकरूप है। कोई वस्तु है, वह एकरूप है। उसमें खण्ड, भाग, भेद नहीं। ऐसा जो स्वभाव, अन्तर वस्तुस्वभाव **निज शुद्धात्मा का...** ऐसा स्वभाववाला निज शुद्धात्मा अर्थात् कि स्वभावस्वरूप निजशुद्धात्मा।

क्या कहा? हे आत्मा! तुझे तेरा हित और कल्याण करना हो तो यह एक रास्ता है, इस रास्ते के अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं। क्यों? कि तू शुद्ध है, बुद्ध है, अखण्ड है, आनन्दमूर्ति है। बराबर होगा निहालभाई? वह वस्तु स्वयं वस्तु आत्मा उसे कहते हैं कि

जिसमें विकार नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं। वह तो सच्चिदानन्दस्वरूप है। सत् अर्थात् शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द के स्वभावस्वरूप आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा का **चिन्तवन कर,...** उस आत्मा का अन्तर चिन्तवन कर। उसके सन्मुख से एकाग्रता कर। यही एक सुख का रास्ता, धर्म का रास्ता, मुक्ति का रास्ता है, दूसरा कोई रास्ता है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? कहो, छोटाभाई! कहो, कितने व्यापार के धन्धे में चिन्तवन में यह चिन्तवन चलता होगा? यह कहेंगे अभी भाईसाहेब! छोड़ दे अब यह चिन्तवन तेरा। आहाहा! अरे! तुझे हैरान होने का रास्ता, दुःखी होने का रास्ता सूझता है और यह आत्मा क्या चीज़ है? तू स्वयं कौन है? स्वयं कौन है, इसकी कीमत नहीं होती और कीमत इन पुण्य-पाप के भाव और शरीर और पुण्य-पाप के फल बाहर मिले यह धूल अनुकूल-प्रतिकूल, उसकी इसे महत्ता, उसकी इसे कीमत, उसकी इसे अधिकाई। भगवान आत्मा पूर्णानन्द से भरपूर वह कोई तुच्छ लगता है, इसे अनादि से।

पूरा सच्चिदानन्द सत्... सत्... सत् वस्तु है और ज्ञान और आनन्द से भरपूर वह पदार्थ है। अकृत्रिम, अकृत अनादि-अनन्त चीज़ है। उस चीज़ में तू अन्तर एकाग्र हो तो तुझे शान्ति मिलेगी, जन्म-मरण टलेंगे और दुःख का अभाव होकर अकेली सुख की दशा प्रगट होगी। कहो, समझ में आया इसमें?

तो अतीन्द्रिय सुख पावेगा। शिवसंग करेगा... शिवसंग अर्थात्? यह आत्मा शिव। संस्कृत में है। '**शिवशब्दवाच्यशुद्धबुद्धैकस्वभावनिजशुद्धात्मभावनासंसर्ग**' भाई! तू निरूपद्रव्य भगवान है अन्दर। कहाँ परन्तु इसे यहाँ कीमत? एकसरीखी दाल न हो तो खड़खड़ाहट होती है, बीड़ी ठीक से न मिले तो सिगरेट... सिगरेट। सिगरेट कहते हैं न क्या ऐसे? ऐसे और दो अँगुली कोई ऐसे रखे और कोई ऐसे रखे। यह शौक होगा अन्दर इस प्रकार का। ऐसे रखे और ऐसे रखे क्या खबर? ऐसे... ऐसे... ओहोहो! मानो कहाँ घुस गया हूँ मानो आनन्द में! अरे! भगवान! तू कहाँ भटकने के विकल्प में तुझे प्रीति और भगवान स्वयं, स्वयं अपना कौन स्वरूप है, उसकी तुझे प्रीति नहीं, यह वह अनादि की गहलता और पागलपन कैसा? कहते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, भाई! तू **शिवसंग करेगा...** तेरा आत्मा ही कल्याणमूर्ति अन्दर है। उसका संग तू संसर्ग कर, संसर्ग कर। यह संसर्ग छोड़ दे। बाहर के संसर्ग दुःख के हैं, उन्हें छोड़, अन्तर का संसर्ग कर **तो अतीन्द्रिय सुख पावेगा।** तो अन्तर में अतीन्द्रिय

आनन्द भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, ऐसी अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति तुझे होगी। दूसरे किसी प्रकार से सुख का और धर्म का रास्ता नहीं है।

जो अनन्त सुख को प्राप्त हुए, वे केवल आत्म-ज्ञान से ही प्राप्त हुए,... अभी तक सब अनादि संसार के अनन्त जीव जो कोई आत्मा की शान्ति को प्राप्त हुए, सुख को प्राप्त हुए, परमात्मपद को प्राप्त हुए, वे सब केवल आत्मज्ञान, अकेला वह आत्मा का ज्ञान, हों! दूसरा ज्ञान नहीं। लौकिक तो नहीं, शास्त्र भी नहीं। स्वयं भगवान आत्मा पूर्णानन्द की ज्योति का ज्ञान अर्थात् उसकी महत्ता अर्थात् उसकी ओर का झुका हुआ ज्ञान, उस ज्ञान से अनन्त सुख को प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त कोई उपाय अनन्त काल में कोई दूसरा उपाय जीव ने किया नहीं। मोक्ष के लिये तो यही उपाय है। कहो, बराबर होगी यह बात? परन्तु हमारे यह करना, परन्तु यह स्त्री, पुत्र सब लगे हों, उनका करना या यह करना? यह अभी माना है न इसने? लगे हों तब तो यहाँ से पृथक् पड़कर जाये नहीं यहाँ से।

मुमुक्षु : वे जाने नहीं देते।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाना क्या? आँख मींचे तो एकदम चला जाये। वहाँ कहाँ इसका कोई रोके वहाँ? सब हजार लोग बैठे हों। यह लो दरबार जैसा चला गया लो! रानी को कहा, मुझे असुख है। लो, वह जहाँ कहने गयी वहाँ तो यहाँ जाओ परलोक। जैसी भावना की, तत्प्रमाण चले दूसरे स्थान में, अब यह सब कुछ नहीं मिलता। धूल में भी नहीं मिलता। यह तो श्मशान के बँगले हैं सब। उसमें सो रहा है ऐसे पोढ़कर मानो, ओहोहो! क्या है?

भगवान आत्मा सुख-शैय्या है। वह आत्मा सुख-शैय्या। सुख-शैय्या समझे? उस सुख को पोढ़ने का स्थान—पलंग। वह सुख-शैय्या चली है, हों! सुख-शैय्या बात। वह आत्मा सुख की सेज है। यह पुण्य-पाप के भाव दुःख की सेज है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हें! यह एक बात रह जाती है। १३ की। (संवत्) २०१३ के वर्ष का व्याख्यान था न, पण्डितजी! अपने ७२वीं गाथा चलती थी वहाँ। क्या कहलाये वह? मधुवन में। भाई! अशुचि—पुण्य-पाप के भाव मैल हैं, पुण्य-पाप का भाव जड़ है-अचेतन है, पुण्य-पाप का भाव दुःखरूप है। इसलिए उसके बिना....

गाथा - १४७

अथ भेदाभेदरत्नत्रयभावनारहितं मनुष्यजन्म निस्सारमिति निश्चिनोति-

२७०) बलि किउ माणुस-जम्मडा देक्खंतहँ पर सारु।
जइ उट्ठब्भइ तो कुहइ अह डज्झइ तो छारु।।१४७।।

बलिः क्रियते मनुष्यजन्म पश्यतां परं सारम्।
यदि अवष्टभ्यते ततः क्कथति अथ दह्यते तर्हि क्षारः।।१४७।।

बलि किउ इत्यादि। बलि किउ बलिः क्रियते मस्तकस्योपरितनभागेनावताडनं क्रियते। किम्। माणुस-जम्मडा मनुष्यजन्म। किंविशिष्टम्। देक्खंतहँ पर सारु बहिर्भागे व्यवहारेण पश्यतामेव सारभूतम्। कस्मात्। जइ उट्ठब्भइ तो कुहइ यधवष्टभ्यते भूमौ निक्षिप्यते ततः कुत्सितरुपेण परिणमति। अह डज्झइ तो छारु अथवा दह्यते तर्हि भस्म भवति। तथथा। हस्तिशरीरे दन्ताश्चमरीशरीरे केशा इत्यादि सारत्व तिर्यक्शरीरे दृश्यते, मनुष्यशरीरे किमपि सारत्वं नास्तीति ज्ञात्वा घुणभक्षितेक्षुदण्डवत्परलोकबीजं कृत्वा निस्सारमपि सारं क्रियते। कथमिति चेत्। यथा घुणभक्षितेक्षुदण्डे बीजे कृते सति विशिष्टेक्षूणां लाभो भवति तथा निःसारशरीराधारेण वीतरागसहजानन्दैकस्वशुद्धात्मस्वभावसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरुप-निश्चरत्नत्रयभावनाबलेनतत्साधकव्यवहाररत्नत्रयभावनाबलेन च स्वर्गापवर्गफलं गृह्यत इति तात्पर्यम्।।१४७।।

आगे भेदाभदरत्नत्रय की भावना से रहित जीव का मनुष्य-जन्म निष्फल है, ऐसा कहते हैं-

जो दिखता है सारभूत ऐसे नर तन को है धिक्कार।
क्योंकि गाड़ने से सड़ जाती और जलाने से हो राख।।१४७।।

अन्वयार्थ :- [मनुष्यजन्म] इस मनुष्य-जन्म को [बलिः क्रियते] मस्तक के ऊपर वार डालो, जो कि [पश्यतां परं सारम्] देखने में केवल सार दीखता है, [यदि अवष्टभ्यते] जो इस मनुष्य-देह को भूमि में गाड़ दिया जावे, [ततः] तो [क्कथति] सड़कर दुर्गन्धरुप परिणमे, [अथ] और जो [दह्यते] जलाईये [तर्हि] तो [क्षारः] राख हो जाता है।

भावार्थ :–इस मनुष्य–देह को व्यवहारनय से बाहर से देखो तो सार मालूम होता है, यदि विचार करो तो कुछ भी सार नहीं है। तिर्यञ्चों के शरीर में तो कुछ सार भी दिखता है, जैसे हाथी के शरीर में दाँत सार है, सुरह गौ के शरीर में बाल सार हैं इत्यादि। परन्तु मनुष्य देह में सार नहीं है, घुन के खाये हुए गन्ने की तरह मनुष्य देह को असार जानकर परलोक का बोज करके सार करना चाहिये। जैसे घुनों का खाया हुआ ईख किसी काम का नहीं है, एक बीज के काम का है, सो उसको बोकर असार से सार किया जाता है, उसी प्रकार मनुष्य–देह किसी काम का नहीं, परंतु परलोक का बोजकर असार को सार करना चाहिये। इस देह से परलोक सुधारना ही श्रेष्ठ है। जैसे घुने से खाये गये ईख को बोने से अनेक ईखों का लाभ होता है, वैसे ही इस असार शरीर के आधार से वीतराग परमानंद शुद्धात्मस्वभाव का सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणरुप निश्चयरत्नत्रय की भावना के बल से मोक्ष प्राप्त किया जाता है, और निश्चयरत्नत्रय का साधक जो व्यवहाररत्नत्रय उसकी भावना के बल से स्वर्ग मिलता है, तथा परम्परा से मोक्ष होता है। यह मनुष्य–शरीर परलोक सुधारने के लिये होवे तभी सार है, नहीं तो सर्वथा असार है।।१४७।।

गाथा-१४७ पर प्रवचन

आगे भेदाभेदरत्नत्रय की भावना से रहित जीव का मनुष्य-जन्म निष्फल है,.... जिसने इस भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और लीनता नहीं की और उसके साथ देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विकल्प। दोनों लेते हैं। यह ऐसा निश्चयपूर्वक व्यवहार आदि साधन नहीं किये, यह उसे मनुष्य जन्म निष्फल होता है।

२७०) बलि किउ माणुस–जम्मडा देक्खंतहँ पर सारु।
जइ उट्ठब्भइ तो कुहइ अह डज्झइ तो छारु।।१४७।।

क्या कहते हैं ? **इस मनुष्य-जन्म को मस्तक के ऊपर वार डालो...** ऐसा नहीं कहते ? छोड़ दो ऐसा। कि **जो कि देखने में तो केवल सार दिखता है,...** धूल दिखती है अच्छी ऐसे। चमड़ी रूपवान, दाँत ऐसे, नाक ऐसा गरुड़ के उस जैसा नाक, दाँत अच्छे, नाक अच्छा, कान कुण्डल जैसे कान, सब दिखने में अच्छा लगता है, कहते हैं।

परन्तु है कैसा, कहते हैं देखो! **केवल सार दिखता है, जो इस मनुष्य-देह को भूमि में गाड़ दिया जावे,....** इस देह को यदि भूमि में गाड़ दे **तो सड़कर दुर्गन्धरूप परिणमे....** क्या होता होगा? कस्तूरी होती होगी वहाँ? गाड़े अन्दर, सड़कर परमाणु सड़कर दुर्गन्ध उत्पन्न होती है। मात्र दुर्गन्धरूप परिणमते हैं। एक बात।

और जो जलाईये.... जलाये, जलाये तो राख होती है। गाड़े तो सड़कर धूल होती है, यह जलाये तो राख होती है, उसमें दूसरा कुछ सार है नहीं। कहो, समझ में आया? इस देह में सार नहीं तो स्त्री, पुत्र, पैसा और धूल तो कहीं रह गयी अब। भाई! परन्तु लगा है न वह भी। और जिसे छोड़ना न चाहे, वे किस प्रकार छूटे? यहाँ भगवान आत्मा में भी अन्दर एकाग्र होना न चाहे, उसे वह प्राप्त कैसे हो? और यह छोड़ना न चाहे, वे छूटे कैसे? अनादि काल से बाबा हुआ, त्यागी हुआ, जैन साधु हुआ, परन्तु अन्दर में सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण मैं आनन्द हूँ, ऐसा इसने अन्तर में आश्रय और शरण ली नहीं, बाहर की शरण में कहाँ-कहाँ रुक गया।

कहते हैं कि यह **इस मनुष्य-देह को व्यवहारनय से बाहर से देखो तो सार मालूम होता है, यदि विचार करो तो इसमें कुछ भी सार नहीं है। तिर्यंचों के शरीर में तो कुछ सार भी दिखता है,....** ढोर के शरीर। **जैसे हाथी के शरीर में दाँत सार है,....** दिखते हैं। दाँत... दाँत। हाथी के दाँत होते हैं न, चिमनभाई! इसके तो दाँत भी काम नहीं आते। कुछ काम नहीं आते। **सुरह गौ के शरीर में बाल सार हैं....** यह चमरी गाय। चमरी गाय होती है न। चमरी गाय के तो बाल, उसकी पूँछ, कहते हैं कि बाल काम आवे। **परन्तु मनुष्यदेह में सार (कुछ) नहीं है,...** धूल में कुछ सार नहीं इस मनुष्य देह में।

मुमुक्षु : कब की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी की बात है। कब की बात है यह? ऐसा कहते हैं, यह सड़कर मरे तब न? कब की बात होगी यह? यह अभी की बात चलती है, बापू! यह धूल है, मिट्टी है और तू प्रभु चैतन्य है। तेरे परमेश्वर की बात सर्वज्ञ की वाणी में पूरी न पड़े, ऐसा तू है। सर्वज्ञ की वाणी में भी पूरी बात न आवे, ऐसा परमात्मा आनन्दकन्द सच्चिदानन्द पूर्ण ज्ञान और आनन्द का घर पूरा तेरा है। उसे भूलकर यह

शरीर मुर्दा, जला हुआ राख, उसके ऊपर चिपटा मुर्दे में। आता है न मूर्च्छा मुर्दा-मुर्दा। अभी कहा मुर्दा। यह समयसार में ९६ गाथा में कहा। समयसार में ९६ गाथा में कहा है। समझ में आया? यह तो अभी प्रश्न आया न अभी? अभी या नहीं? कि अभी। ९६, देखो! क्या कहते हैं? देखो!

और मृतक कलेवर के द्वारा... यह मृतक कलेवर कहा है इसे। यह ९६ गाथा में अमृतचन्द्राचार्य महाराज। **इस मृतक कलेवर द्वारा परम अमृतरूप विज्ञानघन मूर्छित हुआ होने से उस प्रकार के भाव का कर्ता प्रतिभासित होता है।** सामने-सामने गुलाँट मारी है। यह मृतक, वह अमृत। यह मृतक, यह अमृत। शब्द लागू किये अमृतचन्द्राचार्य ने। टीका है न! यह मृतक, यह अमृत। यह मृतक कलेवर है शरीर अभी। मुर्दा-मुर्दा। पाठ है, देखो! मृतक कलेवर पाठ है। संस्कृत टीका। उस द्वारा भगवान अमृत का कुण्ड प्रभु। आहाहा! तेरे अमृत के एक कण के अन्दर में पूरी दुनिया इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तिनके लगें, ऐसा तेरा आनन्द तुझे पड़ा हुआ है, उसके एक कण के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तिनके लगें, ऐसा अमृतस्वरूप। इस मृतक कलेवर में अमृतस्वरूप मूर्च्छित हो गया है। आहाहा! आचार्य ने गुलाँट मरकर बात की है।

मृतक कलेवर (-शरीर) द्वारा परम अमृतरूप विज्ञानघन... अमृतरूप विज्ञानघन, कभी मरे नहीं और उसमें आनन्द का पार नहीं। ऐसा भगवान अमृत से, आनन्द से भरपूर वह अपनी दृष्टि करता नहीं। मृतक कलेवर में मूर्च्छित हो गया। मरे हुए में मूर्च्छित हुआ। वह मरे हुए में मूर्च्छित, ऐसा कहते हैं। यह अभी की बात है। जीवते की करते हैं, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मृतक ही है न! क्या है? उसमें कब परमाणु की पर्याय वह जीव थी? वह तो मिट्टी है।

मृतक कलेवर द्वारा परम अमृतरूप विज्ञानघन... वापस अमृत, वह परमअमृत। अमृत का सागर भगवान आत्मा अर्थात् कि अकेला अमृतरूप और अतीन्द्रिय आनन्दरूप, ऐसा प्रभु मृतक कलेवर में अनादि से मेरा मानकर उसकी चिन्ता में पड़ा, अपने को खो बैठा। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : बोलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोलता। कौन बोलता है? वह तो धूल बोलती है। आत्मा बोलता है? मृतक कलेवर महा मुर्दा शरीर, रजकण बोलते हैं।

कहते हैं, अरे! इस मनुष्यदेह में तो कुछ सार नहीं। उस हाथी को तो दाँत भी सार। चूड़ी-बूड़ी करके पहने, ढींकणा करे। यह उसको बाल। **घुन के खाये हुए गन्ने की तरह मनुष्य-देह को असार जानकर परलोक का बोज करके सार करना चाहिए।** क्या दृष्टान्त देते हैं अब देखो! गन्ना होता है न गन्ना? उसे सियाल खा जाये। सियाल-सियाल होता है न? क्या कहलाता है वह? सियाल नहीं होता वह जानवर? लोमड़ी। गन्ना-शेरडी को खाता है न सियाल? हाँ, शूकर खा जाता है वह। यहाँ धुनि नाम पाड़ा। वरना अपने सियाल कहते हैं। वह सियाल आवे न तो खा जाये। कस रहे नहीं। चूसे तो रस रहे नहीं, परन्तु बीज है तो बोबे तो अनेक गन्ने हों। उसका चूसा हुआ हो, रस नहीं हो, रस न दे, परन्तु वह गाँठ हो न गाँठ? बोबे तो वापस अनेक गन्ने हों। सांठा अर्थात् गन्ने।

इसी प्रकार इस शरीर को। दृष्टान्त दिया है, देखो! **घुन के खाये हुए गन्ने की तरह मनुष्य-देह को असार जानकर परलोक का बोज करके सार करना चाहिए। जैसे घुनों का खाया हुआ ईख....** ईख अर्थात् शेरडी—गन्ना। **किसी काम का नहीं है, एक बीज के काम का है,...** गाँठवाला होता है न गाँठ? गाँठ न खाये और वह गाँठ होती है न, बोबे तो गन्ने हों। बाकी खाने में काम नहीं आवे। **सो उसको बोकर असार से सार किया जाता है,....** बोबे तो गन्ने हो। **उसी प्रकार मनुष्य-देह किसी काम का नहीं,....** बालपन अज्ञान में, वृद्धपन दुःख में, जवानी भोग में पूरा खाया गया शरीर। अब इस शरीर में, कहीं आत्मा में करने का इसे समय रहता नहीं। उसमें से जो कहते हैं, यह सब सड़ गया शरीर आदि उसमें।

उसमें से **जैसे घुन के खाये गये ईख को बोने से अनेक ईखों का लाभ होता है, वैसे ही असार शरीर के आधार से....** निमित्त से **वीतराग परमानन्द शुद्धात्मस्वभाव का सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप निश्चयरत्नत्रय की भावना के बल से मोक्ष प्राप्त किया जाता है,....** लो! इस गन्ने को घुन ने खायी हो। अपने सियाल कहलाता है।

सियाल चूस जाये न, कस न हो फिर अन्दर। उसकी गाँठ हो अकेली। उस गाँठ को बोबे तो उससे गन्ने होते हैं। यों ही चूसने में काम आती नहीं। इसी प्रकार यह पूरा मनुष्यदेह जीर्ण... जीर्ण... जीर्ण हो गया है। उसमें से कहते हैं कि आत्मा का कार्य यदि करना हो तो आत्मा का बीज बोबे सम्यग्दर्शन का, तो उसे केवलज्ञान होता है। बाकी यह शरीर किसी काम का है नहीं। लो, शरीर काम का नहीं तो अब स्त्री, पैसा, धूल और इज्जत। क्या होगा ऐसा परन्तु? यह किसने ऐसा किया होगा?

वह एक व्यक्ति कहता था। वह सुखलाल था न सुखलाल जीवराज। वढवाण का नहीं था? वढवाणवाले नागरभाई के भाई। वढवाण-वढवाणवाले। नागर जीवराज और सुखलाल। वह क्या कहलाता है? डीसा। डीसा में नौकरी थी न। बहुत नौकरी ४० वर्ष, ५० वर्ष पहले। ४० वर्ष पहले बड़ा ४००-५०० वेतन तब। बड़ा था बड़ा। फिर यह सब वाँचे सब। दिगम्बर के शास्त्र वाँचे। वह स्थानकवासी। वाँचे सब। गीत बनावे। कवि। फिर एक बार प्रश्न किया। यह सब बनावे और वापस प्रश्न किया। उमराला आये थे। ८६ के अन्दर। (संवत्) १९८६ में। यह भी यह सब किया किसने कि हमारे अब उपाय करना यह सब? अरे! सुखलालभाई! यह तुम बड़े वेतनदार। ४००-४०० के वेतनदार। यह तो ८६ की बात है, हों! ३७ वर्ष पहले की बात है। ३७ वर्ष। इससे पहले डीसा में बड़े थे। तब थे डीसा में बड़ी नौकरी थी। यह तुम गायन बनाते हो। पद्मनन्दि आचार्य में से गायन बनाये हुए, हों! पद्मनन्दि है न? पद्मनन्दि में से। यहाँ रस सही दिगम्बर शास्त्रों का। रस अर्थात् उसमें गायन कवि बनावे। पुस्तक बनाये हुए। परन्तु अन्दर में वह न मिले। यह किया किसने? कहे। हमारे नारणभाई के मित्र थे। दीक्षा ली थी न हमारे नारणभाई ने। कि यह किया कि उपाधि का अब हमारे उसमें से उपाय करना। परन्तु किसने किया? तूने खड़ा किया है। 'उपजे मोह विकल्प से समस्त यह संसार, अन्तर्मुख अवलोकते विलय होत नहीं वार।' तूने खड़ा किया है अज्ञान में अनादि से। भगवान स्वरूप है आत्मा का, उसे भूलकर पुण्य और पाप के विकल्प में मूर्च्छित पूरा मोह खड़ा किया है। और उसे लेकर पूरा संसार निगोद से लेकर नरक और नौ ग्रैवेयक तूने खड़े किये। मोह के कारण खड़ा किया। किसी दूसरे ने किया नहीं। करनेवाला तू और मिटानेवाला भी तू। कोई दूसरा है नहीं।

कहते हैं कि इस **शरीर के आधार से वीतराग परमानन्द शुद्धात्मस्वभाव का....** देखो! **सम्यक् श्रद्धान....** भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्यप्रभु, उसकी सच्ची अन्तर्मुख होकर सम्यक् / सच्ची श्रद्धा, उसका नाम सम्यग्दर्शन। और उसकी ओर का सम्यग्ज्ञान, वह वीतराग परमानन्द शुद्धस्वरूप का ज्ञान, उसका ज्ञान। दूसरे का नहीं। और वीतराग स्वयं। वीतराग अर्थात्? रागरहित अपना स्वरूप है, ऐसा। वीतराग अर्थात्? वीतराग हुए, वे नहीं, वह तो पर्याय में हुए। यह तो तेरा स्वरूप ही राग और आस्रव और मलिन परिणाम बिना का है। ऐसे स्वरूप का आचरण। देखो! उस शुद्धात्मस्वभाव का आचरण, यह उसका नाम चारित्र। समझ में आया? यह निश्चयरत्नत्रय कहलाता है, वह सच्चा रत्नत्रय कहलाता है। उस सच्चे रत्न से मुक्ति मिलती है। वह भगवान आत्मा शुद्ध परमानन्द की मूर्ति, वीतराग विज्ञानघन ऐसे आत्मा की अन्तर्मुख की श्रद्धा, अन्तर्मुख का ज्ञान, अन्तर्मुख का आचरण, उसे यहाँ सच्चा रत्न कहा जाता है, सच्चा रत्नत्रय—मोक्ष का मार्ग। उस रत्नत्रय से तुझे मुक्ति मिले, ऐसा है। बाकी किसी से मिले, ऐसा नहीं। समझ में आया?

रत्नत्रय की भावना के बल से.... ऐसा लिखा है न? '**ज्ञानानुचरणरुपनिश्चय-रत्नत्रयभावनाबलेन**' यह निश्चयरत्नत्रय एकाग्रता। कहो, समझ में आया? **और निश्चयरत्नत्रय का साधक जो व्यवहाररत्नत्रय उसकी भावना के बल से स्वर्ग मिलता है,....** और साथ में जहाँ तक पूर्ण वीतराग, यह दोनों रखे हैं न इसमें? स्वर्ग-अपवर्ग दोनों। साधक व्यवहाररत्नत्रय से स्वर्ग और निश्चय से मोक्ष। समझ में आया? देखो, अन्दर है यह। '**निश्चयरत्नत्रयभावनाबलेन**' बस इतना। '**तत्साधकव्यवहाररत्नत्रय-भावानाबलेन**' अर्थात् एक का फल स्वर्ग और एक का फल अपवर्ग। अपना शुद्धस्वरूप पूर्णानन्द अखण्ड अभेद स्वरूप एकरूप आत्मा है अन्दर। उसके अन्तर में सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आचरण, यह तो साक्षात् मुक्ति का कारण। संसार के जन्म-मरण को मिटाने का कारण। परन्तु इसके साथ जरा पूर्ण सर्वज्ञ आत्मा न हो, तब तक उसे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, उनकी श्रद्धा, उनका विनय, शास्त्र का चिन्तवन, पठन, ऐसा नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, ऐसा विकल्प / राग होता है। उस राग के फलरूप से उसे स्वर्ग मिलता है। राग है, वह पुण्य है तो उसके फल में स्वर्ग मिले।

निश्चय स्वभाव के फल में मुक्ति मिले। दोनों के फल अलग और दोनों के कारण भी अलग। समझ में आया?

इसमें कितने काल में यह समझ में आता होगा? कोई कहे भाई, हम कितना काल निवृत्ति लें तो समझ में आये? छोटाभाई! धन्धा करने गये वहाँ अवधि करके गये हैं? कि कितना काल हमारे धन्धा करना? ऐसी अवधि की है कभी? भाई! यह ५० लाख हों तब यह बन्द करना, ऐसी अवधि की है कभी? वे नरभेरामभाई एक बार यहाँ कहते थे। यह कामाणी नरभेरामभाई कहते थे कि भाई! अपने तो बस पाँच लाख हों न, अपने को बहुत नहीं चाहिए। हमारे वे जसाणी हैं न, जसाणी यहाँ मोटर लेकर आये थे एक बार। हमारे जसाणी जैसा होना नहीं, अपने को पाँच लाख बहुत हुए। पाँच हुए, पचास हुए, साठ हुए तो भी अभी चैन नहीं उसे। कोई उससे सन्तोष होगा? लकड़ियाँ अग्नि में डालने से अग्नि बुझेगी? धग... धग... सुलगेगी वह तो। इसी प्रकार तृष्णा... तृष्णा... तृष्णा से सन्तोष होगा? आत्मा में सन्तोषस्वरूप आनन्दमूर्ति है, उसकी दृष्टि करने से सन्तोष होगा। कुछ चाहिए नहीं। अभी राग हो जरा। अस्थिरता है, इसलिए राग हो, परन्तु दृष्टि में कुछ चाहिए नहीं। यह राग आवे, वह भी नहीं चाहिए, राग का फल भी नहीं चाहिए। चाहिए तो यह स्वभाव भगवान आत्मा भरपूर यह मुझे चाहिए है और उसकी शान्तिरूप का फल मुझे चाहिए है। ऐसी दृष्टि किये बिना उसके कल्याण का एक अंश भी कभी शुरु हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वहाँ अवधि मारते होंगे दुकान की? कि इतने काल हमारे दुकान में रहना।

मुमुक्षु : पाँच करनी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच करनी है। जैसे पैसा बढ़े, वैसे कषाय सुलगे। अधिक डालो एक दुकान कपड़े की, डालो एक कपास की, डालो एक कपासिया की। निहालभाई! ऐसा होता है या नहीं?

कहते हैं, यह भगवान आत्मा की महान दुकान अन्दर पड़ी है महा स्वभाव। जिसमें चैतन्य रत्नाकर, जिसमें रत्न पड़े हैं आनन्द, ज्ञान, शान्ति आदि। आत्मवस्तु। वस्तु है न? पदार्थ है या नहीं आत्मा? तो वस्तु है, उसमें अनन्त गुण पड़े हैं शक्ति से। उन अनन्त गुण का एकरूप ऐसा भगवान, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और लीनता द्वारा ही मोक्ष

का उपाय होता है। बीच में व्यवहाररत्नत्रय आवे, देव-गुरु की श्रद्धा, छह द्रव्य की श्रद्धा, नौ तत्त्व की व्यवहारश्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम और शास्त्र का ज्ञान, ऐसे शुभराग से स्वर्ग मिले और शुद्धता से संवर और निर्जरा हो, शुद्धि बढ़े, फिर आगे जब उस दूसरे भव में जाये, तब पूर्ण शुद्धि करके राग को छेदकर केवल (ज्ञान) प्राप्त करे तो मुक्ति हो। कहो, समझ में आया?

तथा परम्परा से मोक्ष होता है। देखो! व्यवहार से। परम्परा अर्थात् यह। वह राग है, फिर भविष्य में अभाव करेगा। पूर्णानन्दस्वरूप में स्थिर होगा, तब उसकी मुक्ति होगी। जब तक राग है, तब तक राग का फल स्वर्ग मिलेगा। धर्मी जीव आत्मा की दृष्टि धर्म किया, स्वभाव—भान हुआ, परन्तु पूर्ण सर्वज्ञदशा नहीं हुई, उसे बीच में राग रह जाय तो वह मरकर कहाँ जायेगा? स्वर्ग में ही जायेगा। समझ में आया? स्वर्ग में जाये, वह धर्मशाला है वहाँ। वह वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर, पूर्ण करके परमात्मा हो जायेगा। समझ में आया?

यह मनुष्य-शरीर परलोक सुधारने के लिये होवे तभी सार है, नहीं तो सर्वथा... सर्वथा असार है। यह असार। घड़ीक में दगा दे। यह क्या हुआ? कुछ खबर नहीं पड़ी। और ऐसा कहे। ऐसा कहे न? चिमनभाई! क्या हुआ? कुछ खबर नहीं पड़ी। कुछ खबर नहीं क्या हुआ। एकदम सो गया, एकदम बैठे थे और ऐसा हो गया। अब हुआ, वह देह की स्थिति पूरी होने की थी उस काल में। तीन काल—तीन लोक में बदले नहीं। यह दगा देगा एक दिन, तू जाने कि अभी सो जायेगा। वहाँ सोता हुआ जागेगा नहीं और जागता सोयेगा नहीं। एक दिन तो आयेगा या नहीं ऐसा? कि सोता उठा होगा, वह सोयेगा नहीं और सोया होगा वह उठेगा नहीं। ऐसे के ऐसे मर जायेंगे कितने ही सोते हुए। बड़ा राजा था न वह जॉर्ज नहीं? देखो न! रात्रि में नींद में मर गया। नहीं? उसके साढ़े तीन करोड़ के बँगले में था। सवेरे देखा तो मुर्दा। साढ़े तीन करोड़ का बँगला था उसका। ऐसे सवेरे देखो तो कुछ नहीं मिलता। ऐई...! बड़े-बड़े डॉक्टर जिसे देखनेवाले, उसे इतनी खबर नहीं पड़ी अनुमान से कि यह रात्रि में समाप्त हो जायेगा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कोई साथ में सोये न—बैठे साथ में रहे। कोई नहीं था।

सवेरे उठाया, वहाँ मुर्दा पड़ा था। साढ़े तीन करोड़ का बँगला था। उसके प्रमाण में कितनी ऋद्धि होगी? जॉर्ज गुजर गया तब। उठो। उसे तो नरक में जाना हो। अन्यत्र तो जाना हो नहीं। लोहे का भार, बड़ा लोहे का गोला पानी में छोड़ो तो नीचे ही जाये। इसी प्रकार जिसने माँस खाया, शराब पी, मछलियाँ खायीं, महा पाप। उस पाप का बोझा बढ़ा, वह पानी नीचे गया, नीचे नरक में ही जाये। दुनिया ऐसा माने कि आहाहा! खम्मा... खम्मा... खम्मा, ऐसे बाहर से करे। निकाला होगा तो बहुत इससे निकाला होगा न! गाड़ने के लिये। गाड़े नहीं, उस पेटी में रखे उसे। पेटी में रखे, पेटी में रखे। और उसका बड़ा हो न वह दण्ड बड़ा हो ऊँचा रत्न का। वह सब रखे। ऐसा रखे और ऐसा रखे। वे भाईसाहेब नीचे बैठे हों।

मुमुक्षु : उसके स्थान में पहुँच गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसका स्थान हो, वहाँ पहुँचा नीचे नरक में। यह दुनिया के पर्दे तो देखो! ओहोहो! एक क्षण में खम्मा और दूसरे क्षण में नरक। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती जैसा लो न! ७०० वर्ष का आयुष्य और छियानवें हजार स्त्रियाँ, सोलह हजार देव सेवा करे। मरकर नरक में। अन्त में रत्न के उसमें सो रहा था पलंग में। क्या कहलाता है? पलंग। परन्तु महापापी। पाप बहुत किये भोग के, विषय के, हिंसा के। वह वहाँ सोया हुआ उसमें। खम्मा अन्नदाता, देव कहे। यहाँ से सातवें नरक में गया। ३३ सागरोपम। उसके वर्ष गिनो तो पार नहीं होता। आहाहा! ३३ सागरोपम। उसके दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम। एक पल्योपम के प्रमाण में आयुष्य के वर्ष असंख्य अरब। अब यहाँ ७०० वर्ष। एक मिनिट में असंख्य अरब वर्ष का दुःख। एक मिनिट का चक्रवर्ती का सुख माना हुआ, उसके असंख्य वर्ष का सातवें रव-रव नरक का दुःख। अरे! इसने कभी हिसाब भी कहाँ किया है? कि यह क्या हुआ परन्तु? यह क्या है यह? ७०० वर्ष रहा। अभी अब नरक में ३३ सागर में है। अब अभी मरकर गया है न। अभी थोड़ा काल गया। ३३ सागर। नीचे रव-रव नरक है सातवाँ नरक। पाँच पईठा है। ओहोहो! उसकी एक पल वह जाये उसे। दुःख की तो रात बड़ी पड़ती है न, अभी लगता है या नहीं बहुतों को? रात में दुःख आवे तो मुझे यह रात बड़ी हो पड़े। रात कहीं बड़ी होती नहीं, परन्तु नींद नहीं आती। क्यों, जैचन्दभाई!

मुमुक्षु : सच्ची बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात है, देखो! नींद नहीं आती। अब अकेले दो व्यक्ति। अब कोई पूछनेवाला नहीं मिले वहाँ। सब कहाँ से पूरी रात बैठे? जागरण करने बैठे? हाय... हाय... रात बड़ी हो पड़ती है। रात बड़ी होती होगी? कुछ होती नहीं। रात तो है, उतनी है, परन्तु प्रतिकूलता का काल उसे लम्बा-लम्बा लगता है। ऐसे प्रतिकूल लम्बा। ऐसे नरक के दुःख। आहाहा! चार गति के दुःख, प्रभु! तुझे उकताहट नहीं आयी अभी? आता है। योगसार में आता है न? 'चार गति दुःख से डरी...' वह। योगसार में आता है। चार गति के दुःख से डरकर। अरे! प्रभु! चारों ही गति, हों! स्वर्ग का दुःख। धूल में भी वहाँ सुख नहीं। वहाँ भी आकुलता-अंगारा सुलगते हैं। पंचास्तिकाय में लिया है न! पण्डितजी! वह पंचास्तिकाय में (आता है) कि पुण्य बाँधकर देव के अंगारे के सुख भोगेगा वहाँ। जलेगा, सुलगेगा। गर्म घी जैसे गर्म घी। घी कहते हैं न गर्म। जलता हुआ घी छिड़के, वैसे इस पुण्य के फल में जलता हुआ घी है वहाँ। आहाहा!

और पंचास्तिकाय में ऐसा लिया है न, भाई! दुःख के अंगारों में सीकेगा। यहाँ पुण्य बाँधा है समकिती ने। मुनि आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी, परन्तु अभी थोड़ा राग बाकी रह गया। यह जो कहा वह अभी। देव-गुरु-शास्त्र का राग। सर्वज्ञ हुए नहीं। उस राग के फल में अग्नि के अंगारे जैसा देवों के दुःख को भोगेगा। कहो, समझ में आया? आहाहा! शुभभाव के फल में ऐसे स्वर्ग, वह अग्नि के दुःख हैं। कहो, अब यह सब पैसेवाले कैसे होंगे? ऐई! मलूकचन्दभाई! सुखी होंगे या नहीं? ऐसा होगा? कल नाम आया था उसमें अन्दर पच्चीस हजार दिये पूनमचन्द ने। तो अन्दर से प्रसन्नता होगी या नहीं? लड़का तो मेरा है न, कहेंगे।

मुमुक्षु : लड़का तो इनका अच्छा....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन काल में नहीं मिलता। क्या इनकार करे? कल आया था प्रजातन्त्र में। कोई लाया था। आज कौन लाया था, नहीं? हें? यह चन्दुभाई अपने। वहाँ पूनमचन्द ने अभी पच्चीस हजार दिये। प्रजातन्त्र में आया था। अब वहाँ दो करोड़, ढाई करोड़ में पच्चीस हजार वहाँ कहाँ आवे? धूल बहुत इकट्ठी हो गयी अन्दर। दुःखी... दुःखी... दुःखी। मलूकचन्दभाई! ऐसा होगा या नहीं? सुखी होगा वह?

मुमुक्षु : इच्छा के कारण से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ममता के कारण से। इच्छा के कारण से किसने कहा ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या जाना इसमें होली ? यह मरते श्मशान में पाँच हजार लोग इकट्ठे हों। कितने ओळिया आये थे ? अच्छा न मरण ? होओ ऐसा प्रतिदिन। मेरा पुत्र मरा पच्चीस वर्ष का और पाँच हजार लोग श्मशान में इकट्ठे हुए थे। परन्तु वह क्या है ? तू किसकी महिमा करता है ? चुन्नीभाई ! ऐसा होता है न, बड़े लोग हों तब। ओहोहो ! पाँच हजार लोग इकट्ठे हुए थे। क्या है परन्तु अब ? उसमें उसे क्या ? परन्तु मरे हुए को क्या ? वह तो मरकर गया कहीं भटकने। चार गति में कहीं पार नहीं मिलता। किस जगह गया और कहाँ जायेगा ? आत्मा का भान नहीं होता, आत्मा को शरण नहीं मिलती, उस वस्तु का बहुमान नहीं होता, चिदानन्द आत्मा कौन है, उसकी कीमत नहीं होती। यह कीमत बाहर की करने निकल गया चार गति में। बाहर की कीमत लेकर गया, बाहर में भटकेगा।

भगवान आत्मा ऐसे सच्चिदानन्द प्रभु, ओहो ! जिसे उसकी कीमत हुई उसे अपने में पुण्य परिणाम आवे, उसकी कीमत उड़ गयी। भले रहे उसे फल आवे स्वर्ग में, परन्तु वह अंगारेरूप से उसे दुःख लगेगा। यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। मेरा आनन्द मेरे पास है। यह पुण्य के फल स्वर्ग के, वे दुःखरूप हैं। कहो, समझ में आया इसमें ? यह गन्ने का भाग, कहते हैं ऐसे गन्ने को चूस लिया हो घुना ने। उसमें से बोबे तो उगेगा, नहीं तो चूसने में काम नहीं आयेगा। बालपना, वृद्धापना जाड़ा जैसा। गन्ना-गन्ना होता है न ? गन्ना। नीचे वह हो भोथुं। भोथुं अर्थात् जाड़ा। ऊपर आड़ा हो आड़ा। खारा। बीच का भाग थोड़ा हो, उसमें सियाल खा गया हो। अब उसमें सार उसमें बीच में जवानी अवस्था पच्चीस वर्ष की। बीस वर्ष मुफ्त गये, बीस वर्ष के बाद से ६० से ८० मुफ्त जायेंगे। इस बीच के २० वर्ष रहे, उसमें जो भोग में, विषय में, राग में, नींद में, खाने में, पीने में गये। अब समय कहाँ रहा तेरे लिये ?

यह कहते हैं कि प्रत्येक समय तुझे समय है, ऐसे देख तो। परन्तु ऐसे देखने की

नजर करता नहीं, निवृत्त होता नहीं। मैं एक आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, जिसके मेरे गुणगान परमात्मा की वाणी में पूरे पड़ते नहीं। ऐसा मैं, उसकी प्रतीति कर, विश्वास ला, विश्वास ला। उसका ज्ञान कर और उसमें स्थिरता, यही मेरा कल्याण है। ऐसी प्रतीति बिना तेरा रास्ता कभी सुख का निकलेगा नहीं। कहो, समझ में आया? समय कहाँ ले, परन्तु समय कहाँ ले? ६० वर्ष का आयुष्य हो, ८० का हो तो भी क्या? २० वर्ष बालक में जाये, २० वर्ष उसमें जाये ६० से। अब रहे बीच में ४० में। उसमें ४० में जाये २० नींद में। आधे। आहाहा! अब रहे २०। इन २० में जाये कोई रोग में, कुछ कमाने में, कुछ भोग में, कुछ कोई-कोई मरे, उसमें रोने में। अब तेरे लिये क्या रहा? ऐई! छोटाभाई! बात बराबर है यह? यह बनिया व्यापार करे, तब हिसाब लिखते हैं या नहीं? कि क्या किया, उसका हिसाब लिखते हैं यह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हिसाब। आहाहा! आज आया नहीं था उसमें? वह आता है न, तुमने नहीं डाला था? 'जिन्दगी में कितना कमाया रे जरा हिसाब लिखना।' अन्त में तो लकड़ी और कण्डा और उठाये सवेरे से वह बड़ा पाणा। पाणा अर्थात् पत्थर। ऐसा आता है, भजन में आता है। आता है न? सवेरे से शाम तक उठाये पत्थर। यह व्यापार के पत्थर, बोरियाँ यह दाना और यह अमुक, हीरा और माणेक पत्थर उठाये पूरे दिन। भगवान आत्मा कौन है, उसकी नजर करने का समय मिला नहीं। हाय... हाय... कहाँ जाऊँगा? मरते रोवे, हों! अरेरे! कुछ किया नहीं। अरर! कहते थे बहुत, हों! कुछ हुआ नहीं, कुछ हुआ नहीं। हाँ, जाओ अब कुछ हुआ नहीं उसमें भटकने अब।

कहते हैं कि यह मनुष्य (जन्म में) प्राप्त करनेयोग्य हो तो भेदाभेदरत्नत्रय। स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और आचरण और या देव-गुरु, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, ज्ञान और उनकी भक्ति आदि का भाव—यह दो अन्दर आते हैं। निश्चय हो वहाँ व्यवहार आता है। पूर्ण न हो तब तक। परन्तु उसका फल स्वर्ग है और इसका फल मुक्ति है। दो इसकी नजर में हो। उसमें मनुष्य को सफल करने का उपाय एक ही है। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

गाथा - १४८

अथ देहस्याशुचित्वानित्यत्वादिप्रतिपादनरुपेण व्याख्यानं करोति षट्कलेन तथाहि–

२७१) उव्वलि चोप्पडि चिट्ठ करि देहि सु–मिट्ठाहार।
देहहँ सयल णिरत्थ गय जिमु दुज्जणि उवयार।।१४८।।

उद्वर्तय म्रक्षय चेष्टां कुरु देहि सुमुष्टाहारान्।
देहस्य सकलं निरर्थं गतं यथा दुर्जने उपकारः।।१४८।।

उव्वलि इत्यादि पदखण्डनारुपेण व्याख्यानं क्रियते। उव्वलि उद्वर्तय कुरु चोप्पडि तैलादिम्रक्षणं कुरु, चिट्ठ करि मण्डनरुपां चेष्टां कुरु, देहि सु–मिट्ठाहार देहि सुमृष्टाहारान्। कस्य। देहहं देहस्य। सयल णिरत्थ गय सकला अपि विशिष्टाहारादयो निरर्थका गताः। केन दृष्टान्तेन। जिमु दुज्जणि उवयार दुर्जने यथोपकारा इति। तघथा। यधप्पयं कायः खलस्तथापि किमपि ग्रासादिकं दत्त्वा अस्थिरेणापि स्थिरं मोक्षसौख्यं गृह्यते। सप्तधातु मयत्वेनाशुचिभूः तेनापि शुचिभूतं शुद्धात्मस्वरुपं गृह्यते निर्गुणेनापि केवलज्ञानादिगुणसमूहः साध्यत इति भावार्थः। तथा चोक्तम्– ''अथिरेण थिरा मलिणेण णिम्मला णिग्गुणेण गुणसारं काएण जा विढप्पइ सा किरिया किण्ण कायव्वा।।''।।१४८।।

आगे देह को अशुचि, अनित्य आदि दिखाने का छह दोहों में व्याख्यान करते हैं–

उबटन मर्दन करें सजायें या देवें स्वादिष्टाहार –
इस तन को, पर सभी निरर्थक जैसे दुर्जन प्रति उपकार।।१४८।।

अन्वयार्थ :– [देहस्य] इस देह का [उद्वर्तय] उबटना करो, [म्रक्षय] तैलादिक का मर्दन करो, [चेष्टां कुरु] श्रृंगार आदि से अनेक प्रकार सजाओ, [सुमृष्टाहारान्] अच्छे–अच्छे मिष्ट आहार [देहि] दो, लेकिन [सकलं] ये सब [निरर्थं गतं] यत्न व्यर्थ हैं, [यथा] जैसे [दुर्जने] दुर्जनों का [उपकाराः] उपकार करना वृथा है।

भावार्थ :– जैसे दुर्जन पर अनेक उपकार करो वे सब वृथा जाते हैं, दुर्जन से कुछ फायदा नहीं, उसी तरह शरीर के अनेक यत्न करो, इसको अनेक तरह से पोषण करो, परंतु यह अपना नहीं हो सकता। इसलिये यही सार है कि इसको अधिक पुष्ट नहीं

करना। कुछ थोड़ा सा ग्रासादि देकर स्थिर करके मोक्ष साधन करना; सात धातुमयी यह अशुचि शरीर है, इससे पवित्र शुद्धात्मस्वरुप की आराधना करना। इस महा निर्गुण शरीरसे केवलज्ञानादि गुणों का समूह साधना चाहिये। यह शरीर भोग के लिये नहीं है, इससे योग का साधनकर अविनाशी पद की सिद्धि करनी। ऐसा कहा भी है, कि इस क्षणभंगुर शरीर से स्थिरपद मोक्ष की सिद्धि करनी चाहिये, यह शरीर मलिन है, इससे निर्मल वीतराग की सिद्धि करना, और यह शरीर ज्ञानादि गुणों से रहित है, इसके निमित्त से सारभूत ज्ञानादि गुण सिद्धि करने योग्य हैं। इस शरीर से तप संयमादि का साधन होता है, और तप संयमादि क्रिया से सारभूत गुणों की सिद्धि होती है। जिस क्रिया से ऐसे गुण सिद्ध हों, वह क्रिया क्यों नहीं करनी, अवश्य करनी चाहिये।।१४८।।

गाथा-१४८ पर प्रवचन

आगे देह को अशुचि, अनित्य आदि दिखाने का छह दोहों में व्याख्यान करते हैं—

२७१) उव्वलि चोप्पडि चिट्ठ करि देहि सु-मिट्ठाहार।
देहहँ सयल णिरत्थ गय जिमु दुज्जणि उवयार।।१४८।।

यह '**यद्यप्ययं कायः खल**' '**खल**' शब्द पड़ा है न, देखो अन्दर संस्कृत में। नीचे लाईन संस्कृत। वह क्या अर्थात् '**कायः**' अर्थात्? '**कायः खल**' '**खल**' समान ऐसा? '**खल**' अर्थात् क्या वहाँ? '**यद्यप्ययं कायः खलखलस्तथापि किमपि ग्रासादिकं दत्त्वा**' यह '**खल**' अर्थात् क्या? उसमें है पण्डितजी? यह '**कायः खल**' है न? दुष्ट। वह सज्जन की उपमा देते हैं न। यह '**खल**' है न '**खल**'? '**यद्यप्ययं कायः खल**' यह १४८ की अन्तिम संस्कृत लाईन। १४८। अन्तिम संस्कृत लाईन है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो बराबर है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह यह। यह तो बराबर है। '**ग्रासादिकं दत्त्वा**' '**खल**' है

'**खल**' ?'**खल**' अर्थात् यह खल जैसा है ऐसा ? दुष्ट जैसा है। वह दुष्ट; जैसे सज्जन है, वैसे यह काया दुष्ट जैसी है।'**खल**' की उपमा दी है। है ? आहाहा!'**खल**''**खल**' यह '**खल**' की उपमा दी है।

कहते हैं, **इस देह का...** यह उवटणा करो। खल। मैथी और हल्दी चोपड़ा करो। और रुपये-रुपये के साबुन, दो-दो रुपये के साबुन, नीम के साबुन आते हैं न चमड़ी को बहुत अनुकूल। चमड़ी को वह बाधक न हो। नीम के रसवाले आते हैं न ? नीम के साबुन होते हैं। छोटाभाई! वे वापस चमड़ी बिगाड़ते नहीं। वरना वह चमड़ी को तराड करे, कुछ अमुक करे। चाहे जितना उबटन कर परन्तु एक बार फू हो जायेगा। तेरे पास एक क्षण नहीं रहेगा। देखो, ऐसा कहते हैं। तेरा आत्मा अन्दर त्रिकाल पड़ा है, उस पर तू नजर करता नहीं।

यह **उबटना करो, तैलादिक का मर्दन करो,...** सवेरे उठकर कसरत करे, तेल चोपड़े बहुत-बहुत ऐसा ऊँचा-नीचा करे। चाहे जो कर। एक क्षण में फू... श्मशान की राख हो जायेगा। बापू! यह तुझे दगा देगा, हों! यह विश्वास करनेयोग्य इस दुष्ट के साथ नहीं है। दुष्ट की उपमा देंगे, देखो! **तैलादिक का मर्दन करो, शृंगार आदि से अनेक प्रकार सजाओ,... 'चेष्टां कुरु'** सवेरे तेल चोपड़कर ऐसे देखे, ऐसे देखे, ऐसे देखे। दर्पण में देखे न उठकर सवेरे ? नहा-धोकर वस्त्र बराबर बाल-बाल व्यवस्थित करके, कपड़े-बपड़े की बराबर वह हो न ऐसे व्यवस्थित ? ऐसी व्यवस्थित करके वह अप-टू-डेट होकर बाहर निकले ऐसे। हाथ में बड़ी लकड़ी ठीक सी, चाँदी की ऊपर। क्या है ? यह मुर्दा चला मुर्दा। ऐई! जैचन्दभाई! आहाहा! भगवान! तू देह में चाहे जितना कर न, एक बार ऐसे क्षण में पड़ जायेगा। हाय! लो, यह आत्मा है, इसलिए ऐसी रहती है शरीर की गर्दन ? नहीं। वह गर्दन तो उसके कारण से (रही है)। वहाँ आत्मा गया है ? आहाहा!

कहते हैं, यह **अनेक प्रकार सजाओ,...** सजाओ। सजाओ समझे न ? शृंगार। वस्त्र-कपड़े उसमें इत्र... इत्र डाले। आधी शीशी डाले, अच्छी ऊँची शीशी हो न इत्र की ? उसे चोपड़े-डाले। यहाँ डाले... यहाँ डाले। सुगन्ध आवे अन्दर। कहीं जाये तो

सुगन्ध आवे अन्दर। लो! '**सुमृष्टाहारान्**' **अच्छे-अच्छे मिष्ट आहार दो,...** यह बादाम के मैसूर खिलाओ इसे, पिस्ता के पापड़ और मिर्च का अथाणा। मिर्च-मिर्च। मिर्च का अथाणा होता है न? चुनीभाई! वह चरपरा नहीं आता? वह मिर्ची होती है न मिर्ची? क्या? काली मिर्च। उस काली मिर्च का अथाणा होता है अपने। मलबार से डिब्बा आवे। हमने तो देखा है न सब। एक घर में भिक्षा के लिये गये थे। वे गृहस्थ लोग बड़े लाखों बहुत। सीधा निकाला मिर्ची का। अरे! क्या है यह? अरे! कहा यह गोल अथाणा, इसमें जीवांत है। यह वह कहीं...! वहाँ जामनगर में। वह नहीं वलम सेठ। वलमजी सेठ है खाण्ड के व्यापारी। बड़ा व्यापारी। खाण्ड के बड़े व्यापारी। इसलिए वहाँ डिब्बा पूरा मिर्च के अथाणे का बरनी-बरनी। होती है न मिर्ची की बरनी भरी थी पूरी भरी हुई। निकाली और ऐसे लो महाराज! अरे! कहा यह छुआ नहीं जाता। यह खाया नहीं जाता, यह लिया नहीं जाता। यह तो एकान्त जीवांत है यह तो। खार अकेली सड़ी हुई। वह मिर्ची का अथाणा ऐसे चप-चप खाता हो। मिठास, चरपराई, खारापन, सब इकट्ठा हो अन्दर। नमक डाला हो, खारा हो और साथ में सड़ा हुआ हो थोड़ा। सड़ा हुआ हो। उसमें बादाम के वापस मैसुख हो, बादाम के मैसुख और पिस्ता के पापड़। पिस्ता होते हैं न, उसके पापड़। हीरा के थाल और... ऐसे बैठा था। ओहोहो! यह चाहे जैसे कर, कहते हैं कि एकबार मर जायेगा, इसी प्रकार कि कोई सामने नहीं देखे देह। ले। यह दगा देगी, यह दुर्जन है, ऐसा कहते हैं। देखो! दुर्जन की उपमा दी है। '**खल**' '**खल**' कहा न? आहाहा!

इतने वर्ष से सम्हाल की और अब तो कुछ मुझे चैन आने दो थोड़ा। अरे! मुझे यहाँ कुछ होता है, हों! क्या होता है? कर न। श्वास खींच न। खींचा अब तूने। यहाँ होता है मुझे, हों! यहाँ होता है। जागता श्वास यहाँ से हट गया। कहा न, हमारे पटेल थे न? शिवा पटेल थे। खाया ठीक से भले प्रकार। यह सिंकी हुई मूंगफली का, सिंकी हुई कहलाती है न? यह कच्ची मूँगफली, उसके सिंकी हुई खाये। दो-चार केले खाये। और यहाँ के दाल-भात सब्जी रसोई की ऊँची होती है बहुत, बचुभाई के हाथ की। इसलिए दाल, भात, रोटी खाई ठीक से दाल, भात, सब्जी, वह खाया, साथ में बदहजमी, रूपचन्दभाई! और कुछ-कुछ ऐसा हुआ कुदरती। यहाँ थे एक उन वल्लभ पटेल के

गाँव के। करमसद के। हमारे... वे अगास में रहते थे पहले। फिर यहाँ दूसरे वर्ष से यहाँ रहते थे। ऐसा हुआ। कौन जाने कैसे हुआ? यह खाया इकट्ठा यहाँ से श्वास हट गया, नाभि से श्वास हटा एकदम। कुछ दूसरा नहीं, हों! न हो दस्त, न हो उल्टी। नीचे बैठे थे ऐसे। मैं गया, वहाँ शाम को घूमता हूँ न, नीचे बैठे थे। कैसे पटेल? कहे, अन्त क्रिया। परन्तु किसकी अन्त क्रिया? बैठे हो, कुछ नहीं न। ऐसा ही बोले। अन्तिम अन्त क्रिया मेरी। परन्तु क्या है? कुछ नहीं और खाकर आये हो न! श्वास छूट गया यहाँ से, श्वास यहाँ से हट गया है। नाभि से श्वास का डोरा हट गया है। अन्तिम लगता है, मेरी अन्त क्रिया है अन्तिम। परन्तु नीचे बैठे हुए कुछ नहीं होता। बस! अब यह अन्तिम श्वास ही उठा है। यहाँ से हट गया श्वास। खाकर आया और खाकर आये। बड़ा लट्ठ जैसा शरीर, हों! उस श्वास ने यहाँ से दौरा छोड़ दिया एकदम। नाभि से जो ऐसे चलता है, वह नीचे जो ठेठ जाता था, वह नहीं गया। एक दोराबार ऐसे आगे ऊँचा रह गया। श्वास ने रास्ता छोड़ दिया है, मेरी अन्तिम क्रिया। अरे! परन्तु पटेल क्या बोलो? वह ३६ घण्टे रहा। ऐसा का ऐसा ३६ घण्टे श्वास।

ऐई..! कितनी सम्हाल की और यह क्या किया? बैठे थे। कुछ नहीं होता, हों! वस्त्र-वस्त्र निकाल डालो पटेल, कहा। अब यह तैयारी हो गयी। दोरा-बोरा यहाँ पहना हुआ न जरा। वह वस्त्र निकाल डालो अब। क्योंकि यह तो घण्टा भर। अभी बैठे थे, कुछ नहीं होता। निकाल डालो यह। अब यह तैयारी हो गयी है कहा शरीर छूटने की। दगा दे तब ऐसे दे। वह तो और ३६ घण्टे रहे। एक आधे मिनिट। यह चाहे जितना कर परन्तु आत्मा का यदि नहीं किया, साधा नहीं तो यह दगा देगा और यह भाव नरक में ले जायेगा।

कहते हैं, यह **अच्छे-अच्छे मिष्ट आहार दो,...** कहो, समझ में आया? रस और पूड़ी, घी में तली हुई पूड़ियाँ और रस, वह ऐसा ऊँचा मीठा। आहाहा! उसमें पतरवेलिया— अरबी के पत्ते के पतरवेलिया होते हैं, वे तीनों मीठे। खा-खाकर... यह चाहे जैसा कर कहते हैं, ले। **यह सब यत्न व्यर्थ हैं,...** यह तेरे यत्न व्यर्थ जायेंगे, मुफ्त में जायेंगे। पाप लगेगा मुफ्त में और उसमें कुछ नहीं होगा। वहाँ तो होना होगा, वह होगा। तेरी कल्पना के कारण शरीर में फेरफार हो, हराम बात है। शरीर की अवस्था जिस समय में जिस

प्रकार से होनेवाली है वह हुआ ही करती है। तेरी कल्पना व्यर्थ जायेगी। यह बराबर होगा? परन्तु किस प्रकार? यह बराबर हो तो इसके प्रति ममता छोड़ दे। ऐसा बराबर है। बराबर करके फिर वहाँ ममता रखकर, यह दुःख है, व्यवस्थित नहीं देते। व्यवस्थित दे तो चैन दे, ऐसा होगा? जैचन्दभाई! वह व्यवस्थित हो तो चैन दे, यही मूढ़ता है, कहते हैं। घड़ीक में बदल जाये। यह रगतग हो गयी। क्या हुआ? यह मुख नहीं फिरता ऐसे दाढ़? फिर इकट्ठा नहीं होता। ऐसे उबासी खाये, इकट्ठा नहीं होता यह। मुख फट जाता है न? बापू! वह तो जड़ है। उसकी पर्याय होनेवाली है, वह होगी। तेरा विकल्प करना, वह चिन्ता भी व्यर्थ जायेगी। तू सम्हाल रख तो रहे, इस बात में एक भी प्रतिशत सच्चा नहीं है। बराबर है या नहीं? छोटाभाई! यह देखा न बालुभाई का, देखा या नहीं?

मुमुक्षु : सबको ऐसा ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको ऐसा ही होता है। घड़ीक में कहाँ, आहाहा! फू। खबर भी नहीं था, क्या होगा सवेरे? आहाहा!

कहते हैं, **उपकार करना वृथा है।** यह **दुर्जनों का उपकार करना वृथा है।** देखो! जैसे दुर्जन का उपकार करना वृथा है, उसी प्रकार यह दुर्जन जैसा शरीर, इसका उपकार करना व्यर्थ में जायेगा तेरा, कहते हैं। यह दुर्जन जैसा शरीर है। ऐसी उपमा देकर उसे वैराग्य कराते हैं। भाई! इसकी चिन्ता कर न, बापू! तेरे आत्मा की। यह चिन्ता यहाँ मांडी, उसकी कर न। इस ओर चिन्ता अर्थात् एकाग्र हो न! ज्ञानानन्द प्रभु पूरा पड़ा है। तेरी जितनी एकाग्रता की चाहिए, उतनी शान्ति आयेगी। जितना फव्वारे को दबायेगा, उतना पानी निकलेगा। इसी प्रकार भगवान आत्मा की दृष्टि करके जितना एकाग्र होगा उतना अन्दर में से आनन्द आयेगा। वह अन्यत्र कहीं से मिले, ऐसा नहीं है। इसलिए आत्मा का ज्ञान कर और शरीर की चिन्ता वृथा व्यर्थ छोड़ दे, ऐसा इसमें कहने का आशय है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ कृष्ण ४, शनिवार
दिनांक- १७-०७-१९६५, गाथा - १४८, १४९, प्रवचन-१७२

यह परमात्मप्रकाश, दूसरा भाग है। १४८ गाथा। अब यह अन्तिम गाथायें हैं न। पीछे का भाग है, इसलिए इस शरीर की बात करते हैं। मुख्यरूप से मुनि को लक्ष्य करके है। सबको लक्ष्य करके यह समझना। यह शरीर भी दुर्जन है, अब तू उसे पोसेगा तो कहीं तेरी कल्पना प्रमाण रहेगा नहीं। परपदार्थ को तुझे क्या करना है? ऐसा कहेंगे।

भावार्थ—शरीर जैसे दुर्जन पर अनेक उपकार करो, वे सब वृथा जाते हैं,.... कहो, समझ में आया? चाहे जितना उपकार करे दुर्जन पर, वह तो उसका बदला दिये बिना रहेगा नहीं। वह कहीं उपकार मानता नहीं, वह कुछ समझता नहीं। **दुर्जन से कुछ फायदा नहीं, उसी तरह शरीर के अनेक यत्न करो,....** यत्न, पुरुषार्थ करो राग-द्वेष का, वह तुझे पाप लगता है। परन्तु इससे शरीर में कुछ फेरफार होता है, ऐसा नहीं है। यह बराबर आया। यह तो अच्छा था, तब भी नहीं होता था, ऐसा कहते हैं। अभी की नहीं।

मुमुक्षु : तीनों काल में?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जब अच्छा था न, तब कल्पना करके ऐसे ऊँचे-ऊँचे खिलाते थे लड्डू-फाडवा, कहते हैं, वह कल्पना थी। उससे शरीर ऐसा अच्छा नहीं रहा था। वह तो किसके कारण से रहा था।

मुमुक्षु : लड्डू न खिलाये तो मर जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन वहाँ मरना हो तो। यह तो जुगलिया भी इतना खाते हैं और टिकते हैं। नहीं? तीन-तीन कोस के जुगलिया। बोर जितना आहार तीन दिन में ले। आहार के लिये निभते हैं? वे तो उनका पोषण उनका उतना हो थोड़ा और इतना निभने का कारण हो। निभते हैं आयुष्य के कारण। शरीर की चाहे जितनी यत्ना करो, परन्तु उस यत्ना का भाव तेरे पास रहेगा। शरीर में कहीं तेरे पुरुषार्थ से हो, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : निमित्त तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ यह। कुछ हो, तब निमित्त कहलाये। दूसरा निमित्त का अर्थ क्या? उससे क्या होता था?

मुमुक्षु : कुछ होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरे प्रकार से तुम कहते हो वह। जैचन्दभाई! भाई! तुम दूसरे प्रकार से कहते हो। तुम ऐसा कहते हो, अब होता नहीं, पहले होता था। ऐसा। यह बात खोटी है, ऐसा कहते हैं। पहले भी होता नहीं था, अभी भी होता नहीं। ये कल्पना करता था कि यह मैंने किया और मैंने हिलाया, मैंने इस प्रकार शरीर को बुलवाया, ऐसा बुलवाया, ऐसा किया, शरीर को स्नान करके चुस्त रखा। यह कल्पना थी, कहते हैं। उस कल्पना के कारण शरीर ऐसा रहा नहीं। कब? सदा ही। अभी नहीं। आहाहा! वह तो परवस्तु है। उसे कैसे रहना, वह तो उसकी पर्याय के आधीन है, उसकी अवस्था के आधीन है। यह आत्मा राग करे तो उसके प्रमाण में यहाँ व्यवस्थित व्यवस्था रहे? राग अवस्था जीव की विकार और यह अवस्था जड़ की। कोई विकार की अवस्था के कारण से ऐसी अवस्था व्यवस्थित रहे? वह तो उसके कारण से है।

मुमुक्षु : कर्म के कारण से हुआ न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म का वह निमित्त है। भाषा। वह अपना उपादान, अपनी अवस्था के कारण से रहती है, तब कर्म को निमित्त कहा जाता है। निमित्त एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को करे क्या?

मुमुक्षु : मदद करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मदद नहीं करता। व्यर्थ में मानता है।

यहाँ कहते हैं, **शरीर के अनेक यत्न करो, इसके अनेक तरह से पोषण करो,....** समझ में आया? खाने-पीने का टाईमटेबल हो आठ पहर का। सेवेर उठे तो चाय, तुरन्त वापस अमुक, उसके बाद चाय के साथ कुछ बिस्कुट बिस्कुल या ऐसा होगा, दूसरा न खाये तो पूड़ी, उसके बाद रोटी और दाल, शाम को और दोपहर में चाय, और नाश्ता थोड़ा, और शाम को खींचड़ी तथा कढ़ी, उसके साथ और कुछ धूल। खींचड़ी, कढ़ी नहीं तो यह पूड़ी और थेपला। शाम शाम को वह चरपरे तमतमाते करते हैं न लोग?

अब यह करते हैं भाई। भुजिया बनावे, पूड़ी बनावे, क्या कहलाते हैं पेठा क्या? पुडला।

मुमुक्षु : फरसाण।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, फरसाण। शाम को फरसाण बनावे। उसमें ऐसी सर्दी हो तो थोड़ा फरसाण हो तो ठीक पड़े। लाख यत्न कर परन्तु शरीर तो रहनेवाला होगा, वैसा रहेगा, ऐसा कहते हैं। तेरे यत्न से और तेरे खिलाने के कारण से तेरे शरीर की अवस्था रहे, (ऐसा नहीं है)। और वह क्रिया जड़ की है, खाये कौन और पीये कौन? वह तो जड़ की क्रिया जड़ के कारण से होती है। सूक्ष्म बात है। युवा अवस्था सांढ जैसा (शरीर) हो, बैल जैसा बराबर और ऐसे धम... धम... धम... जमीन चलती हो। पैर में वे पहने हों, क्या कहलाते हैं? पाईप-पाईप। लोहे के पाईप होते न? पाईप कहते हैं? पाईप कहते हैं न। आसपास चले तो कोई जवान व्यक्ति चलता है, ऐसी खबर पड़े। जमीन काँपे। वह ऐसे पड़े वहाँ। आँख ऐसी करने की अधिकार रहे नहीं। ऐसे भी ऊँचा न हो। मक्खी यहाँ बैठे, ख्याल आवे कि बैठी है, ऐसे (दूर) न कर सके। वह जड़ की अवस्था है। वह जड़ का कार्य आत्मा कर नहीं सकता, परन्तु उसे परपदार्थ और स्वपदार्थ की भिन्नता की खबर नहीं, इसलिए इसे कहते हैं कि....

मुमुक्षु : निरोग हो, तब किया जाता है; बीमार हो, तब नहीं किया जाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल में नहीं किया जा सकता और निरोग हो तो किया जा सकता है और बीमार हो तो नहीं किया जा सकता, ऐसा होगा? जैचन्दभाई! निरोग हो तब किया जाता था और अभी नहीं किया जाता। यह पैर ठीक से नहीं चलता। यह अभी की बात नहीं। जब निरोग था और ऐसे दो व्यक्ति चलते राम और लक्ष्मण। मोहनभाई और दो, राम और लक्ष्मण जैसे चलते। उस समय वह शरीर उसके कारण चलता था, तुम्हारे कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! इसे यह मिट्टी कहीं की। अरे! इसके बर्तन में दाल, भात और रोटियाँ पड़ी थीं। वासण—बर्तन में। वह जमाया है यहाँ। रखा है। जैसे मोढवुं खडके नहीं? मोढवुं कण्डे का, कण्डे का मोढवुं। मोढवुं समझते हो? कण्डे का ढ़ेर नहीं होता? वह गोबर के कण्डे बनाते हैं न? उन कण्डों का वह फिर बड़ा बनाते हैं न। ऐसा यह है। इस बर्तन में जो दाल, भात, रोटी, सब्जी, चाय, दूध जो था वह यहाँ जमा है, रखा है। वह जड़ का ढ़ेर है, आत्मा नहीं। अब इसे खबर

नहीं होती कि वह मैं कौन और किसकी सम्हाल करता हूँ ? समझ में आया ? भान नहीं होता भान। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें ?

एक काठी था। उस काठी को, काठी अर्थात् गरासदार, गरासदार—जागीरदार। फिर उसे पैर में फोड़ा हुआ। फोड़ा... फोड़ा। महीने, दो महीने, चार महीने (रहा)। नाई। नाई होता है न ? वाणंद को क्या कहते हैं ? नाई। नाई बाँधे न, नाई होता है न ? ऐसे कपड़ा बाँधे। छोड़े तो उंहुं ऐसा हो जाये। फिर ऐसा करता हुए चार-छह महीने में मिट गया। फोड़ा मिट गया। फिर खोले जरा ऐसे उंहुं... उंहुंहुं... ऐसा करे। वह आदत पड़ गयी न छह महीने से। खोलते उंहुं करे। वह नाई ठग। इसलिए एक बार वहाँ से पट्टी बाँधकर इस ओर बाँध दिया। यहाँ छोड़कर यहाँ बाँधा, इस ओर बाँध दिया। फिर जहाँ सवेरे खोले तो उंहुं... क्या है परन्तु ? यह पट्टी किस ओर बँधी, उसका भान नहीं। फोड़ा यहाँ था, वह मिट गया तो भी उंहुं... उंहुं... करता था तू तो। यह दूसरी जगह मारा तो उसे छोड़ने पर उंहुं करता है। क्या है परन्तु यह ? अरे! ऐसा किसने किया ? ऐसा किसने किया ? परन्तु किया चाहे जिसने, किन्तु तुझे भान नहीं ?चन्दुभाई आये ? जमींदार। आओ आओ चन्दुभाई। किस पैर में फोड़ा था, उसका भान नहीं होता। ऐसे के ऐसे ममतावाले। कहो, समझ में आया इसमें ? वह नाई ठग, इसलिए वह फोड़ा था, उसमें से पट्टी छोड़ दी। पट्टी यहाँ बाँध दी। अब यहाँ जहाँ खोले तो उंहुंहुं... करे। परन्तु क्या है कि उंहुं ? कहे, यह दुःखता है। परन्तु यह पैर दूसरा है। उसे भान नहीं होता। उसी प्रकार यह शरीर दूसरा जड़। उसमें यह कुछ हो, उसमें तुझे कुछ होता नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। चिल्लाहट मचा जाता है। इसे कुछ हो वहाँ चिल्लाहट मचा जाता है।

मुमुक्षु : उंहुं तो हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किसके कारण ? इसके कारण ? ममता... ममता... ममता। आहाहा! परन्तु क्या ? यह तो पर है। यह दूसरा पैर है। चन्दुभाई! अभी वह जमींदार का दृष्टान्त दिया था। उस जमींदार को यहाँ इस पैर में बहुत फोड़ा हुआ था। फिर छह महीने चला। वहाँ खोले न पट्टी, खोले तो बहुत दर्द हो। फिर एक नाई था। करते... करते... करते... छह महीने में मिट गया। मिट गया तो भी उंहुं किया ही करे खोले इसलिए। तो उस नाई ने यहाँ की पट्टी उस ओर बाँध दी उस पैर में। उसे जहाँ खोले

वहाँ उंहुं... करने लगा। परन्तु क्या है ? यह पैर बदला। किसने किया ? परन्तु चाहे जिसने किया, किन्तु यह पैर दूसरा है, तुझे भान नहीं ? यहाँ कहाँ दुःखता था। इसी प्रकार यह शरीर दूसरा और तू दूसरा, यह क्या उंहुं किसकी लगायी है तूने ?

मुमुक्षु : राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो, बस यह तो कहते हैं। यह शरीर जड़, वह पर, वह मिट्टी, वह रूपी और तू अरूपी। तुझमें कहीं उसे सम्बन्ध नहीं होता। उसे कुछ हो, उसको हुआ तो आहा! हो। यहाँ हो इसलिए मुझे हो गया। परन्तु तुझे कहाँ ? तुझे अर्थात् अरूपी में हो गया ? जड़ में होने पर तो अरूपी में हो गया ? उस अज्ञानी को आत्मा की सत्ता की भिन्नता और जड़ की भिन्नता की खबर नहीं। न्यालभाई! आहाहा! यह बनिया के बाप करते हैं, सब क्या और ? बनिया क्या करते हैं यह ?

मुमुक्षु : वह तो दृष्टान्त था।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त, वह तो दृष्टान्त था। वह दूसरे पैर में बाँधा तो क्या किया ? यह दूसरा पैर है यह शरीर। यह कहाँ आत्मा था ? आत्मा तो अलग चीज़ है अरूपी ज्ञानघन। अरूपी अन्तर अनन्त गुण की सत्ता अभी कहेंगे। समझ में आया ? इसका चाहे जितना पोषण करो परन्तु दुर्जन का उपकार जैसे होगा नहीं, उसी प्रकार उसमें से तेरा कुछ हो ऐसा नहीं, ले! कहते हैं। ऐसा करके तू आत्मा है, उसकी दृष्टि कर, उसे पहिचान और उसकी कीमत कर। इसके बिना मर जा, अनन्त काल से मर गया है। कहो, अब उसके शरीर की तो बात एक ओर रही, फिर यह तो अभी मकान और दुकान... छोटाभाई! परन्तु अब इसके बिना चले नहीं, लो! तो यह बालुभाई चले गये, उनके बिना चलती है या नहीं दुकान ?

मुमुक्षु : दुकान तो चलती है परन्तु पूरा उसका होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ममता थी। मर जाने से पहले किसी से उसका पूरा किसी ने किया नहीं और मर जाने के बाद अधूरा किसी का रहा नहीं। किसी का रुका नहीं। सब काम करनेवाले मरा ही करते हैं सब। बराबर है ? जीते-जी किसी का पूरा हुआ नहीं, मरते किसी का पीछे अधूरा रहा नहीं। वह तो करता ही है, दूसरे करनेवाले नहीं निकलते ? तू क्या करे परन्तु ?

कहते हैं कि शरीर **अपना नहीं हो सकता।** लाख प्रकार से पोषण कर। मिट्टी है, यह तो धूल है। अब दूसरे की बात तो कहीं रही, यह तो राख होकर खड़ा रहेगा। ऐसे फू। भाई! तू आत्मा है। वह तेरा यह पहलू नहीं। तेरा पहलू तो अन्दर चैतन्य है। इसके पहलू की सेवा और पूरे दिन इतनी सम्हाल। आठ पहर का टाईम-टेबल हो इसका। लो! सवेरे से शाम तक। इसका यह फिर यह... फिर यह... फिर यह। परन्तु तेरा कुछ है? यह मर गया। थोड़े वर्ष मिले ५० या ६० वर्ष मिले मनुष्यभव में। उसमें से यदि तेरे आत्मा का कुछ नहीं किया और ऐसा का ऐसा मर गया (तो) यह चौरासी के अवतार के खड्डे में वापस कहीं पता नहीं लगेगा।

परन्तु यह अपना नहीं हो सकता। इसलिए यही सार है कि इसको अधिक पुष्ट नहीं करना। लो! बहुत खाकर बैल जैसा नहीं रखना। थोड़ा-बहुत पोषण दे (देना)। कहते हैं **कुछ थोड़ा-सा ग्रासादि देकर...** थोड़ा आहार लेकर **करके मोक्ष साधन करना;...** इस आत्मा की मुक्ति हो, ऐसा साधन करना। वरना तो मुक्ति तो होगी शरीर से। शरीर से छूट जायेगा, परन्तु वापस दूसरे अवतार में जायेगा। कहाँ अवतार! आहाहा! एक गाय अभी देखी। गाय पड़ी थी गाय। वह सब पेट... पेट मुड़ गया है। अब बेचारी ढसडे ऐसे-ऐसे किया पैर से। ऊँची हो सकती नहीं। पूंछडे पड़ी है। खाना का नहीं मिलता। हो गया ऐसा का ऐसा मर जानेवाली है, लो! रास्ते में थी। गाय है। अब ऐसे बहुत ऊँची करने लगी स्वयं ऐसे-ऐसे पैर, परन्तु ऊँची हो सके नहीं। पेट मुड़ गया। सूखा घास, उसमें अभी मिले नहीं, उसका मालिक दे नहीं, फिर ऐसे... बैठी थी। हो गया। ऐसे के ऐसे सूखकर मर जानेवाली है। घर में कोई ले जाये नहीं। यह दशा, देखो यह दशा! आहाहा! ऐसे अवतार तो अनादि काल का है या नया है आत्मा? प्रत्येक ने ऐसे अनन्त भव किये। उसे ऐसा कि इसे यह है। बैठी निरोगी है ऐसे मानो, परन्तु सब पसलियाँ मुड़ गयी हैं अन्दर। अब खड़ी हो सके, ऐसा नहीं है। रास्ते में पड़ी है ऐसी की ऐसी।

वह ऊँट होता है, लो न ऊँट। ऊँट का पैर टूटे जरा। जवान ऊँट हो जवान, हों! वह पैर जरा टूटा, वह ऐसा का ऐसा सूखकर रहेगा। उसे दूसरा कुछ नहीं होता। जंगल में ऊँट था वहाँ एक बार। हम राणपर से नागनेश जाते थे, ऊँट पड़ा था रास्ते में वाड के

पास। जवान ऊँट, हों! अपने को कभी खबर नहीं, अपनी छोटी उम्र। इसलिए कहा ऊँट यहाँ क्यों पड़ा है ऐसा अच्छा? हमने कभी सुना नहीं। उसका पैर टूटा है। तब अब? यहीं का यहीं मर जानेवाला है। उसे घास कौन दे? जंगल में था बीच में। नागनेश और राणपर के बीच में। उसे घास कौन दे? मर जानेवाला है। घास कौन दे? और महाजन ले कैसे जाये गाड़ा में इतना बड़ा ऊँट? तब यहाँ ऐसा का ऐसा सूख जानेवाला है। दो, चार, छह, आठ, दस दिन में सूख जायेगा। आहाहा! भाई! तूने ऐसे अनन्त अवतार किये, बापू! तुझे खबर नहीं। अनादि काल का है। नया है आत्मा? नया हुआ है कहीं से? वह तो अनादि-अनन्त है। अनादि त्रिकाल सत् अकृत्रिम—शाश्वत् वस्तु है। वह अनन्त काल में ऐसे भव शरीर की ममता के लिये किये, परन्तु तूने तेरी समता क्या चीज़ है, उसे देखा नहीं। उसे पहिचाना नहीं कि मैं कौन हूँ? ओहो! यह कहेंगे अभी, देखो।

सात धातुमयी यह अशुचि शरीर है,... देखो! लेंगे। ऐसे गुलाँट खाकर बात करेंगे। शरीर तो सात धातुमयी अशुचि है। **इससे पवित्र शुद्धात्मस्वरूप की आराधना करना।** लो! समझ में आया? बहुत वह नहीं किया। अन्दर से ऐसा किया है। स्पष्टीकरण किया है, हों! '**अस्थिरेणापि स्थिरं मोक्षसौख्यं गृह्यते।**' देखो! ऐसी भाषा है न, संस्कृत में है। '**अस्थिरेणापि स्थिरं मोक्षसौख्यं गृह्यते।**' यह वस्तु अस्थिर है। स्थिर भगवान आत्मा शुद्ध शाश्वत् बिम्ब है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके उसका मोक्ष का साधन करना तो अस्थिरता छूट जायेगी, अकेला आत्मा स्थिर रह जायेगा, उसे सुख और शान्ति की प्राप्ति होगी।

'**सप्तधातु मयत्वेनाशुचिभूः**' कहो, समझ में आया? इसका अर्थ इतना नहीं आया अन्दर, अस्थिर का। सब अर्थ नहीं किया। वरना तो यह अस्थिर है, तो यह (आत्मा) स्थिर है, ऐसी गुलाँट खायी है। यह (शरीर) अशुचि है तो यह आत्मा शुचि है, ऐसा कहा है। जैसे उस ७२ गाथा में आता है न? (समयसार) कर्ताकर्म (अधिकार) में। '**आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च। दुक्खस्स कारणं ति य दो णियत्तिं**' उसके सामने गुलाँट खायी है कि आस्रव अशुचि है, पुण्य-पाप के भाव मलिन, तब भगवान पवित्र है, शुद्ध चिदानन्द मूर्ति है। पुण्य-पाप के भाव मलिन हैं, तब भगवान आत्मा निर्मल है, इसलिए दोनों का भेदज्ञान कर और आत्मा की शरण ले।

पश्चात् विपरीत। आत्मा चैतन्यमूर्ति है, पुण्य-पाप के भाव अचेतन हैं, जड़ हैं, इसलिए इससे भिन्न है। आत्मा आनन्दमूर्ति है, तब पुण्य और पाप के भाव दुःखरूप है। यह पुण्य और पाप के भाव दुःखरूप है। आहाहा! आकुलता है। यह भगवान आत्मा अन्दर अनाकुल आनन्दकन्द सच्चिदानन्द है। इन दोनों का विभाजन कर। यह शैली थोड़ी यहाँ ली है। यह (शरीर) अस्थिर है तो भगवान स्थिर है, उसका साधन कर। शरीर जब सप्त धातुमय अशुचि शरीर है। देखो! '**तेनापि शुचिभूतं शुद्धात्मस्वरूपं गृह्यते**' भगवान आत्मा; यह शरीर तो अशुचि माँस, हड्डियाँ आदि विशेष बाद में लेंगे।

पवित्र शुद्धात्मस्वरूप की आराधना करना। आहाहा! थोड़े दिन मिले, थोड़ा समय मिला। आँख मिंचकर कहीं चला जायेगा भाई! तेरा स्वरूप शाश्वत् है, शुद्ध ज्ञान है, उसकी अन्दर अनुभव दृष्टि तो कर। उसे दृष्टि में तो ले कि यह मैं हूँ। पुण्य और पाप और पर, वह वस्तु मेरी चीज़ है नहीं। देखो! **इस महा निर्गुण शरीर से....** देखो! शरीर निर्गुण है, ऐसा लेना है। समझ में आया? है न? '**निर्गुणेनापि केवलज्ञानादिगुणसमूहः**' शरीर निर्गुण है। निर्गुण अर्थात् यह ज्ञानादि गुण नहीं, हों! उसमें भले उसके हों। **शरीर से केवलज्ञानादि गुणों का समूह साधना चाहिए।** भगवान आत्मा तो केवलज्ञान और आनन्द है अन्दर शुद्ध स्वरूप पवित्र। परन्तु कभी समागम किया नहीं, विचार किया नहीं, मनन किया नहीं। ऐसी की ऐसी जिन्दगी पूरी। भगवान महासत्ता अन्दर भिन्न है, वह तो गुण का पिण्ड है। यह (शरीर) निर्गुण है। इसमें कहीं ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुण नहीं। आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुणवाला है। ऐसे आत्मा का साधन कर ले। कहो, समझ में आया?

यह शरीर भोग के लिये नहीं है,.... समझ में आया? भोग के लिये शरीर है? भोग अर्थात् क्या? कल्पना। शरीर तो अकिंचित्कर है। तुझे कल्पना के सुख के लिये यह शरीर तो बिल्कुल अकिंचित्कर है। कल्पना की है कि यहाँ मुझे ठीक पड़ता है, यहाँ मुझे खाने में यह मुझे भोग में, यह मुझे इसमें। यह तो तेरी कल्पना से सन्तोष माना है। वह कहीं शरीर के कारण कुछ हुआ नहीं। विषय के साधन से कुछ हुआ नहीं। विषय के साधन अकिंचित्कर है। आता है न पण्डितजी यह? प्रवचनसार में। स्वर्ग के लिये देव। देह कुछ करता नहीं। यह विषय अकिंचित्कर है। आता है न शब्द? मूल में

अकिंचित्कर है न! मूल पाठ है। शरीर अकिंचित्कर है, उसके विषय के लिये। मात्र कल्पना कर रहा है। यह मुझे ठीक... यह मुझे ठीक... यह तेरे ठीक के लिये बिल्कुल यह कार्यगत नहीं है। तेरी कल्पना अन्दर की, वह भी तुझे खबर नहीं कि यह मैं कल्पना करता हूँ। यह कार्यगत इसके कारण से है नहीं। भगवान आत्मा विकल्प से भिन्न है। उसकी समझण तूने कभी की नहीं। कहो, समझ में आया?

यह शरीर भोग के लिये नहीं है, इससे योग का साधनकर.... योग। देखो! भोग सोम योग। भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञान का घन है, उसकी कभी इसने अनुभव की प्रतीति की नहीं। तो उसका योग कर। उसका योग साध। स्वरूप की दृष्टि कर, स्वरूप में ध्यान कर, स्वरूप का ज्ञान कर। उससे **अविनाशी पद की सिद्धि करनी।** आहाहा! **ऐसा कहा भी है,....** दूसरा आधार देते हैं। दोहा पाहुड़ है। **इस क्षणभंगुर शरीर से स्थिरपद मोक्ष की सिद्धि करनी चाहिये,...** देखो! यह आया। **'अथिरेण थिरा मलिणेण णिम्मला णिग्गुणेण गुणसारं काएण जो विढप्पइ सा किरिया किण्ण कायव्वा॥'** अहो! भगवान आत्मा तो स्थिरस्वरूप है, शुद्ध है, उसकी दृष्टि करके स्थिर / कायम रहे, ऐसे मोक्ष का साधन कर न! शरीर तो अस्थिर है। **शरीर से स्थिर पद मोक्ष की सिद्धि करनी चाहिए,....** इतना निमित्त है न शरीर?

यह शरीर मलिन है,.... नव द्वार झरते हैं, कहेंगे नीचे। **इससे निर्मल वीतराग की सिद्धि करना,....** शरीर तो मैल है। अब यहाँ शरीर की बात लगायी, वहाँ दूसरे की तो क्या कहना, कहते हैं। स्त्री, पुत्र, परिवार, व्यापार, धन्धा तो कहीं जड़ के कारण उसकी अवस्था होने के काल में हुआ करे। आत्मा उसका कर्ताहर्ता नहीं। दुर्जन शरीर का भी कुछ नहीं कर सकता तो दूसरे का तो क्या करे, कहते हैं। निर्मल वीतराग भगवान आत्मा निर्दोष, वीतराग अर्थात् रागरहित स्वरूप है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करना चाहिए।

और यह शरीर ज्ञानादि गुणों से रहित है,.... देखो! आया। उसमें गुण था न! शरीर में ज्ञान, दर्शन, आनन्द नहीं। इस मिट्टी में कुछ ज्ञान, दर्शन और आनन्द नहीं। ज्ञान, दर्शन और आनन्द तो आत्मा में है। यह तो निर्गुण है, भगवान गुणवाला है। गुण अर्थात्? रजो, तमो वह नहीं, स्वाभाविक गुण। त्रिकाल ज्ञान, आनन्द आदि गुणों से सहित है। शरीर तो ज्ञानादि गुणों से रहित है। **इसके निमित्त से सारभूत ज्ञानादि गुण**

सिद्ध करनेयोग्य हैं। भगवान आत्मा का साधन करके अपना ज्ञान, श्रद्धा, शान्ति अर्थात् चारित्र, वह साधन करना चाहिए। कहो, समझ में आया यह?

इस शरीर से तप संयमादि का साधन होता है,.... कहलाता है न निमित्त से? मुनिपना है, संयम, इन्द्रियदमन है **और तप संयमादि क्रिया से सारभूत गुणों की सिद्धि होती है।** अन्तर के एकाग्र संयम द्वारा आत्मा की शान्ति गुण की सिद्धि होती है। **जिस क्रिया से ऐसे गुण सिद्ध हों, वह क्रिया क्यों नहीं करनी? अवश्य करनी चाहिए।** जिससे अल्प काल में आत्मा को शान्ति मिले, वह करना? या इस अल्प काल में इसकी ममता के कारण अनन्त काल का दु:ख भोगना? अल्प काल की इसकी सम्हाल के कारण अनन्त काल का दु:ख भोगना। अल्प काल का इसका साधन करे तो अनन्त काल का मोक्ष का सुख प्राप्त होता है। बनिया तो लाभ हो तो काम करता है। ऐई! चन्दुभाई! बनिया लाभ का काम करे। चन्दुभाई! बराबर है? तब इसमें कैसे लाभ का काम, कहते हैं समझता नहीं? ऐई! छोटाभाई! लाभ का काम करे या नहीं? या नुकसान का करे? जिसमें नुकसान लगे, वह व्यापार करता होगा? फिर भले व्यापार माल का हो जाये, आ जाये अलग बात है। अपना धन्धा न करे।

ऐसा कहते हैं, बापू! तू आत्मा है न! तुझे लाभ का धन्धा नहीं आता? नुकसान का ही धन्धा आता है अकेला? विकार करके, शरीर को पोषने का भाव करके यह धूल और धाणी, कुटुम्ब कबीला, व्यापार, धन्धे में मर गया अनन्त काल से। यह तुझे नुकसान लगा तो भी तुझे तेरी खबर नहीं। यह नुकसान होता है, नुकसान तेरे घर में। पुकार तो करता है शास्त्र अनादि काल का। कान में पड़ता है इसे, नहीं पड़ता? यह ननूर हो गया है ननूर। ननूर। ननूर अर्थात् बिना का। ननूर कहते हैं न? तेज नहीं होता अन्दर। तेजहीन हो गया है? बहुत मारे और बोले नहीं, फिर कहे यह सुन्न हो गया है सुन्न? बोल तो सही। इसी प्रकार यह मेरा सुन्न हो गया है मूढ। मूढ-मूढ। भगवान आत्मा, अरे! वस्तु तेरी पर है। शरीर से अत्यन्त भिन्न और यह शरीर तुझसे तीनों काल भिन्न है। उसके निमित्त में आया, उसे तू साधन कर ले स्वरूप का। इसका साधन छोड़ दे। आत्मा का साधन कर। कहो, समझ में आया? यह १४८ हुई।

गाथा - १४९

अथ–

२७२) जेहउ जज्जरु णरय–घरु तेहउ जोइय काउ।
णरइ णिरंतरु पूरियउ किम किज्जइ अणुराउ।।१४९।।

यथा जर्जरं नरकगृहं तथा योगिन् कायः।
नरके निरन्तरं पूरितं किं क्रियते अनुरागः।।१४९।।

जेहउ इत्यादि। जेहउ जज्जरु यथा जर्जरं शतजीर्णं णरय–घरु नरकगृहं तेहउ जोइउ काउ तथा हे योगिन् कायः। यतः किम्। णरइ णिरंतरु पूरियउ नरके निरन्तरं पूरितम्। एवं ज्ञात्वा किम् किज्जइ अणुराउ कथं क्रियते अनुरागो न कथमपीति। तद्यथा–यथा नरकगृहं शतजीर्णं तथा कायगृहमपि नवद्वारछिद्रितत्वात् शतजीर्णं, परमात्मा तु जन्मजरामरणादिच्छिद्रदोषरहितः। कायस्तु गूथमूत्रादिनरकपूरितः, भगवान् शुद्धात्मा तु भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममलरहित इति। अयमत्र भावार्थः। एवं देहात्मनो भेदं ज्ञात्वा देहममत्वं त्यक्त्वा वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा च निरन्तरं भावना कर्तव्येति।।१४९।।

आगे शरीर को अशुचि दिखलाकर ममत्व छुड़ाते हैं–

हे योगी! इस जर्जर तन को जानो नारक गेह समान।
मल मूत्रादिक से पूरित है क्यों इस तन से हो अनुराग।।१४९/२७२।।

अन्वयार्थ :– [योगिन्] हे योगी, [यथा] जैसा [जर्जरं] सैकड़ों छेदोंवाला [नरकगृहं] नरक–घर है, [तथा] वैसा यह [कायः] शरीर [नरके] मल–मूत्रादि से [निरंतरं] हमेशा [पूरितं] भरा हुआ है। ऐसे शरीर से [अनुरागः] प्रीति [किं क्रियते] कैसे की जावे? किसी तरह भी यह प्रीति के योग्य नहीं हैं।

भावार्थ :–जैसे नरक का घर अति जीर्ण जिसके सैकड़ों छिद्र हैं, वैसे यह कायरुपी घर साक्षात् नरक का मन्दिर है, नव द्वारों से अशुचि वस्तु झरती है। और आत्माराम जन्म–मरणादि छिद्र आदि दोष रहित है, भगवान् शुद्धात्मा भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्ममल से रहित हैं, यह शरीर मल–मूत्रादि नरक से भरा हुआ है। ऐसा शरीर का और जीव का भेद जानकर देह से ममता छोड़के वीतराग निर्विकल्प समाधि में ठहरके निरन्तर भावना करनी चाहिये।।१४९।।

गाथा-१४९ पर प्रवचन

अब अधिक **आगे शरीर को अशुचि दिखलाकर ममत्व छुड़ाते हैं—**

२७२) जेहउ जज्जरु णरय-घरु तेहउ जोइय काउ।
णरइ णिरंतरु पूरियउ किम किज्जइ अणुराउ।।१४९।।

हे योगी!.... हे धर्मी, हे मुनि अथवा हे आत्मा! **जैसा सैकड़ों छेदोंवाला नरक-घर है,....** नरक है न नरक नीचे। सैंकड़ों छिद्र। मधुमक्खी होती है न। मधु-मधु। यह मधु का छत्ता। ऐसे वहाँ छिद्र पड़े हुए। उसमें नारकी उपजे और नीचे गिरे। नीचे सात नरक है। पहला नरक, दूसरा नरक। कम से कम दस हजार वर्ष की स्थिति है नरक में। थोड़े में थोड़ी, हों! साधारण मनुष्य शराब खानेवाला (पीनेवाला) थोड़े में थोड़ी दस हजार वर्ष की स्थिति। अधिक में अधिक एक सागर की स्थिति है, यहाँ पहला नरक नीचे। एक सागरोपम अर्थात् असंख्यात अरब वर्ष का एक पल्योपम। ऐसे दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागर। बड़े-बड़े राजा, महाराजा जो होते हैं, वह सब पार्लियामेन्ट वहाँ उनकी नरक में भरती है। न्यालभाई! वह सब नरक में जाते हैं।

मुमुक्षु : पार्लियामेन्ट ने उसका क्या प्रस्ताव किया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रस्ताव किया वहाँ दुःखी होना यह। रोज दुःखी... रोज दुःखी... हाय रे हाय। अरेरे! यह क्या है यह? इतने दुःख कैसे वेदे जाये? वेदे जायें? पुकार... पुकार रोवे... रोवे। वह राजा-महाराजा यहाँ के बड़े हों और शिकार किये हों। लाख-लाख रुपये, दो-दो लाख रुपये की मोटर में बैठे हों वे सब। समझ में आया?

देखो न! वह तुम्हारा आया था अभी गुरु नहीं उसका? ख्रिस्ती का गुरु पोप। कितने लाख की बड़ी मोटर आयी थी वहाँ। रोम से आयी थी। इतना नाम उसका। वह वापस दे दी किसी को। आहाहा! यहाँ ऐसे पाँच-पाँच लाख की मोटरें और कितने करोड़ रुपये बड़े उसके पास बहुत। कितने ही तो यहाँ दे दिये उसमें। माँस खाये। नयी दुकान कितनी अमुक.... देकर। क्योंकि ... बहुत देखे। दो-तीन लाख गोरे आये हुए।

मुमुक्षु : सब बाहर से मेहमान आये हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मेहमान आये हुए। दुकानें नयी माँस की। कितने मुर्गे एक दिन में, कितने अण्डे एक दिन में, कितने बकरे एक दिन में। यह कुकर्म। दुनिया वह बाहर में रंग-बिरंगी दिखे। यह पाँच वर्ष, पच्चीस वर्ष बाद देखो... माँस के एक-एक टुकड़े में महाजीव है। उसकी इसे तद्वर्ण के वह जीव पंचेन्द्रिय हो तो उस प्रकार के अन्दर सूक्ष्म जीव (होते हैं), ऐसा माँस सेर, सेर, दो सेर खाये वह मरकर नरक में ही जाये। अब यह किस प्रकार दिखे? बाहर में ऐसे खम्मा! खम्मा! अन्नदाता। हीरा की - रत्न की वह लकड़ी हो हाथ में। ऐसे मानो ओहोहो! कोई ... तो मानो ओहो! ये बड़े गुरु हैं न! आगा खान में ऐसा हो। आगा खान हाथ न छूने दे उसे कोई। चन्दुभाई! उसे लकड़ी हो लकड़ी। लकड़ी ऐसी ऊँची हो। लकड़ी को ऐसे छुए तो सब प्रसन्न हो जाये। लकड़ी हाथ में हो बस इतना। स्वर्ग मिले। अरे! मरकर वह स्वयं कहाँ गया, तुझे खबर नहीं। मात्र माँस खानेवाले, शराब पीनेवाले, कुकर्म करनेवाले। दुनिया के गुरु माने, दुनिया वह पागल-मूर्ख है या नहीं? आहाहा! उसकी एक लकड़ी पड़ी हो अच्छी...

मुमुक्षु : ऐसे को इतना अधिक पुण्य कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पूर्व में ऐसा कोई पुण्य बाँधा हुआ पापानुबन्धी पुण्य।

मुमुक्षु : सुख कब था?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख कब था? पापानुबन्धी पुण्य। शुभभाव में कोई अहंकाररूप किया हुआ। एकेन्द्रियादि में कोई शुभभाव आदि होता है अहंकार मिथ्यात्वभाव में, उसके फलरूप से आवे वह पापानुबन्धी पुण्य परम्परा मिथ्यात्व का पाप बाँधकर नीचे धमो नमः। वे नरक में जानेवाले। दुनिया को मिलान कैसे करना आवे? आहाहा! प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये कि आहाहा! अपने ऐसे धर्म गुरु हों। परन्तु क्या है? मरकर नीचे जानेवाले हैं। क्या है तुझे? हजारों बकरे मारते थे। कुकर्म तब कहते हैं। कितने दिन? तीन दिन रहे। गाँव में कुकर्म वर्ते। जीव मारे, बकरे मारे, भेड़ मारे, मुर्गे मारे, अण्डे कितने कुछ लिखे थे। कितने लाख प्रतिदिन अण्डे चाहिए। लोगों को उनके सेवकों को। अरे! पुण्य वह क्या काम करता है? पुण्य का अस्तित्व है। यह आता है न

पण्डितजी! प्रवचनसार में। पुण्य का अस्तित्व है, ऐसी गाथा आती है, गाथा आती है। प्रवचनसार पहले (अधिकार) में। कि पुण्य का अस्तित्व है। ऐसा पाठ है, हों! मूल पाठ कुन्दकुन्दाचार्य का। परन्तु अस्तित्व के फल में धूल मिली, वह सब होली है। आहाहा! समझ में आया? महाप्रभु पवित्रता का धाम, उसे इस पुण्य के फलरूप से ऐसे संयोग मिले और जाये मरकर नीचे। वे किस काम के? आहाहा!

कहते हैं, हे धर्मी! **सैकड़ों छेदोंवाला नरक-घर है,....** नारकी के घर। नारकी में यह छत्ते जैसे उपजने के स्थान होते हैं। मधु छत्ता होता है न, मधु छत्ता? वैसे ऐसे छिद्रवाले उत्पत्ति के स्थान नीचे पहले नरक में हैं। उसमें उपजे। और उपजकर पड़े धड़ाम अग्नि में। नीचे अग्नि होती है। इस पहली नरक में, फिर सर्दी होती है। ऐसे गिरे। वह पीड़ा। यहाँ से बड़ा राजा, महाराजा हो। यहाँ तो अभी उसे निकाला भी न हो। मुर्दा बाहर न निकाला हो। क्योंकि बड़े व्यक्ति, इसलिए लोग अधिक आवे, लोग आवे, तार किये हों। वहाँ तो भाईसाहेब पुकार करता हो वहाँ। आहाहा! अरे! संसार के पर्दे एक क्षण में राजा-महाराजा, दूसरे क्षण में नरक का छिद्र का नारकी। भगवान! यह तेरे पाप के परिणाम के यह सब फल हैं, भाई! यह तुझे खबर नहीं पड़ती। पर्दा, वह अलग-अलग प्रकार का गिरे और ऐसे वह रच-पच जाये। हाय! हाय! यह हो गया मुझे। यहाँ भोगता था, लहर करता था, यहाँ कुछ है नहीं मेरा दूसरा आत्मा-फात्मा। मर गया वहाँ जाकर हैरान... हैरान।

वैसा यह शरीर मल-मूत्रादि से हमेशा भरा हुआ है। यह संस्कृत में से निकाला है। '**कायस्तु गूथमूत्रादि**' इस ओर अन्तिम शब्द है। '**गूथ**' अर्थात् विष्टा। यह विष्टा और पेशाब भरे हैं इसमें, बापू! यह ऐसी मशीन है दुनिया की मशीन की अपेक्षा। दूसरी मशीन में मैसूर डालो तो तुरन्त बिगड़ेगा नहीं। और इस मशीन में मैसूर डालो तो आठ घण्टे में विष्टा। ऐसी मशीन कोई दुनिया में नहीं। यह जहाँ डाला, वहाँ थूँक हो गया। थूँक होकर ऐसे कुत्ते की उल्टी जैसे नीचे उतरा है। खाने से पहले कोई निगले बिना निकलकर जाये नहीं। भले जामुन हो मावा का। जरा दो सेकेण्ड, पाव सेकेण्ड पिघले नरम (होकर) नीचे उतरे। नीचे उतरने से पहले ऐसे देखे तो पता पड़े, कुत्ते की उल्टी है। परन्तु मिठास से नीचे उतारे अन्दर। क्या खाया? जामुन। जामुन-मावा के जामुन।

वह क्या है ? यह शरीर खबर है तुझे ? यह तूने खाया था वह श्वान की उल्टी थी तुरन्त। एक आधे पाव मिनिट में उल्टी हो गयी ऐसे। दाँत के नीचे जरा जीभ हो न तो ऐसा मुख करके देखना कि यह क्या है ? आहाहा! यह शरीर, यह चीज़ उसे तू अपना मानकर, भगवान पवित्र आत्मा को भूल गया। तेरी चीज़ महान प्रभु है। आहाहा! समझ में आया ? यह विष्टा और पेशाब से, थूँक, कफ, मैल, कान सबसे भरा हुआ, पूरा मैल का पुतला है। कहेंगे बाद में, हों!

ऐसे शरीर से प्रीति कैसे की जावे ? ऐसे शरीर के साथ प्रेम कैसे करना अब ? मैल की मूर्ति, मैल की मूर्ति। भगवान निर्मलानन्द की मूर्ति। निर्मलानन्द गुण। दोनों में विरोध, दोनों शत्रु हैं। मैल की मूर्ति यह शरीर, जबकि भगवान निर्मलानन्द, ज्ञानानन्द अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है और उसकी प्रीति छोड़कर इसकी प्रीति करता है। क्या हैरान होने का रास्ता लिया है, ऐसा कहते हैं। **जैसे नरक का घर अति जीर्ण जिसके सैकड़ों छिद्र हैं,....** नरक का घर कहलाये, यह और लो। ठीक! यहाँ घर बनावे न, वैसे नरक के घर बनाये हुए हैं अनादि के ऐसे के ऐसे। उसमें उपजा वह नरक के घर में। आहाहा! आचार्य कहते हैं, नरक का घर अति जीर्ण, और **जिसके सैकड़ों छिद्र हैं,....** मक्खी को प्रविष्ट होने के होते हैं न जैसे छिद्र। मक्खी को—मधुमक्खी। राजा, महाराजा, अरबोंपति, यह मिल के पति महा, मछलियाँ मारते हों हमेशा। हौज में सैकड़ों मछलियाँ मरे। गर्म पानी करे न गर्म। धग... धग... धग... गर्म पानी बहुत हो। वह पानी हौज में पड़े, हौज में मछलियाँ पड़ें, बिल्लियाँ पड़े, कौवे मरे। मरे बहुत प्राणी अन्दर। यहाँ कहलाये कि दो करोड़ की आमदनी है। वह कहे वहाँ होली सुलगती है तेरे नाम की। तूने पाप का बड़ा कारखाना बाँधा है। यह वह भी जगत अन्ध। आँख मींचकर कुँए गिरता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आँख मींचकर। जा फू होकर। भगवान! परन्तु तू कौन ? बापू! तेरी सम्हाल एक सेकेण्ड भी कभी की नहीं ? और यह अनन्त काल से इसकी सम्हाल (करते हुए) अनन्त काल हुआ तो कहीं एक परमाणु तेरा हुआ नहीं। अनन्त काल का

प्रयत्न परमाणु को अपना बनाने का, एक परमाणु (अपना बनाने का) तेरे अनन्त प्रयत्न का फल आया नहीं कि एक परमाणु तेरा हुआ। आहाहा! और आत्मा एक क्षण अपनी दृष्टि करे तो उसे आत्मा की प्राप्ति अन्दर होने से अल्प काल में वह केवलज्ञान को प्राप्त करे। कहो, समझ में आया?

सैकड़ों छिद्र। नरक का घर कहा भाई उसे। वह उपजने के स्थान हैं न नारकी के। सात उपजने के स्थान हैं। आहाहा! बड़े राजा, महाराजा हों और वे वहाँ उपजे, हों! नारकी। और पौने आठ धनुष का देह। वे वहाँ से उपजे साथ में नीचे पड़े। नीचे अकेली अग्नि। उस अग्नि में पड़े। हाय... हाय... क्या है यह? क्या है यह? वापस उस आत्मा पर विचार नहीं। क्या है यह? ऐसा ही होगा यह? अकेली अग्नि। और यहाँ राजा का कुँवर। वह मरकर यह नया शरीर मिला। नरक के घर में उपजा और पड़ा नीचे। ओहो! नरकगति—अधोगति! उसके घर में ऐसे पड़े वापस पड़े तो नीचे पड़ा। वह अधोगति सही न! शरीर नीचे गिरे। वे जो देव हैं, वे पुण्य के फल में शैय्या में उपजें। शैय्या बिछी हुई हो न, उसमें उपजे पुण्य के फलरूप से। बहुत पुण्य किया हो तो दो घड़ी में खड़ा हो जाये। अहो! यह क्या है? विचार करे। सम्यग्दृष्टि हो तो ओहो! मैं पूर्व भव में था और धर्मसाधन किया, परन्तु अधूरा रह गया। यह राग रह गया थोड़ा, उसका पुण्य बँधा, उसके फलरूप से यह स्वर्ग है। मेरा साधन पूरा नहीं हुआ। मैंने पूरा किया होता तो मुझे भव नहीं मिलता। यह क्या है? वहाँ देव आवे, अन्नदाता! यह विमान है, सौधर्म स्वर्ग है, उसके ३२ लाख विमान का यह ३१ लाख और ९९८वाँ यह विमान है। आप यहाँ उत्पन्न हुए हो बड़े रूप से। आपको भगवान की भक्ति करनी... भगवान के मन्दिर हों तीर्थंकर के वहाँ। तैयार करो। अरे देवों! मैं सम्यग्दृष्टि जीव हूँ। पूर्व से आया हूँ। मुझे यह राग रह गया, उसका फल आया। चलो, पहले भगवान की भक्ति करें। सबको हुकम करता है, पहले भक्ति करता है। आहाहा!

और मिथ्यादृष्टि देव हो, पुण्य बाँधा हो, मिथ्यादृष्टि हो, भान न हो। वह तो ऐसे देखे कि आहाहा! यह क्या है? देव! आज से आप—तुम हमारे स्वामी हुए। फँस गया उसमें एकाकार। अरे! लाखों वर्ष रहकर, करोड़ों-अरबों वर्ष रहकर। असंख्य अरब

वर्ष (रहे)। शाश्वत् प्रभु इस चैतन्य की सत्ता की दृष्टि की सम्हाल की नहीं और इन सब सम्हाल में, कहते हैं अनन्त बार इस नरक के छिद्र में भी तू गया।

वैसे यह कायरूपी घर.... लो, उसके जैसा यहाँ बताते हैं इसे। यह नरक का मन्दिर। यह **साक्षात् नरक का मन्दिर है,....** देखो न, छिद्र है या नहीं सर्वत्र? यह छिद्र है या नहीं, देखो न? पसीना निकले चारों ओर से। भाई! यहाँ दूसरा बतलाना है, हों! कि तू अन्दर ज्ञानानन्द अखण्ड पदार्थ है। उसमें छिद्र-बिद्र नहीं, ऐसा बतलाना है। अखण्ड प्रभु चैतन्यसत्ता आनन्दकन्द की ज्योति है। उसे भूलकर पर्याय में—अवस्था में विकार करे। वस्तु है, वह तो छिद्र रहित अखण्ड पड़ी है ऐसी। सच्चिदानन्द ज्योति आत्मा अखण्ड प्रभु है। यह छिद्रवाली है, तब तू छिद्ररहित है। समझ में आया? इसलिए छिद्रवाली चीज़ की ममता छोड़, वह रुचि तो छोड़। ममता फिर और अस्थिरता। और रुचि ऐसी कर कि एक यह चैतन्यसत्ता मैं आनन्दकन्द हूँ। अकेला ज्ञानज्योति से भरपूर ज्ञान का दीपक अकेला हूँ। स्व को, पर को प्रकाशित करूँ, ऐसा मैं आत्मा हूँ। ऐसी दृष्टि कर तो भी क्रम-क्रम से चारित्र होकर कल्याण होगा।

नव द्वारों से अशुचि वस्तु झरती है। लो! इस शरीर में नव द्वार। पेशाब, विष्टा, आँख, दो कान, यह मुख, पेशाब, विष्टा.... आहाहा! समझ में आया? यह अशुचि वस्तु झरती है। कान दो यह है न। दो कान, दो ये। छह और सात तो यहाँ हुए और दो ये हुए विष्टा और पेशाब। नौ द्वार हैं। यह दो हुए या नहीं यह? यह दो हैं, दो ये हैं। चार। दो ये हैं। छह और एक यह मुख हुआ। सात और दो—पेशाब और विष्टा हैं। नौ द्वार हैं। मुख्य नौ द्वार। बाकी यह सब पसीना निकलता है, बाल, उसके तो बहुत द्वार। आहाहा! हमारी मौज उड़ा देंगे। यह शरीर मिला, उसमें से मौज मानते हैं। मक्खन जैसा शरीर, बैल जैसा शरीर हो मजबूत। अरे! मरकर जायेगा अब सुन न। यह बैल का होगा नारकी। हाय! हाय! आँख में से आँसू बहते जायेंगे। रोयेगा... रोयेगा बापू! तेरा रोना भगवान जाने और तू वेदे दुःख को। ऐसी दशा, भाई! वह इस आत्मा की पहिचान सत् समागम में कभी की नहीं। उसे पहिचाना नहीं। उसकी कीमत की नहीं। उसकी कीमत करे तो जगत के पदार्थ की कीमत उड़ जाये। यह सुन्दर दिखे तो दूसरी सुन्दरता दृष्टि में

आवे नहीं। यह दूसरी सुन्दरता दृष्टि में आने से यह सुन्दर आत्मा इसकी दृष्टि में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया?

नव द्वारों से अशुचि वस्तु झरती है। लो! कस्तूरी झरती है इसमें से? पेशाब, विष्टा, आहाहा! वापस उसमें यह व्याधियाँ अभी बहुत हुई हैं न? क्या कहलाती है वह? कैंसर। चन्दुभाई! यहाँ का कैंसर, यहाँ का कैंसर, यहाँ का कैंसर, छाती का, गुदा का। आहाहा! अब मोटा पेट हो, इतना बड़ा अन्दर कैंसर। अन्दर है, अब करना क्या अन्दर में? हाय.. हाय! अवधि थोड़ी। एक व्यक्ति को कैंसर। ४८ वर्ष की उम्र। बहुत वर्ष पहले की बात। दस लाख रुपये। नया विवाह किया। डॉक्टर कहे, कैंसर है भाई! भाईसाहेब! बाहर प्रसिद्ध करना नहीं, हों! डॉक्टर को कहे, बाहर प्रसिद्ध करना नहीं। पत्नी नयी है, नया विवाह किया है अभी। और यह पैसा दस लाख। समझे न? बड़ा व्यापार। धन्धा लेन-देन का, सट्टा बाजार में, उस बाजार में। यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है, हों! ३०, ३५, ४० वर्ष पहले की बात है। भाईसाहेब! डॉक्टर कहे, हें! कैंसर। क्या? नहीं निभोगे। ४८ वर्ष। नया विवाह किया हुआ। सेठिया का परिवार, घर, पैसावाला व्यक्ति, विसाश्रीमाली बड़ा गृहस्थ धनाढ्य। अब? भाईसाहेब! बाहर कहना नहीं, हों! मैं गल जाऊँगा अब। घर में लड़का और स्त्री चिल्लाहट मचायेंगे। फिर जब मरने की तैयारी आयी, तब खबर पड़ गयी सबको कि अरे! कैंसर है। डॉक्टर ने तो भाई कहा था मुझे। मैं बाहर प्रसिद्ध करूँ तो तुमको दुःख हो। कैंसर है। साहेब! मेरी स्थिति पूरी होनेवाली है। कहो, आहाहा! ४८ वर्ष में समाप्त, देह छूट गया। क्या करे उसमें?

शिवलाल पानाचन्द बड़ा कलेक्टर। चन्दुभाई! तीन हजार वेतन। बड़ा कलेक्टर और दीवान, जयपुर का राजा का दीवान। वह उसे रोग हुआ कौन जाने कैसा! छोटी उम्र ४८ वर्ष की उम्र। ऐसा कोई रोग हुआ। समाप्त हो गया छोटी उम्र में। सिविल सर्जन बड़ा। ऐसी इज्जत ऐसे अलमारी की अलमारी पुस्तकें भरी हों। वे कहते थे एक बार, वाँचु तो मुझे याद आ जाये कि इस पुस्तक में यह लिखा है। इतनी यादशक्ति। बड़ी पदवी थी न कुछ। तब का क्या कहलाये? सिविल... बड़ी। अपने आया था न यहाँ ७७ में आया था, वहाँ व्याख्यान में। क्यों शिवलालभाई! कहा, कुछ आत्मा के लिये?

पहली शुरुआत में नौकरी हुई ७०० वेतन। पहले महीने का ७०० वेतन। फिर तो तीन हजार, पैंतीस सौ का आधा चला गया। जयपुर का दीवान। कहे, मैं पढ़ा है महाराज! परन्तु आत्मा है या नहीं, यह अभी मैंने निर्णय नहीं किया। आहाहा!

व्याख्यान पूरा हो गया, फिर वे आये और वह है न मनुचन्द का बाप नहीं नागरवेल। नागर। नागर जुंजावाला। नागर है। वे दोनों आये। व्याख्यान पूरा हुआ न बोटाद की सभा में बाद में आये। भाई! कहा, वाँचा है आत्मा है उसका कुछ? मैंने बहुत वाँचा है। पुस्तकें बहुत वाँची हैं। परन्तु अभी आत्मा है या नहीं, यह निश्चयपना आया नहीं। चन्दुभाई! आहाहा! अभी तो है और फिर कैसा? और कैसे? यह बाद में। अरर! कहा। यह ७७ की बात है, ७७। संवत् १९७७। व्याख्यान पूरा हुआ और आकर मैंने पूछा कि आत्मा का कुछ? कहे, वाँचा है परन्तु अभी मैंने निर्णय (नहीं किया)। आहाहा! अरे रे! यह जीवन, क्या कहा यह? भिखारी जैसा जीवन। रंक। यह रंक के रंक गींजकर मर जायेंगे सब। सहज क्या हुआ, ४८ वर्ष में समाप्त हो गया। ऐसा कुछ रोग यहाँ का आया। कोहनी का। हाथ ही ऐसा हो गया। ऐसा का ऐसा मर गया। बहुत होशियार। बहुत होशियार, हों! बुद्धि बहुत बुद्धि। लो, यह योगफल।

भाई! यह तो दो घड़ी का पर्दा सन्ध्या का रंग है। सन्ध्या का लाल रंग लगे, वह जहाँ पीछे जाये, वहाँ धबो नमः काला। इसी प्रकार यह बाहर के पुण्य के ठाठ देखकर उलझ गया। प्रभु तेरा अन्दर पड़ा है, उसकी तुझे खबर नहीं। आनन्द का कन्द अतीन्द्रिय आनन्द का सुन्दर-सुन्दर महल अन्दर है। उसकी तुझे प्रीति नहीं, उसकी तुझे रुचि नहीं, उसका तुझे आश्रय नहीं, उसका तुझे शरण नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, इन **नव द्वारों से वस्तु झरती है। और आत्माराम जन्म-मरणादि छिद्र आदि दोष रहित है,....** भगवान आत्मा अन्दर अरूपी चिद्घन, अनादि-अनन्त शाश्वत् उसे छिद्र कैसा? उसमें तो अखण्ड वस्तु है वह तो। यह तो पर्याय में इसने पुण्य-पाप और भ्रमणा खड़ी की है। वस्तु में छिद्र-बिद्र और वस्तु में मैल है नहीं। ऐसा भगवान पूर्णानन्द शाश्वत् आत्मा स्वयं तो छिद्रादि दोषरहित। छिद्र नहीं और मैल भी नहीं। जन्म-मरण वह नहीं। जन्म-मरण उसे कहाँ? अन्दर वस्तु के स्वभाव में कहाँ है?

ज्ञानानन्द प्रभु की प्रतीति कर, उसकी दृष्टि कर। उसे बारम्बार याद कर, बारम्बार उसे याद कर। सब भूल... भूल, इसे याद कर। पाँच वर्ष में गाली दी हो तो याद करे। सही समय में, मुझे गाली दी थी इसने, हों! उस गाली को गाँठ बाँधता है। परन्तु गुण? आहाहा! जिसके—मेरे एक गुण की एक समय की झलक तीन काल—तीन लोक को जाने, ऐसी मेरी सामर्थ्य है, ऐसा मुझे सुनाया और उसे गाँठ नहीं बाँधे, रुचि न करे कि यह आत्मा ऐसा है। वह तो तीन काल—तीन लोक को जाने-देखे, बस। किसी का करे-हरे नहीं, ऐसी शान्तिवाला भगवान आत्मा है, उसे सुनकर अन्दर में रुचि की गाँठ बाँधी नहीं और वह गाँठ बाँधी (कि) इसने मेरा अपमान किया था, इसने मुझे गाली दी थी। आहाहा!

खस में थे न दो। साला-बहनोई जमींदार थे। यह जमींदार कहते हैं न काठी। साला-बहनोई। तो साला को किसी समय गाली दी होगी उसके बहनोई को। किसी समय अपमान किया होगा। वह और उसका बहनोई रोटियाँ खा रहे थे। उसकी बहिन रोटियाँ बना रही थी। वहाँ आया वह साला आया। वहाँ उसने आदर दिया उसके बहनोई ने। आओ... आओ आपा आओ। परन्तु आया छुरा लेकर आया हुआ। सगे बहनोई और बहिन बैठे थे और बहनोई को मार डालने के लिये आया। उसे खबर नहीं। बेचारा रोटियाँ खाता था और उसकी बहिन रोटी बनाती थी। आओ आपा आओ। साथ में बैठो। छुरा (मारा)। उसकी बहिन... आहाहा! क्या हुआ? एक बार अपमान किया था मेरा। अब परन्तु... वह सगा बहनोई, हों! मारा, खाते-खाते सुला दिया एकदम। यहाँ होंगे सब घर जाने अब उसे रहने के। मर गया वह बेचारा। अब उसे फिर कुछ क्या हुआ, खबर नहीं।

यह बैर-विरोध करके भगवान! तू किसके साथ भटक रहा है? क्या कर रहा है तू? कहते हैं, भगवान शुद्धात्मा प्रभु कैसा है अन्दर? **भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्ममल से रहित हैं,....** वह मल-मल। वह भगवान आत्मा अन्दर जिसे आत्मा कहते हैं, वह तो भावकर्म अर्थात् पुण्य-पाप के राग से तो रहित वह वस्तु है। जड़कर्म, आठ कर्म के परमाणु के अस्तित्व से, मौजूदगी से उसकी अस्ति अत्यन्त भिन्न है। नोकर्म वाणी, शरीर

के परमाणु की मौजूदगी से प्रभु भगवान की मौजूदगी / अस्ति अत्यन्त भिन्न है। उसमें वह द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का मैल उसकी वस्तु में नहीं। आहाहा!

भगवान शुद्धात्मा भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्ममल से रहित है, यह शरीर मल-मूत्रादि नरक से भरा हुआ है। यह पाक हो, यह पीव हो, यह झपकारा मारे। पीव कहते हैं न? क्या कहते हैं? पीव नहीं होता। पीव। वह खून। सौ बिन्दु का एक पीव हो, ऐसा कहते हैं। खून का। वह जब ऐसे हो, झपकारा मारे। हाय.. हाय! यह झपकारा तो जड़ में है। परन्तु इसकी दृष्टि का अस्तित्व वहाँ गया है ऐसे। वह किसी के पैर में पट्टी बाँधते चिल्लाहट मचाता है। यह तो वहाँ होता है। भगवान आत्मा वह जाननहार है। उसे भिन्न जाना नहीं। एक मानकर बैठा, वह उसकी पीड़ा में मानो पीड़ित हो गया। हाय... हाय! अरे! मुझसे सहन नहीं होता, हों!

एक व्यक्ति को वायु का-वायु का दर्द था भाई! सेठिया पैसावाला बड़ा सेठिया। दस लाख चालीस हजार की बड़ी उपज। वायु-वायु। वायु होती है न! फिर कहे मुझे गोली मारो, हों! यह मुझसे सहन नहीं होता। समझ में आया? यह दामोदर सेठ लो न, दामनगर। वे तो गुजर गये न। दामोदर सेठ, भाई! चन्दुभाई पहिचानते हो न? यह दामनगर नहीं? बहुत वायु हो गयी। पीड़ा, फिर वायु की पीड़ा। मुझसे रहा नहीं जाता। मुझे गोली से मारो, कहे। कहो, लौकिक में बहुत होशियार व्यक्ति कहलाये। लौकिक में बहुत वैसा। ऐसी पीड़ा... ऐसी पीड़ा... ऐई! सुखलाल! ऐई! बन्दूक की गोली ले, हों! मुझसे यह सहन नहीं होता। आहाहा! वह तो फिर कितने काल में मिट गया। परन्तु यह स्थिति। बन्दूक से मार। पैसा देखो तो दस लाख (पूँजी), चालीस हजार की उपज घर में। घर में घोड़े, घोड़ागाड़ी। बनिया दशाश्रीमाली का परन्तु जमींदार जैसा बड़ा। वह इस रोग में। आहाहा! अरे! तुझे थोड़ा दुःख सहन नहीं होता। अभी आया था न पहले, भाई! तो बड़े पाप करके, बड़े दुःख कैसे लेता है तू? छोटा दुःख तुझसे सहन नहीं होता तो बड़े पाप करके बड़ा दुःख कैसे लेता है तू? उसका योगफल तो कर कुछ। आहाहा! परन्तु भाईसाहेब! यह तो बाबा हो तो होवे। और एक व्यक्ति ऐसा कहता था। ऐसी बात तो बाबा होकर अकेले (हों तो हो)। अब यह सब जंजाल पड़ी, स्त्री, पुत्र। अब हमारे क्या करना? कुछ व्यवस्था रखनी या सब उड़ा देना? नाक को काट डालना अभी?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ... था? बाप धूल का। नरक में जानेवाला... किया। क्योंकि नरक में तो जाना पड़ेगा, तो करो... पहला तैयार, चित्रामण किया। शास्त्र में दृष्टान्त आता है कि भाई! तुझे भविष्य में होना हो, वैसा चित्रामण कर। कैसा होना है? तेरे परिणाम करे, वैसा भविष्य में होगा। चित्रामण तूने किया है तेरे लिये, दूसरा कौन करता था तुझे? जैसे परिणाम कर, वैसा तुझे मिलेगा। वहाँ चित्रामण नारकी का शरीर या ढोर का या मनुष्य का। तेरे चित्रित फल यह हैं, किसी ने दिये नहीं हैं और आत्मा को चित्तस्वरूप की दृष्टि और ज्ञान जिसने किये, भविष्य में शान्ति... शान्ति... शान्ति... और स्वरूप का अधूरा साधन हो। (पश्चात्) पूरा करके मुक्ति प्राप्त करे। कहो, समझ में आया?

कहते हैं, **शरीर मल-मूत्रादि नरक से भरा हुआ है।** भगवान आत्मा तो अकेला आनन्द का निर्मल पिण्ड है। कैसे बैठे? आहाहा! **ऐसा शरीर का और जीव का भेद जानकर....** देखो! शरीर और जीव की भिन्नता जानकर **देह से ममता छोड़के....** अब उसका प्रेम छोड़, उसका प्रेम छोड़ और इसका प्रेम कर अब अन्दर। **वीतराग निर्विकल्प समाधि में ठहरके....** आहाहा! भगवान जैसे निरन्तर तूने पर की प्रीति को जोड़ा है, वैसे यहाँ दृष्टि करके निरन्तर उसका विचार कर। रागरहित अभेद शान्ति में रहकर भगवान शान्तस्वरूप है, परम शान्तरस है।

वीतरागबिम्ब प्रभु आत्मा है। निर्दोषी स्वरूप, उसकी दृष्टि करके स्थिर हो। **निरन्तर भावना...** अन्तर पड़े बिना भगवान की—आत्मा की एकाग्रता करना। भावना अर्थात् एकाग्रता। **करनी चाहिए।** लो! यहाँ तो शरीर पर ही माँडा है मुनि ने। यहाँ माल को तुलना करता है। माल नहीं मिलान करता? कि यह माल अच्छा है और यह खराब है। लाते हैं या नहीं यह? बाजरा, ज्वार हाथ में लेकर कहे यह माल ऊँचा लगता है। माल लेने जाये वहाँ बाजरा, ज्वार तो कहे यहाँ तो तुलना कर कि यह जड़ है, वह चैतन्य है, दो में कौन सा अच्छा है, देख तो सही। न्यालभाई! बनिया जाये तो कितनी जाँच करे माल के लिये। आहाहा! घी के लिये पळो नीचे डाले ठेठ। मण घी हो और

डिब्बा घी का, इसलिए ऊपर से डाले तो पळो ले। पळो समझे न? एक पळी बड़ी नीचे डाले। नीचे कचरा है या नहीं लाओ ऊपर से। इतनी जाँच कर। ऊपर अच्छा और अन्दर नीचे कचरा हो तो? कीटू अर्थात् कचरा। ठेठ जाँच करे। आहाहा! ऐ...! उसमें कुछ अन्दर में गया और क्या है इसमें मैल? या निर्मल क्या है? कहीं इसकी जाँच की?

इसलिए कहते हैं कि अब आत्मा का विचार कर, मनन कर, सत्समागम से उसकी पहिचान कर और उसमें स्थिर हो, यह करनेयोग्य है और यह प्रीति छोड़। क्योंकि वह तो एक बार फू होकर पड़ा रहेगा। श्मशान में। वह कहीं साथ आवे ऐसा नहीं। और वह अभी तेरा नहीं, इसलिए आत्मा की पहिचान करके समझ करना, यह बात विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १५०

अथ–

२७३) दुक्खइँ पावइँ असुचियहँ ति–हुयणि सयलइँ लेवि।
एयहिँ देहु विणिम्मियउ विहिणा वइरु मुणेवि।।१५०।।

दुःखानि पापानि अशुचीनि त्रिभुवने सकलानि लात्वा।
एतैः देहः विनिर्मितः विधिना वैरं मत्वा।।१५०।।

दुक्खं इत्यदी। दुक्खइं दुःखानि पावइं पापानि असुचियइं अशुचिद्रव्यांणि ति–हुयणि सयलइं लेवि भुवनत्रयमध्ये समस्तानि गृहीत्वा एयहिं देहु विणिम्मियउ एतैर्देहो विनिर्मितः। केन कर्तृभूतेन। विहिणा विधिशब्दवाच्येन कर्मणा। कस्मादेवंभूतो देहः कृतः वइरु मुणेवि वैरं मत्वेति। तथाहि। त्रिभुवनस्थदुःखैर्निर्मितत्वात् दुःखरुपोडयं देहः, परमात्मा तु व्यवहारेण देहस्थोडपि निश्चयेन देहाद्भिन्नत्वादनाकुलत्वलक्षणसुख– स्वभावः। त्रिभुवनस्थपापैर्निर्मितत्वात् पापरुपोडयं देहः, शुद्धात्मा तु व्यवहारेण देहस्थोडपि निश्चयेन पापरुपदेहाद्भिन्नत्वादत्यन्तपवित्रः। त्रिभुवनस्थाशुचिद्रव्यै–र्निर्मितत्वादशुचिरुपोडयं देहः, शुद्धात्मा तु व्यवहारेण देहस्थोडपि निश्चयेन देहात्पृथग्भूतत्वादत्यन्तनिर्मल इति। अत्रैवं देहेन सह शुद्धात्मनो भेदं ज्ञात्वा निरन्तरं भावना कर्तव्येति तात्पर्यम्।।१५०।।

आगे फिर भी देह की मलिनता दिखलाते हैं–

तीन लोक में जितने भी हैं अशुचि पापमय सभी पदार्थ।
मानो विधि ने बैर बाँधकर उनसे किया देह निर्माण।।१५०।।

अन्वयार्थ :– [त्रिभुवने] तीन लोक में [दुःखानि पापानि अशुचीनि] जितने दुःख है, पाप हैं, और अशुचि वस्तुयें हैं, [सकलानि] उन सबको [लात्वा] लेकर [एतैः] इन मिले हुओं से [विधिना] विधाता ने [वैरं] वैर [मत्वा] मानकर [देहः] शरीर [निर्मतः] बनाया है।

भावार्थ :–तीन लोक में जितने दुःख हैं, उनसे यह देह रचा गया है, इससे दुःखरुप है, और आत्मद्रव्य व्यावहारनयकर देह में स्थित है, तो भी निश्चयनयकर देह से भिन्न निराकुलस्वरुप सुखरुप है, तीन लोक में जितने पाप हैं, उन पापों से यह शरीर

बनाया गया है, इसलिये यह देह पापरुप ही है, इससे पाप ही उत्पन्न होता है, और चिदानंद चिद्रूप जीव पदार्थ व्यवहारनय से देह में स्थित है, तो भी देह से भिन्न अत्यंत पवित्र है, तीन जगत् में जितने अशुचि पदार्थ हैं, उनको इकट्ठेकर यह शरीर निर्माण किया है, इसलिये महा अशुचिरुप है, और आत्मा व्यवहारनयकर देह में विराजमान है, तो भी देह से जुदा परम पवित्र है। इस प्रकार देह का और जीव का अत्यंत भेद जानकर निरन्तर आत्मा की भावना करनी चाहिये।।१५०।।

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ कृष्ण ५, रविवार
दिनांक- १८-०७-१९६५, गाथा - १५०, १५१, प्रवचन-१७३

परमात्मप्रकाश। योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि लगभग ९०० वर्ष पहले इस भरतक्षेत्र में हुए हैं, उन्होंने यह परमात्मप्रकाश आत्मा के हित के लिये बनाया है। १५० गाथा। १४९ हो गयी।

आगे फिर भी देह की मलिनता दिखलाते हैं— देखो! क्या कहते हैं? यह देह है, दूसरी चीज़ें तो कहीं दूर रही परन्तु यह देह ही स्वयं अशुचि, पाप और दुःख का ढ़ेर है। दुःख-दुःखमय देह है। भगवान आत्मा अन्दर आनन्द की मूर्ति है, उसकी यह रुचि कराते हैं। भाई! आत्मा के अतिरिक्त दूसरी चीज़ तो बाह्य रही। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार और लक्ष्मी, वे तो परपदार्थ बाहर बहुत दूर हैं। यह तो नजदीक है, यह देह भी मलिन और पाप और दुःखरूप है और तेरा आत्मा ही आनन्द और सुखरूप है, ऐसे देह से भिन्न करके आत्मा की दृष्टि करके आत्मा का अनुभव कर तो तुझे जन्म-मरण मिटेंगे और दुःख का नाश होगा। ऐसा १५० में बताते हैं।

२७३) दुक्खइँ पावइँ असुचियहँ ति-हुयणि सयलइँ लेवि।
एयहिँ देहु विणिम्मियउ विहिणा वइरु मुणेवि।।१५०।।

तीन लोक में... 'दुःखानि पापानि अशुचीनि' यह जितने जगत में दुःख हैं, उतने दुःख से कर्मरूपी शत्रु ने यह शरीर बनाया है। कर्मरूपी शत्रु। आत्मा अरूपी, कर्म जड़-अजीव। दोनों विरोधी हैं, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा ज्ञानानन्द, अरूपी, चैतन्यघन;

तब कर्म जड़, अजीव, रूपी इन दोनों को बैर-विरोध है। तो कहते हैं कि भगवान आत्मा में यह शरीर जो दिखता है, यह पूर्व में उसने विकारभाव आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध बैरभाव किया था। आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप की दृष्टि छोड़कर अकेले पुण्य और पाप के भाव किये, वे वास्तव में शुद्धस्वरूप से विरोधी बैर है। समझ में आया? यह शुभाशुभभाव, वह बैर है, शत्रु है, उससे कर्म बँधा तो उसे यहाँ शत्रु कहने में आया है। आहाहा! न्यालभाई! यह दुःख शरीर है या... जितने दुनिया में यह दुःख हैं, उनसे यह बना हुआ है। जितने दुनिया में पाप हैं, उनसे यह शरीर पाप से बना हुआ है। देखो! विशिष्टता क्या करते हैं? पुण्य और पाप दो भाव आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध थे वह वास्तव में तो दोनों पाप हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : देव को भी शरीर तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। परन्तु वह देव का शरीर, देह का शरीर, वह सब पाप ही है। पाप के परिणाम से उत्पन्न हुआ कर्म और कर्म से हुआ शरीर अर्थात् यह पूरा शरीर, पुण्य और पाप के भाव, वे दुःखमय हैं, उनसे कर्म हुए और उनसे हुआ शरीर। इसलिए यह शरीर अकेला दुःखमय है। आहाहा! किसका प्रेम करना है तुझे? कहते हैं। धर्म करना है या नहीं? धर्म करना हो, सुखी होना हो तो भगवान आत्मा देह की चिन्ता छोड़ दे। उस चिन्ता द्वारा देह रहेगी नहीं। देह तो उसकी स्थिति से रहेगी। तेरी चिन्ता कर। चिन्तवन शुद्ध चिदानन्दस्वरूप। लेंगे दोनों परस्पर कि यह देह, वैरी ऐसे पुण्य-पाप के भाव दुःख, वह इसने कर्म बना और उसने बनाया शरीर। इसलिए शरीर अकेला दुःख का पुतला है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहला सुख वह निरोगी काया।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी बात नहीं। अज्ञानियों ने गप्प मारी है सब। पहला सुख निरोगी काया। शरीर में निरोगता हो तो सुख। सुख मूढ में भी नहीं। वह तो जड़, मिट्टी है। वह तो मिट्टी रूपी पुद्गल है। उसमें निरोगता सुख कहाँ से आया? यहाँ तो कहते हैं कि शरीर की निरोगता, वह भी दुःख का पुतला है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध भाववाला तत्त्व है। आहाहा! और आत्मा के स्वभाव से

विरुद्ध भाव ऐसे पुण्य और पाप, उनसे उत्पन्न है। उनसे उत्पन्न है न? कहीं आत्मा के धर्म से शरीर उपजता नहीं। आत्मा तो शुद्ध चिदानन्द की दृष्टि और उसका ज्ञान करे तो उससे कर्म नहीं बँधते और उससे शरीर नहीं मिलता। समझ में आया? अब यह शरीर ऐसा, उसे बाहर की तो बात भी कहाँ करना? पैसा, स्त्री, पुत्र कहीं रह गये धूल कचरा।

मुमुक्षु : अभी तक धूल था, आगे आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो यहाँ दुःखमय कहा न, इसलिए फिर यह कचरा कहा दुःखमय तो वह तो कचरा (ही है)। उकरडो कहते हैं पण्डितजी? कचरे का ढ़ेर, कचरे का ढ़ेर। कचरे का ढ़ेर होता है न, उसे यहाँ उकरडो कहते हैं। वह कचरे का ढ़ेर होता है न! समझ में आया? वह दुःख का ढ़ेर है, ऐसा कहते हैं।

परमात्मप्रकाश। महासन्त मुनि दिगम्बर जंगल में बसनेवाले आत्मा के आनन्द की अनुभूति, आत्मा के आनन्द की अनुभूति में विशेष अन्तर में स्वसंवेदन शान्ति में झूलनेवाले। वे मुनि जंगल में रहकर इस दुनिया के हित के लिये जरा यह शास्त्र बनाया। अरे जीवो! यह शरीर ही अकेला दुःखमय है। फिर सामने पाठ इतना है। सामने से निकालेंगे टीका। और यह शरीर ही अकेला पाप का पुतला है। यह दुःखी के समय नहीं, हों, जैचन्दभाई! रोग हो, उस समय नहीं। निरोग और रोग सब समय अकेला दुःखमय ही है, ऐसा कहते हैं। निरोगता के समय भी यह शरीर तो दुःखमय ही है। क्योंकि भगवान आत्मा अपने आनन्द को भूलकर जितना पुण्य-पाप का भाव जितना किया था, उतना कर्म बँधा, यह उसके फलरूप से शरीर (मिला)। आत्मा आनन्द और तब यह दुःखरूप है, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : ऐसी तो कहावत है, शरीर से सुखी तो सुखी सर्व बातें।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो भाई ने कहा अभी, तुमने सुना नहीं। यह तुमको घुस गयी है अन्दर विपरीतता। शरीर से सुखी तो सुखी सर्व बातें। यहाँ तो कहते हैं, शरीर से सुखी जो है, वह शरीर स्वयं दुःख का पुतला है, ऐसा कहते हैं। धूल में भी सुख नहीं। सुख तो भगवान आत्मा में उसका सम्यग्दर्शन करने से, उसकी प्रतीति करने से जो आनन्द आवे, वह आनन्द तीन काल में दूसरे विषयों में है नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ऐसा चिदानन्दस्वरूप की अन्तर्दृष्टि विश्वास करने से—भरोसा करने से भरोसे से भगवान तिर जाता है अन्दर में से। पर्याय में आनन्द की दशा प्रगट होने से जिसके आनन्द के स्वाद की प्रतीति के समक्ष पूरी दुनिया जिसे तुच्छ लगती है। आहाहा! समझ में आया? तीर्थंकर के समवसरण भी जिसे सम्यग्दर्शन के आनन्द के समक्ष तुच्छ, तुच्छ, तुच्छ। आहाहा! भगवान आत्मा से यह शरीर विरुद्ध दुःख है, पाप है, अशुचि वस्तु है। मात्र अपवित्र वस्तु से भरपूर—विष्टा, खून, हड्डी, चमड़ी। एक शेरडी-शेरडी—गन्ना-गन्ना, गन्ना होता है न? उसका एक छोल निकालो, छोल ऊपर से जरा। छाल को क्या कहते हैं? ऊपर से एक सहज निकाले थोड़ी। इतनी एक चमड़ी को उतरकर इस शरीर को खड़ा रखे तो थूँकने के लिए खड़ा न रहे। जैसे यह शेरडी—गन्ना। गन्ने की छाल होती है न छाल? छाल निकालकर सफेद दिखे। इतनी छाल यहाँ से निकाल डाले ऊपर से जरा। दुर्गन्धमय... दुर्गन्धमय एक छाल निकाले ऊपर की चमड़ी की। इस चमड़ी की छाल का वस्त्र-कपड़ा है। इतना जरा निकाले ऊपर से यह। भगवान! तेरे आनन्द से, वह इस अपवित्रता से यह विरुद्ध वस्तु है। इस वैरी ने बनाया है, ऐसा कहेंगे अभी। इस कर्मरूपी वैरी ने यह तुझे पंजे में डालने के लिये बनाया है। आहाहा!

'सकलानि' उन सबको लेकर... सबको लेकर... अर्थात्? दुनिया के जितने दुःख, दुनिया के जितने पाप, दुनिया में जितनी अपवित्र चीज़ें, उन सबको इकट्ठी करके **इन मिले दुःखों से विधाता ने....** अर्थात् कर्म ने **वैर मानकर शरीर बनाया है।** यह उपमा अलंकार दी है न! वह कर्म वैरी है। उस कर्म वैरी ने यह शरीर बनाया है। भगवान आत्मा में यह शरीर है नहीं। कहो, समझ में आया? तो शरीर की कोई भी क्रिया वह जड़ की है और शरीर की कोई भी पर्याय भी दुःखरूप है, पापरूप है और अशुचि है, ऐसे तीन उपमा दी। समझ में आया? इस शरीर से कुछ कर लें शरीर से। परन्तु शरीर ही दुःखरूप, पापरूप और अशुचि है। तुझे शरीर से क्या करना है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही इनकार करते हैं। साधन तो तेरे स्वभाव में है। यह तो

जड़ मिट्टी है। आहाहा! भगवान ज्ञानमूर्ति सचेतन, चैतन्यसूर्य है, चैतन्यसूर्य। अनाकुल आनन्द का कन्द तेरी दृष्टि पड़ने से वह परमात्मा तुझे भासित हो। ऐसा वह आत्मा, उससे यह वैरी कर्म ने यह बनाया तेरे लिये पंजे में—जेल में डालने के लिये। यह शरीर मिले तो खुशी... खुशी... खुशी... खुशी... प्रसन्न... प्रसन्न... हो जाये, शरीर कुछ ठीक हो तो। भाई! यह दुनिया से विरुद्ध बात है। देखो! कहो, यह वैरी, कर्म को तेरा वैरी मानकर, तेरे शत्रु से वैर के समय देख और यह बनाया है।

भावार्थ—तीन लोक में जितने दुःख हैं,... देखो अब टीका। भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु, तब तीन लोक के जितने दुःख, वे सब शरीर के रचे हुए हैं। यह शरीर ही दुःखमय है, ऐसा कहते हैं। **उनसे यह देह रचा गया है,...** दुःख से देह रचा है। शास्त्र में आता है न कुन्दकुन्दाचार्य (कृत) अष्टपाहुड में। एक अंगुल में छियानवे रोग। अष्टपाहुड में आता है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज (कृत) अष्टपाहुड शास्त्र है न? उसमें है भावपाहुड में। एक अंगुल में छियानवे रोग। समझ में आया?

मुमुक्षु : दूसरे अंगुल में दूसरे छियानवे रोग?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे एक यहाँ में छियानवे... यहाँ छियानवे... यहाँ छियानवे... यहाँ छियानवे... है या नहीं? ऐई! अष्टपाहुड है? क्या है वह पृष्ठ है न? लिखा होगा सामने कुछ। भावपाहुड में है प्रायः करके। समझ में आया? यह शरीर पूरा साढ़े तीन हाथ का लम्बा, उसके एक-एक अंगुल में छियानवें रोग। ऐसे पूरे शरीर में एक-एक अंगुल में एक-एक में छियानवे... छियानवे... छियानवे... सब। एक ही छियानवे ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : पूरे शरीर में मिलकर छियानवे, ऐसा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। आहाहा!

आचार्य महाराज परमात्मस्वरूप बतलाते हैं। भाई! तू परमस्वरूप है न अन्दर! तीन लोक का नाथ तेरे एक समय की पर्याय में तीन काल—तीन लोक ज्ञात हो, ऐसा तू यह शरीर मेरा, क्रिया मेरी, यह मुझे सुख देगी, यह मानकर भ्रमणा में पड़ा है। मूढ़ता में निगोद में जायेगा चार गति में। समझ में आया? आहाहा! शरीर को अच्छा, इसलिए

मानो क्या कर लूँ? बटका भर लूँ या इसमें से खा लूँ या क्या करूँ मानो अन्दर से। अरे! भाई! यह तो शरीर अकेले दुःख का पुतला है। इस वैरी ने तेरे लिये दुःख की मूर्ति बनायी है।

मुमुक्षु : ममता छुड़ाने के लिये कहा है या वास्तव में है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तव में ही है और क्या है? आत्मा के आनन्द से यह विरुद्ध है।

उनसे देह रचा गया है, इससे दुःखरूप है,.... इसलिए यह शरीर दुःखरूप है। **और आत्मद्रव्य....** भगवान आत्मा **व्यवहारनयकर देह में स्थित है,....** अब गुलाँट मारकर बात करते हैं स्वयं। अब आत्मा निकाला उसमें से। जैसे कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने (समयसार के) कर्ताकर्म की ७२ गाथा बनायी। अशुचि, विपरीतं, दुःख। तो उसमें से तीन बोल अमृतचन्द्राचार्य ने निकाले कि शुचितं, आत्मा शुचि है, चैतन्यस्वरूप और सुखरूप है। यह पाठ में तीन है और उसमें से अमृतचन्द्राचार्य ने दूसरे तीन अन्दर से निकाले हैं। यहाँ आचार्य महाराज ने (तीन निकाले हैं)। यह शैली सब समयसार की शैली जो है, वह तो अलौकिक! उसकी टीका (के) कर्ता अमृतचन्द्राचार्य अलौकिक महा सन्त दिगम्बर मुनि जंगल में रहनेवाले, जिन्हें आत्मध्यान में मस्ती में स्थित थे, यह जरा विकल्प आ गया। कर्ता-बर्ता विकल्प के नहीं होते। यह जरा पुस्तक बन गयी। जगत के हित के लिये विकल्प आया, बन गयी। पुद्गल से बन गयी, उसका कर्ता यह आत्मा नहीं। समझ में आया?

तीन लोक में जितने दुःख हैं, उनसे यह देह रचा गया है, इससे दुःखरूप है,.... ऐसा कहते हैं कि पूरी दुःख की मूर्ति, तेरी नजर छोड़ दे उसके ऊपर से। अन्दर भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति व्यवहार से शरीर में रहा, ऐसा कहा जाता है। देखो! **देह में स्थित है, तो भी निश्चयनयकर....** यथार्थ दृष्टि से देखें (तो) **देह से भिन्न निराकुलस्वरूप सुखरूप है,....** भगवान आत्मा पुण्य-पाप के भाव, ये दोनों आकुलता, आकुलता है, दुःखरूप है। यह पुण्य-पाप के भाव दोनों आकुलता और दुःखरूप है। भगवान आत्मा अनाकुल है। देखो! भावपाहुड गाथा ३७, ३७ है।

एक्केक्कंगुलि वाही छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं।
अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया॥३७॥

अर्थ—इस मनुष्य के शरीर में एक-एक अंगुल में छयानवे-छयानवे रोग होते हैं,.... ३७। भावपाहुड की ३७वीं। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज महा सन्त दिगम्बर मुनि धर्म के धुरंधर स्तम्भ उन्होंने यह कहा कि अरे भाई! तुझे देह। दूसरी चीज़ तो अब कहीं रह गयी। यह देह। एक **शरीर में एक-एक अंगुल में....** है।

एकैकागुंलो व्याधयः पण्णवतिः भवंति जानिहि मनुष्यानां।
अवशेषे च शरीरे रोगाः भण कियन्तः भणिताः॥३७॥

दूसरे, पूरे शरीर में कितने रोग हैं, भाई! तू गिन न! ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवती आराधना में एक यहाँ रखा है। पृष्ठ ३७५ है। उसमें कुछ रोग कहे हैं। उसमें कुछ कहे हैं। समझ में आया? एक अंगुल रखो, उसमें छियानवें रोग। यह दूसरे अंगुल में छियानवे, तीसरे में छियानवे, चौथे में छियानवे। इसे अँगुल कहा जाता है इतने को, ऐसे। उसमें छियानवे रोग। ऐसे-ऐसे पूरे शरीर में एक-एक अँगुल में छियानवे रोग। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज पंच महाव्रतधारी सन्त, दिगम्बर महन्त जिनकी वाणी पंच महाव्रतवाली सत्य वाणी है। समझ में आया? वे कहते हैं कि देखो! इस शरीर में ऐसे रोग भरे हैं। तुझे शरीर का प्रेम, यह पर जड़, मिट्टी, धूल, श्मशान की राख, श्मशान की राख, उसमें तुझे प्रेम और भगवान अमृत का पिण्ड तू, उसमें तुझे प्रेम नहीं। आहाहा! कहो, शशीभाई! कहते हैं, समझे न? वहाँ तो फिर ऐसा कहना है। हे जीव!

ते रोया वि य सयला सहिया ते परवसेण पुव्वभवे।
एवं सहसि महाजस किं वा बहुएहिं लविएहिं॥३८॥

तुझे अधिक क्या कहना? ऐसे दुःख तूने अनन्त बार सहन किये। एक आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना। आत्मा अखण्डानन्द प्रभु शुद्ध की अन्तर अनुभव प्रतीति किये बिना अनन्त बार जैन साधु दिगम्बर भी क्रियाकाण्डी अट्ठाईस मूलगुण पालनवाला अनन्त बार हुआ। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। यह आता है न, छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत

धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' यह भगवान आत्मा यह पुण्य-पाप के विकारभाव रहित ऐसी अखण्डानन्द मूर्ति, यह उसका तूने प्रेम और रुचि, दृष्टि तूने की नहीं। उसकी रुचि-दृष्टि किये बिना ऐसे रोग तूने अनन्त बार। आहाहा! अनन्त भव में अनन्त बार सहन किये।

हे महायश! ऐसी तो उपमा देते हैं। साधु को कहते हैं न, **हे महायश!** यह तूने अनन्त बार सहन किया। अब तो इस आत्मा के आनन्द का अनुभव कर। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव कर। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव और वह अनुभव ही मोक्ष का मार्ग है। इसके अतिरिक्त कोई (मोक्ष का मार्ग नहीं है)। 'अनुभव रत्न चिन्तामणी, अनुभव है रसकूंप, अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' यह बनारसीदास का कलश (काव्य) है। समयसार नाटक। कहते हैं कि अब तू **हे महायश! हे मुने! इस प्रकार ही सहेगा, बहुत कहने से क्या है ?** देखो! यहाँ भी फिर गर्भावास में उत्पन्न हुए, ऐसी बात बहुत ली है भाव में। समझ में आया ? कहो, कैसा अब यह शरीर अच्छा, यह बड़ा अच्छा ? जितना बड़ा, उतने अधिक रोग होंगे अँगुली भरे तो कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा निश्चय से भगवान देह से भिन्न है। भाई! तूने तेरी कीमत नहीं की। तुझे तेरी कीमत करना नहीं आया, करना नहीं आया। आहाहा! एक गरीब व्यक्ति था गरीब। पहले धनवान होगा गृहस्थ लोक, फिर अमुक निर्धन हो गये। अब ऐसे करते... करते... करते... एक पेटी होगी, यह सन्दूक-सन्दूक। एक पुराना सन्दूक होगा। सन्दूक खोजते-खोजते एक हार निकला, मोती का हार। ऐसे अभी निर्धन हो गये। पहले गृहस्थ और पहले का एक हार पड़ा हुआ कौन जाने पुराने गोदड़ा के नीचे। वह हार बाहर निकाला। मोती का हार था। अब उसने तो हार बाहर निकाला, इसलिए एक व्यक्ति झबेरी तुरन्त मिला, इसलिए सात हजार में माँगा। सात हजार में दे दिया। सात हजार। इसके तो कुछ कीमत नहीं मिलती। और अपने तो गरीब लोगों को सात हजार तो मिले। वह मोती का हार।

दूसरे झबेरी ने देखा कि अरे! यह तो भाई! तेरह हजार में देना है ? उस सात हजारवाले को कहता है। तेरह हजार। तीसरे झबेरी ने देखा कि... बीस हजार में देना है ? बीस हजार। चौथे झबेरी के यहाँ गया कहे, साठ हजार में देना है। सात से साठ

आये। ऐसा मोती का हार। कीमत नहीं। उसे कीमत नहीं थी गरीब व्यक्ति को। वह कहे, हम गृहस्थ थे और कुछ पुराना पड़ा होगा। सात हजार आये तो ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न हो गये। परन्तु जिसकी कीमत झबेरी ने साठ हजार दी। देवीदास केवैया कहते थे यहाँ पोरबन्दरवाले। यह हार ऐसा, जिसकी कीमत नहीं, उसने सात हजार में दे दिया। और गृहस्थ ने वापस एक झबेरी से साठ हजार में लिया, साठ हजार में लिया। वह और कितने में बेचेगा?

इसी प्रकार जिसे यह आत्मा अन्दर कौन है, इसकी कीमत नहीं। सन्दूक के नीचे पड़ा है पूरा। गहरा-गहरा शरीर बिना, पुण्य-पाप के भाव रहित अकेला चिदानन्द हार पड़ा है। उसे यह एक विषय पुण्य और पाप में बेच डालता है। जाओ। बहुत तो पुण्य... पुण्य... पुण्य किया न? दया, दान, व्रत किये, ओहोहो! बहुत किया जाओ। बेच डाला परन्तु भाई! तेरी कीमत भगवान कहते हैं कि वह अनन्त पुण्य तू इकट्ठा कर तो भी वह पुण्य से मिले ऐसा नहीं, ऐसी वह चीज़ है।

भगवान आत्मा, जिसकी अन्तर नजर करने से निर्विकल्प दृष्टि करने से प्राप्त हो, ऐसा वह आत्मा है। उसकी कीमत तो बहुत भरनी पड़ेगी। तब वह आत्मा प्राप्त होता है। ऐसा चिन्तामणि तू है और तुझे तेरी कीमत नहीं होती और इन पुण्य-पाप की कीमत। कुछ पुण्य किया तो बहुत किया, पाप किया तो यह किया, हम होशियार थे और यह किया। बापू! शरीर ही दुःख और पापमय है, उसमें तू किसके लिये महिमा करता है? ओहोहो! क्या करना यह? छोटाभाई! ऐसा सुनकर फिर दुकान में निकम्मे हो जाना, कहेंगे। यह रायपुर में फिर....

एक डॉक्टर कहते थे। रतिभाई डॉक्टर है न, यह सर्जन नहीं? बड़े। दो-तीन दिन सुना। ९५ के वर्ष में। तीन दिन। यह महाराज जो कहते हैं, वह यदि सुने और समझने जायें तो इस दुनिया के कहीं निकम्मे हो जायेंगे। दुनिया के निकम्मे, अपने धन्धा कर सकेंगे नहीं। तब यह कहे, यह कहीं कर नहीं सकते। कहा, एक रजकण तीन काल में बदल नहीं सकते। आँख की पलक फिराना ऐसे... ऐसे..., वह तेरे अधिकार की बात नहीं। वह जड़ की क्रिया है।

मुमुक्षु : सुनकर शान्ति बहुत होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटाभाई! उसे लक्ष्य कर तो कहते हैं। वे बालुभाई थे तो बालुभाई को कहते। वे यहाँ बैठते थे। हँसकर सुनते थे, हों! प्रसन्न होकर। आहाहा! ऐसा कोई दिन मर गये पूरी जिन्दगी। कर-करके जिन्दगी व्यर्थ गयी। व्यर्थ ही गयी और... थोथा गया और फिर वापस प्रसन्न हो। कुछ तो प्राप्त किया। पचास लाख मिले, दस लाख मिले, धूल लाख मिले। अब क्या धूल है। यह शरीर ही कहते हैं कि अकेला दुःख का पुतला और तू तो निराकुलता सुखस्वरूप है। उसे आत्मा कहते हैं। आत्मा पुण्यवाला नहीं, कर्मवाला नहीं, शरीरवाला नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहारनय से।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारनय से अर्थात् एक समय का जानने के लिये। व्यवहारनय से कहलाता है एक समय की पर्याय। उसका ज्ञान, दर्शन और वीर्य का जो उघाड़ वर्तमान एक समय का है, वह भी व्यवहारनय से आत्मा कहलाता है। आहाहा! निश्चय से आत्मा त्रिकाली अनाकुल आनन्द का कन्द है, उसे आत्मा कहने में आता है। आहाहा! यह उसकी दृष्टि कर तो सम्यक्त्व होगा तो तुझे सुख मिले ऐसा है। वरना सुख कहीं तीन काल में कहीं है नहीं। समझ में आया? लो! एक बोल हुआ।

भगवान **देह से भिन्न निराकुलस्वरूप सुखरूप है,....** अकेला सुख का पिण्ड, सुख से रचित प्रभु आत्मा सुख का सागर, अतीन्द्रिय आनन्द की वह मूर्ति है, अतीन्द्रिय आनन्द से गढ़ा हुआ आत्मस्वभाव है। आहाहा! भगवान अकृत्रिम पदार्थ अनाकुल आनन्द है। उसकी प्रीति और रुचि कर। इस धूल के, पाप के इस दुःखमय शरीर की प्रीति छोड़ दे। आहाहा! देखो न यह कलशा होते हैं झाड़ा झाड़ा। सैंकड़ों झाड़ा। हों, सैंकड़ों झाड़ा (दस्त)। ओहोहो! पालेज में एक बाई को देखा था वह दस-दस मिनिट में, पाव-पाव घण्टे में झाड़ा बेचारी को। गरीब हो गयी कौन जाने, हमारी दुकान के पीछे खड़ी थी। अकेली परन्तु दस्त... दस्त... दस्त...। कोई मनुष्य बहुत न निकले, इसलिए अकेली। दस-दस मिनिट में बैठना पड़े। दस्त चलते जाये। गन्ध मारे दस्त। झाडा समझते हो? दस्त। क्या कहते हैं? टट्टी चलती जाये। अरे! यह तो क्या यह पारेख, मनसुख पारेख थे न भाई। राजकोट। मोटे, उन्हें अन्तिम रोग हुआ। मस्जिद के

पास रहते थे और अन्त में दर्शन करने के लिये बुलाया था। परन्तु उसकी खाट थी, बैठते यूँ ही। और तुरन्त बैठे वहाँ एक वह दस्त। यहाँ से यहाँ जाये और यहाँ से ऐसे। सैंकड़ों दस्त और वह गन्ध मारे। गन्ध मारे... मरने की तैयारी थी। ऐसे बैठे थे। ऐसे तो बैठे दस्त परन्तु अब वह दस्त अन्दर से दस्त गन्ध मारे। अब वह सब गन्ध की मूर्ति और गन्ध बिना का भगवान आनन्दकन्द प्रभु, उसकी तुझे श्रद्धा और रुचि नहीं होती और इसके प्रेम में फँसा। कहते हैं, चौरासी के अवतार में जायेगा। समझ में आया? धर्मचन्दजी! क्या इंजैक्शन से कैसा दु:ख मिटता है? यहाँ कहते हैं कि वह दु:खमय ही है। इस इंजैक्शन से निरोगता हो तो भी निरोगता दु:खमय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : उसके ऊपर लक्ष्य जाने से....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके ऊपर लक्ष्य जाने से राग होता है और राग, वह दु:खरूप ही है। धूल भी नहीं उसे साधन बनावे धूल में। एक बात।

दूसरी बात। **तीन लोक में जितने पाप हैं,....** तीन लोक में जितने पाप हैं, **उन पापों से शरीर बनाया गया है,....** आहाहा! आचार्य भी दिगम्बर सन्त नागा बादशाह से आघा। नग्न दिगम्बर मुनि आत्मध्यान में मस्त हैं। अरे! तेरा शरीर अकेले पाप ने बनाया है। समझ में आया? कहते हैं, यह पूर्व के तेरे पुण्य और पाप तूने किये, वे पाप ही थे। आत्मा की पवित्रता से विरुद्धभाव था, वह एक वैरी था। उससे वैरी कर्म बँधा और उससे वैरी यह पाप हुआ, यह ले। जयन्तीभाई! आहाहा! गजब बात! वीतराग परमात्मा को दुनिया की कुछ दरकार भी नहीं कि अब थोड़ा भाईसाहेब शिथिल तो करो थोड़ा।

मुमुक्षु : होवे वैसा कहे, उसमें क्या शिथिलता करे? देह में तो नग्नता थी परन्तु भाषा में भी नग्नता आयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दिगम्बर सन्त, ऐसी वाणी अन्यत्र नहीं मिलती। मुनियों की वाणी है और अन्तर में तो वह भड़ाक देकर (कहते हैं), तोड़। भगवान आत्मा अमृत का सागर अन्दर विराजता है, उसका प्रेम करता नहीं और इस धूल में प्रेम करके पड़ा है। मरकर कहाँ जायेगा तू? कहो, समझ में आया? बाहर के तो कहीं रह गये, अब यह स्त्री, पुत्र, पैसा, बँगला इसका। हजीरा अर्थात् समझ में आया? मकान।

इसलिए यह देह पापरूप ही है,.... पापों से यह शरीर बनाया गया है, इसलिए यह देह पापरूप ही है,.... आचार्य की कथन की पद्धति दूसरी है। वह कहते हैं कि तेरे आत्मा के पवित्र स्वभाव के अतिरिक्त जितना भाव तूने किया पुण्य-पाप का, वह सब पाप ही था और उस पाप से बना कर्म, वह वैरी है। पुण्य और पाप जैसे वैरी है, वैसे कर्म वैरी है। ऐसा कर्म ने शरीर बनाया, वह भी अकेला पापमय ही है। आहाहा! समझ में आया? उसका लक्ष्य करके जो तुझे विकल्प उठेगा, वह आकुलतावाला उत्पन्न होगा। आहाहा! समझ में आया?

स्व चैतन्यप्रभु निराकुल भगवान अकेला पवित्रता का धाम, उसकी नजर पड़ने से उसमें एकाग्र होने से तुझे शान्ति मिलेगी। अनन्त काल में नहीं मिले, ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होगा। शरीर के लक्ष्य से तो राग ही होगा। उसके लक्ष्य से धर्म तीन काल—तीन लोक में नहीं। कहो, अब पैसे से कितना धर्म होता होगा? दान करे, उतना होगा या नहीं? धूल में भी नहीं अब। वह तो अभी राग की मन्दता करे पैसे में तो पुण्य हो। यह तो अभी दुनिया में फुंकाना (प्रसिद्ध होना) है। सामने देकर पचास हजार मैंने दिये, मेरा नाम रखो। बड़ी तख्ती लगाओ पत्थर की। पत्थर की लगाते हैं न? संगमरमर में मेरा नाम रखो। अब वह तो तेरा अकेला पाप है। यह तो कदाचित् कोमलता से दिये हों पचास हजार, राग की मन्दता से, तो पुण्य है। धर्म कहाँ था वहाँ? पैसे में धर्म कब? अरे! साक्षात् भगवान का मन्दिर बनावे। उसके बनाने में भाव हो तो वह पुण्य है; धर्म-बर्म नहीं।

मुमुक्षु : आठ भव में मोक्ष जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन काल में नहीं जाये। आठ भव हमारे कहते थे वे पण्डितजी न, इन्दौरवाले हैं न मुन्नालाल। मुन्नालाल। हमारे २००६ के वर्ष में मन्दिर हुआ न ढाई लाख का, यहाँ राजकोट में। तो वहाँ हमारे तो नाथूलालजी आते थे, हर समय तो इन्दौरवाले। परन्तु उनके घर में स्त्री को दो जीव थे तो नहीं आ सके। तो वे आये। आये तो बड़ा मन्दिर बनाया तो ढाई लाख रुपये का, ऊपर सोने के कलश। सवा लाख रुपये नानालालभाई ने खर्च किये चार भाईयों ने और ढाई लाख। बड़ी धूमधाम। पाँच हजार,

छह हजार लोग। इस ओर दिगम्बर बस्ती नहीं, इसलिए यहाँ तो पाँच-छह हजार बहुत कहलाये न! यहाँ कहाँ दिगम्बर बस्ती थी? सब यह लोग आनेवाले श्वेताम्बर। इसलिए लोग ऐसे, ओहोहो! मुन्नालाल कहे, सेठ साहेब! तुम आठ भव में मोक्ष जाओगे। ऐसा मन्दिर बनाया आठ भव में (मोक्ष जाओगे)। ऐसा हम मानते नहीं, हों! नानालालभाई कहे, हम ऐसा मानते नहीं। महाराज इनकार करते हैं। महाराज कहते हैं कि यह मन्दिर तो मन्दिर के कारण से बने, परन्तु हमारा भाव हो तृष्णा मन्द का (तो) पुण्य होता है। उससे जन्म-मरण मिटे, ऐसा महाराज इनकार करते हैं और हम भी मानते नहीं। नानालालभाई ने इनकार किया कि हम मानते नहीं। यह ढाई लाख का मन्दिर बनाया, सवा लाख डाले और उससे मोक्ष हो जाये। इनकार करते हैं, महाराज इनकार करते हैं।

मुमुक्षु : कोई मन्दिर बनायेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बनाता था? बनने के काल में बने बिना रहता नहीं। कौन बनाता है? आहाहा! समझ में आया? इनको अभी बनाना है। वह तो बनना होगा, तब बनेगा। मलूकचन्दभाई और इनका लड़का क्या करे वहाँ? आहाहा!

कहो, शरीर पाप... पाप। यह दिगम्बर आचार्य की बात। **इसलिए यह देह पापरूप ही है, इससे पाप ही उत्पन्न होता है, और चिदानन्द चिद्रूप....** देखो! ज्ञानानन्द चिद्रूप आत्मा ज्ञानरूप **जीव पदार्थ व्यवहारनय से देह में स्थित है, तो भी देह से भिन्न अत्यन्त पवित्र है,....** वह पाप, यह पवित्र, वह दुःखरूप, (यह) आनन्दरूप। भगवान आत्मा पवित्र, उसे आत्मा कहते हैं, हों! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव आत्मा नहीं, वह आस्रव है। आस्रव आत्मा है? आत्मा नहीं। बराबर है, भाई? जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है न, भाव? वह तो आस्रवभाव है। धर्मभाव नहीं। वह आत्मा नहीं, वह आस्रव, वह आत्मा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : परम्परा है या नहीं महाराज?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं परम्परा। ऐसा कहते हैं। समझकर पूछते हैं। परम्परा वह तो उसका अभाव करे, तब वीतराग होता है। तीर्थंकरप्रकृति बँधी, वह जड़ है और शुभभाव आया, वह तो विकार है। उस विकार का नाश करके जब केवलज्ञान प्राप्त

किया, तब उस तीर्थंकरप्रकृति का विपाक आया तेरहवें (गुणस्थान में), क्या परम्परा किया? तेरहवें गुणस्थान में उस प्रकृति का विपाक आया, तीर्थंकरप्रकृति का। बाँधी चौथे में, पाँचवें में, छठवें और सातवें में जहाँ बाँधी वहाँ, पाक-पाक आया तेरहवें में। कब? जिस भाव से बँधी, उस भाव का नाश करके वीतराग हुआ तब। वीतराग और केवलज्ञान हुआ, तब प्रकृति का पाक तेरहवें (गुणस्थान में) हुआ। फिर क्या करे आत्मा को? आहाहा! वह यह भाषा। अब राग तोड़कर, प्रकृति तोड़कर आगे स्थिरता करेगा, ऐसा करके बात की है। बाकी अपने स्वभाव आश्रय बिना तीन काल में कहीं शरण है नहीं। कहो, समझ में आया?

तीन जगत में जितने पाप थे, उतने से देह बना। तब भगवान तो अत्यन्त पवित्र हैं। महा अत्यन्त पवित्र, अत्यन्त पवित्र, उसे हम आत्मा कहते हैं। जिसमें विकल्प की उत्पत्ति की गन्ध जिसकी चीज़ में नहीं। वह अध्धर से, पर्याय में से पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वह उसके मूलस्वभाव में नहीं। उसका स्वरूप तो अत्यन्त पवित्र का पिण्ड प्रभु महा आनन्द की, उस आनन्द की खान है, पवित्रता की खान आत्मा है। उसकी दृष्टि कर, उसका विश्वास कर और उसका अनुभव कर तो कल्याण होगा, बाकी कल्याण-फल्याण हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! न्यालभाई!

मुमुक्षु : यह इन्द्रियाँ मिलीं, ज्ञान मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ धूल मिली तो अनन्त बार मिला, उसमें क्या हुआ?

मुमुक्षु : कितना अधिक लाभ हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या लाभ हुआ? अनन्त बार मिले। यहाँ तो कहते हैं पाप मिला, ऐसा कहते हैं। यह इन्द्रियाँ मिली, यह शरीर के अवयव और शरीर पाप तो उसके अवयव पाप। यह तो सब पाप मिला, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसका लक्ष्य छोड़कर अपना प्रभु आत्मा अन्दर आनन्दकन्द का लक्ष्य कर, तब तुझे सम्यग्दर्शन होगा, नहीं तो सम्यग्दर्शन होगा नहीं। इसके बिना धर्म की शुरुआत भी नहीं, वहाँ फिर चारित्र-फारित्र कैसा? जिसे आत्मज्ञान और दृष्टि हुई नहीं, उसे चारित्र होता नहीं। कहो, समझ में आया?

तीसरा बोल। दो बोल हुए। अब **तीन जगत में जितने अशुचि पदार्थ हैं,....** तीन लोक में जितने अपवित्र पदार्थ हैं, **उनको इकट्ठेकर यह शरीर निर्माण किया है,....** लाओ उसकी कोई चीज़ कि जो ऐसे मैसूर, मैसूर कहते हैं न मैसूर? पकवान नहीं होता? मैसूर, गुलाबजामुन, लो यह मावा के गुलाबजामुन नहीं होते?

मुमुक्षु : पेड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पेड़ा लो। पेड़ा लो। यहाँ डाला साथ में थूँक। यह एक ऐसी मशीन है कि थूँक बनावे। लाओ दूसरी मशीन। थूँक समझे न? लार बनती है। पेड़ा डाला साथ में लार। दूसरी चीज़ में नहीं। चमड़े में उसमें डालो तो तुरन्त लार नहीं हो जाती। यहाँ तो डाला साथ में लार... लार, ऐंठ। और पेट में उतरे, आठ घण्टे में विष्टा। यह मशीन। आठ घण्टे में यह विष्टा की मशीन। दूसरी कोई मशीन विष्टा बनाने की दुनिया में है नहीं। यह मौसम्बी के पानी पिया हो तो पेशाब करना हो तो यह मशीन है एक। मौसम्बी के पानी का पेशाब हो, इसलिए यह मशीन है। मौसम्बी का पानी होता है न? सेर- दो सेर पीवे तो पेशाब हो जाये। दूसरे में चाहे जिस बोतल में डालो तो एकदम पेशाब नहीं होगा ऐसा। आहाहा!

कहते हैं कि यह मशीन ही कोई ऐसी है कि इस मौसम्बी के पानी को दो घण्टे में पेशाब बनावे। मानो बड़ा मैसूर और लड्डू चूरमा का, पेड़ा, पेड़ा मावा का सफेद बादशाह जैसा पेड़ा शक्कर डालकर अन्दर। रुपये की सेर की शक्कर। तुरन्त ही वह तो विष्टा तुम्हारे आठ घण्टे में। ऐसी यह महापापी मशीन है यह। कहो, बराबर? छोटाभाई! लाओ दूसरी मशीन लाओ। किसी डिब्बी में डालो तो सड़ने में देरी लगे, थोड़ी देरी लगे। परन्तु यह एक मशीन ऐसी (कि) एकदम विष्टा। विष्टा बनाना, किसी मशीन से बनती होगी? समझ में आया? विष्टा का हलुवा बनावे अभी। हाँ हाँ। हलुवा समझे? विष्टा का हलुवा बनाते हैं। कहा था।

अभी अमेरिका में गये थे, एक हमारे थे न वढवाणवाले। दादभावाले चुनीलाल गये थे। तो एक पौन मण पूरे टोकरे का विष्टा का पाखाने में से लाये। पाखाने में पड़ी हो न विष्टा। विष्टा समझे न? टट्टी ऐसी पड़ी थी, लाये। उसे कहे तुम्हारे हलुवा खाना

है ? वह व्यक्ति कहे। हलुवा-हलुवा। हलुवा। हलुवा खाना है ? तो लाओ पन्द्रह रुपये लाओ। यह पन्द्रह रुपये में पौन मण हलुवा बना दूँ। तो एक औषधि लाये वे स्वयं। एक औषधि डाली, वहाँ सुगन्ध बदल गयी। दुर्गन्ध मिट गयी। दूसरा जहाँ डाला वहाँ अन्दर से मानो सुगन्ध आने लगी। तीसरी वस्तु जहाँ डाली हू-ब-हू हलुवा। यह बनी हुई बात है। हलुवा ऐसा घी में तला हो। घी में, घी में होता है न ऐसा। घी में तलकर बनाया। लो भाई खाओ, कहे। अरर्र ! परन्तु हम इस विष्टा का हलुवा गरीबों को खिला दो। गरीब व्यक्ति थे न, दे दिया। पन्द्रह रुपये की औषधि। वहाँ औषधि होती होगी। ऐसी कोई औषधि होगी। वहाँ एक, दो और तीसरी डाली, वहाँ हलुवा बन गया। हलुवा सुगन्ध-सुगन्ध मारे अन्दर से। लो, सेठ खाओ। अरर ! अभी नजर पड़ी है और विष्टा। पन्द्रह रुपये हुए पौन मण में। ऐसा कैसे करे ?

इकट्ठे कर महा अपवित्र जगत के पदार्थ। ऐसे गन्ध मारे। उसके अवयव यह गन्ध... गन्ध... गन्ध... आहाहा ! दुर्गन्ध, दुर्गन्ध। एक आदमी विषय लेने गया परस्त्री का। उसमें उसे ऐसी गन्ध मारी, ऐसी गन्ध मारी और एकदम उपाश्रय में आया। हमारे तो बहुत बनते हैं न ऐसे। महाराज ! नियम दे दो अब कि अब हमारे परस्त्री (नहीं चाहिए)। कोई ऐसी हल्की बाई होगी और उसे वृत्ति हो गयी और उसमें गन्ध ऐसी मारकर। आहाहा ! उस दुर्गन्ध में यह जीव लोभित हो गया। सेठिया व्यक्ति था गृहस्थ। बाई चाहे जो हो तो वे लोग। तुरन्त आया उपाश्रय में कि नियम दो, अब परस्त्री नहीं। वह शरीर दुर्गन्धमय, अपवित्र, यह उसके लिये कहते हैं, प्रेम करके पड़ा। यह भगवान आत्मा कैसा है ?

व्यवहारनयकर देह में विराजमान है, तो भी देह से जुदा परम पवित्र है। समझ में आया ? वह पाप में। इसमें निराकुल स्वरूप लिया है। पहले में निराकुल स्वरूप सुखरूप लिया था। दूसरे में लिया था वह स्वयं अत्यन्त पवित्र लिया। इस तीसरे में भी परम पवित्र लिया। इतनी बात। परम पवित्र भगवान। देखो ! यहाँ विशिष्टता तो यह कहते हैं कि शरीर, वाणी, कर्म, आत्मा तो नहीं, परन्तु जिस भाव से दया, दान पले पंच महाव्रत के परिणाम, वह आत्मा नहीं। वह आस्रव, वह पाप, वह अशुचि, दु:खरूप— ऐसा कहकर डालते हैं। ऐसे दो भाग करते हैं। आहाहा ! दिगम्बर सन्तों की कथन की

पद्धति कठिन... कठिन जगत को लगे। श्रीमद् ने लिखा है न? नहीं? दिगम्बर के वचनों के कारण, तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस ठण्डा हो गया। ऐसा वचन है। ढीला पड़ता गया ढीला। यह उग्र वाणी सन्तों की महान पुरुषार्थवाली आत्मा को प्रेरित करे, जगा दे, ऐसी वाणी। जाग रे जाग भगवान! अब तुझे सोना पोसायेगा नहीं।

चिदानन्द प्रभु, इस शरीर से व्यवहार से रहा है, ऐसा कहते हैं। कहते हैं निमित्त देखकर। भगवान उससे परमार्थ से तो अत्यन्त भिन्न है। उससे भिन्न तो अब यह बाहर की धूल और पैसा और बँगला कहीं रह गया तेरा। भगवान आत्मा, उस अशुचि के बने हुए शरीर से अत्यन्त भिन्न पवित्र प्रभु है, त्रिकाल भिन्न है। ऐसे भगवान की दृष्टि करना, उसका अनुभव करना, यह इसका नाम धर्म और शान्ति है। इसके बिना धर्म कभी बाहर के कारण से होता नहीं। कहो, समझ में आया?

इस प्रकार देह का और जीव का अत्यन्त भेद जानकर निरन्तर आत्मा की भावना करनी चाहिए। हेतु तो यह है, भाई! पाँच, पच्चीस, पचास वर्ष रहे ऐसा शरीर और अनन्त काल रहना आत्मा को। ऐसे संयोग अनेक बार आये और गये। दृष्टान्त दिया है न! बड़ी सड़क हो सड़क। सड़क कहते हैं न? क्या कहते हैं? रोड, रास्ता। तो सड़क के ऊपर हजारों वृक्ष हों वृक्ष और ऐसे सूर्य की छाया पड़ती हो छाया। एक व्यक्ति उसे उल्लंघकर ऐसे जाता हो तो व्यक्ति तो वह का वह है और वह छाया अलग-अलग प्रकार की सड़क के ऊपर। इसी प्रकार आत्मा वह का वह है। वह ऐसे छाया के शरीर को उल्लंघ-उल्लंघकर एक, दूसरा, तीसरा, ऐसे अनन्त छाया को उल्लंघ गया।

मुमुक्षु : उसे ही साफ किया करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे फिर साफ (करे)। वह तो अनुभवप्रकाश में डाला। एक मिले उसकी झोंपड़ी को साफ किया करे। यह करूँ और यह करूँ और यह करूँ। पूरा हो वहाँ जाये दूसरा वापस। वहाँ दूसरा साफ करे। कर-करके हैरान हो गया, मर गया। अनुभवप्रकाश में है। एक-एक शरीर की झोंपड़ी को व्यवस्थित रखने में मर गया, मथ गया ऐसा का ऐसा। यह जेल में नहीं होता? कैदी होती हैं न कैदी? उसे एक कोठरी

देते हैं। फिर कितने ही ऐसे होते हैं कि वहाँ जेल में ही उन्हें मजा आवे। दो वर्ष का पूरा हो तो कहे, ऐ... मेरा घड़ा। घड़ा होता है न पानी का, बिगाड़ना नहीं। मैं अभी दो दिन में वापस आता हूँ। गुनाह करके वापस आऊँगा, ऐसा कहे। और मुझे पानी का घड़ा हो, और वह लेने न जाना पड़े कुम्हार में से, इसलिए वहीं का वहीं साफ-सूफ किया हो नीचे, चूहे आनेवाले हों उसमें पत्थर डाले हों, छाण-बाण किया हो, सब कोठरी साफ की हो। अब वह गुनाह करके यहाँ आया और यहाँ पूरा हो तो भी फिर कहता जाये। इस कोठरी को दूसरा बिगाड़ना नहीं। क्यों? कि मैं तो दो-तीन दिन में अभी एक गुनाह करके वापस यहाँ आनेवाला हूँ। पाप करके गुनाह यह चोरी गुनाह करके वापस इस कोठरी में, जेल की कोठरी में आनेवाला हूँ, इसलिए कोई मेरा यह घड़ा बिगाड़ना नहीं।

मुमुक्षु : यह जेल की कोठरी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जेल की कोठरी है। यह मेरी जेल की कोठरी एक हो गयी फिर दूसरी तैयार रखना। तैयार रखना, हों! अभी मैं गुनाह करके ही आता हूँ। आहाहा! पुण्य और पाप के गुनाह करे और एक शरीर और दूसरा शरीर मिले बिना रहे नहीं। गुनाहगार... गुनाहगार... गुनाहगार। यह १५० हुई।

गाथा - १५१

अथ–

२७४) जोइय देहु घिणावणउ लज्जहि किं ण रमंतु।
णाणिय धम्में रइ करहि अप्पा विमलु करंतु।।१५१।

योगिन् देहः घृणास्पदः लज्जसे किं न रममाणः।
ज्ञानिन् धर्मेण रतिं कुरु आत्मानं वमलं कुर्वन्।।१५१।।

जोइय इत्यादि। जोइय हे योगीन् देहु घिणावणउ देहो घृणया [1]दुगुञ्छया सहितः। लज्जहि किं ण रमंतु दुगुच्छारहितं परमात्मानं मुक्त्वा देहं रममाणो लज्जां किं न करोषि। तर्हि किं करोमिति प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति। णाणिय हे विशिष्टभेदज्ञानिन् धम्में निश्चयधर्मशब्दवाच्येन वीतरागचारित्रेण कृत्वा रइ करहि रतिं प्रीतिं कुरु। किं कुर्वन् सन्। अप्पा वीतरागसदानन्दैक–स्वभावपरमात्मानं विमलु करंतु आर्तरौद्रादिसमस्तविकल्पत्यागेन विमलं निर्मलं कुर्वन्निति तात्पर्यम्।।१५१।।

आगे फिर भी देहको अपवित्र दिखलाते हैं–

हे योगी! यह देह घृणास्पद इसमें रमते लाज नहीं।
अब तुम आत्मा को निर्मल कर करो धर्म से ही प्रीति।।१५१।।

अन्वयार्थ :– [योगिन्] हे योगी, [देहः] यह शरीर [धृणास्पदः] घिनावना है, [रममाणः] इस देह से रमता हुआ तू [किं न लज्जसे] क्यों नहीं शरमाता? [ज्ञानिन्] हे ज्ञानी, तू [आत्मानं] आत्मा को [विमलं कुर्वन्] निर्मल करता हुआ [धर्मे] धर्म से [रतिं] प्रीति [कुरु] कर।

भावार्थ :–हे जीव, तू सब विकल्प छोड़कर वीतरागचारित्ररुप निश्चयधर्म में प्रीति कर। आर्त रौद्र आदि समस्त विकल्पों को छोड़कर आत्मा को निर्मल करता हुआ वीतराग भावों से प्रीति कर।।१५१।।

---

1. पाठान्तर :–दुगुच्छया=जुगुप्सया

गाथा-१५१ पर प्रवचन

१५१। **आगे फिर भी देह को अपवित्र दिखलाते हैं—**

२७४) जोइय देहु घिणावणउ लज्जहि किं ण रमंतु।
णाणिय धम्में रइ करहि अप्पा विमलु करंतु।।१५१।।

आहाहा! देखो तो सही!

हे योगी!... हे धर्मी! हे जीव! **यह शरीर घिनावना है,....** घिनावना। घृणा... घृणा उपजे ऐसा। आहाहा! एक व्यक्ति था। हम गये गाँव में। उसका शरीर गधा गन्ध मारे गधा। गधा गधा कहते हैं न? ऐसा गन्ध मारे। खाट में सोया हुआ। ऐसे गये। ऐसा गन्ध मारे। मांगलिक सुनाओ, कहे। परन्तु मांगलिक सुनाऊँ इतना गन्ध मारे। बहू-स्त्री कहे यह महाराज (आये हैं)। गाँव में गये गाँव छोटा। दो-तीन घर थोड़े पाँच-सात घर। वावड़ी, वहाँ गये तो कहे महाराज आये हैं, हों! अपने हाथ जोड़कर ब्रह्मचर्य लें। वह कहे आज नहीं। शरीर देखो तो गन्ध मारता था। यह सड़ गया कलेजा, यह सब। गधा सड़े वैसा सड़ गया। परन्तु कहे आज नहीं, हों! परन्तु कल यह महाराज नहीं रहेंगे। क्योंकि यह गाँव है। यहाँ तो रहे (नहीं)। एक दिन आये हैं।

वहाँ रात्रि में हमने सुना। वहाँ रात्रि में वह मर गया। उसी रात्रि में। आहाहा! अन्दर से कौन जाने ऐसा सड़ा और अच्छा हो जाये तो? महाराज तो आये और स्त्री कहती है ब्रह्मचर्य ले लेवें। परन्तु कदाचित् खड़ा होऊँ तो? अरे! परन्तु विश्वास कितना? सड़ गये हुए शरीर का विश्वास और पवित्र भगवान त्रिलोकनाथ अनादि रहनेवाले का विश्वास नहीं। स्त्री ने कहा, यह महाराज आये हैं अपने गाँव, कल सवेरे तक रहेंगे। क्योंकि वहाँ नौ बजे जायेंगे। एक दिन रहा जाता है। गाँव में तो निर्दोष आहार लेते थे न? हमारे लिये बनाया हुआ लें नहीं कभी कहीं। गाँव में कोई पाँच-सात घर हों। हमारे लिये बनाया हो पानी परन्तु एक बूँद न लें। पानी की बूँद हो बनायी हो तो बूँद न लें। पूरे दिन पानी बिना (रहें)। ऐसा तो बहुत वर्ष किया है न। उस समय तो माना था न। पानी, आहार बिल्कुल (हमारे लिये) बनाया हुआ न लें। इसलिए कहे,

यह महाराज कल यहाँ नहीं रहेंगे। यह तो एक दिन आये और अनजाने आये और अनजाने आहार लेकर चले जायेंगे कल। कल बात, कल बात। आहाहा! अरे! इस सड़ गये हुए शरीर का इतना विश्वास कि कल रहेगा और यह पवित्र पिण्ड नित्यानन्द प्रभु, कायम टिकती चीज़ की सम्हाल करूँ, उसकी खबर नहीं। तब रात्रि में सोते हुए सुना ग्यारह, साढ़े ग्यारह, बारह। वह चिल्लाहट आयी। शोर-चिल्लाहट की। कोई मरे तब रोवे न जोर से रोना-पीटना? मर गया कहे। आहाहा! दुनिया की ममता, वह ममता। अभी और कोई अच्छा हो गया तो? अच्छा होकर चलूँ तो और। उम्र भी हो गयी होगी ६० की, हों!

कहते हैं कि हे जीव! **यह शरीर घिनावना है, इस देह से रमता हुआ तू क्यों नहीं शरमाता?** आचार्य जरा उलहाना ऐसा देते हैं। जैसे पिता, पुत्र को कहे न, अरे पुत्र! यह बनिया होकर यह तू वाघरी के घर में जाता है, भाई! हमें शर्म आती है, हों! पिता कहें, हों! वाघरी-वाघरी समझते हो? वह हल्की जाति होती है न? दाँतुन-दाँतुन देती (बेचती) है। वह हल्के लोग। वह यह मेरा पुत्र होकर तू वाघरी के घर में जाता है, भाई! मुझे शर्म आती है, हों! दुकान में बैठते हुए, कि तेरा लड़का ऐसा। मुझे शर्म (आती है) भाई! मेरे लिये तो छोड़। यहाँ मुनि कहते हैं कि हे आत्मा! यह शरीर घृणावाला दुर्गन्ध का पुतला, तुझे इसके साथ रमते हुए शर्म नहीं लगती? लज्जा नहीं आती? आहाहा! समझ में आया?

हे ज्ञानी! तू आत्मा को निर्मल करता हुआ धर्म से प्रीति कर। यह सड़ा हुआ शरीर, इसमें प्रीति करता है। यहाँ तो मुनि को लक्ष्य कर बात और सबको लक्ष्य करके है न बाद में? भाई! यह सड़ गया हुआ शरीर, इसमें प्रीति करेगा? भाई! भगवान अन्दर पवित्र धाम है न, वह सिद्ध भगवान में विराजता है, वैसा तू सिद्ध है। शक्ति से, सत्त्व से, द्रव्यस्वभाव से सिद्ध समान। तीनों काल सिद्ध समान है। ऐसे परमात्मा के प्रति तू भेंट करता नहीं, उसके साथ रमता नहीं, अर्थात् एकाकार होता नहीं अर्थात् कि सम्यग्दर्शन करता नहीं और तू इसके साथ इस सड़े हुए के साथ प्रेम करता है, भाई! लज्जा नहीं आती? देखो, क्या कहते हैं? '**लज्जहि किं ण रमंतु**' उस योगसार में आता है न, भाई? यह जन्म-मरण। 'शर्मजनक जन्मो मिटे।' वह यह शर्मजनक। यह जन्म करना, वह

शर्म... शर्म... शर्म है। योगसार में आचार्य कहते हैं, हों! और यह योगीन्द्रदेव हैं। यहाँ लज्जा आयी न, वहाँ भी लज्जा कहा है। यह शर्मजनक, यह भव करना, यह शर्म नहीं आती? अकेला भगवान निराला, उसे इस चमड़े के शरीर को लिपटाना, साथ में करना है। भगवान पवित्रता का पिण्ड उसे यह सड़ा हुआ शरीर लेना है तुझे साथ में? लज्जा नहीं आती? शर्म नहीं आती? आहाहा! निर्लज्ज हो गया है क्या तू?

भगवान आत्मा की अन्तर स्वभाव की प्रीति की रुचि छोड़कर, भगवान! सड़े हुए शरीर के प्रति रमना, विषय में, भोग में एकाकार होना, भगवान! तुझे लज्जा नहीं आती? समझ में आया? यह क्या कहे? आहाहा! कहा था न? हमारे एक लड़के की बात नहीं थी? हमारे गृहस्थाश्रम में। पढ़ते थे तब लड़का था एक भावसार सुन्दरजी। भावसार जाति नहीं होती? भावसार। वह कपड़े रंगते हैं न कपड़े? वह भावसार था। सुन्दरजी नाम था। स्थानकवासी जैन थे। यह बात तो ६२-६३ वर्ष पहले की है। हमारी बारह-तेरह वर्ष की उम्र थी। तब वह साथ में बैठा था। गुँगा निकाल कर... गुँगा कहते हैं न, क्या कहते हैं? नाक का मैल। मैल निकालकर दो दाँत के बीच में दबावे। दबाकर फिर जीभ छुआवे उसे। अरे! सुन्दरजी! क्या करता है तू यह? उसकी जाति भावसार। भावसार नहीं? जाति भावसार। नात समझे न? जाति। और नाम सुन्दरजी। बराबर उस लड़के का नाम था। हम साथ में पढ़ते थे। हम कहें कि... परन्तु हम यह बैठे हैं और तू क्या करता है यह? गुँगा निकालकर दाँत के नीचे रखे और अन्दर जीभ छुआवे। फिर कहे, अरे भाई! मुझे आदत पड़ गयी है। कौन जाने स्वाद लेने की, गुँगा के स्वाद की आदत पड़ी है। जैचन्दभाई! और जहाँ पाव घण्टा हो, और निकाले दूसरा इतना बड़ा। परन्तु यह तू क्या करता है यह?

मुमुक्षु : नाक में से ऐसे निकला ही करते होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटे लड़के होते हैं, इसलिए निकले। बालक हों इसलिए। यह सुन्दरजी नाम। इसी प्रकार भगवान आत्मा भावसार है। अकेला अनन्त ज्ञान का पिण्ड भाव का सार है और है सुन्दर पवित्र। परन्तु वह विकार के—पुण्य-पाप के गुंगा निकालकर और उनका स्वाद लेना उसे। आहाहा! यह पुण्य-पाप के भाव निकालकर,

जो उसमें नहीं, हों! अध्धर से गुँगा निकालकर स्वाद लेना है। लो, उसका नाम गुँगा और इसका नाम गु—विष्टा। आहाहा! कहते हैं, भगवान! ऐसा पवित्र प्रभु! तुझे इस शरीर का प्रेम करते हुए तुझे शर्म नहीं आती? शरीर के साथ रमना, प्रेम करना, मुर्दे के साथ सगाई की, अब करूँगा विवाह। शर्म नहीं आती? मुर्दे के साथ सगाई? सगाई कहते हैं न? क्या कहते हैं? सगाई कहते हैं। अनुभवप्रकाश में आया है। यह सब शब्द शास्त्र में पड़े हैं। सगाई कही मुर्दे के साथ, अब कल विवाह करूँगा। लग्न समझे? शादी। इसी प्रकार इस जड़ के साथ सगाई करके इसके साथ रमते हुए, अरे! निर्लज्ज! तुझे लज्जा नहीं आती? दिगम्बर आचार्य महा सन्त वैराग्य के लिये उलाहना कहते हैं। ओलंभा देते हैं ओलंभा। भाई! इस पवित्र प्रभु को जिसके साथ तू रमाता है। उसमें रमने की चीज़ अन्दर पड़ी है न तेरे पास। उसकी दृष्टि कर और उसमें एकाग्र हो। यह तुझे लज्जा नहीं आती? ऐसा कहकर ओलंभा देकर उसे वीतराग शान्ति में जोड़ने के लिये यह बात करते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १५२

अथ-

२७५) जोइय देहु परिच्चयहि देहु ण भल्लउ होइ।
देह-विभिण्णउ णाणमउ सो तुहुँ अप्पा जोइ।।१५२।।

योगिन् देहं परित्यज देहो न भद्रः भवति।
देहविभिन्नं ज्ञानमयं तं त्वं आत्मानं पश्य।।१५२।।

जोइय इत्यादि। जोइय हे योगिन् देहु परिच्चयहि शुचिदेहांन्नित्यानन्दैकस्वभावात् शुद्धात्मद्रव्याद्विलक्षणं देहं परित्यज। कस्मात्। देहु ण भल्लउ होइ देहो भद्रः समीचीनो न भवति। तर्हि किं करोमीति प्रश्ने कृते प्रत्युत्तरं ददाति। देह-विभण्णउ देहविभिन्नं णाणमउ ज्ञानेन निर्वृतं ज्ञानमयं केवलज्ञानाविनाभूतानन्तगुणमयं सो तुहुं अप्पा जोइ तं पूर्वोक्तलक्षणमात्मानं त्वं कर्ता पश्येति। अयमत्र भावार्थः। ''चंडो ण मुयइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ। दुट्ठो ण य एदि वसं लक्कणमेयं तु किण्हस्स।।'' इतिगाथाकथितलक्षणा कृष्णलेश्या, धनधान्यादितीव्र-मूर्च्छाविषयाकांक्षादिरुपा निललेश्या, रणे मरणं प्रार्थयति स्तूयमानः संतोषं करोतीत्यादिलक्षणा कापोतलेश्या च, एवं लेश्यात्रयप्रभृतिसमस्तविभावत्यागेन देहाद्भिन्नमात्मानं भावय इति।।१५२।।

आगे देह के स्नेह से छुड़ाते हैं-

तन न कभी भी भद्र हुआ हे योगी! इससे मोह तजो।
भिन्न देह से ज्ञान स्वभावी निज आत्मा को ही देखो।।१५२।।

अन्वयार्थ :- [योगिन्] हे योगी, [देहं] इस शरीर से [परित्यज] प्रीति छोड़, क्योंकि [देहः] यह देह [भद्रः न भवति] अच्छा नहीं है, इसलिये [देहविभिन्नं] देह से भिन्न [ज्ञानमयं] ज्ञानादि गुणमय [तं आत्मानं] ऐसे आत्मा को [त्वं] तू [पश्य] देख।

भावार्थ :-नित्यानंद अखंड स्वभाव जो शुद्धात्मा उससे जुदा और दुःख का मूल तथा महान् अशुद्ध जो शरीर उससे भिन्न आत्मा को पहचान, और कृष्ण, नील, कापोत इन तीन अशुभ लेश्याओं को आदि लेकर सब विभावभावों को त्यागकर, निजस्वरुप का ध्यान कर। ऐसा कथन सुनकर शिष्य ने पूछा, कि हे प्रभो, इन खोडी लेश्याओं का क्या स्वरुप है? तब श्रीगुरु कहते हैं-कृष्णलेश्या का धारक वह है, जो अधिक क्रोधी

होवे, कभी बैर न छोड़े, उसका पत्थर की लकीर की तरह हो, महा विषयी हो, परजीवों की हँसी उड़ान में जिसके शंका न हो, अपनी हँसी होने का जिसको भय न हो, जिसका स्वभाव लज्जा रहित हो, दया-धर्म से रहित हो, और अपने से बलवान् के वश में हो, गरीब को सतानेवाला हो, ऐसा कृष्णलेश्यावाले का लक्षण कहा। नीललेश्यावाले के लक्षण कहते हैं, सो सुनो-जिसके धन-धान्यादिक की अति ममता हो, और महा विषयाभिलाषी हो, इन्द्रियों के विषय सेवता हुआ तृप्त न हो। कापोतलेश्या का धारक रण में मरना चाहता है, स्तुति करने से अति प्रसन्न होता है। ये तीनों कुलेश्या के लक्षण कहे गये हैं, इनको छोड़कर पवित्र भावों से देह से जुदे जीव को जानकर अपने स्वरुप का ध्यान कर। यही कल्याण का कारण है।।१५२।।

वीर संवत् २५०२, माघ शुक्ल १४, गुरुवार
दिनांक- ०३-०२-१९७७, गाथा - १५२, १५३, प्रवचन-२०५

परमात्मप्रकाश, १५२ गाथा। **आगे देह से स्नेह छुड़ाते हैं—**

२७५) जोइय देहु परिच्चयहि देहु ण भल्लउ होइ।
देह-विभिण्णउ णाणमउ सो तुहुँ अप्पा जोइ।।१५२।।

अन्वयार्थ—हे योगी!.... उनके शिष्य को कहते हैं न, **हे योगी! इस शरीर से प्रीति छोड़,...** राग के एकत्व उपयोग में मिथ्यात्व और संसार है। ऐसे शरीर की एकत्वबुद्धि, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! और पर्याय में राग की एकताबुद्धि वह मिथ्यात्व और शरीर की एकताबुद्धि, परद्रव्य का सम्बन्ध; सम्बन्ध का अर्थ बन्ध, शरीर को और मुझे सम्बन्ध है—ऐसी जो मान्यता, वह बन्ध है, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! सवेरे कहा था न? राग का। जैसे पर्याय में राग के उपयोग में एकत्व करना, वही पर्याय में द्रव्य के साथ एकत्व करना, वह धर्म और वह समकित है। आहाहा! जैसे राग को—भावकर्म को लिया वहाँ, यहाँ नोकर्म लिया शरीर। यह पहले तो आ गया है, नहीं? शरीर कैसा है? कि तीन लोक के दु:ख को इकट्ठा करके कर्म ने—विधाता ने काले वैरी शरीर को बनाया है। आहाहा! इसलिए वह दु:खरूप है और वह पाप है। शरीर, वह पाप है। आहाहा! क्योंकि कर्म की प्रकृति जितनी है, वह सब विष के वृक्ष हैं, जहर के वृक्ष है।

आहाहा! उसमें से फलरूप से प्राप्त शरीर, वह भी अकेला पाप है, कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा पवित्रस्वरूप, तब यह (शरीर) पाप है। जब यह शरीर तीन लोक के दुःख को इकट्ठा करके बनाया हुआ है, तब आत्मा अनन्त सुख से भरपूर तत्त्व है।

यहाँ ऐसा कहते हैं, **प्रीति छोड़, क्योंकि यह देह.... 'भद्रः न भवति'** आहाहा! **अच्छा नहीं है,...** आहाहा! सुन्दर शरीर दिखता है, वह शरीर की—जड़ की अवस्था, वह अच्छी नहीं है। आहाहा! शरीर की अनुकूलता लगे, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? शरीर की सुन्दरता और पुष्टि आदि देखकर जो सुन्दर आत्मा पुष्टि-आनन्दसहित भगवान, उसमें उल्लसित वीर्य न होकर, आहाहा! शरीर में सुन्दरता आदि पुष्टि में उल्लसित वीर्य और हर्ष आवे कि यह ठीक है, यह शरीर ठीक नहीं, भाई! ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो मूल में चोट है। अब इस शरीर की क्रिया से धर्म हो, यह कहाँ रहा भाई? आहाहा! शरीर से तो पाप हो, ऐसा कहा। हें!

मुमुक्षु : शरीर स्वयं पाप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं पाप है और पाप होता है, ऐसा कहा, दो बातें की। तीन बातें की न? शरीर तो तीन लोक के दुःख को इकट्ठा करके बनाया है, विधाता ने—कर्म ने; पाप है और पाप की उत्पत्ति का कारण है, ऐसा कहा। आहाहा! क्योंकि शरीर के लक्ष्य से तो पाप ही उत्पन्न होगा। भगवान आत्मा के लक्ष्य से तो पवित्रता प्रगट होगी। स्वयं परमात्मस्वरूप, परमात्मप्रकाश है न, इसलिए परमात्मस्वरूप ही स्वयं है। आहाहा! उसका पर्याय में आश्रय लेने से; आश्रय का अर्थ उस पर्याय को द्रव्य की ओर झुकाने से जो कुछ पर्याय में शान्ति और आनन्द आवे, वह द्रव्य के आश्रय से आयी हुई तत्त्वदृष्टि है। आहाहा! वस्तु है तत्त्व पूरा पूर्णानन्द प्रभु, उसके सामने अवगुण और दुःख का घर यह शरीर है। आहाहा! वेदना की मूर्ति है। ऐसे देह के प्रति ममता छोड़। देह भला नहीं, ऐसा कहते हैं।

इसलिए... 'देहविभिन्नं' देह से भिन्न भगवान अन्दर। आहाहा! **ज्ञानादि गुणमय... 'ज्ञानमयं'** कहा है न! ज्ञानमय, ज्ञानवाला—ऐसा भी नहीं। ज्ञानमय प्रभु समझण का पिण्ड है, वह तो ज्ञान का पिण्ड है। ज्ञायकस्वभावभाव का स्वरूप है वह तो। तत्त्व है न। तो तत्त्व का ज्ञायकभाव, वह उसका स्वभाव है। आहाहा! ऐसा जो ज्ञानमयी अथवा

ज्ञानादि गुणमय **ऐसे आत्मा को...** आत्मा की व्याख्या की। आत्मा किसे कहते हैं? वह तो ज्ञानादि गुणमय को आत्मा कहते हैं। आहाहा! दया, दान और व्रत, भक्ति आदि के परिणाम, वह आत्मा नहीं; वह अनात्मा है। भगवान तो नित्यानन्द ज्ञानमय। यह भाषा नहीं, उसकी भाव की बात है। आहाहा! उसके सामने देखें तो ज्ञानमय चीज़ है। ज्ञानमय शब्द से ज्ञायक की मुख्यता से बात की है परन्तु ज्ञान के साथ अविनाभावी, इसलिए ज्ञान आदि लिया। जहाँ ज्ञान है, वहाँ आनन्द है; जहाँ आनन्द है, वहाँ ज्ञान है; जहाँ ज्ञान है, वहाँ शुद्धता है; जहाँ शुद्धता है, वहाँ ज्ञान है। ऐसा अविनाभावी अनन्त गुण ज्ञानमय आत्मा, उसे तू आत्मा जान। आहाहा! है न? **ज्ञानादि गुणमय ऐसे आत्मा को तू देख।** आहाहा! देखनेवाले को देख; जो चीज़ दिखती है, उसे न देख। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, बापू! अभी तो सब फेरफार हो गया है। लोगों को यह निश्चय... निश्चय लगता है। निश्चय का अर्थ परम सत्य है। आहाहा!

भावार्थ :— 'पश्य' है न? देख, ऐसा देख। ऐसे (बाहर) न देख। ज्ञान की पर्याय में उसे देख। जब उस सन्मुख पर्याय होती है तो पर्याय की ही इतनी ताकत है, आहाहा! कि द्रव्य है, इसलिए पर्याय को जानने का हुआ उसे—ऐसा नहीं, वह पर्याय की सामर्थ्य स्वसन्मुख हुई, वह द्रव्य को जानने की पर्याय, द्रव्य को स्पर्श किये बिना जानने की शक्ति उसकी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा तो पर्याय का सामर्थ्य है। पर्याय में स्व-परप्रकाशक स्वभाव है न! इसलिए कहा न (समयसार) १७-१८ गाथा में। प्रत्येक ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक ही ज्ञात होता है। अज्ञानी को भी ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक ही ज्ञात होता है। आहाहा! देख, कहा न उसे? परन्तु ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक ज्ञात होता है, ऐसा होने पर भी उसकी दृष्टि उसके ऊपर नहीं है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य स्व-परप्रकाशक है, प्रत्येक समय में। तो उस ज्ञान की पर्याय में स्वप्रकाशक भाव आ गया। हें! आहाहा! उसे तू देख—ऐसा कहता है। यह 'देख' शब्द पड़ा है न? गम्भीर शब्द है। समझ में आया?

ज्ञानमय आत्मा को देख। वह 'देख' है, वह पर्याय है। आत्मा जो है, वह पर्यायमय नहीं। वह अनन्तगुणमय है। आहाहा! उसे तू पर्याय में देख। क्योंकि जिसकी वह पर्याय है, उसी पर्याय में ज्ञात होता है। आहाहा! परन्तु अज्ञानी की दृष्टि पर्याय के

ऊपर होने से पर्याय में यह दिखता है, ज्ञात होता है—ऐसी उसे प्रतीति आती नहीं। आहाहा! तो पर्याय का जितना सामर्थ्य है, उसकी उसे प्रतीति नहीं है। समझ में आया? पर्याय जो ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य इतना है कि जो एक समय की पर्याय, छह द्रव्य को तो जाने, परन्तु इसे जाने। ऐसा स्वपरप्रकाशक स्वतः स्वभाव ऐसा होता है, ऐसा होता है, उस ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक ज्ञात होता है, परन्तु उसकी दृष्टि में वह उसकी ओर नहीं है, इसलिए ज्ञात होने पर भी उसे ज्ञात नहीं होता। हें! आहाहा! ऐसी बातें हैं। और उस पर्याय का इतना सामर्थ्य है कि पूर्णानन्द का नाथ, उसे जाने और जानने की और श्रद्धा की पर्याय में वह ज्ञात हो और श्रद्धा में आवे। आहाहा! इतनी तो पर्याय की सामर्थ्य है। अब उस पर्याय की सामर्थ्य की जिसे प्रतीति नहीं, उसे द्रव्य पर दृष्टि नहीं है। आहाहा! ऐसा है।

इसलिए यहाँ कहते हैं, तू आत्मा को देख। बहुत गम्भीर (बात है)। दिगम्बर सन्तों की वाणी बहुत गम्भीर और बहुत गूढ़! समझ में आया? तारणस्वामी में अध्यात्म की बात है, परन्तु बहुत गाथा और बहुत-बहुत पढ़े, तब उसमें से निकले। यह तो एक-एक गाथा और एक-एक पद में इतना भरा है। ओहोहो! क्योंकि तू ज्ञान, आनन्द से भरपूर भगवान है न! उसकी वाणी में सब भरा है, कहते हैं। हें! आहाहा!

भावार्थ—नित्यानन्द अखण्ड स्वभाव जो शुद्धात्मा.... टीका में 'एक' शब्द है, उसका अर्थ इन्होंने अखण्ड किया अब। एक बार अपने आ गया था। नहीं तो ये 'एक' का अर्थ करते ही नहीं, टीकाकार एक को छोड़ देते हैं। परन्तु इसमें एक का अर्थ अखण्ड करके एक को रखा है। पाठ में एक है। है न? '**शुचिदेहांन्नित्यानन्दैक**'। संस्कृत की पहली लाईन है '**शुचिदेहांन्नित्यानन्दैकस्वभावात्**'। इसमें और अर्थ किया इन्होंने। पहले अभी एक बार आ गया था। वरना एक को निकाल देते हैं। वास्तव में तो एक में वस्तु है। शुद्धचिदानन्द एक स्वभाव। एक स्वभाव कहने से अभेद स्वभाव, जिसमें भेद नहीं। आहाहा! इसलिए अखण्ड अर्थ किया। आहाहा! नित्यानन्द—नित्य आनन्द। आहाहा! जिसके सामने देखने से तुझे आनन्द प्रगट होगा, कहते हैं। ऐसा वह नित्यानन्द प्रभु है। आहाहा! समझ में आया? **नित्यानन्द अखण्ड....** एकस्वरूपी प्रभु अन्दर। आहाहा! जिसमें जिसे पर्याय का भी भेद जिसमें नहीं, ऐसा कहते हैं। **नित्यानन्द**

अखण्ड स्वभाव.... वह क्या?—कि **शुद्धात्मा...** आहाहा! नित्यानन्द एक स्वभाव शुद्धात्मा, उसके यह विशेषण दिये। आहाहा!

उससे जुदा... आहाहा! **और दुःख का मूल...** यहाँ नित्यानन्द कहा न इस ओर। तो वह (शरीर) दुःख का मूल। आहाहा! वास्तव में दुःख का निमित्त है, परन्तु उसके लक्ष्य से दुःख होता है न, इसलिए दुःख का मूल वह चीज़ (शरीर) है। आहाहा! वेदना की मूर्ति है। आहाहा! नित्यानन्द एक स्वभाव शुद्धात्मा एक ओर, **उससे जुदा...** जुदा तो भले हो, परन्तु दुःख का मूल है। आहाहा! ऐसी बात है। इसके लिए पूरे दिन सवेरे से शाम ध्यान रखना, खिलाना, पिलाना, नहलाना, पिलाना और पिलाना। आहाहा! कोठी को धोने से कादव निकले। मिट्टी की कोठी हो और धोवे तो (कादव निकले), इसी प्रकार यह धूल निकले इसमें से, मैल निकले। आहाहा! एक बार नहीं कहा था? शरीर छिद्रवाला है। नव (द्वार) मुख्यरूप से, ऐसे तो असंख्य छिद्र हैं। एक-एक बाल का छिद्र है, वहाँ से पसीना निकलता है न! मुख्य नौ। दो, चार, छह, सात, आठ और नौ... आहाहा! ऐई! ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु : यही शरीर पैसा कमाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी कमाता नहीं। मूढ़ है। मूढ़ होकर पड़ा है अन्दर। हें! आहाहा! देह से भिन्न भगवान और भगवान से भिन्न देह। जितनी देह की क्रिया हो, वह सब भिन्न देह से होती है। आहाहा! और वह क्रिया होती है, वह मुझसे होती है, उसने देह को अपना माना। ऐसी बातें हैं। आहाहा!

और दुःख का मूल... भगवान नित्यानन्द प्रभु शुद्धात्मा, उससे अन्य चीज़ शरीर, वह तो भले अन्य हो, परन्तु वह दुःखरूप है। आहाहा! वह दुःख का मूल है, ऐसा कहा। आहाहा! भगवान आनन्द का मूल है। आहाहा! जिसके सामने देखने से आनन्द झरे, ऐसा वह भगवान है। इसके (शरीर के) सन्मुख देखने से दुःख निकले, ऐसा कहते हैं। हें! आहाहा! **तथा महान अशुद्ध...** दुःख का मूल और महान अशुद्ध अशुचि **जो शरीर उससे भिन्न आत्मा को पहचान,....** आहाहा! तीन बार गुलाँट खायी है। एक तो शरीर कौन है? कि शुद्धात्मा जो वस्तु अखण्ड स्वभाव, उससे भिन्न। ऐसा कहकर शरीर की व्याख्या की। समझ में आया? अकेला शरीर नहीं लिया। नित्यानन्द अखण्ड एक

स्वभाव से भिन्न चीज़, ऐसा कहकर पहले शरीर की व्याख्या की। आहाहा! ऐसा जो शरीर, उससे भिन्न आत्मा। पहले ऐसे भिन्न किया था। आहाहा! समझ में आया? टीका की ऐसी शैली है। जयसेनाचार्य की, यह शैली ऐसी है। वर्णन करना है तो शरीर, परन्तु शरीर कैसा? कि नित्यानन्द एक स्वभाव—अखण्ड स्वभाव भगवान आत्मा से भिन्न। कैसा? दु:ख का मूल। कैसा? अशुचि का घर। आहाहा! उसे पहिचान। आहाहा! ज्ञान की पर्याय की नजर में निधान ले। आहाहा! पर्याय में राग और विकार और शरीर को लक्ष्य में लेता है, आहाहा! जिसकी पर्याय है, उसे लक्ष्य में लेने से जिसमें वह नहीं, उसे लक्ष्य में लेता है। हें! आहाहा! उसकी जिसकी है, उसे देख न, ऐसा कहते हैं। हें! उसे देख न! आहाहा! तूने कभी नजर की नहीं। आहाहा!

और कृष्ण, नील, कापोत इन तीन अशुभ लेश्याओं को आदि लेकर सब विभाव भावों को त्यागकर,.... फिर शुक्ललेश्या, वह सब विभावभाव है। आदि है न? **सब विभावभावों को त्यागकर, निजस्वरूप का ध्यान कर।** आहाहा! यहाँ त्याग कर, यहाँ ध्यान कर। आहाहा! उसका लक्ष्य छोड़ और यहाँ लक्ष्य लगा, ऐसा कहते हैं। आहा! ऐसा मार्ग है। वीतरागमार्ग ऐसा, बापू! तेरे आत्मा के हेतु कल्याण का तो यह है। आहाहा! **सब विभावभावों को....** सबमें कोई विभाव शुभराग का रखना और उससे होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसा कहा न? **सब विभावभावों को त्यागकर,....** अर्थात्? त्याग कर का अर्थ उसका लक्ष्य छोड़कर, ऐसा। यह छोड़ता हूँ, ऐसा कहाँ है उसमें। आहाहा! समझाने की शैली तो क्या करे? उसका त्याग कर अर्थात् यह विभाव है, उसे छोड़ूँ, ऐसा है? आहाहा! विभावभाव के लक्ष्य को छोड़कर इस ओर के ध्यान में लक्ष्य को लगा दे, ऐसा कहते हैं। ऐसा मार्ग।

निजस्वरूप का ध्यान कर। आहाहा! इसमें परमात्मा का ध्यान कर, यह नहीं आया। वीतराग सर्वज्ञ परमेष्ठी, वे तो परद्रव्य हैं। उनके ऊपर लक्ष्य जाने से तो राग होता है। आहाहा! जैसे शरीर, वह अनात्मा है; वैसे पंच परमेष्ठी भी तेरे लिये तो अनात्मा है। हें! आहाहा! तेरे लिये तो यह आत्मा जो शुद्धात्मा, वही आत्मा है। आहाहा! और तेरे आत्मा की अपेक्षा से तो वे भगवान भी अद्रव्य और अवस्तु है। हें! आहाहा! अभाव, अक्षेत्र, अद्रव्य, अक्षेत्र, अकाल और अभाव है। उनकी अपेक्षा से भले द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव

भले हों। आहाहा! तेरे अस्तित्व की अपेक्षा से तो वह अवस्तु है। तो वहाँ तेरा लक्ष्य देने से तुझे लाभ क्या होगा? हें! आहा! ऐसा मार्ग है। **निजस्वरूप का...** यह शब्द आया न? निजस्वरूप शुद्धस्वभाव आनन्दकन्द नित्यानन्द, वह निजस्वरूप। आहाहा! उसे ध्येय बना। ध्यान के विषय में उसे ले। ध्यान में विषय उसे बना। ध्यान विषयी है, वस्तु उसका विषय है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा कथन सुनकर शिष्य ने पूछा,.... लेश्या छोड़कर, आया था न? **हे प्रभो! इन खोटी लेश्याओं का क्या स्वरूप है?** आहाहा! **श्रीगुरु कहते हैं...** खोटी लेश्या का पूछा है। वैसे तो कृष्ण आदि सभी भाव विभावभाव है। समझ में आया? **कृष्णलेश्या का धारक वह है, जो अधिक क्रोधी होवे,....** आहाहा! जरा-जरा बात में अन्दर ऐसे क्रोध हो उसे। साधारण भी उसे प्रतिकूलता लगने से क्रोध... क्रोध हो, वह कृष्णलेश्या के भाव हैं। **कभी बैर न छोड़े,....** किसी के साथ कुछ वैर हुआ हो तो वैर न छोड़े। आहाहा! **उसका बैर पत्थर की लकीर की तरह हो,....** पत्थर पर लकीर हो, वह मिटती नहीं, ऐसा हो। आहाहा! पत्थर होता है न, काला पत्थर। लाईन है वह लोहे की सलि ऐसे की, मिटती नहीं। आहाहा!

खस में एक जमींदार था। साला-बहनोई। उसके बहनोई से किसी दिन कुछ बोला गया होगा उसके साले को। उसकी बहिन ऐसे पका रही थी, बहनोई खा रहा था और वह आया। आओ, आओ आपा। आप कहे न जमींदार में। उसका बहनोई कहे, आपा आओ। वह छुरा लेकर आया था। आहाहा! उसे साथ में बैठकर घुसा दिया। यहाँ खस में। जीवणलालजी का गाँव। आहाहा! कैसी दशा होगी! हें! सगा बहनोई, बहिन पकाती थी, वह रोटियाँ खाता था। और उसे भी खबर नहीं बेचारे को। आओ, आओ आपा, आओ। आहाहा! साथ में बैठकर... आहाहा! यह परिणाम तो देखो। ऐसे अनन्त बार किये हैं, हों! उसके लिये बात नहीं है। आहाहा! हें! भगवान निर्मलानन्द के नाथ को भूलकर ऐसी कृष्ण आदि लेश्या का सेवन किया। आहाहा! उसे नरकादि में जमा होना पड़ा। आहाहा!

महा विषयी हो,... विषय में गृद्धि हो, विषय पाँच इन्द्रिय के। आहाहा! अतीन्द्रिय भगवान के भान को भूलकर विषय में तो तल्लीन... तल्लीन। आहाहा! शरीर ऐसा

मिला हो न, पुष्ट रुष्ट जवान अवस्था, आहाहा! इसलिए विषय में मानो क्या लूँ और क्या दूँ। आहाहा! ऐसी तल्लीनता हो जाती है, कहते हैं। देखो! यह बुरे कृष्ण (लेश्या) के लक्षण। आहाहा! कृष्णलेश्या, वे कृष्ण भगवान, आत्मा कृष्ण भगवान है। कर्म कृषे उसे कृष्ण कहिये। आहाहा! भगवान तो राग को—कषाय को कृश डाले, वह कृष्ण भगवान आत्मा है। यह कृष्णलेश्या है। आहाहा! यह तो धीर के काम हैं, बापू! यह कहीं बाहर से मिल जाये, ऐसी चीज़ नहीं। आहाहा!

भगवान परमानन्दस्वरूप अन्दर विराजता है। उसका परिचय नहीं करके... कहा न? परिचयी, देह का परिचयी। परित्यज—**'योगिन् देहं परित्यज'।** उसका परिचय है, उसे छोड़ दे, इसका अर्थ यह। आहाहा! और भगवान का परिचय किया नहीं, उसका परिचय कर। श्रुत, परिचित, अनुभूत आता है न? चौथी (गाथा, समयसार)। आहाहा! यहाँ कहते हैं, इसे **'परित्यज'** अर्थात् कि इसका परिचय छोड़ और यहाँ तूने परिचय किया नहीं, वहाँ कर। आहाहा! समझ में आया? ऐसा स्वरूप है, भाई! यह कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं। आहाहा!

कहते हैं, महाविषयी हो। आहाहा! गृद्धि भोग में—खाने में, पीने में। एक साथ पाँच इन्द्रिय के विषय को भोगना, जैसी उसकी तल्लीनता हो। आहाहा! **परजीवों की हँसी उड़ाने में जिसके शंका न हो,....** क्या कहते हैं यह? हँसी उड़ाकर यह मर जायेगा। समझ में आया? आहाहा! **परजीवों की हँसी उड़ाने में.... अपनी हँसी होने का जिसको भय न हो,....** आहाहा! अरे! लोग मजाक करेंगे ऐसे भोग में और ऐसी तल्लीनता में, उसकी इसे दरकार नहीं होती। लोकलज्जा भी जिसे नहीं होती, ऐसा कहते हैं। **जिसका स्वभाव लज्जारहित हो, दया-धर्म से रहित हो,....** भगवान आत्मा की दया तो अहिंसा उत्पन्न करना वह (है)। पर की दया के भाव में भी राग की मन्दता, वह इसे नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दयाधर्म के दो प्रकार हैं। एक अपनी दया। जितना और जैसा (आत्मा) है उसे उस प्रकार से मानना, अनुभव करना, वह दया कहलाती है। क्योंकि जैसा जीवन और जीवत्व है, वैसी चीज़ उसरूप से मानी और अनुभव की तो उसने जीव की दया पालन की। और इतना और ऐसा है, उसे न मानकर रागवाला मानना, तो वह इसने अपनी—जीव की हिंसा की। समझ में आया? एक रागवाला मानना, एक

पर्याय जितना मानना। तो जैसा इसका स्वरूप है पूरा, उसका इसने अनादर किया। अनादर किया अर्थात् कि वह नहीं है, ऐसी हिंसा की। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! समझ में आया? यह तो परमात्मप्रकाश है। आहाहा! समयसार, परमात्मप्रकाश, प्रवचनसार कोई भी पुस्तक लो, दिगम्बर सन्त की वाणी तो वीतराग को स्पर्श करावे, ऐसी वाणी है। दुनिया क्या माने, न माने, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा!

अपने से बलवान के वश में हो,.... क्या कहते हैं? अपने से जो बलवान होता है न, आधीनता में रहता है वह। आहाहा! **गरीब को सतानेवाला हो,....** आहाहा! अपने से जिसकी शक्ति कम हो पैसे में, मकान में, (उसे) दबावे, गरीब कहे। एक बार तो हम ऐसे बैठे थे पाट पर और एक बेचारा आया शाम का प्रतिक्रमण करने। उसमें एक व्यक्ति था। तो उसको ऐसी चोपड़ी। मैं बैठा होता तो भी उसे कहे, मूर्ख के सरदार। वह बेचारा गरीब व्यक्ति और यह सेठिया। अरे! क्या करता है कहा यह? उसको बेचारे को कहे, मूर्ख के सरदार। और स्वयं प्रतिक्रमण करने आया हुआ। हें! आहाहा! अरे! कोई व्यक्ति बनिया हो, भले गरीब हो परन्तु उसे एकदम ऐसा भिड़क डालना, वह बुरी लेश्या के लक्षण हैं। गरीब को सताने की बात है न। आहाहा! **ऐसा कृष्णलेश्यावाले का लक्षण कहा।**

नीललेश्यावाले के लक्षण कहते हैं, सो सुनो-जिसके धन-धान्यादिक की अति ममता हो,.... लक्ष्मी और धान आदि में अति ममता हो। आहाहा!

मुमुक्षु : अति ममता की क्या व्याख्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकत्वबुद्धि की ममता।

मुमुक्षु : वह तो ममता हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह ममता, परन्तु एकत्वबुद्धि की ममता। स्त्री, पुरुष, पैसा, मकान, धन, धान—अनाज। आहाहा! एकत्वबुद्धि की ममता हो। आहाहा! बोले तब फिर ऐसा कहे, कौन है यह? हमारे घर में से है। स्त्री के लिये ऐसा कहते हैं न? घर में से बोले उसमें कितनी चिकनाहट है, यह जरा देखने जैसा हो। यह तो सब (देखा है)। आहाहा! तेरे घर में वह कहाँ से आयी? आहाहा! हमारे घर से है। हमारा क्या

और घर से क्या ? बापू ! तुझे कुछ विचार है अन्दर ? या ऐसा का ऐसा तू बोले ही जाता है ? चिमनभाई ! यह भाषा की बात नहीं, उसमें अन्दर चिकनाहट कितनी है। भाषा तो बड़े समकिती ज्ञानी हों तो वे भी ऐसा कहे, दूसरे को पहिचान कराने के लिये (कि) यह अमारा पुत्र है, ऐसा कहे। अमारो पुत्र है, इसका अर्थ हुआ कि अ-मारो अर्थात् मेरा नहीं, ऐसा अन्दर दृष्टि में है। समझ में आया ? श्रीमद् ऐसा बहुत बार कहते थे। बहुवचन बोलते, इसलिए लोगों को वह लगता। यह अमारी स्त्री है, यह अमारा पुत्र है, यह अमारी दुकान है। अमारी, अमारी कहते, इसलिए लोग कहे, यह अमारी... अमारी क्यों करते हैं ? बापू ! इसका अर्थ ऐसा था कि अमारी ऐसा कहते थे, वह मेरी नहीं ऐसा तुझे बतलाया। अ-मारी। शब्द तो अमारी ऐसा भी कहा। आहाहा ! बाबूभाई ! भाषा... (की बात नहीं)। आहाहा ! चिकनाहट अन्दर से मानो ! आहाहा ! वह अमारो पुत्र है, एम.ए. में पास हुआ है, एल.एल.बी. में पास होने की तैयारी है, डॉक्टर का पढ़ लिया है, अब वकालत का पढ़ता है, छोटा यह पढ़ता है, ढींकणा यह पढ़ता है, ऐसा कहकर मिठास... मिठास... मिठास (वेदता है)। ऐसा होता है न, बापू ! परचीज़ कहाँ, तुझे और उसे सम्बन्ध क्या ? सम्बन्ध अर्थात् कि यह मेरा, इसका अर्थ ही बन्ध हुआ तुझे। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि जिसे **धन-धान्यादिक की अति ममता हो,....** समकिती को आसक्ति होती है, परन्तु वह आसक्ति चारित्रदोष की है। यह तो अति ममता, यह मेरी है, हम इसके हैं। आहाहा ! कष्ट में यह सब हमको सहायता करनेवाले हैं, ऐसी मिठास से अन्दर भाषा बोले। यह सब संसार के खेल। आहाहा ! **महा विषयाभिलाषी हो,....** है न ? महा विषय का अभिलाष। राग तो ज्ञानी को (भी) होता है, जिसे विषय की मिठास उड़ गयी है। आहाहा ! समकिती को विषय की मिठास—सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा ! वह कोर्टवाले गुनहगार को गधे पर बैठावे न, उसे कुछ उत्साह है बैठने का ? इसी प्रकार ऐसा कोई राग भाग आवे। आहाहा ! परन्तु उसकी अभिलाषा और उसका रस नहीं है। यह तो अन्दर में विषयाभिलाष महा। आहाहा ! **इन्द्रियों के विषय सेवता हुआ तृप्त न हो।** विषय की तृष्णा बढ़ती ही जाये। जैसे अग्नि में लकड़ियाँ डाले (तो) अग्नि बढ़ती ही जाये। इसी प्रकार विषय को भोगते-भोगते विषय को समाप्त न करे। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें हैं। **तृप्त न हो।**

कापोतलेश्या का धारक रण में मरना चाहता है,.... यह तीसरी लेश्या कही। दरकार न हो, देह छूट जाये और बाण लगे तो भी दरकार नहीं। इतनी तीव्र लेश्या कापोत। आहाहा! **स्तुति करने से अति प्रसन्न होता है।** महिमा करे वहाँ अन्दर गलगलिया हो जाये। बाहर से ऐसा कहे, आपने मुझे प्रमुखरूप से बड़ा ठहराया, यह आपका मुझे आभार है परन्तु अब निभाना हो तुम्हारे, ऐसा करके बोले। अन्दर गलगलिया होता हो।

मुमुक्षु : एक शब्द रह गया, मैं इसके लिये योग्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, योग्य नहीं, ऐसा भी कहे। मैं इसके लिये योग्य नहीं परन्तु आपने मुझे खोजकर शोधा, यह आपका आभार है। ऐई! भगवानजीभाई! यह नाटक है। आहाहा!

ये तीनों कुलेश्या के लक्षण कहे गये हैं, इनको छोड़कर पवित्र भावों से देह से जुदे जीव को.... आहाहा! अर्थात् क्या कहते हैं? देह से भिन्न किस प्रकार जाने? पवित्र भावों से भिन्न जाने। परिणमकर ऐसा कहते हैं। आहाहा! देह से भिन्न-भिन्न, ऐसा नहीं। **पवित्र भावों से देह से जुदे जीव को जानकर अपने स्वरूप का ध्यान कर....** आहाहा! अपवित्र भाव को छोड़कर, ऐसा न कहकर, परन्तु इस शरीर का अर्थ हुआ। पवित्रभाव से आत्मा को जान। भिन्न पड़कर जाना, तब क्या हुआ? पवित्रता वीतराग परिणति आयी। सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि परिणति द्वारा उसे जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बहुत गम्भीर शब्द हैं। थोड़े परन्तु गागर में सागर भर दी है। आचार्य गजब हैं! सन्त तीन कषाय के अभाव और जंगल में आनन्द में मस्त। वनवास में सिंह और बाघ के बीच बैठे हों, तो भी आनन्द में मस्त होते है। आहाहा! ऐसे सिंह की टोली ऐसी बैठी हो। बड़े सर्प काले नाग निकलते हों, आनन्द में मस्त होते हैं। आहाहा! उनकी वाणी का क्या कहना! वीतराग की वाणी और वीतरागी मुनि की वाणी, सब एक है। आहाहा! ऐसी वाणी कान में पड़ना भी भाग्यशाली को होता है। आहाहा! वह भाग्यशाली पैसेवाले नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : वे भाग्यशाली हो तो क्या दिक्कत?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे भाग्यशाली हैं ही नहीं। ऐसा कि यह पैसेवाले भाग्यशाली

और सुनने में भाग्यशाली, दोनों इकट्ठे। परन्तु वे भाग्यशाली हैं ही नहीं। आहाहा! वे तो भांगशाली हैं। तम्बाकू को साधनेवाले हैं। साधनेवाले हैं। आहाहा! तीन लोक के नाथ की मधुर मीठी वाणी। आहाहा! शान्त 'वचनामृत वीतराग के,...' आता है न? 'परम शान्त रस मूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' ऐसी वाणी जहाँ कान में पड़े, आहाहा! कायर का कलेजा काँपे, यह तो एकान्त है रे एकान्त है। अरे! सुन न, भाई! अनेकान्त मार्ग भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपद की प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य किसी हेतु से (उपकारी) नहीं है। सम्यक् एकान्त में जाना है। हें! उसे लोग एकान्त कहते हैं। अरे! प्रभु! सुन भाई! आहाहा! अनेकान्त का ज्ञान भी सम्यक् एकान्त में आये बिना यथार्थ अनेकान्त का ज्ञान होता ही नहीं। आहाहा! श्रीमद् की लाईन है न? व्याख्यान दिया था तब एक घण्टे, वहाँ ववाणिया। एक लाईन है इतनी। अनेकान्त मार्ग भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपद की प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य हेतु से (उपकारी) नहीं है। आहाहा!

भगवान आत्मा सम्यक् एकान्त स्व का आश्रय लेने से पर का भी आश्रय लेने जैसा है, लाभ, ऐसा है नहीं। आहाहा! वह स्व का आश्रय लेकर जो हुआ, वह पर के आश्रयवाला जो व्यवहार, उसे भी जानने की सामर्थ्य उसे है। हें! आहाहा! समझ में आया? अर्थात् कि दोनों को इकट्ठा रखे और लाभ हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! निमित्त, राग और पर्याय की ओर से विमुख हो और स्वभाव के सन्मुख हो। स्वभाव से अनादि से विमुख है और पर्याय तथा राग से सन्मुख है, वह संसार है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, निज स्वभाव को जान। आहाहा! पवित्र भाव द्वारा जीव को जान। अर्थात् इसका अर्थ हुआ कि एकान्त वहाँ जा। साथ में व्यवहार से लाभ होगा और निमित्त से होगा, यह बात वहाँ रहती नहीं। समझ में आया? वस्तु तो ऐसी है। इस प्रकार उसे मस्तिष्क में—ज्ञान में आवे, तब यथार्थ कहलाये। हें! आहाहा! फिर भले उसे माननेवाले न हों, थोड़े हों, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! **अपने स्वरूप का ध्यान कर।** आहाहा! यह तो एकान्त हो गया। हें! दूसरे का नहीं और इसका, इसका नाम अनेकान्त है। दूसरे से लाभ होता है राग से और स्वयं से लाभ होता है, यह अनेकान्त नहीं; यह तो फुदड़ीवाद है।

यही कल्याण का कारण है। लो। आहाहा! १५२ हुई।

गाथा - १५३

अथ-

२७६) दुक्खहँ कारणु मुणिवि मणि देहु वि एहु चयंति।
जित्थु ण पावहिँ परम-सुहु तित्थु कि संत वसंति।।१५३।।

दुःखस्य कारणं मत्वा मनसि देहमपि इम त्यजन्ति।
यत्र न प्राप्नुवन्ति परमसुखं तत्र किं सन्तः वसन्ति।।१५३।।

दुक्खहं इत्यादि। दुक्खहं कारणु वीतरागतात्त्विकानन्दरुपात् शुद्धात्मसुखाद्विलक्षणस्य नारकादिदुःखस्य कारणं मुणिवि मत्वा। क्व। मणि मनसि। कम्। देहु वि देहमपि एहु इमं प्रत्यक्षीभूतं चयंति देहममत्वं शुद्धात्मनि स्थित्वा त्यजन्ति जित्थु ण पावहिं यत्र देहे न प्राप्नुवन्ति। किम्। परम-सुहु पञ्चेन्द्रियविषयातीतं शुद्धात्मानुभूतिसंपन्नं परमसुखं तित्थु कि संत वसंति तत्र देहे सन्तः सत्पुरुषाः किं वसन्ति शुद्धात्मसुखसंतोषं मुक्त्वा तत्र किं रतिं कुर्वन्ति इति भावार्थः।।१५३।।

आगे फिर भी देह को दुःख का कारण दिखलाते हैं-

मन में तन को दुख का कारण जान सुबुध तन को छोड़े।
जहाँ न शाश्वत सुख मिलता हो ज्ञानी कैसे वहाँ रमें?।१५३।।

अन्वयार्थ :- [दुःखस्य कारणं] नरकादि दुःख का कारण [इमं देहमपि] इस देह को [मनसि] मन में [मत्वा] जानकर ज्ञानी जीव [त्यजंति] इसका ममत्व छोड़ देते हैं, क्योंकि [यत्र] जिस देह में [परमसुखं] उत्तम सुख [न प्राप्नुवंति] नहीं पाते, [तत्र] उसमें [संतः] सत्पुरुष [किं वसंति] कैसे रह सकते हैं?।

भावार्थ :-वीतराग परमानंदरुप जो आत्म-सुख उससे विपरीत नरकादिक के दुःख, उनका कारण यह शरीर, उसको बुरा समझकर ज्ञानी जीव देह की ममता छोड़ देते हैं, और शुद्धात्मस्वरुप का सेवन करते हैं, निजस्वरुप में ठहरकर देहादि पदार्थों में प्रीति छोड़ देते हैं। इस देह में कभी सुख नहीं पाते, सदा आधि-व्याधि से पीड़ित ही रहते हैं। पंचेन्द्रियों के विषयों से रहित जो शुद्धात्मानुभूतिरुप परमसुख वह देह के ममत्व करने

से कभी नहीं मिल सकता। महा दुःख के कारण इस शरीर में सत्पुरुष कभी नहीं रह सकते। देह से उदास होके संसार की आशा छोड़ सुख का निवास जो सिद्धपद उसको प्राप्त होते हैं। और जो आत्म-भावना को छोड़कर संतोष से रहित होके देहादिक में राग करते हैं, वे अनंत भव धारण करते हैं, संसार में भटकते फिरते हैं।।१५३।।

गाथा-१५३ पर प्रवचन

१५३। **आगे फिर भी देह को दुःख का कारण दिखलाते हैं**—यह सब गाथायें देह के लिये है। पहले कह गये हैं।

२७६) दुक्खहँ कारणु मुणिवि मणि देहु वि एहु चयंति।
जित्थु ण पावहिँ परम-सुहु तित्थु कि संत वसंति।।१५३।।

आहाहा! जिसमें से शान्ति न मिले, उसमें सत्पुरुष कैसे रहे? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! देखो, यह कहेंगे, देखो!

अन्वयार्थ—नरकादि दुःख का कारण इस देह को मन में जानकर.... आहाहा! **नरकादि दुःख का कारण....** दुःख का कारण है न? **'इमं देहमपि' इस देह को मन में जानकर ज्ञानीजीव इसका ममत्व छोड़ देते हैं,....** आहाहा! **क्योंकि जिस देह में उत्तम सुख नहीं पाते,....** आहाहा! उसमें वे कैसे रहें? ऐसा कहते हैं। जिस घर में ठीक न पड़े, उस घर में रहे कैसे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! **उत्तम सुख नहीं पाते उसमें सत्पुरुष कैसे रह सकते हैं?** क्या कहते हैं यह? जिसमें से सुख न मिले, ऐसे सन्त सत्पुरुष उसमें कैसे रहें? आहाहा! सुख मिले, ऐसे आत्मा में जाये नहीं? वहाँ आवास को बनावे। आवास का आवास नहीं आता? निर्जरा अधिकार में आता है। रहनेवाले का ठिकाना यह आत्मा है। निर्जरा अधिकार में आता है। रहनेवाले को रहना हो तो वह स्थान भगवान है। रागादि रहनेवाले का स्थान नहीं है। हें!

मुमुक्षु : दूसरे सब आपत्ति के स्थान हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आपत्ति व्यभिचार है। आहाहा!

सत्पुरुष व्यभिचार के दुःखों में क्यों रहे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! जो जिसमें सुख भरा है, वहाँ न जाये, वहाँ न रहे? ऐसी बात है, भाई! समझ में आया? उलहाना दिया है। अरे! सुख तो देह में कहीं मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! **उसमें सत्पुरुष कैसे रह सकते हैं?** आहाहा! देह सुन्दर और परमौदारिक शरीर उत्कृष्ट हो, तथापि उसमें कैसे रहे? आहाहा! रहने का स्थान तो भगवान है, वहाँ रहे न! ज्ञानी इसमें कैसे रह सके? आहाहा! भले एक-दो देह धारण करना हो तो भी उसमें वह रहता नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है, देखो न! कहा न? '**जित्थु ण पावहिँ परम-सुहु**' जहाँ से आनन्द न मिले '**तित्थु कि संत वसंति**' वहाँ सत्पुरुष क्यों टिके? आहाहा! कहो, पोपटभाई! ऐसी बातें हैं यह। आहाहा! राग में सुख मिलता नहीं, पुण्य में सुख मिलता नहीं, शरीर में सुख मिलता नहीं, स्त्री में सुख मिलता नहीं, वहाँ वह कैसे रहे? कहते हैं। आहाहा! और भविष्य में अनन्त काल तो उसे रहना है। अब जहाँ उसकी दृष्टि है, वहाँ वह रहेगा। जिसमें रहनेयोग्य नहीं, उसमें दृष्टि हो तो वहाँ रहेगा, भविष्य में नरक, निगोद आदि दुःख में। और आत्मा में सुख है, इसलिए पर में क्यों टिके? आहाहा! उसमें अन्दर में आत्मा आनन्दस्वरूप है, वहाँ दृष्टि पड़ी तो भविष्य में तो रहना है अनन्त काल तत्त्व, तो किसमें रहेगा? आत्मा में रहेगी दृष्टि। आहाहा! समझ में आया? **कैसे रह सकते हैं?** आहाहा! नरक का दुःख कहा था न?

भावार्थ—वीतराग परमानन्दरूप जो आत्म-सुख.... १५३। पाठ में इतना है कि '**वीतरागतात्त्विकानन्दरुपात्**' पाठ यह है संस्कृत। '**वीतरागतात्त्विकानन्द**' संस्कृत में है। इसका अर्थ यहाँ यह किया, वीतराग परमानन्दरूप। तात्त्विक का अर्थ परम किया। आहाहा! समझ में आया? **वीतराग परमानन्दरूप....** भावार्थ है न, पहली लाईन। टीका में '**वीतरागतात्त्विकानन्दरुपात्**' (है)। यह तात्त्विक आनन्द भगवान में है। आहाहा! **उससे विपरीत नरकादि के दुःख, उनका कारण यह शरीर, उसको बुरा समझकर ज्ञानी जीव देह की ममता छोड़ देते हैं,....** आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, माघ शुक्ल १५, शुक्रवार
दिनांक- ०४-०२-१९७७, गाथा - १५३, प्रवचन-२०६

परमात्मप्रकाश, १५३ गाथा है। **भावार्थ—वीतराग परमानन्दरूप जो आत्मसुख....** सुख कहाँ है, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा वीतराग परमानन्द सुखरूप है। शरीर, वाणी तो भिन्न है। उसकी बात क्या करना? परन्तु पुण्य और पाप के भाव जो शुभ-अशुभराग, उससे भिन्न आत्मतत्त्व अन्दर है, वह वीतराग परमानन्द सुखरूप है। आहाहा! वीतराग परमानन्दरूप आत्मसुख। आहाहा! वापस इन्द्रियों के सुखादि हैं, वे तो राग और दुःख हैं। शरीर के प्रति प्रेम में जो राग माने, सुख माने, वह तो दुःख है। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर लालसा, विषय की वह भी दुःख और राग है। जिसे सुख चाहिए हो अर्थात् कि जिसे धर्म करना हो अर्थात् कि जिसे मोक्ष का मार्ग प्रगट करना हो। आहाहा! उसे वीतराग परमानन्द सुख का ध्यान करना चाहिए। आहाहा! ऐसी बात है।

उससे विपरीत नरकादिक के दुःख,.... नीचे भगवान जिनेश्वरदेव ने सात नारकी (नरक) देखे हैं, उसमें अनन्त दुःख है। तिर्यंच गति में—ढोर में भी अनन्त दुःख हैं, मनुष्य में भी यह सब दुःख है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें जरा विचारनेयोग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विचारनेयोग्य क्या है? यह पैसेवाले कहलाये दुःखी, दुःखी हैं ये। पैसा जड़ है, जड़ मान्यता। उस जड़ में कल्पना की है, वह महादुःख है। आहाहा! ऐसी बात है। भगवान जिनेश्वरदेव मूल बात करना चाहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा सर्वज्ञ जिनेश्वर वीतरागदेव ने ऐसा है, वह कैसा? कि वह तो वीतराग परमानन्द सुखरूप है। आहाहा! अब ऐसी बात है। आत्मा अर्थात् क्या? यह पर का करे और यह करे, ऐसा नहीं, वह आत्मा नहीं। आहाहा! वीतराग—रागरहित परम आनन्द अतीन्द्रिय ऐसा सुखरूप है, उसका आश्रय करने से वीतराग परमानन्द सुख की प्राप्ति

होती है। ऐसी बात है। इससे विपरीत चार गति का दुःख है। यह सब करोड़पति दिखते हैं न, वे सब बेचारे दुःखी हैं, इन्हें खबर नहीं।

मुमुक्षु : होशियार लोगों को खबर नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं, मूढ़ है। ऐसा लो। खबर नहीं, वह तो नकार में गया। खबर नहीं। मूढ़ है। भगवानजीभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : आपके पास तो हाँ ही करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तुस्थिति वीतराग जिनेश्वरदेव परमेश्वर सर्वज्ञ परमात्मा के ज्ञान में तीन काल—तीन लोक ज्ञात हुए, इच्छा बिना वाणी निकली। इसका बड़ा विवाद। वाणी के कर्ता केवली हैं, ऐसा कहे। वाणी तो जड़ है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आवाज उठती है, वह तो जड़ की भाषा है। आत्मा है वह? वह जड़ की भाषा जड़ से होती है, आत्मा से नहीं। आहाहा! आत्मा से राग होता है, वह आत्मा से नहीं, ऐसा कहते हैं। राग, वह उपाधि-विकल्प-विकार। आहाहा! वह निमित्त के आश्रय से उपाधि का भाव, पुण्य-पाप का भाव है, वह आत्मा नहीं। आहाहा! जिसे सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव आत्मा कहते हैं, ऐसा सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं है।

यह आत्मा जिसे कहते हैं, वह तो वीतराग परमानन्द सुख है। उससे विपरीत चार गति के देव में भी दुःख है। आहाहा! स्वर्ग में देव भी दुःखी हैं। क्योंकि आत्मा आनन्दस्वरूप की जहाँ दृष्टि नहीं, भगवान आनन्दस्वरूप का जहाँ आश्रय नहीं, उसे पर का आश्रय है, वह सब दुःखी है। कहो, ऐसा है। बाहर में लहर करते दिखाई दे। पाँच-पचास लाख का बँगला हो, स्त्री, पुत्र, परिवार, वह तो सब परचीज़ है न, प्रभु! यहाँ तो शरीर पर बात लेते हैं। यह जड़, मिट्टी, धूल है, अजीव है, पर है। आहाहा! उसे प्रेम करना वह दुःख है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है?

नरकादिक के दुःख,.... नरक आदि अर्थात् चार गति। यह सेठिया, यह देव, यह राजा सब दुःखी हैं। आत्मा के आनन्द का जहाँ आश्रय नहीं और स्वआश्रय छोड़कर पराश्रय में जो खड़े हैं, वे सब दुःखी हैं। उन्हें खबर नहीं। सन्निपातिया सन्निपात के जोर में खिलखिलाता है। वह सुखी है? वात, पित्त और कफ की दशा वक्र हो गयी

है। इसलिए खिलखिलाता है, वह तो सन्निपात में खिलखिलाता है। सुखी है? इसी प्रकार अज्ञानी पर में अनुकूल देखकर, शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, धूल, इज्जत सन्निपतिया जैसे खिलखिलाता है, वैसे अज्ञानी को उसमें प्रसन्नता लगती है। आहाहा! मूल तत्त्व बहुत सूक्ष्म है। भगवान जिनेश्वर परमेश्वर ने कहा हुआ तत्त्व। यह तो कहते हैं कि पर की दया, दान, व्रत के भाव हैं, वे राग हैं। उनसे भगवान तो भिन्न हैं। उससे नरकादि के दुःख, वे भिन्न हैं। हें! आहाहा!

उनका कारण यह शरीर,.... आहाहा! यह मिट्टी। पुद्गल जड़ स्कन्ध का पिण्ड है यह तो मिट्टी। यह पर में दुःख है, और दुःख का कारण शरीर है। आहाहा! मिट्टी है, पुद्गल है, ऐसा नहीं कहते? लोहे की कील चुभ जाये शरीर में, वहाँ लोग बोले, मेरी मिट्टी पकाऊ है। पानी छूने देना नहीं, मिट्टी पकाऊ है। एक ओर कहे कि मेरी मिट्टी पकाऊ, एक ओर कहे कि यह शरीर मेरा। अब इसमें क्या करना है? आहाहा! भ्रमणा का कुछ पार है? पैसा-बैसा तो कहीं रह गयी धूल इसकी। आहाहा! नौ तत्त्व में आत्मतत्त्व किसे कहना? ऐसा कहते हैं। लक्ष्मी, शरीर, इज्जत, वह तो अजीवतत्त्व है। नवतत्त्व है न भगवान ने कहे। उसमें हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना के भाव, वे तो पापतत्त्व हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह पुण्यतत्त्व है। वह पुण्यतत्त्व है, वह आत्मा कहाँ है? आहाहा! सब विवाद उठाया है न लोगों ने? पुण्यफला अर्हंता। पुण्यफल, वह तो बाहर की क्रिया का पुण्य का फल भगवान को। जो आनन्दस्वरूप भगवान अरिहन्त हुए, वे तो राग, द्वेष और मिथ्यात्व और भ्रान्ति उसरूपी अरि, उसे घातकर वीतरागता हुई है उन्हें। आहाहा! समझ में आया? वे पुण्य के फलरूप से वह और अरिहन्त नहीं हुए। आहाहा! वह तो पुण्य का फल बाह्य में वाणी और हलन-चलन हो, वह सब पुण्य की क्रियायें हैं। पूर्व के पुण्य की, हों! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, शरीर दुःख का कारण। **उसको बुरा समझकर....** यह तो टीकाकार ने जरा कहा, परन्तु उसे पर समझकर। आहाहा! यह शरीर जो मिट्टी, धूल है, आहाहा! उससे झुकाव छोड़। आहाहा! यदि तुझे सुखी होना हो तो अथवा धर्म करना हो तो। आहाहा! ऐसी बात है। धर्म करना कहो या सुखी होना कहो, दोनों एक ही बात है। वह सुख कौन? आत्मा का सुख। आहाहा! उसे पर समझकर **ज्ञानी जीव देह की ममता**

छोड़ देते हैं,.... 'देह मेरी' यह भाव ही मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व, वही महादुःख का समुद्र है। आहाहा! देह मैं नहीं। जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना है, आहाहा! उसे देह मैं नहीं। मैं कौन? शुद्धात्म वीतराग आनन्दस्वरूप परमात्मा स्वयं आत्मा है। आहाहा! ऐसा बैठना कठिन। अब यहाँ जरा पाँच-पच्चीस हजार मिले वहाँ सुखी मान ले, लो। मकान-बकान कुछ दो-चार-दस लाख का हो तो मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो जाये इसे। आहाहा! प्रभु! तूने यह क्या किया? आहाहा!

वीतराग परमेश्वर जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं कि दुःख का कारण तो यह शरीर है। यह तो अपने आ गये हैं तीन बोल। शरीर विधाता ने—कर्म ने तीन लोक में जो दुःख है, उसे इकट्ठा करके यह शरीर बनाया है। आहाहा! कर्म-कर्म जड़। आहाहा! और वह पाप है, यह तो शरीर। आहाहा! उसके ऊपर नजर करने से पाप होता है। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर है, उस पर नजर न करके, इसकी नजर में रुका, आहाहा! वह दुःख में रुका है, भाई! परन्तु उसे खबर नहीं, वीतराग मार्ग की खबर नहीं। समझ में आया? यह शरीर सब रूपवान दिखाई दे, वह सब हड्डियों की फासफूस (चमक) है। है? आहाहा! भाई! वह आत्मा नहीं। उसमें रहना, वह सन्तों को, आत्मार्थी को ठीक नहीं, ऐसा कहते हैं। यहाँ यह कहते हैं। आहाहा! उसमें रहना अर्थात्? शरीर मेरा है, ऐसी ममता में रहना, वह सत्पुरुष को ठीक नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान वीतराग परमात्मा ऐसा कहते हैं कि उसे जानकर देह की ममता छोड़। और क्या करना? शरीर के रजकण-मिट्टी का प्रेम छोड़। आहाहा! बाहर की बातें तो कहीं रह गयी। हें! हसमुख और पैसा तो वहाँ मुम्बई रह गये। नहीं? परन्तु गर्मी है न, मैं पैसेवाला हूँ। अन्दर गहराई-गहराई में है या नहीं? मेरे छह लड़के हैं और पैसे हैं। ऐई! चिमनभाई! यह सब रिश्तेदार साथ में बैठे हैं। धूल है, बापू, भाई! तुझे खबर नहीं। तेरी चीज़ हो तो तुझसे भिन्न हो? और भिन्न होती है, वह तेरी चीज़ हो? इसे न्याय से विचारना पड़ेगा।

यहाँ तो परमात्मा जिनेश्वरदेव जो कहते हैं, उसे सन्त आडतिया होकर जगत को माल प्रसिद्ध करते हैं। भगवान! तुझे दुःखी होना हो तो शरीर का प्रेम रख। आहाहा! बाह्य का दूसरे का प्रेम तो एक ओर रह गया। सुखी होना हो तो, प्रभु! एक बार देह का

प्रेम छोड़। आहाहा! यह हड्डियाँ, माँस और चमड़े का प्रेम छोड़। भगवान आनन्द का नाथ अन्दर विराजता है। आहाहा! कभी सुना न हो (कि) अन्दर आत्मा ऐसा है। आहाहा! जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें आता है न, स्तुति में नहीं। 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल।' सीमन्धर भगवान विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में। तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर महावीर परमात्मा आदि तो मोक्ष पधारे। वे तो णमो सिद्धाणं में गये। यह भगवान महाविदेहक्षेत्र में अभी विराजते हैं, वे णमो अरिहंताणं में हैं। आहाहा! क्योंकि अभी शरीर है, चार कर्म बाकी है। सिद्ध भगवान हैं, उन्हें तो आठों कर्मों का अभाव है और अकेला आनन्द का नाथ जागकर उठा है। इनको अभी चार कर्म बाकी हैं। केवलज्ञान हुआ, परमात्मा है, समवसरण में विराजते हैं, उनकी स्तुति की है।

प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल,
निज सत्ता से शुद्ध सौने पेखता हो लाल॥

हे नाथ! हे वीतराग! हे सर्वज्ञ प्रभु! आप तीन काल—तीन लोक देखते हो, जानते हो, उसमें हमारा यह आत्मा आप कैसा देखते हो? कि निजसत्ता, अपना अस्तित्वपने से पवित्र और आनन्द है, ऐसा आप देखते हो। आहाहा! क्योंकि शरीर, वाणी, वह तो सब जड़ और अजीव है। अन्दर पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत के परिणाम, वह पुण्य; हिंसा, झूठ के (परिणाम) पाप, उनसे रहित भगवान आप हमारे आत्मा को देखते हो। आहाहा! कहो, लीलाधरभाई! यह सब पैसे में फँस गये सब तुम्हारे लड़के-बड़के। हो...हा... हो...हा....

उन रामजीभाई के लड़के नहीं? पूनमचन्द और वे सब उस बाबा को लगे हैं। वह सांईंबाबा है। धूल में भी नहीं। वीतराग मार्ग के अतिरिक्त कोई मार्ग है ही नहीं कहीं। समझ में आया? उसे कुछ सिर पर जोखिम आयी थी अभी। दूसरे ने पकड़ा जादूगर को, लाओ जादू बताओ तेरा। ढोंग किया है। सिर पर आया है किसी का। अखबार में पढ़ा। नहीं? आहाहा! ऐसे हाथ रखकर राख निकलती है, धूल निकलती है। वह तो अन्दर राख रखे अन्दर में कुर्ता पहनकर। ऐसा करे। अब धूल में क्या है? सुन न! राख निकले या देव आता हो तो भी क्या है? उसमें धर्म कहाँ आया? आहाहा!

यहाँ तो तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव, परमेश्वर, केवली ऐसा फरमाते हैं। भाई! यह विभूति-बिभूति मिलती है, वह पूर्व के पुण्य के कारण से, वह कहीं तेरी चीज़ नहीं। यह शरीर दु:खरूप है, वह तेरा नहीं, यहाँ तो कहते हैं। वह तो मिट्टी है। आहाहा! वह श्मशान में एक बार यहाँ सर्वत्र अग्नि सुलगेगी धग्... धग्... धग्... धग्... बापू! वह तो जड़ है भगवान! तू जो है, वह तो आनन्द का नाथ। अरे कैसे बैठे? आहाहा! उसमें पुण्य और पाप के भाव भी दु:खरूप है, वह आत्मा नहीं। वह पुण्य-पापतत्त्व तो भिन्न रह गया। आहाहा!

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर जिसे आत्मा कहते हैं, वह तो परम आनन्द का नाथ प्रभु है। आहाहा! उसके विरुद्ध का मिला हुआ शरीर, वह दु:खरूप है। यह (आत्मा) सुखरूप है तो यह (शरीर) दु:खरूप है। आहाहा! समझ में आया? इसमें कठिन बातें, बापू! अभी तो सम्प्रदाय में यह बात है नहीं। खबर है न हमको तो सब। यह दया पालन करो, व्रत करो, अपवास करो, वह धर्म। अरे! धूल भी नहीं, सुन न! वह तो सब राग की क्रिया है परसन्मुख के लक्ष्यवाली।

मुमुक्षु : व्रत और तप दो की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे कहना व्रत और किसे कहना तप, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! वीतरागी आनन्द सुखरूप भगवान की दृष्टि करके अनुभव हो, पश्चात् उसमें स्थिरता हो, उसे व्रत और तप कहते हैं। अभी वस्तु की खबर बिना व्रत, तप आये कहाँ से तेरे? आहाहा! समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं।

शुद्धात्मस्वरूप का सेवन करते हैं,.... आहाहा! है? यह और क्या होगा? आहाहा! शरीर, वाणी, मन, वह पर है, उनकी प्रीति छोड़कर सेवन उसका किया तूने। उसकी प्रीति, सेवन छोड़कर भगवान आत्मा शुद्धात्म-अनुभूति आनन्द का नाथ भगवान। आहाहा! शुद्धात्म है? स्वरूप। **शुद्धात्मस्वरूप...** शुद्धात्मस्वरूप, पुण्य-पाप के विकल्प और देह से भिन्न भगवान अन्दर, उसका सेवन कर। आहाहा! उसमें एकाग्र हो, तुझे सुख होगा, आनन्द आयेगा और उसमें मोक्षमार्ग प्रगट होगा। आहाहा! ऐसी बाते हैं। कठिन पड़े परन्तु क्या हो? बापू! अनन्त काल में इसने कभी सुना नहीं। ऐसी की ऐसी जिन्दगी अभिमान में और अभिमान में गयी। आहाहा!

कहते हैं, भगवान! इस ओर का पक्ष छोड़ दे न! आहाहा! करवट बदल डाल। पहलू कहते हैं? करवट। एक करवट से सो रहा हो और फिर ऐसे सो रहा हो जरा गर्मी लगे तो यह करवट बदले। रात्रि में नींद न आवे, इसलिए करवट बदले। ऐसा कहते हैं, इस करवट से तू सो रहा है। शरीर मेरा, पैसे मेरे, धूल मेरी, स्त्री मेरी, राग मेरा इस करवट में सो रहा है, वहाँ दुःख है। होली सुलगती है वहाँ कषाय की अग्नि की। आहाहा! समझ में आया? प्रभु! इस पक्ष में आ जा न अन्दर अब। आहाहा! जहाँ वीतरागी आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर है। आहाहा! उसका सेवन कर। करते हैं देखो ज्ञानी, ऐसा। धर्मी तो राग का सेवन और शरीर के प्रेम का सेवन छोड़कर आत्मा शुद्धात्म परमात्मस्वरूप में एकाग्र होता है, वह शुद्धात्मा की सेवा करता है। भगवान परमात्मा तीर्थंकरदेव और उनकी मूर्ति की सेवा, वह तो शुभराग है। होता है, पाप से बचने के लिये वह होता है, परन्तु वह धर्म नहीं है। आहाहा! धर्म तो जिसमें धर्मी ऐसा भगवान जिसमें धर्म पड़ा है। धर्मी ऐसा भगवान आत्मा, उसमें आनन्द, ज्ञान, शान्ति, ऐसा धर्मस्वभाव पड़ा है। उसके स्वभाव के आश्रय में जाने से जो दशा प्रगट हो, उसे धर्म कहा जाता है। आहाहा! ऐसी व्याख्या भारी कठिन जगत को। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से माना है। साधु हुआ, बाबा हुआ। जैन का साधु हुआ, दिगम्बर हुआ, परन्तु वह सब देह की क्रिया और राग की क्रिया वह मेरी है, ऐसा मानकर वहाँ खड़ा रहा। आहाहा!

ज्ञानी, ऐसा कहा है न? (ज्ञानी) **जीव देह की ममता छोड़ देते हैं,....** आहाहा! **और शुद्धात्मस्वरूप का सेवन करते हैं, निजस्वरूप में ठहरकर....** अब सेवन की व्याख्या की। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्दस्वरूप भगवान। यह भगवान, हों! उसमें **ठहरकर...** आहाहा! है न? **ठहरकर देहादि पदार्थों में प्रीति छोड़ देते हैं।** ऐसे प्रीति नहीं छूटती, कहते हैं। आहाहा! यह आनन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप, सिद्धस्वरूप, 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आहाहा! अरे! इसे आत्मा का क्या? उस स्वरूप में ठहरकर पर की ममता छोड़। इसके बिना ममता नहीं

छूटेगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा कठिन लगे लोगों को। परन्तु इसका साधन क्या? बापू! यह साधन है, भाई! तूने साधन के पहलू देखे नहीं। आहाहा!

अन्तर चीज़ आत्मतत्त्व। आहाहा! दृष्टान्त तो दिया है न बहुत बार उस शकरकन्द का। अपने शकरकन्द तुम्हारे नहीं? शकरकन्द कहते हैं। हमारे यहाँ शक्करिया कहते हैं काठियावाड़ में। उस शकरकन्द में ऊपर की लाल छाल जरा छिलका है, उसका लक्ष्य छोड़ दो तो वह शकरकन्द है। शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का कन्द है। शक्कर कहते हैं न? अर्थात् चीनी। आहाहा! लाल छाल का लक्ष्य छोड़ दे तो पूरा वह आधा सेर या पौन सेर का दल है, वह शकरकन्द। शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड है। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा शरीर और पुण्य-पाप के विकल्पों की छाल का लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। यह शकरकन्द जँचता है, यह (आत्मा) नहीं जँचता। कभी प्रयास भी नहीं। सुनने को मिलता नहीं बेचारे को, क्या करे? अरेरे! जिन्दगी ऐसी की ऐसी ढोर की भाँति चली जाती है, भले पाँच, पचास लाख मिले धूल में तो उसमें... आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तुझे विश्वास नहीं आता। उस शकरकन्द का इसे विश्वास आता है। आहाहा! यह प्रभु अन्दर है चैतन्य, वह अनाकुल आनन्द का रसकन्द है। उसे आत्मा कहते हैं। छिलका है, वह कहाँ आत्मा (शकरकन्द) है? इसी प्रकार पुण्य-पाप भाव हैं, वे आत्मा हैं? वह तो छिलका है। आहाहा! और उस छिलकेवाला शकरकन्द जिस बर्तन में रखा हो, वह बर्तन उसका स्वरूप है? इसी प्रकार इस शरीररूपी बर्तन में रहा तो जड़ है, वह मिट्टी है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है, बापू! वीतराग का धर्म जैन वीतराग का धर्म सूक्ष्म, बापू! लोक में तो सब बाहर से मान रहे हैं। आहाहा! यह मार्ग अलग, नाथ! तेरी चीज़ भगवान ने जो कही, जिनेश्वर ने, हों! दूसरे अज्ञानी आत्मा... आत्मा करे, वह आत्मा नहीं, परमेश्वर केवली परमात्मा तीर्थंकरदेव ने जो नव तत्त्व में एक तत्त्व आत्मा कहा, वह पूरी अलग चीज़ है। आहाहा!

कहते हैं कि **निजस्वरूप में ठहरकर...** यह तो अध्यात्म शास्त्र है, यह कहीं कथा नहीं। आहाहा! भगवान ऐसे राग में ठहरकर स्वरूप को भूला है, उस स्वरूप में ठहरकर यह भूल जा अब। आहाहा! दुनिया माने, न माने, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं।

स्वरूप तो यह है। जिनेश्वर देव ने केवली परमात्मा ने तो यह कहा है। समझ में आया? **निजस्वरूप में ठहरकर...** वीतराग परमेश्वर, वे तो परद्रव्य हैं। वहाँ ठहरेगा तो—वहाँ जायेगा तो राग होगा। आहाहा! पुण्य, भले पुण्य हो। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप आत्मा में ठहरकर, पर की ओर के लक्ष्य को छोड़कर, स्वरूप के लक्ष्य में जाकर स्थिर हो वहाँ। आहाहा! कठिन बातें।

ठहरकर देहादि पदार्थों में प्रीति छोड़ देते हैं। शरीर, राग, देह और पैसे की लक्ष्मी का प्रेम, इसमें (आत्मा में) ठहरकर छोड़। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **इस देह में कभी सुख नहीं पाते,....** प्रभु! तुझे इस शरीर में कहीं सुख नहीं मिलेगा। आहाहा! पैसा, स्त्री और पुत्र में तो सुख नहीं। आहाहा! स्त्री का शरीर तो माँस और हड्डियाँ, चमड़ी है वह तो। धूल है, वह तो माँस। उसमें सुख है? विषय के प्रेमी उसमें सुख मानकर मूढ़ होकर मिथ्यात्व को सेवन करते हैं। आहाहा! जिसमें सुख नहीं, उसमें सुख मानने से, वह तो मिथ्यादृष्टि-मिथ्या(त्व) है। आहाहा! भगवान आत्मा कहते हैं, इस ओर ठहरकर प्रीति छोड़। **देह में कभी सुख नहीं पाते,....** कभी सुख नहीं मिलता।

सदा आधि-व्याधि से पीड़ित ही रहते हैं। आहाहा! शरीर, वह व्याधि का घर और शरीर के प्रति संकल्प-विकल्प, वह आधि। आधि-व्याधि-उपाधि से रहित समाधि भगवान आत्मा। आहाहा! उसे कहाँ? लोगस्स में आता है, समाहिवर मुत्तमदिंतु... परन्तु अर्थ की खबर नहीं होती, भाव तो कहाँ से लाना? समाहिवर मुत्तमदिंतु। हे नाथ! आधि-व्याधि-उपाधि से रहित मेरा नाथ, उसकी शान्ति—समाधि मुझे दो। यह तो एक भगवान को (कहते हैं)। भगवान के पास कहाँ तेरा आत्मा था, वह उसे दे? आहाहा! समझ में आया? आता है। लोगस्स तो किया होगा या नहीं? चिमनभाई ने किया है या नहीं? वह तो किया हो न सबने, स्थानकवासी पहले से तो। आहाहा!

मुमुक्षु : पाठशाला में किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाठशाला में। आहाहा!

कहते हैं, भगवान! आधि-व्याधि-उपाधि से रहित आत्मशान्ति, वह समाधि है।

उपाधि अर्थात् संयोग की दशा। व्याधि अर्थात् शरीर के रोग आदि और आधि अर्थात् पुण्य-पाप के संकल्प की आधि, वह उपाधि। आहाहा! उससे रहित प्रभु है, वह समाधि है। आहाहा! उस समाधि का नाम धर्म है। आहाहा! ऐसी। वे बाबा कहें, वह नहीं, हों! बाबा कहें न समाधि? धूल में कहाँ भान है बाबा को। यह तो वीतराग परमेश्वर कहते हैं, उस ओर की दृष्टि छोड़कर यहाँ जा, समाधि पा। शान्ति... शान्ति तुझे मिलेगी। आहाहा! ऐसा मार्ग है, इसलिए लोगों को कठिन पड़ता है। क्या हो? बापू! मार्ग तो यह है। अनन्त तीर्थंकरों ने यह कहा है। उसमें अन्तर स्वरूप में जाने से आनन्द के धाम में घर, वह तेरा है। आनन्द का धाम, वह तेरा घर है। रागादि, देहादि वह परघर है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

गृहस्थ व्यक्ति हो करोड़ोंपति और उसमें लड़का व्यभिचार में चढ़ा हो किसी जगह तो उसका बाप कहे, भाई! यह घर अब नहीं निभेगा। तू किसके साथ जाता है और पैसे खर्च करता है, खबर है मुझे। अरे! भाई! ऐसे घर नहीं टिकेगा। और घर में कन्या खानदान की पुत्री है, भाई! उसे छोड़कर तू यह व्यभिचारी बाई के पास जाता है, मुझे खबर है। भाई! यह तेरी शोभा नहीं। आहाहा! ऐसा कहते हैं? हमने तो सब सुना हुआ बहुत है। यह तो ८७ वर्ष हुए। ६४ तो यहाँ हुए। तब २४ हुए थे संसार में। आहाहा! नौ वर्ष दुकान में (थे)। घर की दुकान थी न पालेज। सब बहुत देखा, सर्वत्र थोथे-थोथा है। आहाहा! ऐसा यहाँ तीन लोक के नाथ कहते हैं, जैसे वह पिता कहता है, घर की स्त्री खानदानी ऊँची नजर न करे, उसे घर में छोड़कर, समझे न? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : भरा बर्तन।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भरा बर्तन, कहते हैं। वह भूल गया। यह भरा बर्तन कहते हैं। यह भूल जाते हैं तुम्हारे शब्द। भरा बर्तन छोड़कर जूठन चबाने जाता है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तीन लोक के नाथ ऐसा कहते हैं कि आनन्द से भरा बर्तन तो तू है न भाई! उसे छोड़कर यह राग और द्वेष को चाटने जाता है, यह घर नहीं टिकेगा। आहाहा! सुजानमलजी! ऐसी बात हैं, बापू! आहाहा! यह तो उसके आत्मा के हित की बात है, प्रभु! महँगी पड़े, न सुनी हो, इसलिए कठिन पड़े। बापू! मार्ग तो यह है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं। आहाहा! यह भरा बर्तन छोड़कर जूठन चाटने जाता है, बेटा! यह घर नहीं

निभेगा। इसी प्रकार यहाँ तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव धर्मपिता ऐसा कहते हैं कि यह भरा बर्तन आनन्द का नाथ प्रभु है न तू। उसे छोड़कर यह पुण्य और पाप और देह की प्रीति में जूठन चाटने जाता है। ऐई! ऐसा होगा... में? तुम सब पैसेवाले कहलाते हो सब। धूल और पचास लाख और लाख और करोड़ और दो करोड़। यह सब करोड़पति हैं। धूल में भी नहीं वहाँ तो। ऐई! भगवानजीभाई! लो, यह करोड़पति है, यह दो करोड़पति हैं। यह भी बहुत लाखोपति है। बहुत लाखों। तुम्हारे भाई हिम्मतभाई के पास ऐसा कुछ नहीं था।

मुमुक्षु : दो में से अधिक सुखी कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों दुःखी। आहाहा! धूल में भी सुख नहीं, भाई! आहाहा!

प्रभु! तू कहाँ है? किसमें है तू? यहाँ तो वीतराग कहते हैं, बापू! तू तो आत्मा वीतरागी आनन्दस्वरूप है प्रभु। परमेश्वर केवली को अतीन्द्रिय आनन्द अनन्त प्रगट हुआ, वह कहाँ से आया? कहीं बाहर से आवे ऐसा है? आहाहा! सर्वज्ञ अरिहन्त परमात्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य प्रगट हुआ। परमात्मा मौजूद भगवान तो विराजते हैं। महाविदेह में तो लाखों केवली विराजते हैं। लाखों केवली और यह तो तीर्थंकर। बीस तीर्थंकर हैं। विहरमान तीर्थंकर नहीं? यह सामायिक में आज्ञा माँगते हैं। उसकी खबर भी कहाँ है? जय नारायण करके, आहाहा! यह प्रभु विराजते हैं। समवसरण में देहसहित हैं, वाणीसहित हैं। वाणी-ध्वनि निकलती है, सवेरे, दोपहर, शाम छह-छह घड़ी। आहाहा! उन भगवान की वाणी में ऐसा आया है प्रभु। जहाँ आनन्द का नाथ भगवान विराजता है, उसकी सेवा कर न! आहाहा! यह राग की सेवा करके मर गया अनन्त काल से। आहाहा! पुण्य के भाव शुभराग, वह विकार है, दुःख है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! यह शुभराग दया, दान, व्रत, परिणाम का फल पुण्यबन्धन है। पुण्यबन्ध के फल में यह लक्ष्मी आदि धूल की मिले, वह सब दुःख है। आहाहा! समझ में आया? है?

आधि-व्याधि से पीड़ित ही रहते हैं। पंचेन्द्रियों के विषयों से रहित.... आहाहा! भगवान अन्दर तो पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर के झुकाव से रहित है। आहाहा! **शुद्धात्मानुभूतिरूप परमसुख वह देह के ममत्व करने से कभी नहीं मिल सकता।**

आहाहा! चोट मारी है। शरीर की ममता से, प्रभु! तुझे यह सुख नहीं मिलेगा। आहाहा! प्रभु! तू तो अशरीरी है न? शरीर तो जड़ है, यह तो मिट्टी है। अँगुली पाँच में वह छठी हो न, उसे काट डालना पड़ता है। उसी प्रकार यह छठी अँगुली तो बाहर की चीज़ है, वह कहाँ तेरी चीज़ है? आहाहा! समझ में आया? मतिज्ञानादि की पाँच दशा वह तेरी है। यह शरीर तो तेरा नहीं, यह तो अवयव काट डालने का है। आहाहा! समझ में आया?

पंचेन्द्रियों के विषयों से रहित जो शुद्धात्मानुभूतिरूप परमसुख वह देह के ममत्व करने से कभी नहीं मिल सकता। देह से-क्रिया से नहीं मिले और देह की ममता से भी नहीं मिले। आहाहा! **महा दुःख के कारण इस शरीर में सत्पुरुष कभी नहीं रह सकते।** आहाहा! सड़ा हुआ गधा हो, सड़ गया हुआ गधा। उसमें बीच में मैसूब अधमण बनावे, अधमण मैसूब डालकर गधे का सड़ा हुआ (चमड़ा में भरे)। उसी प्रकार यह भगवान अनन्त आनन्द का मैसूररूप है। उसका शरीर गधे का सड़ा हुआ जैसा है यह तो। तू उससे लिपटकर पड़ा है, प्रभु! इसमें तुझे शोभा नहीं देता। आहाहा! ऐई! चिमनभाई! यहाँ तो बात दूसरी है, बापू! आहाहा! मैसूर को उसमें रखना, वैसे अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु है, उसे इस सड़े हुए चमड़े में रखना, सत्पुरुष को शोभा नहीं देता, कहते हैं। ऐसा कहते हैं। ऐसा कहा न? बाबूभाई! भगवान! आहाहा! तीन लोक के नाथ की यह आवाज है। सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! परमसत्य तो यह है।

कहते हैं, आहाहा! क्या कहते हैं? **महा दुःख के कारण इस शरीर में सत्पुरुष कभी नहीं रह सकते।** आहाहा! इस राग में रहना, वह भी दुःख में रहना है। सत्पुरुष उसमें नहीं रह सकते। आहाहा! आठ वर्ष की बालिका हो और समकित प्राप्त करे, तो भी यह कहते हैं कि वह आत्मा में है, वह राग में और शरीर में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भरत चक्रवर्ती ऋषभदेव के पुत्र। छियानवें हजार तो पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ। छियानवें करोड़ गाँव और अड़तालीस हजार नगर और बहत्तर हजार पाटण, छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ गाँव और छियानवें करोड़ सैनिक। और शरीर, वह शरीर, मणिरत्न से गढा हो ऐसा सुन्दर शरीर। और जैसे यह गहना होता है हार, बड़ा अरबों की कीमत का। यह कहते हैं, मैं उसमें नहीं, हों! आहाहा! वह मैं जहाँ हूँ, वहाँ ये नहीं और ये हैं, वहाँ मैं नहीं। आहाहा! यह सम्यग्दृष्टि की दशा। भले चौथे गुणस्थान

में हो। पाँचवें की श्रावक की तो अलौकिक बातें हैं। यह वाड़ा के श्रावक, वे कहीं श्रावक नहीं। आहाहा! भगवान जो श्रावक कहते हैं, वह दशा कोई अलग है और जिसे भगवान साधु कहते हैं, वह लाईन ही कोई अलग है। अभी तो हिन्दुस्तान में दिखती नहीं। आहाहा! समझ में आया? कठिन बातें हैं, प्रभु!

यहाँ कहते हैं, अरे! सत्पुरुष कैसे रहे? ऐसा कहते हैं। अर्थात् कि धर्मात्मा, उस राग में कैसे रहे? आहाहा! धर्मात्मा उस शरीर में कैसे रहे? शरीर होने पर भी शरीर में कैसे रहे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। दिगम्बर सन्तों की पुकार है यह। ऐसी बात कहीं है नहीं, बापू! आहाहा! अरेरे! कहते हैं, **सत्पुरुष कभी नहीं रह सकते।** यह क्या? दुःख का कारण ऐसा शरीर, दुःख के कारण ऐसे पुण्य-पाप के भाव। आहाहा! वह धर्मी सत्पुरुष सच्चिदानन्द भगवान के अतिरिक्त ऐसे असत् में कैसे रहे? उसे सत्पुरुष कहते हैं। वह परमानन्द का नाथ भगवान, उसमें जाता है और ठहरता है, उसे सत्पुरुष कहते हैं। राग में और शरीर में रहे, वह सत्पुरुष नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : अलौकिक बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है, बापू! परमात्मप्रकाश....

धर्मात्मा ज्ञानीपुरुष राग में, पुण्य में और शरीर में कैसे रहे? आहाहा! ऐसा कहते हैं। हो, राग हो, परन्तु उसमें उसकी दृष्टि नहीं, वहाँ रहता नहीं। रहता है आत्मा में। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं, भगवानजीभाई! अफ्रिका में मिले ऐसा नहीं है वहाँ। वहाँ धूल मिले। आहाहा! उसमें नहीं आती शरीर की बात?

'रजकण तेरे भटकेंगे, जैसे भटकती रेत,
फिर नरतन पाये कहाँ? चेत चेत नर चेत...
रजकण तेरे भटकेंगे...

यह तो रजकण-मिट्टी है। 'रजकण तेरे भटकेंगे जैसे भटकती रेत।' रेत उड़ती है न यह। फू होकर उड़ जाये श्मशान में। आहाहा! वह राख भी इतनी नहीं होगी। उसमें वायु ठीक से आयी हो तो फू होकर उड़ जायेगी। बापू! यह तो मिट्टी, जड़, धूल है। तू

कहाँ... ? 'फिर नरतन पाये कहाँ ?' बापू! चेत, आत्मा को चेत। उसमें ठहरना छोड़ दे और यहाँ ठहर तो तुझे अशरीरीदशा प्राप्त होगी। अशरीरीदशा में ठहर तो तुझे अशरीरी दशा प्राप्त होगी। राग और शरीर में ठहर तो संयोगीदशा में तुझे भटकना पड़ेगा। आहाहा! ऐसा उपदेश कैसा ? दया पालना, हरितकाय नहीं खाना, कन्दमूल नहीं खाना, रात्रिभोजन नहीं करना। बापू! यह तो सब क्रिया की बातें कही है, भाई! आहाहा! बापू! तेरा मार्ग अलग है। आहाहा! इसने सुना नहीं और किया तो कहाँ से हो ? आहाहा! गजब परन्तु कहते हैं यहाँ तो। देखा!

पाठ है। है ? '**जित्थु ण पावहिं परम-सुहु तित्थु कि संत वसंति।**' दूसरा पद है १५३-५३। जहाँ सुख न मिले, वहाँ सन्त बसे कैसे ? सत्पुरुष बसे कैसे ? आहाहा! धर्मीपुरुष कहते हैं, जहाँ सुख न मिले, वहाँ रहे कैसे ? आहाहा! बाबूभाई! गजब बातें हैं न! शरीर, वाणी, मन सब जड़ प्रभु! अरे! शुभ-अशुभभाव है, वह सब चेतनरहित अचेतन है। उसमें जिसमें सुख न मिले, वहाँ वे ज्ञानी कैसे रहे ? आहाहा! सन्तों की करुणा का तो पार नहीं। है ? आहाहा! अरे! भगवान तू कहाँ है ? कहाँ तुझे रहना है भाई ? आहाहा! राग और पुण्य-पाप और शरीर के प्रेम में रहना हो तो वह तो दुःख है। आहाहा! दृष्टि बदल डाल, यहाँ जा, ऐसा कहते हैं। ऐसा लोगों को कठिन लगे परन्तु क्या हो भाई! मार्ग तो यह है, बापू! आहाहा! भाषा यह की है, देखो न!

'**तित्थु कि संत वसंति**' वहाँ सत्पुरुष कैसे बसे ? आहाहा! गजब किया है न! जिसमें पुण्य और पाप के भाव और शरीर में सुख नहीं। जहाँ सुख नहीं वहाँ धर्मी कैसे रहे ? आहाहा! समझ में आया ? ऐसा है प्रभु का मार्ग तो, बापू! जिनवरदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का मार्ग जगत से अलग प्रकार का है। कहीं यह बात नहीं है। अभी तो सम्प्रदाय में यह बात नहीं है। यह हमको खबर है न सब। आहाहा! कहते हैं, सन्त अर्थात् सत्पुरुष, जहाँ आत्मा का सुख न मिले, वहाँ वे कैसे रहे ? आहाहा! दृष्टि उठा दे। पुण्य और पाप के भाव और शरीर से दृष्टि उठा ले, वहाँ सुख नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन की बात करते हैं। दृष्टि पुण्य, पाप और शरीर में से उठा ले। सत्पुरुष वहाँ नहीं रह सकते। सन्त तो जहाँ सत् है, वहाँ रहेंगे। उनकी दृष्टि वहाँ ही जमेगी। आहाहा!

परमात्मप्रकाश, वह भी परमात्मप्रकाश है न! आहाहा! भगवानस्वरूप

परमात्मस्वरूप भगवत्स्वरूप है। परमात्मस्वरूप तो भगवत्स्वरूप अनन्त आनन्द आदि स्वरूप ही उसका है। आहाहा! राग का तो स्वरूप नहीं परन्तु अल्पज्ञ भी उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया? एक ओर राग से लेकर परद्रव्य, उसमें धर्मी कैसे रहे? आहाहा! जिसमें सुख नहीं, शान्ति नहीं, उस व्यवहाररत्नत्रय में कैसे रहे? ऐसा कहते हैं। भाई! आहाहा! लोगों को कठिन लगता है। एक ओर ऐसा कहे कि व्यवहारनय से भिन्न साध्य-साधन है, ऐसा कहे और एक ओर... किस अपेक्षा से वहाँ भिन्न साधन? आहाहा! साधन तो अन्दर अभिन्न है, वह एक ही है। परन्तु राग की मन्दता, उस भूमिका में योग्यता गिनकर उसका आरोप करके कथन किया है, वास्तविक नहीं। आहाहा!

यहाँ ऐसा कहते हैं कि जिसमें सुख नहीं, उसमें तू क्यों दृष्टि रखता है? आहाहा! जिसमें दौलत नहीं, वहाँ दृष्टि क्यों रखी तूने? जहाँ दौलत अन्दर निधान पड़ा है न प्रभु आत्मा। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ है, वहाँ दृष्टि दे, वहाँ सुख है। आहाहा! कहो, अब इससे दूसरा क्या कहे अब? लोगों को कठिन लगे। व्यवहार करो और यह करो। हें!

मुमुक्षु : अमृतवाणी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है, बापू! ऐसा समय मिला, बापू! मनुष्य का भव मिला। वीतराग की वाणी सुनना साथ में मिला, इतने स्थान में आया न अब, बदल न अब। दुनिया दुनिया की जाने, दुनिया माने, न माने, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा!

शरीर में सत्पुरुष कभी नहीं रह सकते। आहाहा! दूसरी भाषा संक्षिप्त कही कि महादुःख का कारण ऐसा जो भाव और शरीर, ऐसा। उसमें कभी नहीं रह सकता। आहाहा! धर्मी जीव तो ज्ञान और आनन्द में रहा हुआ होता है। भले बाहर में राग हो, शरीर हो, चक्रवर्ती का राज हो। आहाहा! परन्तु वह रहता है, वहाँ राग और शरीर नहीं। आहाहा! जहाँ दृष्टि को निधान में स्थापित की है, वहाँ राग और शरीर नहीं। और जहाँ राग और शरीर है, वहाँ सुख नहीं। इसलिए सत्पुरुष वहाँ कैसे रहे? आहाहा! समझ में आया? समझ में आया का अर्थ कि कुछ समझ में आया? ऐसा। समझ जाये तब तो कल्याण हो जाये। परन्तु किस ढंग से और किस पद्धति से कहा जाता है? आहाहा! बापू! मार्ग अलग, नाथ! आहाहा!

तीन लोक का नाथ होकर तू राग में घिर गया और पर की प्रीति में व्यभिचारी हो गया। आहाहा! शुभराग, वह व्यभिचार है। शुभराग, हों! दया, दान, व्रत, तप का भाव, वह सब राग है। लोगों को खबर नहीं, वह व्यभिचार है। प्रभु! जहाँ सुख नहीं, वहाँ तू कैसे रहता है? आहाहा! समझ में आया? एक बार तो मुर्दा खड़ा हो, ऐसा है। आहाहा! बापू! तीन लोक का नाथ होकर तुझमें बसना छोड़कर राग और शरीर के प्रेम में (बसता है)। बापू! इन नजरों को वहाँ स्थापित की, यह तुझे शोभा नहीं देता। आहाहा! है न, पाठ है न यह?

'**जित्थु ण पावहिँ परम-सुहु**' आहाहा! जहाँ न मिले परम सुख। '**तित्थु कि संत वसंति।**' वहाँ सत्पुरुष कैसे रहे? भाषा आचार्य की है। योगीन्द्रदेव आचार्य १३०० वर्ष पहले नग्न दिगम्बर मुनि वनवास में बसते थे। आहाहा! प्रभु! दृष्टि बदल दे। जहाँ सुख नहीं, वहाँ दृष्टि न रख। जहाँ सुख है, वहाँ दृष्टि जोड़ दे—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश। उसमें तो इच्छामि पडिकम्मा इरिया ववरोविया तस्स मिच्छामि दुक्कडम, लो हो गयी सामायिक। एक इन्द्रिया, दो इन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, ववरोविया, अरे! बापू! यह राग के पहाड़े हैं। आहाहा! तस्स उतरी करणेणं तावकाय ठाणेणं माणेणं अप्पा वोसरामी। क्या अप्पाणं और क्या कहा छोड़? आहाहा! यहाँ कहते हैं कि रागादि भाव जो वास्तव में अनात्मा है, उनकी दृष्टि छोड़ दे और जो आत्मा है, उसमें बस। सत्पुरुष जहाँ सुख नहीं, वहाँ कैसे रहे? वह दुःख की ज्वाला सुलगती है, वहाँ धर्मी कैसे रहे? आहाहा! जहाँ अन्दर आनन्द की धारा बहती है, वहाँ बस न! आहाहा! यह उसका नाम सम्यग्दर्शन और उसका नाम धर्म। समझ में आया?

देह से उदास होके संसार की आशा छोड़ सुख का निवास जो सिद्धपद... देखो! सुख का निवास जो सिद्धपद, **उसको प्राप्त होते हैं।** आहाहा! **और जो आत्म भावना को छोड़कर सन्तोष से रहित होके देहादिक में राग करते हैं, वे अनन्त भव धारण करते हैं....** परमाणु वस्तुओं को छोड़कर सुख है वहाँ जाये वह सिद्धपद को प्राप्त करे और स्वभाव का सुख है वहाँ छोड़कर राग में रहे, वह दुःख को प्राप्त करे। यह दो बातें की। आहाहा! **अनन्त भव धारण करते हैं, संसार में भटकते फिरते हैं।** विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १५४

अथात्मायत्तसुखे रतिं कुर्वति दर्शयति–

२७७) अप्पायत्तउ जं जि सुहु तेण जि करि संतोसु।
पर सुहु वढ चिंतंताहँ हियइ ण फिट्टइ सोसु।।१५४।।

आत्मायत्तं यदेव सुखं तेनैव कुरु संतोषम्।
परं सुखं वत्स चिन्तयतां हृदये न नश्यति शोषः।।१५४।।

उप्पायत्तउ इत्यादि। अप्पायत्तउ अन्यद्रव्यनिरपेक्षत्वेनात्माधीनं जं जि सुहु यदेव शुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नं सुखं तेण जि करि संतोसु तेनैव तदनुभवेनैव संतोषं कुरु पर सुहु वढ चिंतंताहं इन्द्रियाधीनं परसुखं चिन्तयतां वत्स मित्र हियइ ण फिट्टइ सोसु हृदये न नश्यति शोषोऽन्तर्दाह इति। अत्राध्यात्मरतिः स्वाधीना विच्छेदविघ्नौघरहिता च, भोगरतिस्तु पराधीना वह्नेरिन्धनैरिव समुद्रस्य नदीसहस्त्रैरिवातृप्तिकरा च। एवं ज्ञात्वा भोगसुखं त्यक्त्वा ''एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होदि णिच्चमेदम्हि। एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सुक्खं।।'' इति गाथाकथितलक्षणे अध्यात्मसुखे स्थित्वा च भावना कर्तव्येति तात्पर्यम्। तथा चोक्तम्– ''तिणकट्ठेण व अग्गी लवणसमुद्दो णदीसहस्सेहिं। ण इमो जीवो सक्को तिप्पेदुं कामभोगेहिं।।''। अध्यात्मशब्दस्य व्युत्पत्तिः क्रियते–मिथ्यात्वविषयकषायादिबहिर्द्रव्ये निरालम्बनत्वेनात्मन्य–नुष्ठानमध्यात्मम्।।१५४।।

आगे यह उपदेश करते हैं, कि तू आत्म–सुख में प्रीति कर–

जो स्वाधीन और शाश्वत है उस सुख में सन्तुष्ट रहो।
अन्य सुखों का चिन्तन करने से न हृदय की दाह मिटे।।१५४।।

अन्वयार्थ :– [वत्स] हे शिष्य, [यदेव जो आत्मायत्तं सुखं] परद्रव्य से रहित आत्माधीन सुख है, [तेनैव] उसी में [संतोषम्] संतोष [कुरु] कर, [परं सुखं] इन्द्रियाधीन सुख को [चिंतयतां] चिन्तवन करनेवालों के [हृदये] चित्त का [शोषः] दाह [न नश्यति] नहीं मिटता।

भावार्थ :–आत्माधीन सुख आत्मा के जानने से उत्पन्न होता है, इसलिये तू आत्मा के अनुभव से संतोष कर, भोगों की वाँछा करने से चित्त शान्त नहीं होता। जो

अध्यात्म की प्रीति है, वह स्वाधीनता है, इसमें कोई विघ्न नहीं है, और भोगों का अनुराग वह पराधीनता है। भोगों को भोगते कभी तृप्ति नहीं होती। जैसे अग्नि ईंधन से तृप्त नहीं होती, और सैकड़ों नदियों से समुद्र तृप्त नहीं होता है। ऐसा ही समयसार में कहा है, कि हंस (जीव) तू इस आत्मस्वरुप में ही सदा लीन हो, और सदा इसी में संतुष्ट हो। इसी से तू तृप्त होगा और इसी से ही तुझे उत्तम सुख की प्राप्ति होगी। इस कथन से अध्यात्म-सुख में ठहरकर निजस्वरुप की भावना करनी चाहिये, और कामभोगों से कभी तृप्ति नहीं हो सकती। ऐसा कहा भी है, कि जैसे तृण, काठ आदि ईंधन से अग्नि तृप्त नहीं होती और हजारों नदियों से लवणसमुद्र तृप्त नहीं होता, उसी तरह यह जीव काम भोगों से तृप्त नहीं होता। इसलिये विषय-सुखों को छोड़कर अध्यात्म-सुख का सेवन करना चाहिये। अध्यात्म-शब्द का शब्दार्थ करते हैं-मिथ्यात्व विषय कषाय आदि बाह्य पदार्थों का अवलम्बन (सहारा) छोड़ना और आत्मा में तल्लीन होना वह अध्यात्म है।।१५४।।

वीर संवत् २५०२, माघ कृष्ण ०२, शनिवार
दिनांक- ०५-०२-१९७७, गाथा - १५४, १५५, प्रवचन-२०७

परमात्मप्रकाश, १५४ गाथा। **आगे यह उपदेश करते हैं कि तू आत्म-सुख में प्रीति कर—** भगवान आत्मा सुखस्वरूप है। वहाँ आनन्द है, वहाँ शान्ति है, वहाँ प्रभुता है, वहाँ नजर कर, उसे नजर में ले। आहाहा! बाहर की नजरों में उस बाह्य पदार्थ की विस्मयता में अटक गया है। आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त अन्य पदार्थों में अधिक विस्मयता से आश्चर्यता से ज्ञान रुक गया है।

मुमुक्षु : जीवों को महिमा बाहर के पदार्थों से....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं बाहर के पदार्थ से, दुःखी हैं बेचारे। आहाहा! **'परदव्वादो दुग्गइ'।**

मुमुक्षु : यह तो मुनियों के लिये बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! सबके लिये है, मुनि को क्या?

मुमुक्षु : ... तो ऐसा शास्त्र में आता है कि पैसा मिले वह गृहस्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग वस्तु। वह तो तृष्णा तीव्र न करने के लिये का प्रश्न है। सुखी कब था पैसे से? स्वद्रव्य में सुख है, वह यहाँ सिद्ध करना है। इसके अतिरिक्त राग से लेकर पुण्य के परिणाम से लेकर जो परपदार्थ है, उसके अवलम्बन से तो तू दुःखी है। उसे यह आत्मा अन्दर वस्तु है, उसकी कीमत नहीं। बाहर के पदार्थों की (कीमत है)। जो पर्याय में ज्ञात होते हैं, उनकी इसे कीमत, परन्तु जिसकी वह पर्याय है, उसकी इसे कीमत नहीं। आहाहा! यहाँ तो जिसे सुखी होना हो, उसे ऐसा कहते हैं। तो **आत्म-सुख की प्रीत कर**—आहाहा! गाथा।

२७७) अप्पायत्तउ जं जि सुहु तेण जि करि संतोसु।
पर सुहु वढ चिंतंताहँ हियइ ण फिट्टइ सोसु।।१५४।।

आहाहा! **हे शिष्य!.... 'आत्मायत्तं' परद्रव्य से रहित आत्माधीन....** आयतन है न? आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसके आधीन सुख है। आहाहा! कहो, समझ में आया? वह चीज़ क्या है, उसकी मुख्य बात यह है कि पदार्थ पूरा एक समय की पर्याय में ही रमा है अनादि से। साधु हुआ, पंच महाव्रत धारण किये, परन्तु लीनता सब पर्याय में और राग में। आहाहा! एक समय की पर्याय—अवस्था, उसका अवस्थायी कौन है, उसका इसने माहात्म्य या नजर नहीं की। क्रियाकाण्ड में रुका, वह बाहर के पदार्थ की महिमा। आहाहा! यहाँ तो देव, गुरु और शास्त्र, वे परद्रव्य हैं, उनके आलम्बन से तो राग और दुःख ही होगा। ऐसी बात है।

... व्यवहारप्रतिक्रमण में परद्रव्य का त्याग करना, उससे संवर-निर्जरा होती है। बन्ध अधिकार में आता है न! अप्रतिक्रमण, अप्रत्याख्यान। वहाँ आता है। परद्रव्य का त्याग, वह व्यवहारप्रतिक्रमण; राग का त्याग, वह निश्चयप्रतिक्रमण। इसलिए दोनों से आत्मा को कल्याण होता है, ऐसा मानता है। अरे भगवान! परद्रव्य का त्याग-ग्रहण स्वरूप में है ही कहाँ? वह तो राग के निमित्त हैं, इसलिए उनका लक्ष्य छुड़ाया है। उनका त्याग का अर्थ? उनका लक्ष्य छोड़, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसने कहाँ ग्रहण किया है, उनका त्याग करे? क्योंकि आत्मा में तो एक अनादि ऐसी शक्ति है, त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति। आहाहा! पर का त्याग और पर का ग्रहण, उससे रहित

शून्यत्वशक्ति है। उससे तो शून्यशक्ति है। आहाहा! कभी ग्रहण नहीं किया और इसने छोड़ा नहीं, ऐसा तो इसका स्वभाव है, कहते हैं। आहाहा!

आठ-आठ वर्ष के राजकुमार आत्मा के आनन्द के स्वादिया संसार छोड़कर जंगल में चले जाये। आत्माधीन सुख है इसलिए। आहाहा! पर अवलम्बन में चाहे तो देव-गुरु और शास्त्र का अवलम्बन हो, ऐसा तो कहा कि '**परदव्वादो दुग्गइ**' है। आहाहा! उस चैतन्य की जाति की गति नहीं। आहाहा! देव अरिहन्त त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव, निर्ग्रन्थ दिगम्बर सन्त मुनि, शास्त्र अनेकान्त के कहनेवाले, वह अमृतधारा। परन्तु वह पर है न! पर है, तो उसका आश्रय करेगा तो दुर्गति होगी। दुर्गति में कहीं चैतन्य की गति नहीं होगी। दूसरी गति मिलेगी देवादि, वह तो सब दुर्गतियाँ हैं। आहाहा! समझ में आया? ....में आता है न। हिम्मतवाला व्यक्ति है। ...क्या हो? आहाहा! यहाँ कहते हैं, यह आँख कहाँ आत्मा की थी, वह जावे और आवे? भगवान तो ज्ञाननेत्रवाला है। उस नेत्र से स्व को देखे, वह सुखी होता है, उस नेत्र से पर को देखे तो दुःखी होता है। आहाहा! दोनों व्यक्ति है न? दोनों व्यक्ति नहीं आये? आये हैं। दोनों व्यक्ति गये हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आत्मा परद्रव्य से रहित है। आहाहा! शरीर, कर्म, लक्ष्मी, कीर्ति और राग से रहित भगवान आत्मा, उसे आयत्त। आयत्त है न? उसे आधीन नहीं। आहाहा! वह परद्रव्य स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी अरे! देव-गुरु-शास्त्र, परद्रव्य के आधीन आत्मा का सुख है ही नहीं। पराधीन स्वप्ने सुख नाहीं, ऐसा लोग कहते हैं। बातें—भाषा करे। पराधीन सपने सुख नहीं।

मुमुक्षु : इसका अर्थ अलग है, आप करते हो उससे (अलग है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ ही यह है। वे तो दूसरा मानते हैं।

यह यहाँ कहते हैं, देखो न! आत्मा आयत्त, पर आयत्त। आहाहा! पराधीन स्वप्ने सुख नाहीं। अर्थात् कि राग और परद्रव्य के आधीन तीन काल में सुख नहीं। वह तो जरा ऐसा माने, यह नौकरी पराधीन, ढींकणा पराधीन। अब उसमें क्या? यहाँ तो आत्मा आयत, यह शब्द पड़ा है। परमात्मप्रकाश है न। आहाहा! परमात्म तेरा स्वरूप ही है। उस स्वरूप में आनन्द और शान्ति और स्वच्छता और प्रभुता अनन्त गुण का निधान, अनन्त

गुण का गोदाम प्रभु है। तुझे खबर नहीं, बापू! माल निकालना हो तो वहाँ से निकले ऐसा है। आहाहा! कहो, चिमनभाई! स्टील-बील का रखे न बड़ा गोदाम। यह तो अनन्त गुण का गोदाम है, बापू! कहाँ गया? ऐई! हमारे मनसुख! तेरे गोदाम की अपेक्षा यह गोदाम अलग प्रकार का है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अनन्त गुण का गोदाम प्रभु, आहाहा! जिसकी परिणति सुखरूप होने से अनन्त-अनन्त आनन्द की दशा होने से, वह कम न हो, ऐसा खजाना है। ऐसी बात है। इस बात की इसे महिमा कहाँ है? आहाहा! जरा बाहर अनुकूलता कुछ मिली वहाँ आहाहा! हम सुखी हैं। दुःखी है। आहाहा! यहाँ कहता था न वह? हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। सुखी की व्याख्या क्या? नानालालभाई के रिश्तेदार करोड़पति और सुख है, कहते हैं। कोई बढवान के थे।

मुमुक्षु : मोहनभाई के साले।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे। यह नहीं, हों! वे तुम्हारे काकाजी नहीं? आते हैं वे ... मोहनभाई। हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। कहा, सुखी की क्या व्याख्या? धूल पाये और यह पचास लाख, करोड़ मिले, वह सुखी है?

यहाँ तो परमात्मा तीन लोक के नाथ वीतरागदेव इन्द्रों और गणधरों के समक्ष में ऐसा प्रसिद्ध करते थे। प्रभु! तेरा सुख हो तो तेरे आधीन है। आहाहा! आयतन **परद्रव्य से रहित आत्माधीन सुख है, उसी में सन्तोष कर,....** आहाहा! यह पैसे से सन्तोष नहीं होगा धूल में। दृष्टान्त कहेंगे। **इन्द्रियाधीन सुख को....** ऐसा कहा न? आत्मा आयतन सुख परमसुख, ऐसा पराधीन। यह **चिन्तवन करनेवालों के...** आहाहा! भगवान! तेरा आत्मा आनन्दस्वरूप को छोड़कर जितनी परद्रव्य की चिन्ता (करेगा, उतना) तुझे दाह होगा, प्रभु! उसमें सन्तोष कहा था न, सामने दाह (कहा)। .... आहाहा! समझ में आया? इसलिए भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु को छोड़कर जितनी परद्रव्य की चिन्ता.... है? **इन्द्रियाधीन सुख को चिन्तवन करनेवालों के चित्त का दाह नहीं मिटता।** आहाहा! चित्त में अग्नि कषाय की होली सुलगेगी। समझ में आया? इन्द्रिय के भोग में कषाय की अग्नि सुलगती है, बापू! तुझे खबर नहीं। भाई! वहाँ अग्नि की ज्वाला सुलगती है। आहाहा! भगवान आत्मा के आधीन आनन्द वर्तता है। जहाँ आनन्द है, वहाँ नजर कर न! जहाँ आनन्द नहीं, वहाँ से नजर को छोड़ न, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बातें

कठिन, भाई! इसमें समझना कठिन। कल कोई कहता था, एक तो कहे महाराज हिन्दी बोले तो हम समझते नहीं। गुजराती तो समझे नहीं। हिन्दुस्तानी आये थे ललितपुर के। कभी यह बात क्या है...

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ समझ में नहीं आया। क्या समझ में आये? आहाहा! कभी स्कूल में चढ़ा ही नहीं न अभी। आहाहा! तीन लोक का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, सत् ज्ञान और आनन्द का सागर, उसका स्व-रूप ही यह है। स्व अर्थात् अपना रूप अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, शान्ति, वह उसका रूप है। परन्तु वह रूप नजर में आये बिना ऐसा है, ऐसी इसे कैसे खबर पड़े? आहाहा! समझ में आया? और परसुख वह चिन्तन करने से चित्त को दाह (होगी)। तेरे आत्मा के आधीन तुझे सुख, सन्तोष होगा और पर के चिन्तवन में तो तुझे दाह, अग्नि, ज्वाला सुलगेगी। आहाहा!

छहढाला में नहीं कहा? 'राग आग दाह दहै सदा, तातै समामृत सेईये।' आहाहा! राग, फिर राग शुभ और अशुभ दोनों, हों! 'राग आग दाह दहै सदा, तातै समामृत...' देखा! दाह के सामने समामृत। यह सुख कहा आत्मा का। समामृत—समता का अमृत। राग है, वह पुण्य-पाप है, विषम है। विषम है, वह आग है। आग है, वह दाह है। यहाँ कहा न? आहाहा! परद्रव्य का **सुख को चिन्तवन करनेवालों के चित्त का दाह नहीं मिटता।** आहाहा! ऐसा कठिन काम। यह मानो विषय भोग है न बाहर के? उनका विकल्प है। यहाँ तो कहते हैं कि चाहे तो शुभ विकल्प हो या अशुभ हो। कठिन बात, भाई! तेरा घर छोड़कर जितनी परघर की चिन्तवना चाहे तो देव, गुरु और शास्त्र का चिन्तवन कर, वह राग है। कठिन बातें, भाई! आहाहा! वह चित्त का दाह है। इसलिए 'राग आग दाह दहै सदा...' इसलिए भगवान आत्मा में जाकर समता प्रगट कर। वहाँ 'समामृत सेईये' आहाहा! कहो, इसमें तुम्हारे धन्धा-फन्धा की आग तो कहीं अलग रह गयी। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि कहीं धन्धे की बात करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि की धन्धे की नहीं परन्तु व्यवहार-धन्धे में फँसा, इस राग

के व्यवहार धन्धे में फँसे, परन्तु दुःख में है, ऐसा कहते हैं। वह तो सब पाप के धन्धे। अन्दर कषाय की होली सुलगती है। आहाहा!

मुमुक्षु : अरे! रुपया कमाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में रुपया। ऐसा होगा रमणीकभाई? आहाहा! भाई! तेरी क्रीड़ा आत्मा में चाहिए नाथ! तेरे आँगन में जा न तू। आँगन छोड़कर बाहर में जा, बापू! तुझे दाह होगी। आहाहा! परन्तु यह बात इसे सुनने को मिलती नहीं, इसलिए क्या कहते हैं, यह पकड़ में नहीं आता। आहाहा! मुद्दे की रकम है, वह पकड़ में नहीं आती। और ऊपर के सब ब्याज की बातें, उसकी सब पकड़ होती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि भाई! तू दूसरी चिन्तवना करने से तो तुझे दाह होगी। आहाहा! **आत्माधीन सुख आत्मा के जानने से उत्पन्न होता है,....** अब व्याख्या की—टीका। **आत्माधीन सुख आत्मा के जानने से उत्पन्न होता है,....** आहाहा! अपना ज्ञान जानने का छोड़कर पर में जानने जाये, वह सब आग-कषाय है। आहाहा! यह सब पठन भी कषाय होगा? तो पढ़े बिना रोटियाँ किसकी खाना तब? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तुझे सुख तुझे जानने से होगा, पर को जानने से तुझे दुःख होगा। आहाहा! जिसका ज्ञान है, आहाहा! उसमें तो यही कहा न १७-१८ गाथा में। १७-१८, एक बार अपने ली थी, नहीं? फतेपुर। तेरी ज्ञान की जो पर्याय है न, उस पर्याय का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। इसलिए उस ज्ञान की पर्याय में अभी भी आत्मा ज्ञात होता है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा भगवान त्रिकाली वस्तु, उसकी वर्तमान प्रगट व्यक्त ज्ञानदशा, उस ज्ञानदशा का स्वभाव ही उसका स्व-परप्रकाशक है। इसलिए वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय में स्व आत्मा ही प्रकाशित होता है। आहाहा! उसे वह प्रकाशित करता है, ऐसा देखता नहीं, परन्तु पर्याय में यह है, यह ज्ञात होता है, यह ज्ञात होता है, अर्थात् उस परज्ञेय को जानता है, ऐसा जानता है। जो विपरीत है, पर्याय का जो धर्म है, उससे उसने विपरीत माना है। समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं न, देखो न! **आत्माधीन सुख आत्मा के जानने से उत्पन्न होता है,....** आहाहा! टुकड़े में तो बहुत डाला है। प्रभु! तेरा आनन्द और सुख तुझे जानने से सुख होगा। पर को जानने से सुख नहीं होगा। क्योंकि उसमें सुख नहीं है। आहाहा!

देखो न! यहाँ तो शास्त्र को जानना, वह सुख नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! शशीभाई! ऐसी बाते हैं। आहाहा! आत्मा के स्वभाव की दरिद्रता के लिये... दी। स्वभाव का सामर्थ्य तुझे आया नहीं। दरिद्र भिखारी हो गया। आहाहा! दरिद्र हुआ। जिसकी पर्याय में द्रव्य न ज्ञात हो और पर ज्ञात हो, वह तो दरिद्र है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए ऐसा कहते हैं, **आत्माधीन सुख आत्मा के जानने से उत्पन्न होता है,....** आहाहा! बहुत संक्षिप्त भाषा है, परन्तु बहुत मर्म भरा है। सब जानना चाहे जितना कर, शास्त्र का कर, यह वकालत का, यह डॉक्टर का, यह टाईल्स का, यह स्टील का और इसे प्लास्टिक का। भगवानजीभाई को प्लास्टिक का। प्लास्टिक का है न? जूते।

मुमुक्षु : अभी बन्द कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्द कर दिया? दे दिया। आहाहा! अरे! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! तू कौन है, इसके ज्ञान बिना तुझे सुख नहीं होगा। भाषा ऐसी ली है न! आत्मा का सुख आत्मा को जानने से होगा। आहाहा! यह आत्मा कौन है, उसका ज्ञान करे तो तुझे सुख होगा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! लोगों को रूखी बातें लगे। बाह्य में रस लिया हो न राग का। आहाहा! धर्म के बहाने भी राग के रसिया व्यवहार के प्रेमी। आहाहा! उसे कहते हैं कि सुख चाहिए हो आत्मा का तो आत्मा को जान। उससे सुख होगा। क्योंकि उसमें सुख है। आहाहा! पर को जानने से तुझे पर में सुख नहीं, वह तो तुझे दुःख होगा। आहाहा! एक बात।

राग से तो दुःख होगा। आहाहा! परन्तु पर को जानने से भी दुःख होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि परप्रकाशक ज्ञान कब सच्चा होगा? कि स्वप्रकाशक प्रगटे तो। और यह तो स्वप्रकाश बिना अकेला परप्रकाश का ज्ञान, वह तो दुःखरूप है। आहाहा! उसमें आया है न, परसत्तावलम्बी, चिट्ठी—परमार्थ वचनिका। परसत्तावलम्बी ज्ञान को धर्मी मोक्षमार्ग नहीं कहते। आहाहा! बाबूभाई! ...परमार्थ वचनिका। आहाहा! राग तो दुःख—बन्ध का कारण, परन्तु परसत्तावलम्बी ज्ञान को धर्मी मोक्षमार्ग नहीं मानते। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं। संक्षिप्त शब्द में यह भरा है इसमें। **आत्माधीन सुख आत्मा के जानने से उत्पन्न होता है,....** उसे तो ज्ञान की पर्याय में तुझे ज्ञेय ज्ञात होता है परन्तु तूने उस ओर दृष्टि नहीं की, तो जिसे आत्मा का सुख आत्मा को

जाने, उसे वहाँ जानता है, वहाँ तुझे सुख होगा। आहाहा! समझ में आया? उसे सुख कहते हैं। यह दुनिया के सुख, वह सब जहर के प्याला पीते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो मन्द कषाय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्द कषाय भी कहाँ है पाप के संसार में। और यह व्यवहार क्रियाकाण्ड की मन्द कषाय, वह भी दुःख है। और वास्तव में तो वह पर कषाय है, उसका ज्ञान, वह दुःखरूप है। क्योंकि परसन्मुख के झुकाववाली दशा है। यहाँ आत्मा का सुख आत्मा को ज्ञान से, आत्मा के ज्ञान से प्रगट होता है। आहाहा! ऐसी भगवान की बातें सुनने को न मिले, उसे क्या करे? कहाँ जाये? आहाहा! एक तो स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, भोग और नींद में २२ घण्टे, २० घण्टे चले जाते हैं। अरेरे! इसका सब समय चला जाता है। घण्टे, दो घण्टे मिले तो सुनने में ऐसा मिले कि तुम पुण्य करो, दया, दान, व्रत पालन करो, धर्म होगा। आहाहा! जो राग है, वह दुःख है, वह इसे जानना, वह दुःख है। आहाहा!

अपने को जानने से सुख है, उसे सुख की उत्पत्ति भी अपना जो ज्ञान हुआ, उस काल में राग, पर का ज्ञान नहीं हुआ। परसम्बन्धी के निमित्त से अपने में अपने कारण से उत्पन्न हुआ परप्रकाशक ज्ञान है। आहाहा! वह सुखरूप है वह तो। यहाँ स्वप्रकाशक आया है न? और फिर ज्ञान पर को जाने। अकेला पर के ऊपर जाने तब तो परसत्तावलम्बी हो गया। परन्तु स्वसत्ता के सामर्थ्य के ज्ञान में उसका स्वभाव है परप्रकाशरूप से अपनी पर्याय है, पर को प्रकाशती नहीं। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! लोगों को लगे ऐसा। सोनगढ़िया ने ऐसा धर्म निकाला, नया निकाला, ऐसी बेचारे बातें करते हैं। भाई! बापू! ... समझ में आया? आहाहा!

इसलिए तू आत्मा के अनुभव से सन्तोष कर,.... आत्माधीन सुख आत्मा के जानने से उत्पन्न होता है,.... आहाहा! **इसलिए तू आत्मा के अनुभव से सन्तोष कर,....** वहाँ सन्तोष कर न, तुझे सन्तोष हो जायेगा। आहाहा! समझ में आया? **भोगों की वाँछा करने से चित्त शान्त नहीं होता।** पर की ओर के भोग की इच्छा से शान्ति नहीं होगी। आहाहा! **जो अध्यात्म की प्रीति है, वह स्वाधीनता है,....** अन्तर है यह? पृष्ठ में अन्तर लगता है, नहीं? नये में। **अध्यात्म की प्रीति है,....** अध्यात्म अर्थात् भगवान आत्मा।

अध्यात्म की व्याख्या करेंगे अन्त में। मिथ्यात्व, विषय कषायादि बाह्य पदार्थ का अवलम्बन छोड़ना और आत्मा में तल्लीन होना, वह अध्यात्म। अन्तिम लाईन है। समझ में आया? अध्यात्म, यहाँ भाई अभी अध्यात्म... है।

वह और कहे अध्यात्मी दो प्रकार से बात करते हैं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा कि स्व को जानते हुए पर को जानना वह असद्भूतव्यवहार है। और एक आध्यात्मिक कहते हैं, पर को जानना, वह आत्मज्ञपना है। पर का ज्ञान नहीं, वह स्व का स्वपरप्रकाश का ज्ञान स्व का है। वह आत्मज्ञ है। यह आध्यात्मियों के दो प्रकार हैं। अरे! ऐसा नहीं। उसमें डाला है खानियाचर्चा (में)। आहाहा! एक तो सर्वज्ञस्वरूप अपना है, इसलिए आत्मज्ञ कहो, सर्वज्ञ कहो, वह विवक्षा भेद है। वहाँ सर्व अर्थात् पर को जाने, ऐसी अपेक्षा से पर का ज्ञान, वह ज्ञान है, वह नहीं। पर का और अपना स्व का ज्ञान जो हुआ है, वह स्वआत्मज्ञ है, वह सर्वज्ञ है। आहाहा! रात्रि में कहा था न, शक्ति में नहीं लिया? सर्व आत्मज्ञ। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अध्यात्म में प्रीति कर प्रभु तुझे सुख होगा। आहाहा! यह स्वाधीनता है। उसमें किसी की अपेक्षा और किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी स्वाधीनता में सुख है और उसकी स्वाधीनता में किसी का पराश्रय है ही नहीं। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प की भी स्वआश्रय में अपेक्षा नहीं। आहाहा! तब कोई ऐसा कहे कि यह तो निश्चय एक ही हो गया, व्यवहार आया नहीं। दो नय चाहिए। दो नय में इसे स्पष्ट भाई ने किया—फूलचन्दजी ने कि पर की उपेक्षा और स्व की अपेक्षा, उसमें व्यवहार की उपेक्षा आ गयी, वह नय आ गया। बात ऐसी ही है। फूलचन्दजी एक जगे हैं, परन्तु यह सब झुण्ड समाज के समक्ष... अब यह जगे हैं हुकमचन्दजी पण्डितों में। बहुत जोरदार, इससे भी जोरदार। हुकमचन्दजी। छोटी उम्र, अभी ४० वर्ष।

यहाँ कहते हैं कि पर का (सुख) वह तो पराधीन है। यह आत्माधीन, वह स्वाधीन है। स्व स्वयं है, उसके आधीन क्या? उसमें पर की आवश्यकता कहाँ? आहाहा! आत्मा के सुख के लिये आत्मा को जानना और वह स्वाधीन है, इसलिए उसे सुख है। उसमें पर का आश्रय जरा भी नहीं है। आहाहा! ऐसा भी निर्लेप, पर के आश्रय

बिना का सुख, वह जगत को बहुत कठिन पड़ता है। यह करो, यह व्यवहार करो, यह करो, दया पालन करो, व्रत करो, अपवास करो। यह अनादि का किया है अज्ञान। आहाहा! उपवास जिसे कहते हैं, भगवान शुद्धचिदानन्दमूर्ति के समीप में रहना, वह स्वाधीनता और उसे उपवास कहते हैं। समझ में आया?

वह स्वाधीनता है, इसमें कोई विघ्न नहीं है,.... आहाहा! कर्म भी दखल कर सके, (ऐसी) सामर्थ्य नहीं, कहते हैं, तेरी स्वाधीनता में। आहाहा! समझ में आया? **और भोगों का अनुराग, वह पराधीनता है।** पाँच इन्द्रिय की ओर का झुकाव, वह तो पराधीन है। **भोगों को भोगते कभी तृप्ति नहीं होती।** श्लोक दिया है। **जैसे अग्नि ईंधन से तृप्त नहीं होती,....** अग्नि में लकड़ियाँ डाले, अग्नि शान्त नहीं होगी, वह तो अग्नि प्रज्वलित होगी। आहाहा! है? **जैसे अग्नि ईंधन से तृप्त नहीं होती,....** ऐसे भोग भोगते हुए तृप्ति नहीं होगी। भुक्तभोगी है, इसलिए फिर सन्तोष हो जायेगा, ऐसा अज्ञानी कहता है। भुक्तभोगी हो जाये, ५०-६० वर्ष हो जाये। भुक्तभोगी... अरे! धूल में भी नहीं होगा, सुन न! अग्नि में लकड़ियाँ डालने से अग्नि बुझती होगी या प्रज्वलित होगी? आहाहा! है?

सैकड़ों नदियों से समुद्र तृप्त नहीं होता है। दृष्टान्त दिया है। सैकड़ों नदियों का पानी २५-२५, ५०-५० ... और नदी के धोध समुद्र में गिरे। समुद्र तृप्ति पाये? आहाहा! **ऐसा ही समयसार में कहा है,....** २०६ गाथा, निर्जरा (अधिकार) की है न! है।

एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होदि णिच्चमेदम्हि।
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सुक्खं॥

यह २०६ गाथा। भगवान! तू एक बार देख, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **आत्मस्वरूप में सदा लीन हो,....** (प्रीति कर)। हे हंस! हंस अर्थात् जैसे दूध और पानी जैसे हंस की चोंच में भिन्न पड़ जाते हैं। हंस जहाँ पानी और दूध इकट्ठे हों, अधमण पानी और दस सेर अधमण दूध इकट्ठा (हो), उसकी खटास डाले वहाँ भिन्न पड़ जाते हैं। इसी प्रकार भेदज्ञानरूपी खटास डाल अन्दर तो राग और आत्मा भिन्न पड़ जाये। आहाहा! अरे! ऐसी बातें अब पकड़ में मुश्किल से आये, उसमें हमारे क्या करना? वे सेठ भगवानदास कहते हैं। करना क्या परन्तु इसमें? परन्तु यह करना नहीं है? आहाहा! यही करना है,

दूसरा क्या करना था? पर का कर सकता है? राग का कर्ता हो तो वह स्वामी हो तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। आहाहा! स्वस्वरूप का स्वामी होकर उसमें रहना, वह करना है। आहाहा! कठिन बात, बापू! वीतराग मार्ग वीतरागपने से शुरु होता है। समझ में आया? लोगों का यह आग्रह है कि व्यवहार दया, दान, व्रत, तप, भक्ति करते-करते निश्चय होगा। एकदम दृष्टि मिथ्या शल्य है। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी का डकार आयेगा, ऐसा नहीं होगा भाई! तू ठगा जायेगा, जिन्दगी चली जायेगी। उसका एक पल भी आत्मा को साधने के लिये है। आहाहा! यह भव तो अनन्त भव के अभाव के लिये है। यह भव, भव बढ़ाने के लिये नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं, देखो!

तू तृप्ति अध्यात्म में तृप्ति सदा... है न? **आत्मस्वरूप में ही सदा लीन हो,....** लीन और प्रीति मूल पाठ में है। है न? '**एदम्हि रदो**' है न? '**एदम्हि रदो**' है। रति है, ऐसा। उस रति का अर्थ प्रीति किया, लीन किया। **आत्मस्वरूप में ही...** आहाहा! '**एदम्हि रदो**' आहाहा! उसमें ही प्रीति कर। आहाहा! **सदा इसी में सन्तुष्ट हो।** सदा उसमें सन्तुष्ट हो। आहाहा! **इसी से तू तृप्त होगा....** आहाहा! भूखा व्यक्ति जैसे लड्डू और दाल चढ़ाकर तृप्ति पावे, आहाहा! उसी प्रकार इस आत्मा में जायेगा तो तुझे तृप्ति होगी। आहाहा! वहाँ बड़ा बर्तन आनन्द का पड़ा है। आहाहा! वहाँ तुझे तृप्ति होगी, यहाँ भोग में तृप्ति नहीं होगी। आहाहा! चाहे जितने भोग को भोग, परन्तु तो भी तृष्णा ऐसी की ऐसी खड़ी रहेगी।

यहाँ तो जहाँ अन्दर में जा तो वहाँ तुझे आनन्द आयेगा, तुझे सन्तुष्टि होगी। आहाहा! और तुझे तृप्ति होगी। आहाहा! ऐसी बात। आत्मा में तृप्ति होगी। भाई! वहाँ आनन्द है। प्रभु! तू आत्मा आनन्दस्वरूप है। आहाहा! उसके स्वरूप में उसे जानने से तुझे सुख होगा। सुख से तुझे तृप्ति होगी। तुझे आनन्द का नशा चढ़ जायेगा। आहाहा! भाई! वहाँ तृप्ति होने का कारण यह है। यहाँ तृप्ति नहीं हो व्यापार किया और इतना किया बड़ा, धूल-धमाका लड़के इकट्ठे हुए। आहाहा! दृष्टान्त नहीं देते थे? वर्णीजी दृष्टान्त देते थे। दो पैरवाला मनुष्य कहलाता है। स्त्री हो तो चार पैर हुए, इसलिए ढोर हुआ। एकडे एक और बिगड़े दो-बिगड़ गया। दुर्घटना। हमारे भाई ने कहा है न,

हुकमचन्दजी ने। भगवान महावीर के नाम से। भगवान को दुर्घटना नहीं हुई थी। विवाह नहीं किया था। विवाह करे अर्थात् दुर्घटना शुरु हो अब। आहाहा! उसे कैसे प्रसन्न करूँ और उसे कैसे सन्तोष करूँ? आहाहा! दुर्घटना खड़ी हुई। भगवान को यह नहीं था अब। है न, लिखा है। आहाहा!

तुझे उत्तम सुख की प्राप्ति होगी। आहाहा! **इस कथन से अध्यात्म-सुख में ठहरकर निजस्वरूप की भावना करनी चाहिए,....** यह भी क्या कहा? आत्मा की भावना विकल्प से करना, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। हें!

मुमुक्षु : उसमें ठहरकर।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठहरकर। आहाहा! वीतरागस्वभाव में स्थिर होकर उसकी भावना करना, उसका नाम भावना है। समझ में आया? आहाहा! विकल्प से और ज्ञान में धार रखा कि ऐसा है, वहाँ तक वह भावना नहीं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा स्वरूप आनन्द है, उसमें ठहरकर। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु है। आहाहा! भाई! तुझे तेरी कीमत नहीं। बड़ा हीरा अनन्त गुण का पासेवाला प्रभु वहाँ अन्दर है। वह एक हीरा सात-आठ पासावाला हो तो उसकी करोड़ों की कीमत कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो अनन्त गुण के पासावाला प्रभु। आहाहा! .... वहाँ डाल न। आहाहा! तुझे सुख होगा, तृप्ति होगी, सन्तोष होगा। उसकी प्रीति में यह फल आयेगा। आहाहा! निजस्वरूप की, वापस भाषा है न। अपने स्वरूप की भावना करना चाहिए। स्थिर होना अपने में, वह निजस्वरूप की भावना है। आहाहा!

और कामभोगों से कभी तृप्ति नहीं हो सकती। काम-भोग शब्द से राग, वह काम है और उसका भोग, वह भोग है। 'कामभोग बन्धन की कथा, श्रुत परिचित अनुभूत।' काम शब्द से इच्छा और भोग शब्द से भोगना। राग का करना और राग का भोगना, वह तो तूने अनन्त बार सुना है। आहाहा! वह तो तेरे परिचय में वह बात आ गयी है और अनुभव में भी आ गयी है। आहाहा! '**सव्वस वि**' सर्व जीवों को। परन्तु प्रभु! आप कहते हो न कि कोई जीव निगोद में से निकले नहीं न, और आप कहते हो कि सर्व जीवों ने यह राग की बात सुनी है कर्ता-भोक्ता की। भाई! उसे राग का वेदन ही है या नहीं? सुनकर, परिचय के बदले अनुभूति है अब तो उसे। आहाहा! समझ में आया?

'**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस वि कामभोगबंधकहा।**' एकेन्द्रिय से लेकर सर्व प्राणी आत्मा के पक्ष के अतिरिक्त पर के पक्ष की राग की बातें, शुभभाव कैसे करना? कैसे भोगना? यह बातें, प्रभु! तूने अनन्त बार सुनी। आहाहा! '**एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो**'। राग से भिन्न स्वरूप में एकत्वता, यह बात तूने सुनी नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब, इसमें अधिक लोग भी इकट्ठे न हों इसमें तो। उसमें क्या समझ में आये? देखो, यह तो दिगम्बर आये थे, ललितपुर के। आहाहा! जिज्ञासु इकट्ठे हों। २०-२० हजार लोग। जवाहरलाल आये थे भावनगर। एक लाख लोग सुनने इकट्ठे हों। गाँधी आवे तो कितने... उसरूप नहीं देखा था? सूरत की उस ओर। सूरत की उस ओर नहीं? बारडोली। ... बहुत लोग हुए थे। अरे! यह बात। आहाहा!

निजस्वरूप की भावना करनी चाहिए। आहाहा! राग से तुझे तृप्ति नहीं होगी। **ऐसा कहा भी है कि जैसे तृण, काठ आदि ईंधन से अग्नि तृप्त नहीं होती....** कहीं आता है। उसमें लिखा है। हिन्दी मूलाचार। .... ऐसा कुछ आता है। यह पहले मुखाग्र किया था। १०८ आते हैं यह। उसमें यह आता था। **तृण, काठ आदि ईंधन से अग्नि तृप्त नहीं होती और हजारों नदियों से लवणसमुद्र तृप्त नहीं होता, उसी तरह यह जीव काम भोगों से तृप्त नहीं होता।** आहाहा! **इसलिए विषय-सुखों को छोड़कर....** अर्थात् कि स्वविषय को छोड़कर, पर के विषय को छोड़कर। ऐसा। आहाहा! ३१ वीं गाथा में तो यही कहा है, भगवान और भगवान की वाणी भी इन्द्रिय है। आहाहा! लोगों को कठिन लगे। जड़ेन्द्रिय, भावेन्द्रिय और उसका विषय, यह तीनों इन्द्रिय है। उसे जीत अर्थात् कि उसका लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं, हमारा लक्ष्य छोड़ दे, तेरे लक्ष्य से तुझे सुख होगा। वह वीतराग ऐसा कहते हैं। हें! आहाहा! क्योंकि हमारी ओर लक्ष्य जायेगा तो प्रभु! तुझे राग होगा और दुःख होगा। आहाहा! क्योंकि हम इन्द्रिय के विषय हैं, अणीन्द्रिय तो तेरा स्वभाव, वहाँ विषय कर। हें! आहाहा!

जीव काम भोगों से तृप्त नहीं होता। इसलिए विषय-सुखों को छोड़कर.... अर्थात् पाँच इन्द्रिय की ओर के राग में सुख है, ऐसा छोड़कर **अध्यात्म सुख का सेवन करना चाहिए।** आहाहा! अब ऐसी बात। अध्यात्म सुख का सेवन। भगवान आनन्दस्वरूप है, उसे जानकर स्थिर होना, वह अध्यात्म सुख का सेवन है। भगवान का सेवन, ऐसा

भी यहाँ तो नहीं, कहते हैं। ऐसा बड़ा आत्मा। तब वह हमारे कहते भगवानजी वकील। रामजीभाई के मित्र थे। आप बहुत महिमा करते हो तो ऐसा धोया हुआ मूला जैसा गया कहाँ? कहो अब यह। धोया हुआ मूला जैसा। यह मूली आती है न कादववाली? पहले पानी में धोवे। धोकर फिर दुकान पर ले जाये। यह मूला। धोया हुआ मूला जैसा और ऐसा... ऐसा तुम महिमा करते हो। वकील को बेचारे को खबर नहीं होती। बापू! है तो है, परन्तु तेरी नजर में नहीं आया, इसलिए कहाँ गया तुझे लगे। आहाहा! लो!

अध्यात्मसुख का.... शब्दार्थ करेंगे यहाँ। यह आत्म शब्द है न? यहाँ अध्यात्म चाहिए। है अन्दर? '**अध्यात्मशब्दस्य व्युत्पत्तिः**' यहाँ अध्यात्म शब्द चाहिए। अध्यात्म शब्द का अर्थ? अध्यात्म शब्द की व्युत्पत्ति ऐसी ली है। **मिथ्यात्व विषय, कषाय आदि....** विपरीत मान्यता, पर की ओर का विषय-कषाय, **बाह्य पदार्थों का अवलम्बन (सहारा) छोड़ना....** आहाहा! देखो! यहाँ तो भगवान का आलम्बन भी छोड़ना, ऐसा कहते हैं। बाह्य पदार्थ है न वह। आहाहा! **बाह्य पदार्थों का अवलम्बन (सहारा) छोड़ना....** आहाहा! इसका अर्थ यह कि राग का भी सहारा छोड़। **आत्मा में तल्लीन होना, वह अध्यात्म है।** आहाहा! समझ में आया? अध्यात्म की व्याख्या की। आहाहा! राग से लेकर परपदार्थ की दृष्टि छोड़। आहाहा! अवलम्बन छोड़। निज अवलम्बन ले, उसे यहाँ अध्यात्म कहा गया है। अवलम्बन... है न स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी के बीच। स्थानकवासी कहे, अवलम्बन भगवान का नहीं होता। यह ... शुभभाव हो तब अवलम्बन ले, ऐसा कहा जाता है। उस शुभभाव के समय। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि उस अवलम्बन में भी सुख नहीं। आवे सही। व्यवहार बीच में, पूर्ण वीतराग न हो तो आवे। शुभभाव दया, व्रत, भक्ति, पूजा, परन्तु उस अवलम्बन में तो आत्मसुख नहीं। आहाहा! उसे छोड़ना, सहारा छोड़ना। आहाहा! सहायकपना—वह मददगार है, ऐसा छोड़। आहाहा! **आत्मा में तल्लीन होना, वह अध्यात्म है।** आहाहा!

गाथा - १५५

अथात्मनो ज्ञानस्वभावं दर्शयति–

२७८) अप्पहँ णाणु परिच्चयवि अण्णु ण अत्थि सहाउ।
इउ जाणेविणु जोइयहु परहँ म बंधउ राउ।।१५५।।

आत्मनः ज्ञानं परित्यज्य अन्यो न अस्ति स्वभावः।
इदं ज्ञात्वा योगिन् परस्मिन् मा बधान रागम्।।१५५।।

अप्पहं इत्यादि। अप्पहं [1]शुद्धात्मनः णाणु परिच्चयवि वीतरागस्वसंवेदनज्ञानं त्यक्त्वा अण्णु ण अत्थि सहाउ अन्यो ज्ञानाद्विभिन्नः स्वभावो नास्ति इउ जाणेविणु इदमात्मनः शुद्धात्मज्ञानं स्वभावं ज्ञात्वा जोइयहु भो योगिन् परहं म बंधउ राउ परस्मिन् शुद्धात्मनो विलक्षणे देहे रागादिकं मा कुरु तस्मात्। अत्रात्मनः शुद्धात्मज्ञानस्वरुपं ज्ञात्वा रागादिकं त्यक्त्वा च निरन्तरं भावना कर्तव्येत्यभिप्रायः।।१५५।।

आगे आत्मा का ज्ञानस्वभाव दिखलाते हैं–

निज आत्मा के ज्ञान बिना कुछ अन्य न होता है निज भाव।
यही जानकर हे योगी! तुम करो न परद्रव्यों से राग।।१५५।।

अन्वयार्थ :– [आत्मनः] आत्मा का निजस्वभाव [ज्ञानं परित्यज्य] वीतराग स्वसंवेदनज्ञान के सिवाय [अन्यः स्वभावः] दूसरा स्वभाव [न अस्ति] नहीं है, आत्मा केवलज्ञानस्वभाव है, [इदं ज्ञात्वा] ऐसा जानकर [योगिन्] हे योगी, [परस्मिन्] परवस्तु से [रागम्] प्रीति [मा बधान] मत बाँध।

भावार्थ :– पर जो शुद्धात्मा से भिन्न देहादिक उनमें राग मत कर, आत्मा का ज्ञानस्वरुप जानकर रागादिक छोड़ के निरंतर आत्मा की भावना करनी चाहिये।।१५५।।

---

1. पाठान्तर – शुद्धात्मनः=स्वशुद्धात्मनः

गाथा-१५५ पर प्रवचन

१५५ **आगे आत्मा का ज्ञानस्वभाव दिखलाते हैं**—अब यह भगवान है कौन, कहते हैं तब यह। जिसे तुमने अवलम्बन में, उसका अवलम्बन लो, पुण्य का अवलम्बन छोड़, (तो वह) है कौन? वह ज्ञानस्वभाव है। अकेला चिद्रूप। ज्ञानस्वरूप एक समय की पर्याय की यह बात नहीं। यह त्रिकाली ज्ञानस्वरूप ही है। यह त्रिकाली सर्वज्ञस्वभावी ही है, त्रिकाली ज्ञ—स्वभावी है। आहाहा! ज्ञानप्रधान से कथन है न! वैसे तो अनन्त शक्ति का संग्रहालय है। अनन्त शक्ति का संग्रह किया हुआ भगवान स्थान है। आहाहा! अनन्त स्वभाव का सागर, परन्तु वह उसका स्वरूप ज्ञानमय है। आहाहा! अकेला ज्ञाता-दृष्टा जिसका स्वभाव है। कहा न यह? **आत्मा का ज्ञानस्वभाव दिखलाते हैं**— आहाहा!

२७८) अप्पहँ णाणु परिच्चयवि अण्णु ण अत्थि सहाउ।
इउ जाणेविणु जोइयहु परहँ म बंधउ राउ।।१५५।।

आहाहा! **अन्वयार्थ—'आत्मनः' आत्मा का निजस्वभाव वीतराग स्वसंवेदनज्ञान के सिवाय....** आहाहा! वह स्वयं वीतरागी ज्ञानस्वभाव है और उसे जानने से भी वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान उत्पन्न होता है। परस्वभाव आत्मा में परवस्तु नहीं और पर को जानने से राग होता है और राग होने से उसे दुःख होता है। आहाहा! **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान....** अर्थात्? स्व अर्थात् अपने से, सं अर्थात् प्रत्यक्ष। भगवान आत्मा स्वयं से प्रत्यक्ष ज्ञात हो, ऐसी वह चीज़ है। आहाहा! है? आहाहा! अलिंगग्रहण में छठा बोल यह कहा है। अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। पर से ज्ञात न हो, ऐसा अलिंगग्रहण है। अलिंगग्रहण—लिंग अर्थात् विकल्प आदि से न ज्ञात हो, ऐसा वह है। यह नास्ति से। अस्ति से—अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। प्रत्यक्ष ज्ञाता है। आहाहा! ऐसी बात! यह मति-श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष हो, ऐसा ही उसका स्वभाव है। परोक्ष रहे और आड़ में रहे, वह उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उसका भरोसा आये बिना उसे प्रत्यक्ष कैसे हो? आहाहा! उसका स्वभाव ही प्रत्यक्ष होने का है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परोक्ष से जाने, वह उसका स्वरूप ही

नहीं। स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञाता हो, ऐसा ही उसका स्वभाव है। आहाहा! इन्द्रिय से ज्ञात न हो, इन्द्रिय से जाने नहीं, इन्द्रिय के प्रत्यक्ष का विषय नहीं, दूसरे के अनुमान से ज्ञात हो, ऐसा नहीं, स्वयं अकेला भी अनुमान से ही जाने, ऐसा नहीं। आहाहा! यह पाँच बोल हुए। अब छठा बोल। आहाहा! २० बोल हैं न। यह छठा बोल है। अपने स्वभाव से (ज्ञात हो, ऐसा है)। क्योंकि उसमें प्रकाश नाम का गुण है।

सैंतालीस शक्ति है न! बारहवीं शक्ति प्रकाश। प्रकाशगुण का अर्थ स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हो, वही उसका गुण है। अरेरे! उसके गुण के स्वभाव का स्वीकार करने से वह प्रत्यक्ष हो, ऐसा ही उसका स्वरूप है, कहते हैं। अरेरे! ऐसी बातें! आहाहा! प्रत्यक्ष नहीं? प्रकाश गुण है न! सैंतालीस शक्ति। प्रकाश। प्रकाश शब्द से? स्वसंवेदन हो, प्रत्यक्ष अर्थात् अपने से स्व, सं अर्थात् प्रत्यक्ष वेदन में आवे, ऐसा उसका स्वरूप है। ऐसा है तो क्यों नजर में नहीं पड़ता तब? परन्तु है, उसे स्वीकार कहाँ किया है तूने? आहाहा! समझ में आया? है, ऐसा माने, तब है ऐसा हो न तब। हें! भाई ने प्रश्न किया था न वारिया ने। वीरजीभाई का पुत्र नहीं? त्रिभुवनभाई। महाराज! यह कारणपरमात्मा है तो कारण हो तो कार्य आना चाहिए। कारणपरमात्मा त्रिकाल है तो कार्य आना चाहिए। क्यों कार्य नहीं? कारण का कार्य तो आना चाहिए। बात ऐसी ही है। परन्तु कारणपरमात्मा है, ऐसा माना है इसने? माने बिना कारणपरमात्मा है, ऐसा कहाँ से आया? समझ में आया? आहाहा! कारणपरमात्मा केवलज्ञान के कार्य का कारण। परन्तु ऐसा माने उसे कारणपरमात्मा। है उसे है परन्तु है उसकी नजर में कहाँ है? आहाहा! कारणपरमात्मा का स्वीकार किया, तब वह है। है तो उसका कार्य सम्यग्दर्शन हुए बिना रहे ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा पूर्ण परमात्मस्वरूप कारणपरमात्मा, उसे जिसने माना, वह मान्यता, वह कार्य हो गया। उसे सम्यग्दर्शन कार्य हुए बिना रहता ही नहीं। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान के सिवाय दूसरा स्वभाव नहीं है,....** दूसरा उसका स्वभाव ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! विशेष है, आयेगा.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, माघ कृष्ण ०३, रविवार
दिनांक- ०६-०२-१९७७, गाथा - १५५, १५६, प्रवचन-२०८

थोड़ा चला है, दो लाईन। **आगे आत्मा का ज्ञानस्वभाव दिखलाते हैं—.... आत्मा का निजस्वभाव....** आत्मा स्वभावी वस्तु है, उसका निजस्वभाव **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान के सिवाय....** दूसरी चीज़ वह नहीं। आहाहा! मूलमार्ग की सूक्ष्म बात है, भाई! जिसे सुखी होना हो, जिसे धर्म करना हो, उसे क्या करना? यह चलता है। तो कहते हैं कि यह परमात्मा स्वयं आत्मा जो है, वह तो वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञानस्वरूप ही है। आहाहा! समझ में आया? जगत को बाहर से खोजना है और बाहर से प्राप्त करना है। वह वस्तु नहीं यह तो। आहाहा!

सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर, वीतरागपर्याय में स्वसंवेदन प्रत्यक्षपना भगवान को प्रगट हुआ। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव को पर्याय में—अवस्था में, त्रिकाली अवस्थायी चीज़ में से अवस्था में उन्हें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य प्रगट हुआ। वह वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान प्रगट हुआ। आहाहा! अब वह प्रगट हुआ, जिसमें से वह चीज़ कैसी है? कहते हैं। समझ में आया? यह तो वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान के अतिरिक्त वह चीज़ दूसरी है नहीं आत्मा। आहाहा! शरीर, वाणी, मन, वह नहीं और दया, दान, व्रत जिसे व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प शुभराग कहे, जिसमें व्यवहारनय से साधन-साध्य भिन्न है, ऐसा करके सिद्ध करे, वह व्यवहाररत्नत्रय जो राग है, वह भी उसमें नहीं। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू, भाई! यह वीतराग स्व—अपने से, सं—प्रत्यक्ष वेदन में आये, ज्ञात हो, ऐसा वह स्वरूप है। यह तो ऐसा स्वरूप है, कहते हैं। ज्ञात होता है, वह तो मैं कहता हूँ ऊपर से। समझ में आया? वह वस्तु ही ऐसी है, भाई!

जैन परमेश्वर जिनेश्वरदेव ने जो जिनदशा प्रगट की, वह वीतरागी स्व-अपने से, सं-प्रत्यक्ष वेदन में आये, वह दशा प्रगट की। वह भगवान के श्रीमुख से ऐसा आया, प्रभु! तू आत्मा है और तुझमें तो वीतराग स्वसंवेदनज्ञान परिपूर्ण पड़ा है। आहाहा! ऐसी बात अब, उसे क्या करना, यह हाथ आता नहीं। यह वीतराग स्व अर्थात् अपने से, सं अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञात हो। है? वीतराग स्वसंवेदनज्ञान, वह तेरा स्वरूप है। आहाहा!

परमात्मप्रकाश है न? अर्थात् तू परमात्मा है। किस प्रकार? कि वीतरागी स्वसंवेदन-ज्ञानस्वरूप तू है। आहाहा!

इसके **सिवाय दूसरा स्वभाव नहीं है,....** अस्ति करके फिर नास्ति ली। यह अनेकान्त है। आहाहा! यह अनेकान्त है। भाई! जिनवर का मार्ग है शूरवीरों का, वहाँ कायर का काम नहीं है, भाई! आहाहा! समझ में आया? यह वीरों का मार्ग वीर के वीरों के लिये है। आहाहा! कहते हैं कि तेरी वीरता उसे कहते हैं कि जो वीतरागी स्वसंवेदन वीरस्वरूप शक्ति पड़ी है। आहा! उसे अनुभव में ले तो तेरी वीरता और तेरा धर्म और तुझे तेरा आनन्द प्राप्त हो। आहाहा! ऐसी बातें हैं। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा और यात्रा, वह तो सब विकल्प है, भाई! वह राग है। वह आत्मा में है नहीं। उसमें नहीं, उससे उसे लाभ हो? समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात, बापू!

मुमुक्षु : उसमें धर्म नहीं, ऐसा आप कहते हो, वह जरा...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह धर्म... राग कहो या धर्म का अभाव कहो।

मुमुक्षु : राग कहो, पुण्य है ऐसा कहो तब तक दिक्कत नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधर्म कहो। दूसरी भाषा में कहें तो। आहाहा! कहो, मीठाभाई! अरे! प्रभु! भाई! तू पूर्ण है न, नाथ! तेरे खजाने में पूर्ण, कमी नहीं, पूर्ण पड़ा है। प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई! तेरे खजाने में अल्पता भी नहीं। वह व्यवहाररत्नत्रय तो नहीं, आहाहा! परन्तु उस रत्नत्रय का जो विकल्प है, उसे जाननेवाली वर्तमान पर्याय जो है, वह पर्याय भी त्रिकाल में नहीं। आहाहा! उसकी दृष्टि करके उसमें स्थिर होना, अनुभव करना, उसका नाम धर्म है। आहाहा! बहुत कठिन काम। यह तो बाहर से मानो यात्रा कर आये, भक्ति की, दान, दो-पाँच, दस लाख के दिये। कुछ धर्म होगा। अरे! प्रभु भाई!

मुमुक्षु : पालीताणा में हो, वहाँ तक धर्म होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पालीताणा में धर्म कौन वहाँ कहाँ था? कहनेवाले को भान नहीं। धर्म वह यहाँ है या वह वहाँ है? आहाहा!

धर्म की ही यहाँ व्याख्या चलती है कि तेरा धर्म, तेरा स्वभाव, त्रिकाली, हों!

प्रगट हो वह बाद में। तेरा स्वरूप ही वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान है, भाई! आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब लोगों को ऐसी पड़े। बीच में पूर्ण न हो, तब राग होता है भक्ति, पूजा, परन्तु वह राग बन्ध का कारण है। तथापि धर्मी को भी वह हेयबुद्धि से आता है। परन्तु वस्तु तो यह है अन्दर। आहाहा! वीतरागी ज्ञान के स्वभाव से भरपूर भगवान, भाई! उसे कैसे खबर पड़े? अपने को पामर माना है, दीन माना है। आहाहा! उसे मेरी प्रभुता में प्रभुता पड़ी है, इसकी कैसे खबर पड़े? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! इस पहले शब्द में ही यह है। पर्याय की बात नहीं, यह तो तेरा स्वरूप ही वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान है। आहाहा! अर्थात् कि उसके अतिरिक्त वीतरागी स्व—अपने से उसका स्वरूप ही अन्दर ऐसा है। वह राग से ज्ञात हो या राग से वेदन में आये, वह वस्तु नहीं। इसी प्रकार देव और गुरु तथा शास्त्र—दिव्यध्वनि से भी ज्ञात हो, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! परन्तु है कौन तब? भाई! तू वीतरागी स्वसंवेदनज्ञानस्वरूप है।

मुमुक्षु : वह तो ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, न हो तो भी यह है। परन्तु माने तो न! माने तो यह है, न माने तो यह नहीं उसे। उसे नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

रत्न का ढ़ेर है अन्दर, कहते हैं। अकेला वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान ऐसे अनन्त रत्न का वह ढ़ेर प्रभु है अन्दर। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! उसमें तुझे प्रीति, भगवान वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान में प्रेम छोड़कर, प्रभु! तेरा प्रेम तो परद्रव्य के प्रति लुट गया और राग आया, उसमें प्रेम में गया और वर्तमान एक समय की पर्याय के प्रेम में तू लुट गया है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' कायर दूसरे सहारे से कुछ राग करें और व्यवहार करूँगा, यह करूँगा। आहाहा! व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है, उसे यह चिपटा है। तब यहाँ कहते हैं कि निश्चय हो, तब उसे राग बाकी (रहा), उसे व्यवहार कहा जाता है। जब उसने ऐसा अर्थ किया कि हम जब साधन उसे कहते हैं, तो उसे तुम साध्य बनाते हो। आहाहा! और जिसे हम साध्य कहते हैं, उसे तुम साधन बनाते हो। आहाहा! व्यवहार साध्य है ही नहीं, परन्तु निश्चय स्वभाव का ऐसा वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान

अनुभव में, वेदन में, ज्ञान में, निर्विकल्प प्रतीति में, वेदन में आवे, तब जो राग बाकी रहा, उसे व्यवहार कहा जाता है। वह साध्य नहीं। ऐसा कि निश्चय हो तो व्यवहार कहलाता है, उसे वह साध्य बनाता है व्यवहार को। समझ में आया? आहाहा! ऐसा नहीं है। यह वस्तु तो ऐसी है। शुरुआत तो जिसे हो, उसे वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान का अनुभव हो, तब इस धर्म की शुरुआत होती है। आहाहा! ऐसी बातें।

यह दुनिया के धन्धे और पैसे की आमदनी हो दो, पाँच, दस लाख की। ऐसा हर्ष में चढ़ गया व्यक्ति। आहाहा! हर्ष के यन्त्र में लुट गया है यह। जहाँ हर्ष भरा है आनन्द, वहाँ इसे हर्ष नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? प्रेम कहा है न? निर्जरा अधिकार में यह लिया है। आत्मा में रति कर, रति कर—प्रेम कर। यह राग और राग के पुण्य, पुण्य के फल, यह संयोगी चीज़, उसकी प्रीति में प्रभु! तू लुट जाता है, भाई! आहाहा! तुझे खबर नहीं मैं कहाँ लुटता हूँ। मैं जोखिम में पड़ता हूँ। आहाहा! छर्रा की उघाड़ी चोट लगे शरीर में और जैसे चोट खून से लथपथ हो। आहाहा! प्रभु! तू वीतरागी स्वसंवेदनज्ञानस्वरूप है न! उसे तू राग से, निमित्त से लाभ माने, भाई! तुझे चोट पड़ती है। आहाहा! तुझे खबर नहीं, बापू! आहाहा! वीतराग मार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा! ऐसी बात तो वीतराग के अतिरिक्त सुनने में मिले, ऐसी नहीं है। आहाहा!

कहते हैं कि तू प्रभु! अकषायस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप, आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, वह कैसा? वह तू तुझसे वेदन में आये और प्रत्यक्ष हो, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? यह लोगों को कठिन लगता है। किया नहीं, सुना नहीं और दुनिया के प्रपंच की जाल में से निवृत्त होता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह प्रपंच है, ऐसा जाना नहीं, निवृत्ति कैसे करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसे पूरे दिन कषाय की होली सुलगती है। आहाहा! कहीं शान्ति नहीं। उस अमेरिका में अरबोंपति है न अरबोंपति, वे सब अब शान्ति खोजते हैं। उसमें तो कुछ शान्ति लगती नहीं। ऐसे ८०-८० मंजिल के मकान, अमेरिका में कितने ही अरबोंपति हैं। उसमें कहीं शान्ति नहीं दिखती। परन्तु उसमें कहाँ शान्ति थी? जहाँ शान्ति का सागर भगवान है, वहाँ तो जाता नहीं। आहाहा! उसका तो तुझे

विश्वास, भरोसा आता नहीं और जहाँ शान्ति नहीं, उसके भरोसे में दौड़ गया है। आहाहा! कहो, पोपटभाई! ऐसा है।

जिनवरदेव तीर्थंकर परमेश्वर, ३२-३२ लाख विमान के स्वामी इन्द्र और एक-एक विमान में असंख्य देव, उन्हें प्रभु ऐसा कहते और वे ऐसा मानते। हें! आहाहा! महाविदेहक्षेत्र में भगवान तो विराजते हैं। सीमन्धर भगवान तीर्थंकरदेव साक्षात् विराजते हैं। चक्रवर्ती, इन्द्र वहाँ सुनने जाते हैं। उस सब वैभव में सुख हो तो वहाँ सुनने क्यों जाते हैं? आहाहा! असंख्य योजन से उतरकर परमात्मा की सभा में सुनते हैं। प्रभु ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू कौन है? वीतरागी विज्ञानदशा प्रगट हो, वे परमात्मा। परन्तु वह दशा प्रगट हो, वह कहाँ से? यह वीतरागी स्वसंवेदनज्ञानस्वरूप है, वहाँ से। आहाहा! ऐसी बातें हैं। उसको कहे सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। किसकी सामायिक? अभी आत्मा कौन है, उसका भान नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? है? इसके अतिरिक्त वीतरागी स्वसंवेदन। गजब किया है! यह वीतरागी और स्व-अपने से और सं-प्रत्यक्ष वेदन में आये, ऐसी शक्तिवाला है अभी तो, वेदन में बाद में। समझ में आया? उसे हम आत्मा कहते हैं। तू माने वह नहीं। समझ में आया? इस प्रकार वीतराग परमेश्वर उसे आत्मा कहते हैं। बाकी सब अनात्मा है। आहाहा! पर्याय भी व्यवहार आत्मा है। निश्चय आत्मा नहीं। तो व्यवहाररत्नत्रय तो राग अनात्मा जड़ है। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! दुःख के समुद्र में तू डूब गया है। आहाहा! यह अभी कहेंगे, हों! आहाहा! देखो, आया, बाद में कहेंगे ५६ में।

आत्मा केवलज्ञानस्वभावी है। 'ज्ञानं परित्यज्य' का अर्थ किया पहले कि ज्ञान के अतिरिक्त वह चीज़ नहीं। तो ज्ञान कैसा? कि वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान। वह कैसा? कि केवलज्ञान स्वभाव, ऐसा। आहाहा! अन्य स्वभाव नहीं। अकेला ज्ञान पूर्णस्वरूप प्रभु, वह अन्य स्वरूप नहीं। वह शरीररूप नहीं। यह (शरीर) तो मिट्टी, धूल है। पैसा धूल-मिट्टी है। आहाहा! जिसके प्रेम के फँसावट में पूरा दिन व्यतीत करे। आहाहा! यह दुकान और सब, दो-पाँच-दस लाख का माल संग्रह कर पड़ा हो और पेढ़ी पर बैठा हो और खपता हो, २५-५०, २५-५०, २५-५०। एक-एक ग्राहक से ५०-५० की आमदनी, १००-१०० की आमदनी। देखो यह हर्ष के रास्ते चढ़ जाये। मर जाता है

वहाँ। आहाहा! अरे भाई! तुझे खबर नहीं, भाई! तू किसमें हर्ष करता है और कहाँ हर्ष करनेयोग्य है? आहाहा! सज्झाय में आता है कि 'होंशिडा मत होंश न कीजे।' सज्झाय आती है न, उसमें आता है। प्रभु! तेरे स्वभाव के अतिरिक्त बाहर में उत्साह न कर, भाई! तेरे उत्साह में तेरी हानि होती है। आहाहा! ऐसा मार्ग। हें! इसलिए फिर लोग कहे न! सोनगढ़वालों ने नया धर्म निकाला। अरे! प्रभु! नया नहीं, भाई! वीतराग का धर्म ही यह है। लोग ऐसा कहे। वह तो सब खबर है। हें!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग ही यह है, प्रभु! तूने सुना नहीं था, इसलिए कहीं मार्ग दूसरा हो जाये? आहाहा! यह क्या लिखा है यह? यह भगवान का उत्तराधिकार है, यह शास्त्र। आहाहा! भाई! तुझे धर्म क्या है, उसकी खबर नहीं। यह तो दया पालन की, व्रत किये, अपवास किये, महीने-महीने के अपवास किये, निर्जल किये, हो गया धर्म। धूल में भी नहीं वहाँ, बापू! सच्चा पुण्य भी नहीं, सुन न! भगवान जहाँ स्वरूप से विराजता है, उसकी तो नजर की नहीं। निधान की नजर नहीं और पामर में नजर करके प्रीति में फँस गया है। आहाहा! समझ में आया? तो ऐसा मिले नहीं न अन्यत्र, इसलिए ऐसा कहे, यह सोनगढ़वालों ने नया निकाला। भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : यह लोगों को खबर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं। यह नया नहीं। आहाहा! अनादि का वीतराग जिनेश्वर का मार्ग यह है। आहाहा!

कहते हैं, **परवस्तु में प्रीति मत बाँध।** आहाहा! यह **केवलज्ञान स्वभाव है,.... 'इदं ज्ञात्वा'** अर्थात् कि उसका अनुभव करके। आहाहा! **'योगिन्'** हे धर्मीजीव! **परवस्तु में प्रीति मत बाँध।** आहाहा! अर्थात् कि आत्मा का अनुभव कर, तब पर की प्रीति छूट जाती है। आहाहा! समझ में आया? वीतरागस्वरूप से भगवान आत्मा है, उसके अनुभव में ठहरकर पर की प्रीति छोड़। राग में और राग में रहकर प्रीति छूटे, ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया? इसलिए जो रागरहित वस्तु है, उसमें ठहरकर पर की प्रीति छूट सकती है। इसके बिना प्रीति छूटती नहीं। उसे राग गले पड़ा है। आहाहा! स्त्री, पुत्र, धन्धा गले पड़ा मानो। आहाहा!

मत बाँध। भगवानस्वभाव वीतराग के अतिरिक्त परवस्तु में, आहाहा! प्रीति मत बाँध। उस प्रीति के जाल में पकड़ जायेगा भाई! आहाहा! तेरा आत्मा भगवानस्वरूप, उसका अनादर होगा। आहाहा! उसका आदर करके अर्थात् स्थिर होकर पर की प्रीति छोड़। आहाहा! ऐसी पद्धति है, इसलिए लोगों को (कठिन लगती है)। परन्तु उसका साधन? ऐसा सब पूछते हैं। परन्तु यह साधन है। आहाहा! जहाँ स्वयं भगवान विराजता है स्वयं, उसके सन्मुख, उसका आदर, वह उसका धर्म। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! एक व्यक्ति आया था यहाँ। पालीताणा गया था, विरमगाम का था। इनकमटैक्स का। मन्दिरमार्गी था। यहाँ हम यात्रा करने जायें, वहाँ धर्म होता है, आप कहते हो कि (वह धर्म नहीं)। यह बीच में विपरीतता की। कहे बेचारा। व्याख्यान सुना घण्टे भर। उसमें फिर अन्दर आया। कोई श्वेताम्बर बनिया था। विरमगाम का। बीच में मारी एक विपरीतता। हे यात्रा, भगवान की पूजा, वह धर्म नहीं। बापू! वह तो पुण्य है, भाई! तुझे खबर नहीं। वह तो पुण्य के भाव होते हैं, पाप से बचने के लिये होते हैं, परन्तु वह धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, अपने प्रेम में फँसकर पर का प्रेम छोड़। पर के प्रेम में फँसकर तूने स्व का प्रेम छोड़ा है। आहाहा! ऐसे संक्षिप्त शब्द और संक्षिप्त में, अब इसे कठिन लगे। कुछ करना, परन्तु कुछ क्या करना? वे सेठ—भगवानदास ऐसा पूछते थे। वे तो जानकर पूछते थे। यह तो काललब्धि पकेगी तब होगा। संसार के काम में तो काललब्धि पकेगी तब होगा, ऐसा मानता नहीं, वहाँ तो मैं पुरुषार्थ करूँ तो यह मिलेगा (ऐसा मानता है)। संसार के जो काम हैं, वे भी उनकी काल की पर्याय में ही होते हैं। वह काललब्धि है, प्रत्येक परमाणु की उस-उस समय की जो पर्याय, वह उसकी काललब्धि है। अब उसके लिये तू पुरुषार्थ कर कि ऐसा लेना, यह करूँ। गये भाई चिमनभाई? ठीक। फँसे हैं। भारी कठिन। अरेरे! वहाँ तो दिखाई दे सीधे, लो! दो लाख पैदा हुए, तीन लाख पैदा हुए, पचास हजार का खर्च निकला, तीन लाख मिले। तीस लाख थे और तीन लाख मिले। साढ़े तीन लाख पैदा हुए, पचास हजार खर्च में गये। वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये, लो। ऐई! मनसुख! अरे... अरे! क्या है परन्तु यह? यह कहेंगे नीचे, हों!

पर जो शुद्धात्मा से भिन्न.... शुद्धात्मा से भिन्न। आहाहा! **देहादिक, उनमें राग मत कर,....** यह तो हड्डी, चमड़ी, जगत की चीज़ है, प्रभु! वह कहीं तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! उसमें प्रेम छोड़, प्रभु! आहाहा! तुझे प्रेम करना तो आता है। न आवे तो पर में प्रेम कहाँ से करे? आहाहा! तो ऐसे प्रेम करना आता है तो ऐसे (आत्मा के प्रति) प्रेम कर न! आहाहा! ऐसा कहते हैं। **पर जो शुद्धात्मा से भिन्न देहादिक....** देह, वाणी, राग, सब चीज़ें पर। **उनमें राग मत कर, आत्मा का ज्ञानस्वरूप जानकर....** आहाहा! भगवान जाननेवाला है, उसका अनुभव करके.... आहाहा! **रागादिक छोड़कर निरन्तर आत्मा की भावना करनी चाहिए।** आहाहा! निरन्तर आत्मा की भावना। हमारे कमाना कब? रोटियाँ खाना कब? कहते हैं कि निरन्तर का अर्थ वस्तु जो है, उसकी निरन्तर दृष्टि और स्थिरता होनी चाहिए। समझ में आया? आहाहा! संसार में निरन्तर राग को घूँटा है या नहीं? निरन्तर। आहाहा!

क्या कहलाता है यह डोरा नहीं निकालते हैं? पुणी... पुणी। एक पुणी पूरी हो तो दूसरी पुणी साँधे, वह पूरी हो तो तीसरी साँधे। डोरा टूटने न दे। रेंटिया में पुणी दे न। वह पूरी हो तो दूसरी। इसी प्रकार एक विकल्प पूरा हो तो दूसरा और दूसरा करे तो तीसरा, तीसरा करे तो चौथा, ऐसे साँधता ही जाता है। राग के डोरे साँधता जाता है, वह प्रभु को तोड़ डालता है। आहाहा! ऐसा है यह। निरन्तर आत्मा की भावना। भावना शब्द से (आशय) एकाग्रता, हों! आहाहा! इस ज्ञानस्वभाव का ज्ञानरूप परिणमना। रागरूप का परिणमन छोड़कर यह ज्ञानस्वभाव है, उसरूप परिणमना, उसका नाम धर्म और वह परिणमकर राग को छोड़ अर्थात् कि राग होगा नहीं, उसे छोड़, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह १५५ हुई।

गाथा - १५६

अथ स्वात्मोपलम्भनिमित्तं चित्तस्थिरीकरणरुपेण परमोपदेशं पञ्चकलेन दर्शयति–

२७९) विसय–कसायहिँ मण–सलिलु णवि डहुलिज्जइ जासु।
अप्पा णिम्मलु होइ लहु वढ पच्चक्खु वि तासु।।१५६।।

विषयकषायैः मनःसलिलं नैव क्षुभ्यति यस्य।
आत्मा निर्मलो भवति लघु वत्स प्रत्यक्षोडपि तस्य।।१५६।।

विसय इत्यादि। विसय–कसायहिं मण–सलिलु ज्ञानावरणाघष्टकर्मजलचराकीर्ण–संसारसागरे निर्विषयकषायरुपात् शुद्धात्मतत्त्वात् प्रतिपक्षभूतैर्विषयकषायमहावातैर्मनः प्रचुरसलिलं णवि डहुलिज्जइ नैव क्षुभ्यति जासु यस्य भव्यवरपुण्डरीकस्य अप्पा णिम्मलु होइ लहु आत्मा रत्नविशेषोडनादिकालरुपमहापाताले पतितः सन् रागादिमलपरिहारेण लघु शीघ्रं निर्मलो भवति। वढ वत्स। न केवलं निर्मलो भवति पच्चक्खु वि शुद्धात्मा परम इत्युच्यते तस्य परमस्य कला अनुभूतिः परमकला एव दृष्टिः परमकलादृष्टिः तया परमकलादृष्टया यावदवलोकनं सूक्ष्मनिरीक्षणं तेन प्रत्यक्षोडपि स्वसंवेदनग्राह्योडपि भवति। कस्य। तासु यस्य पूर्वोक्तप्रकारेण निर्मलं मनस्तस्येति भावार्थः।।१५६।।

आगे आत्मा की प्राप्ति के लिये चित्त को स्थिर करता, ऐसा परम उपदेश श्रीगुरु दिखलाते हैं–

विषय–कषायों से जिसका मन–सलिल न मलिन कभी होता।
वही आत्मा निर्मल होता उसको ही प्रत्यक्ष होता।।१५६।।

अन्वयार्थ :– [यस्य] जिसका [मनः सलिलं] मनरुपी जल [विषयकषायः] विषयकषायरुप प्रचंड पवन से [नैव क्षुभ्यते] नहीं चलायमान होता है, [तस्य] उसी भव्य जीव की [आत्मा] आत्मा [वत्स] हे बच्चे, [निर्मलो भवति] निर्मल होती है, और [लघु] शीघ्र ही [प्रत्यक्षोडपि] प्रत्यक्ष हो जाती है।

भावार्थ :–ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरुपी जलचर मगर–मच्छादि जल के जीव उनसे भरा जो संसार–सागर उसमें विषयकषायरुप प्रचंड पवन जो कि शुद्धात्मतत्त्व से सदा पराङ्मुख हैं, उसी प्रचंड पवन से जिसका चित्त चलायमान नहीं हुआ, उसी का

आत्मा निर्मल होता है। आत्मा रत्न के समान है, अनादिकाल का अज्ञानरुपी पाताल में पड़ा है, सो रागादि मल के छोड़ने से शीघ्र ही निर्मल हो जाता है, हे बच्चे, आत्मा उन भव्य जीवों का निर्मल होता है, और प्रत्यक्ष उनको आत्मा का दर्शन होता है। परमकला जो आत्मा की अनुभूति वही हुई निश्चयदृष्टि उससे आत्मस्वरुप का अवलोकन होता है। आत्मा स्वसंवेदनज्ञान करके ही ग्रहण करने योग्य है। जिसका मन विषय से चंचल न हो, उसी को आत्मा का दर्शन होता है।।१५६।।

गाथा-१५६ पर प्रवचन

१५६। **आगे आत्मा की प्राप्ति के लिये चित्त को स्थिर करता, ऐसा परम उपदेश श्रीगुरु दिखलाते हैं**—आहाहा! १५६ (गाथा)।

२७९) विसय-कसायहिँ मण-सलिलु णवि डहुलिज्जइ जासु।
अप्पा णिम्मलु होइ लहु वढ पच्चक्खु वि तासु।।१५६।।

देखा! प्रत्यक्ष लिया। हे शिष्य! **जिसका मनरूप जल... 'सलिलं'** है न? **'सलिलं'** मनरूपी **'सलिलं'** पानी **विषयकषायरूप प्रचण्ड पवन से नहीं चलायमान होता है,....** आहाहा! बाह्य पदार्थ की पवन से जिसका चित्त अस्थिर नहीं होता। आहाहा! **उसी भव्य जीव की आत्मा हे वत्स!....** शिष्य को कहते हैं न! **हे बच्चे,...** आहाहा! लो, वत्स कहते हैं। **निर्मल होती है,...** क्या निर्मल होती है? आत्मा। जिसका मन विषय-कषाय से डोलता नहीं। जिसका मन परपदार्थ के आश्रय से डोलता नहीं, उसका आत्मा निर्मल होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब। मार्ग ऐसा है, बापू! जिसका मन, चित्त पाँच इन्द्रियों की ओर के बाह्य पदार्थ की ओर में डोलता नहीं। बाह्य पदार्थ पर लक्ष्य जाने से चित्त डोल जाता है, मलिन होता है। आहाहा! यहाँ तो परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि मेरे सन्मुख देखने से भी तेरा चित्त मलिन होता है। आहाहा! क्योंकि परद्रव्य के आश्रय में जाने से तो तुझे राग ही होगा। आहाहा! उसे जिसे परद्रव्य के आश्रय से चित्त का मलिनपना होता नहीं, उसे आत्मा निर्मल होता है। आहाहा! कहो, हीराभाई! ऐसी बातें हैं। दुनिया से अलग प्रकार है, बात सच्ची, इसमें कुछ खोटी नहीं।

मिलान खाये ऐसा नहीं, बापू! आहाहा! आत्मा हो तो मिलान खाये ऐसा है। आहाहा!

उसी भव्य जीव की आत्मा हे बच्चे! निर्मल होती है, और शीघ्र ही प्रत्यक्ष हो जाती है। आहाहा! आत्मा शीघ्र प्रत्यक्ष निर्मल हो जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : बच्चे अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : शिष्य कहा न! बच्चा अर्थात् शिष्य, वत्स। अपने नहीं कहते बच्चा! लड़के! ऐसा। हे बच्चा! कहा था। अर्थ कह गये तो। ध्यान रखे तो कोई शब्द पूछने का रहता नहीं। बच्चे, कह गया था। बच्चे अर्थात् शिष्य, ऐसा। हे वत्स! हे बेटा! ऐसा नहीं कहते? इसी प्रकार यहाँ वत्स शिष्य। बच्चे, यह समझ तुझे आत्मा को बचाना हो तो। आहाहा!

जिसके चित्त में परद्रव्य के आश्रय से मलिनपना होता है, वह नहीं होता, उसे भगवान आत्मा में जाने से वह आतमा निर्मल होता है। ओहोहो! बहुत संक्षिप्त भाषा है। स्वद्रव्य का आश्रय लेने से निर्मल होता है, परद्रव्य हो आश्रय लेने से चित्त मलिन होता है। इसलिए जिसे परद्रव्य के आश्रय से चित्त मलिन होता नहीं, ऐसा लिया है। अर्थात् पर का आश्रय करता ही नहीं और पर सन्मुख का झुकाव छोड़ देता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वह कहे कि प्रत्याख्यान करो, ऐसा करो, हरितकाय नहीं खाना, कन्दमूल नहीं खाना। समझ में आये। क्या समझना था, धूल उसमें? आहाहा! ऐसा तो अनन्त बार मुनि हुआ है, बापू! तुझे खबर नहीं। परन्तु पर की रुचि छोड़ी नहीं। पर छोड़ा है चीज़ मान्यता, परन्तु रुचि छोड़ी नहीं, राग और राग के फल की रुचि छोड़ी नहीं। आहाहा! जिसे पुण्य के फल यह पैसा, स्त्री, धूल का जिसे प्रेम है, उसके कारण के शुभराग का उसे प्रेम है, वह मिथ्यात्वी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो वे भाई कहते थे न, भाई! बाबा होवे तो। परन्तु भाई! बाबा ही है, सुन न! वीतरागी विज्ञानस्वरूप है, अर्थात् बाबा ही है, राग से रहित है। आहाहा!

उसे आत्मा **प्रत्यक्ष हो जाती है।** देखा! अर्थात् तुरन्त केवलज्ञान हो जाता है, ऐसा। आहाहा! अन्तर अनुभव में प्रत्यक्ष तो होता है, परन्तु जिसे इस प्रकार चित्त मलिन न हो और यहाँ निर्मल में रहे, उसे अत्यन्त प्रत्यक्ष हो जायेगा। केवलज्ञान जलहल

ज्योति उसे प्रगट होगी। इस साधन से। वीतरागस्वरूप के स्वसंवेदन के साधन से भगवान प्रत्यक्ष हो जायेगा केवलज्ञान। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा नीचे भी प्रत्यक्ष होगा। परसन्मुख के चित्त को मलिन होने न दे, पर की ओर का झुकाव, तो यह मति और श्रुतज्ञान द्वारा भगवान तुझे प्रत्यक्ष होगा। क्योंकि प्रत्यक्ष होने का तो इसका स्वभाव है। इसमें प्रकाश नाम का गुण है। जैसे ज्ञान, आनन्द, शान्ति, वीतरागता गुण है, वैसा उसमें एक प्रकाश नाम का गुण है, भगवान आत्मा में कि वह प्रत्यक्ष ही होता है। उस गुण के कारण प्रत्यक्ष ही होता है, ऐसा उसका स्वरूप है। आहाहा! वह अन्धेरे—अप्रत्यक्ष न रहे, ऐसा उसका स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! किस प्रकार की बात यह? पति-पत्नी दो हों, पति सुनने आया हो, पत्नी पूछे, क्या सुना? कुछ कहते थे ऐसा यह और यह और यह। आहाहा! आत्मा ऐसा है। उसमें अपने को तो कुछ पकड़ में नहीं आता था।

मुमुक्षु : आत्मा कूटते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहता था न तब। दस महीने और दस दिन हुए। चातुर्मास था न ९५ का। राजकोट। दस महीने आत्मा आत्मा ही कूटा। बापू! तू न हो तो यह जगत है कहाँ? तेरे जानने में है, परन्तु तू न हो तो उसे जाने कौन कि यह है? यह तेरे जानने में तेरा ज्ञान और यह है, उसका ज्ञान तुझमें आ जाता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **हे बच्चे,... 'वत्स'** शिष्य। **निर्मल होती है।** आहाहा!

भावार्थ—ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूपी जलचर मगर-मच्छादि जल के जीव उनसे भरा.... आहाहा! **ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूपी जलचर मगर-मच्छादि जल के जीव....** आहाहा! **उनसे भरा जो संसार-सागर....** ओहोहो! पूरा संसार-सागर कर्म और कर्म के फल से भरा हुआ पूरा संसार। आहाहा! संसार-सिन्धु समुद्र है। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय के अवतार अनन्त... अनन्त किये और वे अनन्त भान बिना करेगा। वह मनुष्यपना नहीं रहेगा लम्बे काल। यह २५, ५०, ६०, ७०, १०० देह छूट जायेगी। जायेगा कौवे और कुत्ते में। आहाहा! समझ में आया? उसमें से वापस मनुष्य होना भी मुश्किल पड़ेगा। भाई! तुझे नित्यानन्द के नाथ की खबर नहीं। इस क्षणिक की प्रीति में

नित्यानन्द तुझे विस्मृत हो गया है और उसे भूला हुआ चौरासी में भटकेगा। आहाहा! आज का बड़ा राजा हो, वह कल का सूकर हो, नरक में जाएगा। आहाहा! भवसिन्धु ऐसा है, बापू! एक ओर चैतन्यसिन्धु। आता है न यह?

कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं,
अपने रससौं भर्यो आपनी टेक हौं,
मोहकर्म मम नाहिं, नाहिं भ्रमकूप है।
सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है॥३३॥

आहाहा! भव-सिन्धु में मैं नहीं, मैं तो चैतन्यसिन्धु हूँ, समुद्र हूँ। आहाहा! ऐसा समकिती, ज्ञानी, धर्म की पहली पंक्ति में आया हुआ, ऐसा जीव को मानता है। आहाहा! ऐसा कि आता है न वह जय जिणवर मवज्ज,... उसमें वह साधन क्या कहे? व्यवहार अर्थात् तीर्थ अर्थात् साधन है। व्यवहार छोड़ना, वह साधन छोड़ना... करना ऐसा। ऐसा नहीं। व्यवहार अर्थात् भेद जो चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ (गुणस्थान) आदि जो भेद है, वह तीर्थ है। वह नहीं, ऐसा नहीं है, है उसमें। उससे तीर्थ होगा और यह बात कहाँ है वहाँ? यदि भेद न माने चौदह गुणस्थान का तो व्यवहार ही नहीं रहे। वह भेद व्यवहार है। चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ गुणस्थान वह त्रिकाल की अपेक्षा से व्यवहार है। व्यवहार नहीं माने तो तीर्थ ही चौथा, पाँचवाँ, छठा भी नहीं रहे। उससे होगा, ऐसा नहीं। अर्थ में बड़ा अन्तर करने लगे, अब क्या करना? व्यवहार और निश्चय को न छोड़। क्योंकि पर्याय स्वयं व्यवहार है। यदि तू पर्याय नहीं है, ऐसा कहे तो व्यवहार ही नहीं हो जाता है। और पर्याय है तो व्यवहार है। है, उसका निषेध न कर कि नहीं है। इतनी बात है। आहाहा! समझ में आया? यह निवृत्ति भी कहाँ है?

वे कहते हैं न, बगला के डोले लाभ। इसी प्रकार जगत में डोलकर पड़ा है और मानता है कि मुझे कुछ लाभ होता है। आहाहा! पैसा, टका, स्त्री, पुत्र इकट्ठे हों, करोड़, दो करोड़ पैसे हो, इसलिए मानो कि हमें फायदा। मर गया है, सुन न! फायदा कहाँ? ऐई! पोपटभाई! ऐसी बात है। फँस गया-फँस गया है बापू तू। आहाहा! और कुर्सी पर बैठे शाम को पच्चीस, पचास हजार की आमदनी होती हो और लोग झुककर चलते हों कि साहेब! इतना दो, पच्चीस बोरी दो चावल की, फलाना की यह, ढींकणा। ओहोहो!

वहाँ तो मानो क्या हम! किस दुकान में बैठे हैं और किस फाई में हैं। अरे! भाई! बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! यह भवसिन्धु नहीं कहा?

ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूपी जलचर मगर-मच्छादि जल के जीव उनसे भरा जो.... आठ कर्म भरे हैं जिसमें। **संसार-सागर उसमें विषयकषायरूप प्रचण्ड पवन....** आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर के विकल्प प्रचण्ड पवन है। आहाहा! **जो कि शुद्धात्मतत्त्व से सदा पराङ्मुख हैं,....** संसार सागर जो है और विषय-कषाय के परिणाम हैं, वे शुद्धात्मा से विरुद्ध हैं। आहाहा! राग है शुभराग, वह बड़ा संसार है। वह संसार है। संसार कोई स्त्री, पुत्र, परिवार, वह संसार नहीं, वह तो परचीज़ है। वहाँ तेरा संसार कहाँ आया? आहाहा! तेरा संसार तो राग का उदय है, वह संसार है। आहाहा! ऐसे आठ कर्म के, जलचर जैसे भरे हों, वैसा भरा है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

सदा पराङ्मुख हैं,.... वह संसार सागर पूरा, आठ कर्म और आठ कर्म के फल। आहाहा! यह सब विषय-कषाय के परिणाम यह शुभ, अशुभभाव, आहाहा! उससे **शुद्धात्मतत्त्व से सदा पराङ्मुख हैं, उसी प्रचण्ड पवन से जिसका चित्त चलायमान नहीं हुआ,....** आहाहा! पाँच, पच्चीस लाख इकट्ठे हों, महीने में पच्चीस-पच्चीस लाख की आमदनी। आहाहा! उससे जिसका चित्त चलायमान न हो, वह आत्मा की ओर जाये, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? **चलायमान नहीं हुआ, उसी का आत्मा निर्मल होता है।** आहाहा! पाँच, पच्चीस लाख पैदा किये हों तो घर की स्त्री को कहे, इस बार बहुत पैदा हुआ है, कितने गहने बनाऊँ तेरे लिये? यह देखो उसकी मूर्खाई। आहाहा! क्योंकि पैदा हुए हैं उसमें पचास लाख पैदा हुए हैं, उसमें लाख, दो लाख के गहने तेरे लिये बनाऊँगा। लड़के को कलाई में सोने की घड़ी लाकर दूँगा बाँधने की।

मुमुक्षु : कन्धे में बाँधने की कलाई में बाँधने की।

पूज्य गुरुदेवश्री : कलाई में बाँधने की। आहाहा! बन्दर जैसा है। बन्दर जैसे चपलता करता हो न, बैठा हो तो भी चपलता करता है। देखा है बन्दर को? ऐसा किया करे। इसी प्रकार यह बैठा-बैठा, सवेरे वापस नाहकर जब माँग काड़े ठीक से और उसमें काँच में ऐसे देखे। छोटा काँच हो। बड़ा हो तो पूरा दिखाई दे। देख लो बन्दर।

अरेरे! बाहर के विषय-कषाय में बापू! तू रुक गया भाई! इस समुद्र में डूब गया प्रभु तू! ऐसा कहते हैं। तुझे यह भगवान का समुद्र हाथ नहीं आया। आहाहा! ऐसा उपदेश तो वीतराग करे बापू!

वीतराग तो ऐसा कहते हैं कि हम छद्मस्थ हों, मुनि हों और तू हमको आहार दे, वह भी राग है। आहाहा! उसमें तुझे धर्म हो और कल्याण हो, यह नहीं। क्योंकि हम परद्रव्य हैं। उसमें जो विषय-कषाय का जो भाव है, ऐसा ही यह भाव है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात। यह तो तुम्हारी निश्चय की बहुत ऊँची बात है। ऐसा कहे। परन्तु यह पहली ही सच्ची यह है। सुन न! आहाहा! कुछ व्यवहार करें, कुछ न कुछ करें तो धीरे-धीरे निश्चय होगा। धूल भी नहीं होगा, सुन न! लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी? इसी प्रकार तेरी राग की क्रिया करते-करते समकित होगा? आहाहा! भगवान को स्वीकार करने से समकित होगा। ऐसा वीतरागी परमानन्द प्रभु तेरे ज्ञान में ज्ञेय होकर अनुभव में आवे। आहाहा! कहते हैं, यह आत्मा चित्त का निर्मलपना करके, पर में रुकते चित्त को छोड़े तो आत्मा निर्मल होगा।

आत्मा रत्न के समान है,.... आहाहा! **अनादि काल का....** आहाहा! **अज्ञानरूपी पाताल में पड़ा है,....** भाषा देखो! अज्ञान, जिसे स्वरूप का भान नहीं, ऐसे अज्ञान और पाताल में रत्न पड़ गया है। आहाहा! चैतन्यरत्न भगवान, वह अज्ञानरूपी पाताल में पड़ गया है। आहाहा! समझ में आया? कहा है न, देखो न! **आत्मा रत्न के समान है, अनादि काल का अज्ञानरूपी पाताल में पड़ा है,....** आहाहा! वहाँ हमारे पालेज के पास बड़ौदरा नजदीक है न? बड़ौदरा का राजकुमार था न मूल पहला फतेहकुमार। वह लड़का छोटा था, वह छोड़कर मर गया। पिताजी थे शिवाजीराव, शिवाजीराव। पालेज के पास रहा न हमारे। सयाजी... सयाजी। वह शिवाजी नहीं। मर गया। फिर हमारी दुकान में वह पुस्तक छपी हुई आयी थी। यह तो ६६ की बात है। यह तेरे जन्म के पहले की बात है। इसका जन्म तो ७४ में हुआ है। इसके पिता बैठे थे। तीन करोड़ की आमदनी वर्ष की। सयाजीराव। और रानी बड़ी। लड़के को क्या हुआ छोटी उम्र में एकदम मर गया। दो वर्ष का गद्दी पर बैठा था न वहाँ? वह तो तब वर्ष, दो वर्ष का था।

फिर पुस्तक आयी। 'रतन रायाळुं श्मशाने रे, हाय रे रतन रोळायुं' ऐसा गाते थे। राजकुमार अभी तो पाटवीकुमार, फिर गद्दी पर बैठने की योग्यतावाला। मर गया। उड़ गया तो रतन रुला। धूल भी नहीं, सुन न। इस भवसमुद्र में रुला रतन तेरा, उसकी बात है यहाँ तो। मर गया ऐसा कि बड़ा राजा।

देखो न! चैतन्यरत्न अज्ञानरूपी पाताल में पड़कर, आहाहा! अर्थात् कि जिसकी खबर नहीं इसे। ऐसा भगवान चैतन्यरत्न अन्दर विराजता है, उसकी इसे खबर नहीं होती और अज्ञानरूपी पाताल में रत्न पड़ा है गहरा। आहाहा! वह पुस्तक आयी थी, तब दुकान में। सुनी थी। मरस्या गाये न वे लोग। ऐसा गाते थे। छोटी उम्र का व्यक्ति, तीन करोड़ की उपज और गद्दी पर बैठने की वह पाटवीकुमार (युवराज)। फिर उसका लड़का है न अभी। आहाहा! यह ६६ का जन्म है तो उसे बहुत वर्ष हुए होंगे। वर्ष, डेढ़ वर्ष का था, अभी गद्दी पर बैठा है वह। वहाँ हमारे पालेज के साथ रहा न बडोदरा? नजदीक है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन। ऐसा चैतन्य हीरा आनन्द और ज्ञान से भरपूर प्रभु, उसे अज्ञानरूपी पाताल में तूने डाल दिया है। आहाहा! पाताल का पानी निकालना कठिन, उसी प्रकार अज्ञान के पाताल में से आत्मा को पृथक् करना कठिन, बापू! आहाहा! ऐसे अज्ञानरूपी पाताल में पड़ा है। **सो रागादि मल के छोड़ने से शीघ्र ही निर्मल हो जाता है,....** आहाहा! वह रागरूपी मैल है भगवान चैतन्यरत्न में। आहाहा! वह राग अर्थात् अशुभराग होगा अकेला? शुभ ही खरा तो है और वहाँ फँसा है। उसे साधन मानता है और उसे कारण मानता है। बड़ी चर्चा है खानियाचर्चा में। आहाहा! अरे! प्रभु! क्या करता है? भाई! 'राग आग दाह दहे सदा...' यह शुभराग और अशुभराग दोनों अग्नि है, भाई! तुझे खबर नहीं। तेरा स्वभाव शीतल, आनन्दकन्द है, उसमें यह तो अग्नि है। आहाहा! समझ में आया? 'आग दाह...' 'राग आग दाह दहे सदा...' आता है न छहढाला में? आहाहा! 'तातै समामृत सेईये।' आहाहा! राग की आग को बुझाने के लिये, प्रभु! समामृत—समतारूपी अमृत। वह समता कहो या वीतरागता कहो। आहाहा! वीतरागता से भरपूर भगवान को वीतरागभाव से सेवन कर। आहाहा! समामृत—समतारूपी अमृत का तुझे स्वाद आयेगा। आहाहा! और यह विषय-कषाय परसन्मुख

के विकल्प में चित्त जलता है। आ गया था नहीं? दाह, चित्त को दाह होती है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

हे बच्चे... है न? **आत्मा उन भव्य जीवों का निर्मल होता है, और प्रत्यक्ष उनको आत्मा का दर्शन होता है।** आहाहा! चित्त को पर की ओर से विमुख करके यहाँ देखे तो निर्मल भगवान आत्मा के तुझे दर्शन होंगे। जैसा है, वैसा तुझे अनुभव में आयेगा। आहाहा! परमात्मप्रकाश। मुद्दे की रकम ही यहाँ तो गिनी है। आहाहा! ब्याज-ब्याज की कुछ नहीं, मुद्दे की रकम की बात है। **दर्शन होता है।** आहाहा! **परमकला जो आत्मा की अनुभूति, वही हुई निश्चयदृष्टि, उससे आत्मस्वरूप का अवलोकन होता है।** आहाहा! विषय-कषाय की ओर में चित्त को विमुख कर तो तुझे आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति होगी। आहाहा! यह विशेष व्याख्या है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, माघ कृष्ण ०४, सोमवार
दिनांक- ०७-०२-१९७७, गाथा - १५६, १५७, प्रवचन-२०९

परमात्मप्रकाश। **हे बच्चे,...** शिष्य (को) गुरु कहते हैं। **आत्मा उन भव्य जीवों का निर्मल होता है,....** गुरु शिष्य को कहते हैं, हे शिष्य! आत्मा वह भव्य जीव को निर्मल होता है **और प्रत्यक्ष उनको आत्मा का दर्शन होता है।** किसे? कि **रागादि मल के छोड़ने से शीघ्र ही निर्मल हो जाता है,....** पहली लाईन है न इसकी पहली। आहाहा! यहाँ राग की एकताबुद्धि तुड़ाते हैं बात पहली, फिर अस्थिरता भी तुड़ाते हैं, दोनों बात है। आहाहा! रागादि पुण्य-पाप के भाव, उन्हें **छोड़ने से शीघ्र ही निर्मल हो जाता है,....** ऐसा कहते हैं। वे कहते हैं, व्यवहार करते-करते निश्चय होगा और तुम्हारा एकान्त है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : अनेकान्त करके बतावे अर्थात्....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त यह—व्यवहार से निश्चय होता है, यह अनेकान्त है। खानिया चर्चा में यह वर्णन किया है और आज सम्यग्ज्ञान (पत्रिका) में यह आया है। दिल्ली से आती है न? सम्यग्ज्ञान... क्या कहलाती है वह? सम्यग्ज्ञान। उसमें आया था थोड़ा वहाँ का—फलटन का। आहाहा! बहुत सब महिमा करते हैं फलटन की। सोनगढ़ का एकान्त है, उसके सामने तुम....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु क्या हो? मार्ग ही पूरा....

यहाँ कहते हैं, पहला तो यह आया था न कि चैतन्यरत्न है भगवान। हीरा-माणेक जैसे हो, वैसे रत्न है। है न? **अनादि काल का अज्ञानरूपी पाताल में पड़ा है,....** आहाहा! उसका इसे ज्ञान नहीं। कहते हैं कि यह भगवान आत्मा अज्ञान के कारण, रत्न होने पर भी पाताल में पड़ा है, ऐसा दिखता है। आहाहा! कहीं पता नहीं लगता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह वस्तु—आत्मा रत्न है, चैतन्यरत्न है। परन्तु अज्ञान के कारण पाताल में पड़ा है, इसलिए हाथ नहीं आता। आहाहा! कैसे ज्ञात हो और हाथ आवे?

कि **रागादि मल के छोड़ने से शीघ्र ही निर्मल हो जाता है,....** आहाहा! परसन्मुख के झुकाववाला राग, उसकी ओर का लक्ष्य छोड़कर आत्मा की ओर जाये तो उसे निर्मल आत्मा प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। है तो निर्मलानन्द स्फटिक रत्न जैसा प्रभु, परन्तु अज्ञान के कारण पाताल में जैसे पानी है, वह दिखता नहीं, वैसे अज्ञान में वह वस्तु है, वह इसे दिखती नहीं अर्थात् कि ज्ञात नहीं होती। आहाहा! उसे परसन्मुख के राग के विकल्पों को छोड़कर स्वसन्मुख में जाये तो उसे आत्मा निर्मल मिले। अरे! यह बात भारी थोड़े शब्दों को। समझ में आया? यह पुण्य और पाप आदि सकल **मल के छोड़ने से शीघ्र ही निर्मल हो जाता है,....** आहाहा! बहुत ही संक्षिप्त बात। अपने स्वरूप के अज्ञान के कारण, ऐसा कहा है, कर्म के कारण, ऐसा नहीं कहा।

मुमुक्षु : अज्ञानरूपी पाताल।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान के कारण कहते हैं। पाताल में अर्थात् हाथ में नहीं आता, ऐसा। कहीं आगे पड़ा है अज्ञान के कारण। आहाहा! यह पुण्य और पाप के राग की ओर का प्रेम और रुचि छोड़कर पहले और आत्मा की दृष्टि करे तो उसे निर्मल आत्मा सम्यग्दर्शन में प्राप्त होता है। आहाहा! क्योंकि वह वस्तु निर्मल है। मलिनता और अज्ञान तो पर्याय में परलक्ष्य से किया हुआ थाव है और वह भी स्वयं स्वाधीनरूप से किया हुआ है। अज्ञानभाव कोई कर्म कराता है, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें ही बड़ा विवाद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बड़ा विवाद, इसके लिए तो, क्या हो? यह प्रथा ही नहीं थी न? यह पद्धति ही नहीं थी, इसलिए लोगों को एकान्त लगता है। परन्तु सम्यक् एकान्त ही यह है। व्यवहार का राग है, उसका लक्ष्य छोड़े तो आत्मा के ऊपर लक्ष्य जाये तो आत्मा निर्मल प्राप्त हो। आहाहा! ऐसी बात है। है तो हीरला हीरा अन्दर चैतन्य, उसकी कीमत आँकना मुश्किल पड़े, ऐसी कीमती चीज़ है। आहाहा! अमूल्य जिसका मूल्य क्या? आहाहा! हीरा का मूल्य है, पाँच करोड़ का, दस करोड़ का, अरब का, सब तो मूल्य है। आहाहा! 'हीरा मुख से न कहे...' ...में आता है न कुछ।

मुमुक्षु : बड़ा बढ़ाई न करे, बड़ा न बोले बोल....

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा न बोले बोल। 'हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल।' 'बड़ा बढ़ाई बोले नहीं।' आहाहा! 'बड़ा ना बोले बोल। हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल।' इसी प्रकार भगवान हीरा, वह स्वयं अन्दर के राग के ...में कैसे ज्ञात हो इसे? आहाहा!

महाप्रभु है न वह। चैतन्य चमत्कारी वस्तु है। उसे राग को छोड़कर **शीघ्र ही निर्मल हो जाता है, हे बच्चे! आत्मा उन भव्य जीवों का निर्मल होता है, और प्रत्यक्ष उनको आत्मा का दर्शन होता है।** आहाहा! **परमकला जो आत्मा की अनुभूति....** यह कला, यह कहते हैं, उसे प्राप्त करने की। जो राग का अनुभव है अनादि से, उसका लक्ष्य और अनुभूति का भाव छोड़कर भगवान आत्मा की ओर की अनुभूति करे, वह अनुभूति उसे प्राप्त करने का उपाय है। आहाहा! है? **वही हुई निश्चयदृष्टि.... परमकला जो आत्मा की अनुभूति....** आहाहा! **परमकला जो आत्मा की अनुभूति, वही हुई निश्चयदृष्टि....** यह हुई सत्यदृष्टि। **उससे आत्मस्वरूप का अवलोकन होता है।** आहाहा! बहुत संक्षिप्त। ऐसी बात है। भगवान आत्मा जो शुद्ध चैतन्यघन है, उसे अनुसरकर, अनुभूति होने से उसे आत्मा अवलोकन में आता है। आहाहा! ऐसी कोई क्रिया करने से और व्यवहार करने से आता है, ऐसा नहीं कहा।

मुमुक्षु : यह ऐसा कहते हैं कि इसमें नहीं कहा, कहीं दूसरी जगह कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी जगह कहा तो इससे कहीं विरुद्ध होगा? पूर्वापर विरोधरहित वाणी वीतराग की, उसमें कहीं विरोध होता है? वह तो वहाँ आगे निमित्तपना कौन है, उसका ज्ञान कराने के लिये व्यवहार साधन और निश्चय साध्य, ऐसा कहा है। आहाहा! व्यवहार तो राग है, राग को छोड़े तो आत्मा का अवलम्बन आवे, ऐसा कहते हैं। तो वहाँ और राग करते-करते अनुभव में आवे? आहाहा! बड़ा विवाद। कितने पृष्ठ भरे हैं। आहाहा! खानियाचर्चा। अरे! बापू! ऐसी चर्चा तो अनन्त बार की है, भाई!

यह आत्मा जो हीरा चैतन्य अनन्तगुण का पिण्ड, उसकी प्राप्ति तो उसके सन्मुख की दशा होने से हो, ऐसी है। आहाहा! सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्चिदानन्द भगवान पूर्ण, उसके सन्मुख होकर अनुभव में प्रतीति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन अभी चौथा

गुणस्थान है। अरेरे! इसके बिना दुःखी है। समझ में आया? यह रास्ता है। जहाँ है, वहाँ जाना, उसकी पर्याय को वहाँ ले जाना। आहाहा! जहाँ नहीं, वहाँ से वापस मुड़ना। व्यवहार में कहीं आत्मा नहीं। आहाहा! व्यवहार में तो राग की मन्दता पुण्य है। आहाहा! पुण्य में आत्मा नहीं कि वहाँ जाकर एकाग्र हो तो मिले। यह उसकी विधि है, कहते हैं। यह भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप, उस ओर जाने से उसे आत्मस्वरूप का अवलोकन होने पर... आहाहा!

आत्मा स्वसंवेदनज्ञान करके ही ग्रहण करनेयोग्य है। आहाहा! देखा! आहाहा! चक्रवर्ती को छियानवें-छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, राज भी हो, परन्तु उस राज की ओर की रुचि छूट गयी है। परसन्मुख की सुखबुद्धि छूटी है, इसलिए आत्मा की ओर के अवलोकन में जहाँ सुख है, वहाँ दृष्टि गयी है। समझ में आया? यह पहले आ गया है। धर्मी जीव जहाँ सुख नहीं, वहाँ बसता नहीं। आहाहा! आवे, राग हो, परन्तु वहाँ टिकता नहीं। आहाहा! वहाँ सुख नहीं, इसलिए टिकता नहीं, उसमें निवास करता नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप अब। लोगों को त्याग करो और व्रत करो, ऐसा कहते हैं। प्रतिक्रमण में आता है न द्रव्यप्रतिक्रमण, भावप्रतिक्रमण। वहाँ यह डाला है, देखो! प्रतिक्रमण में बाह्य त्याग करे तब द्रव्य प्रतिक्रमण हो पहला। बाह्य त्याग करे तो यहाँ निर्मलता हो। आहाहा! परन्तु वहाँ तो बाह्य त्याग, राग के त्याग में बाह्य का त्याग होता है, ऐसा बतलाना है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! बाह्य त्याग तो अनन्त बार किया। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार छोड़कर, महाव्रत अंगीकार किये। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। भाई! तुझे सत्य की खबर नहीं। और खोटे रास्ते जाने से वह नहीं मिलता, प्रभु! और नहीं मिले बिना चार गति में भटकना, संयोग, पुद्गल मिलेंगे। वहाँ भटकेगा चार गति में।

यहाँ कहते हैं, **आत्मा स्वसंवेदनज्ञान करके ही....** ऐसा है? पाठ है, देखो। **'स्वसंवेदनग्राह्योऽपि भवति'** आहाहा! पहला **'प्रत्यक्षो'** है न इसलिए। **'प्रत्यक्षोऽपि स्वसंवेदनग्राह्योऽपि'** ऐसा। पहला है न। **'प्रत्यक्षोऽपि'** और **'स्वसंवेदनग्राह्योऽपि'** ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? अर्थात्? भगवान पूर्णानन्दस्वरूप शुद्धात्मतत्त्व प्रभु, उसके सन्मुख होने से प्रत्यक्ष होगा और वह स्वसंवेदनज्ञान से ही पकड़ में आयेगा। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

यह परमात्मप्रकाश है। योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त वनवास में रहते थे, सिद्ध के साथ बातें की हैं सब। आहाहा! प्रभु! तू है ऐसा ही मैं हूँ। आहाहा! ऐसा मैं हूँ, ऐसा कब हो? कि जैसा, जितना, जैसा अस्तित्व है, उसके स्वीकार में जाये तो उसे ऐसा हूँ, ऐसा मानने में आवे। आहाहा! परन्तु राग के पुण्य और व्यवहाररत्नत्रय के स्वीकार में जाये तो वह तो राग में स्वीकार हुआ। आहाहा! बहुत कठिन बात है। राग के स्वीकार में वीतराग चैतन्यरत्न हाथ आवे? आहाहा! उसमें तो चैतन्य अनन्त गुण का रत्न, उसका उसमें हेलना, अवहेलना होती है। राग के स्वीकार में भगवान की अवहेलना होती है। भगवान स्वयं आत्मा भगवानस्वरूप ही है। पर्याय में उसका ऐन्लार्ज होता है। अरिहन्त परमात्मा हुए, वे 'है' उसमें से हुए हैं। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **आत्मा स्वसंवेदनज्ञान करके ही....** ऐसा। **ग्रहण करनेयोग्य है।** आहाहा! राग से, पुण्य से, व्यवहाररत्नत्रय से ग्रहण नहीं हो सकेगा। आहाहा! क्योंकि व्यवहाररत्नत्रय का राग पर दिशा की ओर है। राग है, उसकी दिशा पर के ऊपर है। इसलिए उसे प्राप्त नहीं होता। और इस ओर स्वसंवेदनज्ञान है, वह स्वसन्मुख है। आहाहा! इसीलिए उसमें स्व जितना और जैसा है, उतना प्रत्यक्ष होगा और स्वसंवेदनज्ञान में वह ज्ञात होगा। आहाहा! समझ में आया? यह तो बहुत सार है। मक्खन है। इसे पहले इसका पक्ष तो—श्रद्धा तो करनी पड़ेगी। आहा! जहाँ तक यह श्रद्धा राग करते-करते होगा, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! और यह सम्यक्भाव। वह जैसा स्वयं है, उसके सन्मुख होकर उसे अनुभव करना, उसका स्वीकार, उसके अस्तित्व की ज्ञान में ज्ञान होकर प्रतीति, वह स्वसंवेदन से पकड़ में आये, ऐसा है। आहाहा! वह शास्त्र से ज्ञात हो, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। लोग इसकी टीका (आलोचना) करते हैं। यह तो कहते हैं कि वीतराग की वाणी से ज्ञात नहीं होता, देव-गुरु से ज्ञात नहीं होता।

मुमुक्षु : इसमें भी लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे नहीं मानते। उन्होंने कभी वाँचा नहीं, यह खबर नहीं।

स्वसंवेदन से ज्ञात हो, ऐसा कहा। वीतराग की वाणी समवसरण में अनन्त बार सुनी, परन्तु उसका लक्ष्य वहाँ से हटा नहीं, स्व के ऊपर आया नहीं। आहाहा!

वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म बापू! भगवान स्वयं सूक्ष्म चैतन्यरत्न हैं न! आहाहा! ऐसा सूक्ष्म। जिसके समक्ष शुभभाव भी स्थूल विशुद्ध परिणाम। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव, वह स्थूल विशुद्ध भाव, भगवान उससे भिन्न सूक्ष्म परम शुद्धभाव। आहाहा! ऐसा है। लोगों को सस्ता ले लेना है। आहाहा!

नीलमणि का दृष्टान्त नहीं दिया था? सेठ आये थे, तब दृष्टान्त दिया था। सेठ आये थे न, हुकमीचन्दजी। सत्तर लाख का नीलमणि का हार था। हुकमीचन्दजी इन्दौर। यहाँ आये थे न, (संवत्) २००५ के वर्ष में। इन्दौर। सत्तर लाख का नीलमणि का हार था। लिया तब, हों! पूछा, मैंने भाई को पूछा था नानालालभाई को। मैंने कहा, इसकी कीमत अभी कितनी? अभी ७० लाख की। अब वह नीलमणि है, वैसी ही नीली निम्बोलियाँ हैं। नीम की निम्बोलियाँ हैं। निम्बोलियों से प्राप्त हो? सत्तर लाख का एक हार। साथ में सिपाही खड़ा रखना पड़े.... करने के साथ। क्योंकि कोई उठाकर ले जाये एकदम, साधारण उठाकर भागे। आहाहा! देखो, यह उपाधि। आहाहा! वह नीलमणि कहीं निम्बोलियों से ६०-७० लाख दे तो मिले? बापू! उसकी कीमत भरने के लिये रत्न चाहिए, इतनी कीमती चीज़ चाहिए। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा को प्राप्त करने के लिये सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि निर्मल परिणाम चाहिए। उन परिणाम में परिणामी भगवान प्राप्त हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह लोगों को रूखा लगता है। रस न लगे न! वह रस है, दया पालन करो, व्रत करो, अपवास करो। वस्तु यह है, बापू! रूखा अर्थात् वीतरागी भाव यह है। आहाहा! चिकना भाव राग का, वह यहाँ नहीं इसमें। आहाहा! शान्त... शान्त... अकेला शान्तरस। 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल।' ऐसा कहने में ऐसा कहते हैं श्रीमद् स्वयं छोटी उम्र में, वीतराग के वचन परम शान्तरस मूल। उसमें परम शान्तरस को बताते हैं। आहाहा! 'औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल।' आहाहा! इस शुभभाव में से आत्मा प्राप्त नहीं होगा, धर्म की पर्याय प्राप्त नहीं होगी। स्वसंवेदनज्ञान से आत्मा ज्ञात हो और पर्याय प्राप्त होती है। आहाहा! उस पावैया को प्रजा नहीं होती। हीजड़े को प्रजा होती है? उसी प्रकार शुभभाव है, वह पावैया, नपुंसक है। उसमें धर्म की पर्याय नहीं होती, भाई! आहाहा! क्या हो? उसके वीर्यगुण की रचना, ऐसी भगवान कहते हैं कि

जिसने वीर्यगुण को स्वीकार किया और उस गुण का धारक भगवान आत्मा स्वीकार किया, उसे तो शुद्ध आनन्द की ही रचना होती है। आहाहा! उसे तो शुद्ध अनन्त आनन्द आदि शक्तियाँ हैं, उनकी व्यक्तता का ही परिणमन उसे होता है। आहाहा! उसे यहाँ वीर्य कहा जाता है। आहाहा! हजारों शत्रु को नाश करे और बड़ा वीर कहलाये, वे सब नपुंसक हैं। आहाहा! वापस वहाँ नरक में जानेवाले हैं। आहाहा! अभी नरक में भी नपुंसकवेद है। समझ में आया? आहाहा! यह सब राजा, महाराजा, वहाँ नरक में जाते हैं। पार्लियामेन्ट भरती है वहाँ। आहाहा!

मुमुक्षु : एक-दूसरे एक-दूसरे को मारे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! मारे, वह स्वयं भी महादुःखी है। उसकी उष्णता का एक कण लाकर यहाँ मनुष्यक्षेत्र में रखे तो दस योजन के लोग जलकर राख हो जायें। भाई! इसने सुना नहीं, कहाँ काल बिताया है। उसमें कहीं काल बिताया और वह काल कैसे बिताया, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा! एक राई जितना कण लावे वहाँ का अग्नि का यहाँ (तो) दस योजन के लोग जलकर राख हो जायें। प्रभु! तूने वहाँ अनन्त काल व्यतीत किया है। आहाहा! भाई! तू भूल गया। तेरी स्वाधीन चीज़ को तू भूल गया। आहाहा! राग है, वह पराधीन स्वयं ने किया हुआ भाव है। पर ने किया हुआ नहीं परन्तु पराधीन—पर के आधीन होकर किया हुआ भाव है। उससे स्वाधीन दशा प्रगट हो, ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा! देखो न संक्षिप्त में कितना कहा है! हें!

जिसका मन विषय से चंचल न हो,.... आहाहा! पंचेन्द्रिय के विषयों की ओर के मन का चंचलपना न हो। आहाहा! **उसी को आत्मा का दर्शन होता है।** एक-एक शब्द में कितना भरा है, देखो न! आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने जगत को, करुणा से विकल्प आया है। आहाहा! धर्म के लोभी जीवों के लिये करुणा का विकल्प आया है इसलिए शास्त्र बन गया है। आहाहा! समझ में आया? ओहो! ऐसे भरतक्षेत्र में, वहाँ निर्धनता बाह्य में, अन्तर में निर्धनता। सधन चीज़ की जिसे खबर नहीं, ऐसी निर्धनता के गाँव के गाँव भरे हैं। उसमें ऐसी चीज़ रह गयी। समयसार, परमात्मप्रकाश, यह भगवान का उत्तराधिकार है। आहाहा!

इसमें कहीं बड़ी पण्डिताई की आवश्यकता नहीं है। पण्डित उसे कहते हैं कि जो आत्मा के आनन्द का नाथ है। आहाहा! उस स्वसंवेदनज्ञान द्वारा जिसने जाना, वह पण्डित। समझ में आया? इसमें वाद-विवाद को स्थान भी कहाँ है? आहाहा! नहीं, राग करते-करते होगा। अरे! प्रभु! तू वीतरागीस्वरूप शान्तरस, वह राग दाहस्वरूप, उससे शान्तरस का नाथ प्रगट होगा? आहाहा! शान्त... शान्त... शान्त... आता है न? 'उपशम रस वरसे रे प्रभु तेरे नयन में।' प्रभु की वाणी में उपशमरस झरता है। तीन लोक के नाथ जिनवरदेव, 'उपशम रस वरसे रे प्रभु तेरे नयन में।' आँख में देखो तो शान्तरस बरसता है। आहाहा! ऐसा जो वाणी में भी शान्तरस आवे। देह भी मानो जितने उपशमरसवाले परमाणु हों शान्त, उनका बना हुआ उनका शरीर होता है। आहाहा! अरिहन्त। और जिनकी वाणी शान्त, जिनका शरीर उपशम। आहाहा! और जिनका आत्मा उपशमरस से भरा हुआ भरपूर परिणम गया है।

शुभराग की दाह भी जिसे छूट गयी है। समझ में आया? उसे आत्मा हाथ आवे, ऐसा है—ऐसा कहते हैं। देखा? **उसी को आत्मा का दर्शन होता है।** आहाहा! थोड़े में भी बहुत कहा है। ओहोहो! बारह अंग। भगवान की वाणी बारह अंग का सार थोड़े में भर दिया है। लोगों को संसार के काम के लिये वर्षों के वर्ष व्यतीत करना है पाप के लिये, भटकने के लिये, अरेरे! कहाँ जायेगा? कहाँ पड़ेगा? और इस बात को सुनने के लिये भी समय न ले। आहाहा! और दो घण्टे आये कुछ घण्टे, दो घण्टे सुना, सामायिक की, प्रतिक्रमण किया, यात्रा की, हो गया धर्म—ऐसा माने। अब क्या हो, बापू! आहाहा! तेरा नाथ तो उपशमरस से भरपूर, उस उपशमभाव से प्राप्त होगा। कषाय के उदयभाव से प्राप्त नहीं होगा। आहाहा!

गाथा - १५७

अथ–

२८०) अप्पा परहँ ण मेलविउ मणु मारिवि सहस त्ति।
सो वढ जाएँ किं करइ जासु ण एही सत्ति।।१५७।।

आत्मा परस्य न मेलितः मनो मारयित्वा सहसेति।
स वत्स योगेन किं करोति यस्य न ईद्दशी शक्तिः।।१५७।।

अप्पा इत्यादि। अप्पा अयं प्रत्यक्षीभूतः सविकल्प आत्मा परहं ख्यातिपूजा–लाभप्रभृतिसमस्तमनोरथरुपविकल्पजालरहितस्य विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावस्य परमात्मनः ण मेलविउ न योजितः। किं कृत्वा। मणु मारिवि मिथ्यात्वविषयकषायादि–विकल्पसमूहपरिणतं मनो वीतरागनिर्विकल्पसमाधिशस्त्रेण मारयित्वा सहस ति झटिति सो वढ जोएं किं करइ स पुरुषः वत्स योगेन किं करोति। स कः। जासु ण एही सत्ति यस्येद्दशी मनोमारणशक्तिर्नास्तीति तात्पर्यम्।।१५७।।

आगे यह कहते हैं, कि जिसने शीघ्र ही मन को वशकर आत्मा को परमात्मा से नहीं मिलाया, जिसमें ऐसी शक्ति नहीं है, वह योग से क्या कर सकता है? कुछ भी नहीं कर सकता–

मन को शीघ्र जीतकर आत्मा को परमात्मा से जोड़ो।
जिसमें ऐसी शक्ति नहीं है उसे काम क्या योगों से।।१५७/२८०।।

अन्वयार्थ :– [सहसा मनः मारयित्वा] जिसने शीघ्र ही मन को वश में करके [आत्मा] यह आत्मा [परस्य न मेलितः] परमात्मा में नहीं मिलाया, [वत्स] हे शिष्य, [यस्य] जिसकी [ईदृशी] ऐसी [शक्तिः] शक्ति [न] नहीं है, [सः] वह [योगेन] योग से [किं करोति] क्या कर सकता है?।

भावार्थ :– यह प्रत्यक्षरुप संसारी जीव विकल्प सहित है दशा जिसकी, उसको समस्त विकल्प–जाल रहित निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव परमात्मा से नहीं मिलाया। मिथ्यात्व विषय कषायादि विकल्पों के समूहकर परिणत हुआ जो मन उसको वीतराग निर्विकल्प समाधिरुप शस्त्र से शीघ्र ही मारकर आत्मा को परमात्म से नहीं मिलाया, वह योगी योग

से क्या कर सकता है? कुछ भी नहीं कर सकता। जिसमें मन मारने की शक्ति नहीं है, वह योगी कैसा? योगी तो उसे कहते हैं, कि जो बड़ाई पूजा (अपनी महिमा) और लाभ आदि सब मनोरथरुप विकल्प-जालों से रहित निर्मल ज्ञान दर्शनमयी परमात्मा को देखे, जाने, अनुभव करे। ऐसा मन के मारे बिना नहीं हो सकता, यह निश्चय जानना।।१५७।।

गाथा-१५७ पर प्रवचन

१५७। **आगे यह कहते हैं कि जिसने शीघ्र ही मन को वशकर आत्मा को परमात्मा से नहीं मिलाया,....** आहाहा! शीघ्र। बाद में करूँगा, बाद में करूँगा, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसने शीघ्र मन की चंचलता को बन्द करके। आहाहा! और चंचलता को प्राप्त हुए, वे **आत्मा को परमात्मा से नहीं मिलाया,....** वह आत्मा से नहीं मिल सकेगा। राग के विकल्प की अस्थिरता में जुड़े, वे निर्विकल्प भगवान को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। यह बात है। पाप के विकल्प तो ठीक, परन्तु पुण्य के विकल्प से भी वह नहीं मिलता, ऐसा कहते हैं। वह तो ठीक, परन्तु गुण-गुणी के भेद का जो विकल्प उठे—मैं अबद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, एक हूँ। आता है न? १४३ (गाथा, समयसार)। ऐसा विकल्प है, उससे भी वह प्राप्त नहीं होगा। आहाहा! बापू! मार्ग तो यह एक है। समझ में आया? आहाहा!

नहीं कहा था एक बार? वह सूकर... सूकर। नारणभाई कहते (थे), मैं पारसी के घर गया कुछ। मास्टर थे वहाँ। कौन सा गाँव कहा? गुजरात। मांडळ... मांडळ। मांडळ के थे। वहाँ एक सूकर को जीवित सूकर के पैर बाँधे हुए वे लोहे के सरिया। लोहे के सरिया बाँधकर अग्नि की भट्ठी थी, उसमें जीवित डाला। भाई! जिसे सुनते हुए ऐसा होता है, उसे वेदते हुए क्या होता होगा? आहाहा! पैर हिले-डुले नहीं, इसलिए लोहा के सरिया चारों पैरों को बाँधे। दो पैर आगे, दो पीछे, ऐसे के ऐसे जीवित भट्ठी में अग्नि में डाला। खाने के लिये। जैसे शकरकन्द पके न शकरकन्द—शकरकन्द अग्नि में बाफकर जैसे खाये वैसे। आहाहा! अरे प्रभु! तेरी यह दशा! भाई! मिथ्यात्व के फल

में तो ऐसी दशा है। आहाहा! समझ में आया? शुभभाव के फल में भी स्वर्ग में क्लेश है। क्लेशित होगा भाई वहाँ तो। आहाहा! शुद्धोपयोग के फल में आत्मा मिले, ऐसा है।

यह कहते हैं, देखो १५७।

२८०) अप्पा परहँ ण मेलविउ मणु मारिवि सहस त्ति।
सो वढ जाएँ किं करइ जासु ण एही सत्ति।।१५७।।

अन्वयार्थ—जिसने शीघ्र ही मन को वश करके यह आत्मा परमात्मा में नहीं मिलाया, हे शिष्य! जिसकी ऐसी शक्ति नहीं है, वह योग से क्या कर सकता है? वह मुनिपना लेकर क्या कर सकता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! साधुपना लिया, गृहस्थाश्रम छोड़ा, परिवार छोड़ा, पैसे (छोड़े), परन्तु जिसने विकल्प छोड़कर निर्विकल्प किया नहीं आत्मा को उसकी क्या शक्ति, उसकी कहाँ है? आहाहा! है? **जिसकी ऐसी शक्ति नहीं है,....** शुभ-अशुभी विकल्प छोड़कर परमात्मा को प्राप्त होना, वह शक्ति नहीं। **वह योग से क्या कर सकता है?** मुनिपना पालन कर क्या कर सकता है? पंच महाव्रत पाले तो वह सब राग है, विकल्प है। आहाहा! बहुत कठिन बातें, बापू! योग अर्थात् मुनि। मुनि हुआ, हजारों रानियाँ छोड़ीं, पंच महाव्रत पालन करे, वह क्या क्रिया हुई? वह कहाँ धर्मक्रिया है? आहाहा! जिसने विकल्प को छोड़कर भगवान से नहीं मिला, भेंट नहीं हुई, उसकी शक्ति कहाँ है अन्तर में जाने की? उसे बाह्य में राग में भटकने की शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? यह दिगम्बर सन्तों की वाणी है। यह कहीं मिले ऐसी नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, जिसने मन के सम्बन्ध के विकल्प पुण्य-पाप आदि के, (उन्हें) छोड़कर जिसने स्वशक्ति को प्राप्त किया नहीं, ऐसी जिसे शक्ति नहीं, आहाहा! राग को टालकर स्वभाव को प्राप्त करने की शक्ति नहीं, उसे मुनिपना क्या काम करेगा? योग है न, योग? योग अर्थात् मुनि। योगी है न, योगी? जिसने राग के विकल्प में जुड़ान किया है, उसे विकल्परहित आत्मा में जाने की शक्ति नहीं, उसे योग किस काम का? कहते हैं। समझ में आया? वह महीने-महीने के अपवास, पंच महाव्रत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य का पालन, परिग्रह का टुकड़ा—वस्त्र न रखे, ऐसी क्रिया उसे क्या करेगी?

कहते हैं। जिसे पर की ओर के विकल्प से छूटकर स्वभाव को अनुभव करना, ऐसी जिसे शक्ति नहीं, उसके वे पंच महाव्रत के परिणाम क्या करेंगे? कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसी तो वाणी है। श्रीमद् कहते हैं न? दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। आहाहा! श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस ठण्डा होता गया। आहाहा! मारफाट दो टुकड़े करते हैं।

जिसे विकल्प में से छूटकर, शुभाशुभ दोनों विकल्प, हों! और अन्तर में अनुभव की शक्ति नहीं, उसकी शक्ति नहीं, वह शक्ति बिना का पामर है। आहाहा! शब्द है? **जिसने शीघ्र ही मन को वश में करके यह आत्मा परमात्मा में नहीं मिलाया, हे शिष्य! जिसकी ऐसी शक्ति नहीं है,....** आहाहा! राग से रहित होकर स्वरूप की प्राप्ति की जिसे शक्ति नहीं, उसकी वह मन-वचन-कषाय की क्रिया आदि जो शुभादि की, महाव्रतादि की, क्या करेगी कहते हैं? ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुश्किल से समय मिला हो बेचारे को घण्टे, दो घण्टे। अब उसमें ऐसी बात सुनते, इसलिए कुछ बैठना मुश्किल पड़े। अरे! यह तो एकान्त कहते हैं। आत्मा ऐसा हो, ऐसा हो। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि पूजा, भक्ति, व्रत और तप। उसका जो विकल्प है, वह तो सब राग की खान है। आहाहा! उस राग की खानवाला विकल्प छोड़कर अन्दर में न जाये, उसे शक्ति कहाँ है अन्दर जाने की? शक्ति बिना का, वीर्य बिना का है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? **शक्ति नहीं है, वह योग से क्या कर सकता है?** आहाहा! जिसे पंच महाव्रत साधु के अट्ठाईस मूलगुण जो द्रव्यलिंग के कहलाते हैं बाह्य, उसमें से निकलकर अन्दर में जाने की शक्ति नहीं, उसे यह क्रियायें योग क्या करेगा उसे? आहाहा! चार गति में भटकेगा। आहाहा!

जिसे यह शुभ-अशुभभाव विकल्प राग है यह तो। अव्रत का विकल्प, वह पाप है और व्रत का विकल्प, वह पुण्य है, दोनों विकल्प राग हैं। आहाहा! उस विकल्प के जाल में से छूटकर स्वभाव को प्राप्त नहीं करता, वह शक्तिरहित प्राणी, इस योग से उसे क्या लाभ होगा? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, भाई! चाहे जो मानो, चाहे जो कहो, तुमको ठीक लगे ऐसा करो। मार्ग तो यह है। रुचे वहाँ जाओ, रुचे वहाँ जाओ, न रुचे वहाँ छोड़ दो उसे। आहाहा! क्या कहा?

भगवान परमात्मस्वरूप, परमात्मप्रकाश है न! परमात्मस्वरूप को मिलने की शक्ति नहीं, उसे मिलने की शक्ति नहीं, उसे बाहर के क्रियाकाण्ड के शुभभाव उसे क्या करेंगे? योग की क्रियायें उसे क्या करेंगी? भटकायेंगी। आहाहा! ऐसा कहते हैं। कठिन लगे। ऐसा स्पष्टीकरण होने से लोगों को ऐसा लगता है कि यह सोनगढ़ की बात है। बापू! भगवान! यह तो सन्तों की वाणी है। दिगम्बर सन्त आत्मज्ञानी, ध्यानी, आनन्द में मस्त, जंगल में बसनेवाले। आहाहा! उनकी यह वाणी है। क्या कहते हैं? जिसे संकल्प-विकल्प को छोड़कर अन्तर में जाने की शक्ति नहीं। आहाहा! उसे तो वीर्यहीन कहा। वीर्यवान तो उसे कहते हैं, आहाहा! यह लिया, जो पुण्य-पाप के विकल्प को छोड़कर अन्तर में वीर्य ले जाये, ऐसी जिसे शक्ति नहीं, उसका वीर्य पुण्य-पाप में रुका हुआ है, वह क्या करेगा उसे? ऐसी बात है, बापू! आहाहा! भाषा शक्ति ली है न, देखो न! आहाहा! आहाहा!

'न योजितः। किं कृत्वा' आहाहा! उसने क्या किया? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **कुछ भी नहीं कर सकता।** आहाहा! **'सहसा मनः मारयित्वा' जिसने शीघ्र ही.... 'सहसा'** का अर्थ शीघ्र किया। **शीघ्र ही मन को वश में करके यह आत्मा.... 'परस्य न मेलितः' 'परस्य' परमात्मा में नहीं मिलाता.... 'परस्य'** अर्थात् परमात्मा। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव आनन्द का नाथ प्रभु, भगवत्स्वरूप आत्मा के साथ जिसने परिणति को नहीं मिलाया। आहाहा! **परमात्मा में नहीं मिलाता, हे शिष्य,....** उसमें बच्चे कहा था। **जिसकी ऐसी शक्ति नहीं है,....** आहाहा! उसे ऐसे शुभाशुभ क्रियाकाण्ड में रुकने से, वहाँ से हटकर अन्दर में प्राप्त करने की शक्ति नहीं है। आहाहा! किस प्रकार कहा? एक ओर भगवान निर्विकल्प चीज़ पड़ी है... आहाहा! तथा एक ओर विकल्प की जाल खड़ी होती है। कहते हैं कि यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के विकल्प, जिसे वे विकल्प टालकर अन्दर में भगवान से मिलने की शक्ति नहीं हुई... आहाहा! वह शक्ति नहीं, वह तो नपुंसक है। शक्ति नहीं, ऐसा कहा है न? अन्तिम है न? **'जासु ण एही सत्ति'** पाठ है शक्ति। आहाहा! किस शैली से बात की है!

वीर्यगुण का—शक्ति का कार्य क्या? कि स्वरूप की निर्मल रचना करे, वह वीर्यगुण का कार्य है। शुभ-अशुभभाव करे, वह वीर्यगुण का कार्य नहीं। आहाहा!

किस प्रकार से बात को सिद्ध करते हैं? समझ में आया? ४७ शक्तियाँ हैं या नहीं? शक्ति है न यहाँ? रमेशचन्दजी! शक्ति... शक्ति ४७। उसमें वीर्यशक्ति है। वहाँ ऐसा लिया है वीर्यशक्ति। स्वरूप की रचना करे, वह वीर्यशक्ति। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी पर्याय को रचे, वह वीर्य। आहाहा! क्योंकि वह वीर्य नाम का गुझा अनादि आत्मा में निर्मल है। उस निर्मल परिणति को रचे तो वह वीर्यगुण कहलाता है, परन्तु राग की रचना में रुके और आत्मा में न जाये, उस शक्ति को क्या कहना? कहते हैं। वह तेरा योग क्या करेगा तुझे? आहाहा! पुण्यभाव में जुड़ा है, पुण्यभाव में—क्रिया में रुक गया और उसे तोड़कर अन्दर में न गया, वह तेरी शक्ति क्या कहलाये? तुझे वह शक्ति नहीं, तेरा वह बल नहीं, तेरा वह सामर्थ्य नहीं। आहाहा! राग में रुकना, वह तेरा बल नहीं। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! चारों ओर से देखो तो सन्तों की वाणी का मेल कितना है! आहाहा! यहाँ कहते हैं कि वीर्य का गुण स्वरूप की रचना करे, वह वीर्यशक्ति। यहाँ यह कहते हैं कि स्वरूप की रचना करना न आवे, वह शक्ति क्या है? उस पुण्य की क्रिया में रुकने से स्व में जाने की शक्ति नहीं, वह वीर्य कहाँ है तेरा? आहाहा! जयसुखभाई! ऐसी बातें हैं। वीतराग मार्ग ऐसा है। आहाहा! वहाँ कायर का काम नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, भाई! परमात्मप्रकाश। हमारे चेतनजी कहते हैं न, एक-एक गाथा तो ऐसी आती है। हें, चेतनजी! आहाहा! भगवान! तू एक बार सुन न! आहाहा! तेरी योग की क्रिया जो विकल्प की है, उसे तोड़कर अन्दर में जाता नहीं, उस शक्ति को क्या कहना? कहते हैं। वह तेरी शक्ति—तेरा बल ही नहीं, तेरा वीर्य ही नहीं वह। समझ में आया? आहाहा! कहाँ चला गया भाई! हमारा मनसुख। समझ में आया? अब उसके सिर पर आ पड़ी दुकान, वह फँसा है। नहीं तो वह निवृत्ति लेनेवाला था। तीनों अलग हो गये। आहाहा!

क्या कहा? आहाहा! **हे वत्स, जिसकी ऐसी शक्ति नहीं है,....** आहाहा! विकल्प से छूटकर स्वरूप को प्राप्त करना, ऐसी जिसकी शक्ति नहीं। आहाहा! ऐसा कहा न भाई! आहाहा! क्या वाणी वह वाणी है न! दिगम्बर सन्तों की यह वाणी रामबाण वाणी है। कायरों को, पामरों को तो सुनते हुए कठिन पड़े, काँप उठे। आहाहा! कहते हैं,

प्रभु! एक बार सुन। जिसे विकल्प तोड़कर भगवान से मिलना नहीं आता, आहाहा! भगवान अर्थात् आत्मा, हों! उससे मिलना नहीं आता, उस शक्ति को क्या कहना, कहते हैं।आहाहा! वीर्यहीन है। आहाहा! उस योग की क्रिया में दया, दान, व्रत में भी वह तू वीर्यहीन है। आहाहा! समझ में आया? मानो, न मानो, उस पर संख्या थोड़ी हो, बहुत हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। मार्ग यह है। समझ में आया? इस प्रकार से तो बात करते हैं। आहाहा!

परमात्मा में नहीं मिलाया,.... आहाहा! जिसने आत्मज्ञान नहीं किया, योग की क्रिया में से छूटकर जिसने आत्मदर्शन नहीं किया, आहाहा! उसकी योग की क्रिया पंच महाव्रत और आदि क्या करेंगे तुझे? भाई! आहाहा! देखो, यह योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि १३०० वर्ष पहले हुए, १३०० वर्ष पहले। कुन्दकुन्दाचार्य नग्न दिगम्बर मुनि २००० वर्ष पहले हुए। संवत् ४९। वे तो भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहे और फिर यह बनाये समयसारादि। आहाहा! तीन लोक के नाथ का यह हुकम है। आहाहा! तुमको— पामरों को न बैठे, इससे प्रभुता कहीं चली जाये, ऐसी नहीं। आहाहा! प्रभुता को प्राप्त करने के लिये विकल्प तोड़कर जाना, वह प्रभुता को प्राप्त करने का मार्ग है। आहाहा! विकल्प में रुकना पामर, उसमें अन्दर भगवान से मिलने की शक्ति नहीं। वह तेरी विकल्प की क्रिया क्या करेंगी तुझे? आहाहा! कहो, भगवानजीभाई! ऐसी वस्तु है। आहाहा! पड़ी नहीं उन्हें कोई मुनि को कि ऐसी बातें करेंगे और लोगों को नहीं बैठेगी और लोग कहेंगे कि यह महाराज तो पागल जैसी बातें करते हैं। कहो, बात तो यह है।

शक्ति नहीं है, वह योग से क्या कर सकता है? आहाहा! धर्मी कैसा? आहाहा! वह बाबा योग नहीं करते? वह योग कहाँ था? धूल में भी नहीं वहाँ। वहाँ धर्म कैसा अज्ञानी को? आहाहा! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा अन्दर शुद्ध कहा, उसे न प्राप्त करे और विकल्प में रुके, वह तेरी शक्ति तुझे कौन कहे? तेरा योग क्या करेगा तुझे? भटक मरेगा। आहाहा! ऐसा कहकर विकल्प से रहित प्राप्त कर तो तुझे मोक्ष होगा। विकल्प में रुकेगा तो तेरा कुछ कार्य नहीं होगा और मरकर जायेगा, वह की वह दशा। चौरासी के अवतार हुए, वह के वह हैं अवतार, बापू! आहाहा! समझ में आया?

योग से क्या कर सकता है ? ऐसा कहकर व्यवहार के क्रियाकाण्ड का तेरा राग वह क्या कर सकेगा तुझे ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसमें निर्विकल्प परिणति से आत्मा की प्राप्ति न हो, ऐसी शक्ति यदि नहीं तो तेरी शक्ति राग में रुकी, उससे तुझे क्या कार्य हुआ ? आहाहा! मुनियों की वाणी तो देखो! कायर का तो कलेजा काँपे कि यह एकान्त है रे एकान्त है, ऐसा कहे। कहो, बापू कहे। अन्तर में जाने के लिये विकल्प के आश्रय की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। विकल्परहित होकर जाया जायेगा और तू विकल्प में रुका है, वह तेरा योग किस काम का ? कहो, सुजानमलजी! आहाहा! भावार्थ कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, माघ कृष्ण ०५, मंगलवार
दिनांक- ०८-०२-१९७७, गाथा - १५७, १५८, प्रवचन-२१०

परमात्मप्रकाश, १५७ गाथा का भावार्थ। आत्मा यह वस्तु है अन्दर आत्मा, वह कैसे प्राप्त हो यह बात है। सूक्ष्म बात है। अनन्त काल में इसने सच्चिदानन्दस्वरूप स्वयं आत्मा है। सत्, चिद् और ज्ञानानन्द पदार्थ। वह यहाँ कहते हैं। **यह प्रत्यक्षरूप संसारी जीव विकल्प सहित है दशा जिसकी,....** क्या कहते हैं? जिसे पुण्य-पाप के राग के विकल्पसहित संसारी प्राणी अनादि से है। **उसको समस्त विकल्प-जाल रहित....** आत्मा तो विकल्पजाल से रहित अन्दर है। आहाहा! **निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव....** निर्मल ज्ञान-दर्शन ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव, वह विकल्प जाल से प्राप्त नहीं हो सकता। आहाहा! चाहे तो दया के, दान के, भक्ति के, व्रत के, तप के, विकल्प हों, वह सब राग है। आहाहा! शुभयोग की क्रिया जितनी राग मन्द की, विकारी भाव, उससे आत्मा प्राप्त नहीं होता। अर्थात् कि उससे आत्मा की सुख की प्राप्ति, भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी प्राप्ति उसे नहीं होती। आहाहा! यह कहते हैं, देखा!

निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव परमात्मा से नहीं मिलाया। आहाहा! सूक्ष्म बात है। पुण्य और पाप के भाव शुभ-अशुभभाव, वह संकल्प-विकल्प सब राग है। राग में रहने से रागरहित भगवान आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। आहाहा! मूल पाठ यह है न! जिसकी शक्ति विकल्प अर्थात् रागरहित आत्मा में जाने की नहीं, उसकी योगक्रिया चाहे जितनी करे, आहाहा! अपवास करे, महीने-महीने के, व्रत करे, दया, दान, अहिंसा, वह तो सब योग की मन की क्रिया है। उस मन की क्रिया से आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। ऐसी बात है, सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! समझ में आया? यह लोग कहते हैं न व्यवहार है, वह कर्ता और निश्चय, वह कार्य। व्यवहार होता अवश्य है। रागरहित स्वरूप की प्राप्ति होने पर, आत्मा का साक्षात्कार—अनुभव होने पर, पूर्ण वीतरागता न हो, वहाँ ऐसा शुभभाव व्यवहार होता है। समझ में आया? परन्तु उस व्यवहार से निश्चय की प्राप्ति होती है, ऐसा नहीं है। यह बड़ा झगड़ा यह है।

मुमुक्षु : इसका कुछ समाधान?

पूज्य गुरुदेवश्री : समाधान क्या हो? यह कहीं बनियागिरी है कि पाँच हजार रुपये माँगते हैं। वह पटेल कहे, हमारे पास मुश्किल से एक हजार रुपया है। भैंस और बैल बेचे तो। ऐसे करते हुए वह समझता है कि यह दो हजार से तो कम नहीं लेगा। वह बनिया ऐसा कहता है कि पाँच हजार बिना एक पाई भी कम नहीं लूँगा। फिर वह चार हजार करे, वह और बारह सौ करे, ऐसे करते-करते दो हजार आवे दोनों इकट्ठे। ऐसा होगा यह? आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी प्राप्ति के लिये तो कोई विकल्प, राग, वह कारण है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, **संसारी जीव विकल्प सहित है दशा जिसकी, उसको समस्त विकल्पजाल रहित....** आहाहा! अकेला ज्ञाता-दृष्टा भगवान आत्मा, ऐसा कहा न? ज्ञान, दर्शनस्वरूप आत्मा। जानन, देखन ऐसा स्वरूप भगवान आत्मा का, परन्तु पामर को कैसे बैठे, यह मैं भगवान हूँ। आहाहा! **निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव परमात्मा से....** परमस्वरूप भगवान आत्मा को विकल्परहित होकर **नहीं मिलाया। मिथ्यात्व विषय कषायादि विकल्पों के समूहकर....** आहाहा! मैं पर का कर सकता हूँ, पर की दया पाल सकता हूँ, पर को सुविधा दे सकता हूँ, ऐसे विकल्प के जालों में रचपचता हुआ, वह तो सब राग की जाल है। आहाहा! यह विषय कषाय, भ्रमणा के विकल्प हैं, और विषय कषाय परसन्मुख के झुकाववाले विषय और कषाय के भाव, उन विकल्पों का समूह। आहाहा! वह राग की विकल्प की दशा, वह राग की है। राग की दशा का समूह, उसमें **परिणत हुआ जो मन, उसको वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप शस्त्र से शीघ्र ही मारकर....** आहाहा! बहुत मुद्दे की रकम भाई यहाँ तो। आहाहा! समझ में आया?

जिसे धर्म करना हो, जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करना हो, जिसे धर्म की पहली शुरुआत प्राप्त करनी हो, उसे पर के और भ्रान्ति के विषय, कषाय के विकल्पों को, आहाहा! **परिणत हुआ जो मन, उसको वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप शस्त्र से शीघ्र ही मारकर....** आहाहा! गजब बात! परसन्मुख के जितने राग के भाव हैं, वह सब विकल्प जाल है। आहाहा! मकड़ी जैसे मुख में से लार निकालकर फँस जाती है। आहाहा! उसी प्रकार यह लार निकालकर फँस जाता है पर में। ऐसे विकल्प की राग

की जाल को... आहाहा! **निर्विकल्प समाधिरूप शस्त्र.... वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप शस्त्र....** आहाहा! उस राग से भिन्न पड़कर निर्विकल्प अर्थात् वीतरागी अभेददशा ऐसी समाधि अर्थात् शान्ति। यह समाधि वह बाबा करे, वह नहीं। यह तो अन्तर आनन्द की शान्ति। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! इसमें बड़ा झगड़े चले। व्यवहार से होता है, वरना तुम्हारा एकान्त है। कह भाई उनको—प्रभु को। परमात्मप्रकाशकार तो ऐसा कहते हैं। हें! आहाहा!

वह विकल्प की जाल राग की, उसमें फँसा हुआ, उसे वीतराग निर्विकल्प समाधि के शस्त्र से। आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान अन्दर, उसे वीतरागी परिणति द्वारा अनुभव करके। आहाहा! वीतरागी परिणति द्वारा उस विकल्प की जाल को छेद। दूसरा कोई उपाय नहीं। कर्म को छेद, यह यहाँ नहीं लिया। विकल्प होता है, वह कर्म से होता है, ऐसा भी नहीं, तथा राग को छेदने के लिये कर्म को छेद तो राग छिदेगा, ऐसा भी नहीं। आहाहा! चिल्लाहट मचाते हैं न सब। जैन में तो यह, कर्म के कारण भटकता है, कर्म के कारण यह होता है और कर्म के कारण यह होता है। 'कर्म बेचारे कौन? भूल मेरी अधिकाई।' कर्म जड़ है। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, चैतन्य जागृतस्वरूप है। आहाहा! उसे एक बार रागरहित निर्विकल्प अभेद श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र से उस विकल्प के जाल को छेदे। आहाहा! व्यय कर और निर्विकल्पदशा को उत्पन्न कर। आहाहा! ऐसी बातें हैं। उसमें तो यह ही कहा व्यवहार से होता है—व्यवहार से होता है और कर्म निमित्त—प्रेरक निमित्त है। जैसे ध्वजा हिलती है न ध्वजा, हवा के कारण (इसलिए) हवा प्रेरक है। प्रेरक तो निमित्त की गति है, इसलिए प्रेरक कहते हैं। पर के लिए तो सभी निमित्त उदास ही है।

मुमुक्षु : हवा तो छूती है ध्वजा को।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ छूती नहीं। बहुत सूक्ष्म बात, भाई! ध्वजा ऐसे-ऐसे हिलती है, वह हवा के कारण नहीं। हवा के कारण हो तो लोहे का यह हिलना चाहिए।

मुमुक्षु : ध्वजा....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्वजा लोहे की रखो तो ध्वजा ऐसे-ऐसे हिलनी चाहिए।

आहाहा! वह हिलने की योग्यता स्वयं की है, इसलिए हिलती है। ऐसी बात बैठना। अरे! ध्वजा है न बड़ी! उसमें कितनी ध्वजा की ... अभी, यहाँ पीपल की उस ओर है न। किसकी है? ...कुछ नहीं था। शंकर का मन्दिर और बड़ी ध्वजायें सात-आठ... आहाहा! फर्र... फर्र... फर्र किया ही करती है। इस पीपल की उस ओर है।

यहाँ कहते हैं कि एक बार शान्ति से सुन। भाई! ध्वजा है, वह कोई चीज़ है या नहीं? कोई पुद्गल है या नहीं? परमाणु है या नहीं? उन परमाणुओं की बनी हुई एक ध्वजा है या नहीं? तो वह परमाणुओं की जो ऐसे हिलती है, वह स्वयं से हिलती है या वायु से हिलती है? प्रत्यक्ष दिखता है, उसे कहे नहीं। परन्तु क्या दिखता है तुझे? वह तो वायु को देखता है। उसे देखता है? आहाहा! इसी प्रकार आत्मा में विकार होता है, पुण्य और पाप, काम और क्रोध आदि, वह कर्म के कारण होता है, ऐसा नहीं। तू स्वयं अपराधी होकर विकार उत्पन्न करता है। इसलिए यह कहा न? **विकल्पों के समूहकर परिणत हुआ....** कर्म से परिणत हुआ, ऐसा नहीं कहा वहाँ। समझ में आया? आहाहा! टीका भी कैसी सरस लिखी है! राग की जाल एक के बाद एक, एक के बाद एक राग किया ही करता है। ऐसे राग के समूह से परिणत हुआ। राग की दशाओं से अवस्थारूप हुआ। कर्म के कारण नहीं। आहाहा! है न उसमें यह? **विकल्पों के समूहकर परिणत हुआ....** कर्म के निमित्त से परिणत हुआ विकल्प, ऐसा नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात भाई!

जो मन उसको वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप शस्त्र से.... वहाँ ऐसा नहीं कहा कि विकल्प से होता है। यह तो विकल्प को छेदने से निर्विकल्प हो, ऐसा कहते हैं। और वहाँ भी ऐसा नहीं कहा कि कर्म कुछ मार्ग दे तो यहाँ निर्विकल्प हो। आहाहा! ऐसी बात है। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है, वह प्रभु। उसे खबर नहीं। अनादि से वह भूला है और भूल में भगवान खो गया है उसे। आहाहा! क्या है आत्माराम नहीं? भगवान की। भगवान भूला की खिड़की है। उसके दादा की भगवान भूला की खिड़की में रहता है आत्माराम। यह आत्माराम भगवान आत्मा, वह राग की दिशा जो भगवान भूला, वह भूल की खिड़की में चढ़ गया है। आहाहा! उसे कहते हैं, एकबार राग अर्थात् विकल्प की वृत्ति उत्थान होती है, उससे रहित वीतरागी निर्विकल्प शान्ति द्वारा **शस्त्र से शीघ्र...** यह शस्त्र। आहाहा! ऐसी बात है। परन्तु उसमें कितने दान,

दया से ऐसा हो? यह करोड़ दान दे तो उसमें होगा या नहीं कुछ? मुफ्त के हैं करोड़ रुपये?

मुमुक्षु : वे रुपये रखकर ऐसा धर्म होता हो तो क्या दिक्कत?

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपये तो जड़ हैं, प्रभु! मिट्टी हैं। मिट्टी से आत्मा को माटीपना आवे? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि उसे वीतरागी निर्विकल्प अरागी दशा द्वारा विकल्प का परिणमित, वह तेरा है, उसे छेद। आहाहा! एकबार उसे छेदने से... हो, ऐसा कहते। ...होता है। यह आता है इसलिए लोग वहाँ लगे, 'निश्चय रखकर लक्ष्य में साधन करना सोय।' साधन यह, दूसरे होते नहीं। कहने का आशय तो यह है वहाँ। लोगों को खड़ा रखा है न! यहाँ तो भगवान तो आत्मा आनन्दस्वरूप निर्विकल्प स्वरूप, अभेदस्वरूप, शान्तस्वरूप, वीतरागस्वरूप, उसे तो वीतरागी परिणति द्वारा ही स्वयं पकड़ सकता है। उसकी—भेंट भगवान की करनी हो—आत्मा की तो वीतरागी अरागी दशा से ही उसकी भेंट होती है। विकल्प की दशा छेदने से उसकी भेंट करने से होती है। आहाहा! अर्थात्? परसन्मुख के विकल्प की जाल का लक्ष्य छोड़ने से त्रिकाली नाथ के लक्ष्य को करने से वह विकारी जाल उत्पन्न नहीं होती, वह छिद जाती है और आत्मा प्राप्त हुआ, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! अब ऐसी बातें! कठिन पड़े लोगों को बेचारों को। वाड़ा में पड़े हैं, दया करो, दान करो, भक्ति करो, पूजा करो, व्रत करो, यात्रा करो। यह यात्रा तो यहाँ है, बड़ा तीर्थ तो तू है। आहाहा! तिरने के उपाय से भरपूर भगवान आत्मा तीर्थ है। आहाहा! डूबने के उपाय तो सब विकल्प हैं। आहाहा! समझ में आया?

शीघ्र... वापस देखा! एकदम भगवान आत्मा में देख, अन्दर में जा, तुझे निर्विकल्प दशा प्रगट होगी। इससे विकल्प के जाल छिद जायेंगे। शीघ्र कर, उतावल कर। आहाहा! शाम का अवसर हो और खेतों में और समय हुआ हो आधा घण्टा रहा हो तो कहे, उतावल करो। दिन अस्त होने की तैयारी हो गयी है, झट करो... झट करो। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि आत्मा की ओर झुकने में शीघ्रता करो। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा को परमात्मा से नहीं मिलाया,.... आहाहा! ऐसी वीतरागी समाधि से जिसने **आत्मा को परमात्मा से नहीं मिलाया,....** आहाहा! **वह योगी योग से क्या कर सकता है?** वह योग की क्रिया से क्या कर सकता है? ऐसा कहते हैं। मन लिया है न मन? अर्थात् योग। मन का योग। योगी, वह मन का जुड़ान। शुभयोग... शुभयोग अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, ऐसा विकल्प, ऐसा जो शुभयोग, उसे यह विकल्प... उस शुभयोग से क्या करेगा वह? आहाहा! ऐसी बातें। पूरी दुनिया को, क्या करना, इसमें सूझता नहीं, एक व्यक्ति ऐसा कहता था, सेठ ऐसा कहते थे, भगवानदास। परन्तु यह करना नहीं यह अन्दर? आहाहा! पर का आश्रय—लक्ष्य को छोड़कर और स्व के आश्रय से निर्विकल्पदशा हो, वहाँ विकल्प उत्पन्न नहीं होता, उसे छेदा, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! और उस वीतरागी निर्विकल्पदशा द्वारा आत्मा का मिलाप हो सकता है। समझ में आया? आहाहा!

एक बार कहा था, एक धारशीभाई गढडा के थे। गाँव में बड़ा आया यूरोपियन था बड़ा। अब उसे मिलना। वह स्वयं साधारण बनिया। पैसेवाला सही २५-५० लाख होंगे। परन्तु उसे कोई पहिचाने नहीं। यहाँ तो गढडा के। इसलिए एक हजार का नोट लेकर गया हजार-हजार। हजार का है प्रायः। जीवणधारशी। जीवणभाई गढडा के। केरोसिन की बड़ी... करोड़पति कहलाते थे, परन्तु होंगे ४०, ५० लाख। ... करना हो, वह पहिचाने नहीं और यह बनिया। एक हजार रुपये लेकर गया। नोट रखा उसके हाथ में। शेक हैण्ड करे।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, वीतराग की परिणति की नोट अन्दर रखे तो तुझे शेक हैण्ड होगा, मिलाप होगा आत्मा में। आहाहा! कभी पहिचानता न हो, अब उसके पास जाना कैसे? अब यूरोपियन व्यक्ति हो बड़ा। २५-२५, ३० हजार, ५० हजार का वेतनवाला बड़ा व्यक्ति था। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, महाप्रभु अन्दर विराजता है। आहाहा! जिसके लिये वीतरागी परिणति के भाव से उससे भेंट मिले, ऐसा है। आहाहा! इसके अतिरिक्त किसी प्रकार से आत्मा प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। और आत्मा न मिले, तब तक इसे धर्म बिल्कुल नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

वह योगी योग से क्या कर सकता है? आहाहा! जिसने अशुभयोग टाला और

शुभयोग में आया, उस योगी को इस स्वरूप में गये बिना, उसे क्या प्राप्त हो? आहाहा! योग से प्राप्त हो? ऐसा कहते हैं। शुभयोग की क्रिया से आत्मा मिले? आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। जयसुखभाई! उसे पहले जानना तो चाहिए न? आहाहा! दूसरा कोई उपाय नहीं। आहाहा! चौरासी के अवतार में भटक-भटक कर मर गया है। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, काई, निगोद, एक श्वास में अठारह भव। एक श्वास इतना ले, वहाँ अठारह भव करे। आहाहा! उसके दुःख कितने होंगे? नारकी के दुःख तो संयोग की अपेक्षा से दुःख कहलाते हैं। संयोग में वेदन, उसे संयोग पर लक्ष्य बहुत है। उसका वेदन। उसको तो संयोग ही नहीं। परिणति ही घट गई है। आहाहा!

भगवान तो अनन्त गुण और शक्ति का सागर, उसकी पर्याय की परिणति अक्षर के अनन्तवें भाग रह गयी निगोद में। आहाहा! लहसुन और प्याज, वह सब जीव है अन्दर अनन्त। उसे साधारण प्राणी जीव है, यह मान्यता कर सकता नहीं, इतनी उसकी हीन दशा हो गयी है। आहाहा! ऐसी दशा में से निकलना हो तो, आहाहा! अन्तर्मुख होने में वीतराग परिणति की आवश्यकता है, कहते हैं। योग की, राग की क्रिया उसमें काम नहीं करती तुझे। ऐसा मार्ग है। आहाहा!

कुछ भी नहीं कर सकता। योग की क्रिया, मन के जुड़ानवाली क्रिया कुछ नहीं कर सकती तुझे। आहाहा! भगवान योग से पार अयोगस्वरूप है अन्दर। आहाहा! उसे यह योग की क्रिया क्या कर सकती है तुझे? ओहोहो! दिगम्बर सन्तों ने भी चोट मारी है न! आहाहा! उन्हें कहाँ करुणा आयी और विकल्प उठा। आहाहा! भाई! मार्ग तो यह है न प्रभु! जो मार्ग है, वहाँ जा तो मार्ग का फल आत्मा मिले। जो मार्ग रागादि मार्ग नहीं, वहाँ जाये तो आत्मा कहाँ मिले वहाँ? वहाँ तो दुःख मिलेगा। आहाहा! श्रद्धा को बदल दे, ऐसा कहते हैं। जो श्रद्धा परसन्मुख झुकी हुई है, उसे निर्विकल्प करके अन्दर में झुका। शशीभाई! ऐसा मार्ग है। लोगों को रस पड़ता नहीं। यह बाहर के मार डाले भभका सब। पाँच, पच्चीस लाख, पैसे, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ हुए। बड़ा बँगला बनाया, फिर वास्तु किया, दस हजार खर्च किये हों, बड़े-बड़े कारकून और सम्हाल करनेवाले बड़े जो हों अधिकारियों को बुलावे। धामधूम इसलिए तुम्हारे, ओहोहो! देख लो पागल की जमात। भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : इकट्ठे हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : इकट्ठे हो न। तुम्हारे मकान थे वहाँ बहुत। बेच दिये, नहीं? तुम्हारे मकान थे न मोम्बासा। आहाहा! कहो। उसमें वास्तु करे, बड़े-बड़े लोग इकट्ठे हों, प्रसन्न... प्रसन्न। लापसी खिलाये, उसमें घी डाले। आहाहा! अरे! पागल की जमात इकट्ठी हुई है बापू!

मुमुक्षु : त्यागी तो ऐसा कहे कि.... भोगी हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : भोगी अर्थात्? जैसे आत्मा आनन्द का नाथ भोगा जाता है, उसमें राग में। आहाहा! राग का भोग लेता है, वह प्रभु का भोग नहीं लेता। आहाहा!

योगी योग से क्या कर सकता है? आहाहा! जिसने निर्विकल्प वीतरागीदशा करके आत्मा को प्राप्त नहीं किया, उसे इस विकल्प से कैसे प्राप्त हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह सब पण्डित अभी हैं, उनके साथ सब विवाद। काशी के पढ़े हुए सब, धूल में भी नहीं, सुना न! आहाहा!

मुमुक्षु : काशी में पढ़े परन्तु आत्मा में अनपढ़ है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बापू! तेरा पठन अलग प्रकार का, नाथ! तेरी दशा प्राप्त करने के लिये प्रभु! तेरी दशा अलग होती है। आहाहा! क्यों?-कि जितने विकल्प हैं दया, दान, व्रत, भक्ति उनका लक्ष्य दशा तो पर के ऊपर है। उस दशा की दिशा पर के ऊपर है। उसे छेदने के लिये अपनी दशा स्वभाव सन्मुख करे तो वह छिद जाये अर्थात् उत्पन्न न हो। आहाहा! तब भगवान का ज्ञान और यह साक्षात्कार हो। तब उसे आनन्द का स्वाद आवे। आहाहा! समझ में आया?

जिसमें मन मारने की शक्ति नहीं है,.... आहाहा! जिसे राग को मार डालने की शक्ति नहीं, राग को उत्पन्न करने की जो शक्ति है, वह नपुंसक शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। 'प्रभु का मारग है शूरों का, कायर का वहाँ काम नहीं।' आहाहा! 'रणे चढ़े रजपूत छुपे नहीं।' इसी प्रकार आत्मा में चढ़े, वह कहीं छुपा नहीं रहता, बापू! आहाहा! भगवान प्रसिद्धि पावे वहाँ। यह लोग कहते हैं न कि समकित है, उसे केवली जाने, अपने को खबर नहीं पड़ती। यह वे गजब करते हैं न!

आहाहा! यहाँ तो कहे, वह तो निर्विकल्प परिणति द्वारा है, अभी वह खबर न पड़े उसे? आहाहा! समझ में आया?

योगी तो उसे कहते हैं कि जो बड़ाई पूजा (अपनी महिमा).... पूजा का। **और लाभ आदि सब मनोरथरूप....** लाभ। करोड़ों रुपये और करोड़ों शिष्य मिले, राजा उनके शिष्य हों। आहाहा! उस सब मनोरथ को छोड़। आहाहा! समझ में आया? **मनोरथरूप विकल्प-जालों से रहित निर्मल ज्ञान-दर्शनमयी परमात्मा को देखे,....** आहाहा! ज्ञान की वर्तमान दशा में उस दशा को परमात्मा की ओर झुकाकर देखे कि यह आत्मा। आहाहा! उसे **जाने,...** स्वयं परमस्वरूप भगवान अन्दर है, उसे जाने, उसे अनुभव करे। **अनुभव करे।** आहाहा! समझ में आया? बाहर की बड़ाई, लाभ, पूजा, दुनिया स्वीकार करे वहाँ, ओहोहो! प्रसन्न... प्रसन्न हो जाये। दुनिया पागल तुझे स्वीकार करे, उसमें तू प्रसन्न हो जाये? पागल तेरी परीक्षा करके तुझे प्रसन्न करे? आहाहा! यह कहते हैं कि वह बड़ाई, पूजा और बाहर की महिमा छोड़ दे। दुनिया तो मानेगी परन्तु तेरी मान्यता सच्ची नहीं होगी। आहाहा!

विकल्प-जालों से रहित निर्मल ज्ञान-दर्शनमयी परमात्मा को देखे,.... देखने के अर्थ में श्रद्धा भी है और देखे, दोनों हैं। उसकी श्रद्धा करे, उसका ज्ञान करे भगवान स्वरूप का, उसमें रमे। **ऐसा मन के मारे बिना नहीं हो सकता,....** मन को मारे बिना भगवान की भेंट और भगवान का ज्ञान, श्रद्धा, अनुभव नहीं हो सकता। आहाहा! ऐसा काम लेना अब। बनियों को मिला जैनधर्म। वे क्षत्रिय थे पहले तो तीर्थंकर राजकुमार। वास्तविक आत्मतत्त्व को जाननेवाले तो बड़े राजकुमार, चक्रवर्ती, तीर्थंकर। आहाहा! जिनका वीर्य और पुण्य दोनों बड़े। बाहर के पुण्य भी बड़े और अन्दर में वीर्य की जागृति बहुत। यह क्षत्रिय का धर्म था, वे स्वीकारते थे तब। लोग ऐसा कहते हैं कि यह बनियों का धर्म, बनियों का धर्म। बनियों का धर्म नहीं, यह तो आत्मा का धर्म है। हें! आहाहा! यह तो आत्मा जिस स्वरूप से है, उसका धर्म अर्थात् आत्मा का धर्म है। बनियों का धर्म कहाँ था यह? यह अनन्त आनन्द का व्यापार करे, वह बनिया। राग का व्यापार करे, वह पागल, हीजड़ा। यह शुभराग का व्यापार करे, वह पावैया, हीजड़ा। बाहर का व्यापार तो वह कब कर सकता है? आहाहा!

इसलिए यहाँ कहा न कि शुभराग से क्या तेरा कल्याण होगा? शुभयोग की क्रिया तू महाव्रत लेकर बैठा मानो, ओहोहो! हजारों रानियाँ छोड़कर शुभराग हुआ। वह शुभराग भी विकल्प की जाल है। आहाहा! निर्विकल्प प्रभु सच्चिदानन्द का नाथ अन्दर विराजता है, वह तो निर्विकल्प से ही प्राप्त हो, ऐसा है। यही पुरुषार्थ है। यह तो उसके वीर्य का मुड़ना, वह पुरुषार्थ है। वीर्य अपने में मुड़े, वह उसका पुरुषार्थ है। वीर्य परसन्मुख मुड़े, वह वीर्य ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। वह तो सीधा-सट्ट कि धर्म करना, रात्रिभोजन नहीं करना, कन्दमूल नहीं खाना, अमुक नहीं करना, लो हो गया धर्म। अरे भाई! धर्म नहीं, बापू! वह तो राग की क्रिया है, भाई! आहाहा! समझ में आया न? आहाहा! देखो! **ऐसा मन के मारे बिना नहीं हो सकता, यह निश्चय जानना।** आहाहा!

गाथा - १५८

अथ–

२८१) अप्पा मेल्लिवि णाणमउ अण्णु जे झायहिँ झाणु।
वढ अण्णाण–वियंभियहँ कउ तहँ केवल–णाणु।।१५८।।

आत्मानं मुक्त्वा ज्ञानमयं अन्यद् ये ध्यायन्ति ध्यानम्।
वत्स अज्ञानविजृम्भितानां कुतः तेषां केवलज्ञानम्।।१५८।।

अप्पा इत्यादि। अप्पा स्वशुद्धात्मानं मेल्लिवि मुक्त्वा। कथंभूतमात्मानम्। णाणमउ सकलविमलकेवलज्ञानाघनन्तगुणनिर्वृतं अण्णु अन्यद्बहिर्द्रव्यालम्बनं जे ये केचन झायहिं ध्यायन्ति। किम्। झाणु ध्यानं वढ वत्स मित्र अण्णाण–वियंभियहं शुद्धात्मानुभूतिविलक्षणा–ज्ञानविजृम्भितानां परिणतानां कउ तहं केवल–णाणु कथं तेषां केवलज्ञानं किंतु नैवेति। अत्र यधपि प्राथमिकानां सविकल्पावस्थायां चित्तस्थितिकरणार्थं विषयकषायरुपदुर्ध्यानवञ्चनार्थं च जिनप्रतिमाक्षरादिकं ध्येयं भवतीति तथापि निश्चयध्यानकाले स्वशुद्धात्मैव ध्येय इति भावार्थः।।१५८।।

आगे ज्ञानमयी आत्मा को छोड़कर जो अन्य पदार्थ का ध्यान करते हैं, वे अज्ञानी हैं, उनको केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकता है? ऐसा निरुपण करते हैं–

ज्ञान स्वभावी निज आत्मा को छोड़ अन्य का ध्यान करे।
आत्मज्ञान के बिना जीव को हो कैवल्य कहो कैसे।।१५८।।

अन्वयार्थ :– [ज्ञानमयं] जो महा निर्मल केवलज्ञानादि अनंतगुणरुप [आत्मानं] आत्मद्रव्य को [मुक्त्वा] छोड़कर [अन्यद्] जड़ पदार्थ परद्रव्य उनका [ये ध्यानम् ध्यायंति] ध्यान लगाते हैं, [वत्स] हे वत्स, वे अज्ञानी हैं, [तेषां अज्ञान विजृंभितानां] उन शुद्धात्मा के ज्ञान से विमुख, कुमति, कुश्रुत, कुअवधिरुप अज्ञान से परिणत हुए जीवों को [केवलज्ञानम् कुतः] केवलज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है? कभी नहीं हो सकती।

भावार्थ :–यधपि विकल्प सहित अवस्था में शुभोपयोगियों को चित्त की स्थिरता के लिये और विषय कषायरुप खोटे ध्यान के रोकने के लिये जिनप्रतिमा तथा णमोकारमंत्र

के अक्षर ध्यावनेयोग्य हैं, तो भी निश्चय ध्यान के समय शुद्ध आत्मा ही ध्यावनेयोग्य है, अन्य नहीं।।१५८।।

गाथा-१५८ पर प्रवचन

१५८। **आगे ज्ञानमयी आत्मा को....** अब क्या कहते हैं? भगवान तो ज्ञानमयी है प्रभु, चैतन्यज्योति है, जागृत ज्योति चैतन्यमय प्रभु। उस **ज्ञानमयी आत्मा को छोड़कर जो अन्य पदार्थ का ध्यान करते हैं,....** भाषा देखो वापस। स्व का आश्रय छोड़कर, पर का आश्रय करे। आहाहा! **वे अज्ञानी हैं, उनको केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकता है?** आहाहा! **ऐसा निरूपण करते हैं**—१५८।

२८१) अप्पा मेल्लिवि णाणमउ अण्णु जे झायहिँ झाणु।
वढ अण्णाण-वियंभियहँ कउ तहँ केवल-णाणु।।१५८।।

'**अप्पा**' छोड़कर कैसा '**अप्पा**'? आहाहा! '**अज्ञानविजृम्भितानां**' वहाँ '**विजृम्भित**' है न? अज्ञान उत्पन्न करनेवाले को। आहाहा!

अन्वयार्थ—जो महा निर्मल केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप.... वह तो केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकता है? वह तो केवल पर्याय कही और यह अब गुण कहते हैं। **निर्मल केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप आत्मद्रव्य को छोड़कर....** आहाहा! भगवान आत्मा तो ज्ञानमय आत्मा। वह राग भी नहीं, पुण्य नहीं, दयामय आत्मा है ही नहीं। आहाहा! **निर्मल केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप आत्मद्रव्य को छोड़कर....** इस ओर केवलज्ञानमयी आदि अनन्त गुणरूप आत्मा को छोड़कर। आहाहा! **जड़ पदार्थ परद्रव्य उनका ध्यान लगाते हैं,....** मूल तो जड़ अर्थात् वह भी अन्यत्व शब्द है। समझ में आया? है? '**सकलविमलकेवलज्ञानाघनन्तगुणनिर्वृतं अण्णु अन्यद्बहिर्द्रव्यालम्बनं**' ऐसा शब्द है, देखा! जड़ की बात नहीं। अपना भगवान ज्ञानमयी स्वरूप है, उसका आश्रय छोड़कर परद्रव्य का जो आश्रय, चाहे तो परद्रव्य सिद्ध हो या अरिहन्त हो या परमात्मा। आहाहा! पाठ यह है, देखो! '**अन्यद्बहिर्द्रव्यालम्बनं**' '**जे ये केचन झायहिं ध्यायन्ति।**' आहाहा! क्या कहते हैं? ज्ञानमयी भगवान का ध्यान छोड़कर और अन्य

पदार्थ के ध्यान में जाता है, उसे आत्मा कैसे मिलेगा? आहाहा! भारी स्पष्ट! चाहे तो देव, गुरु और शास्त्र, भगवान साक्षात् परमात्मा, परन्तु उनके आश्रय में अवलम्बन लेने जाने से राग होगा। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानमय आत्मा, आनन्दमय आत्मा, ऐसा अनन्त ज्ञानादि गुणरूप आत्मा, उसका आश्रय और उसका ध्यान, उसे ध्येय में न लेकर अन्य जो बाह्य पदार्थ, उन्हें ध्यान में लेता है। आहाहा! **परद्रव्य उनका ध्यान लगाते हैं, हे वत्स! वे अज्ञानी हैं,....** आहाहा! गुरु शिष्य को कहते हैं, हे शिष्य! आहाहा! तेरा भगवान ज्ञान और आनन्दमय है, उसे छोड़कर अन्य द्रव्य केवली हो, परमात्मा, पंच परमेष्ठी हो, उनका जो ध्यान करता है, वह अज्ञानी है, कहते हैं। क्योंकि उनसे—पर से लाभ मानता है न? आहाहा!

समाधिशतक में तो ऐसा भी कहा है कि आत्मा अरिहन्त का ध्यान करके भी अरिहन्त होता है। वह तो अरिहन्त को लक्ष्य में लेकर फिर यहाँ झुक जाये उसे। और अपना... स्वयं ही घिसकर अग्नि... ऐसा आत्मा ही स्वयं एकाग्र होकर ध्यान में आत्मा को प्रगट करता है। आहाहा! यहाँ तो स्पष्ट बात की है। स्वद्रव्य और परवस्तु दो। उसमें स्व भगवान ज्ञानमय वापस वह कैसा है? ज्ञानमय, जाननमय है, वह रागमय और पुण्यमय वह है नहीं। और वैसे कितने गुण हैं? अनन्त। केवलज्ञान, एक ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसे अनन्त गुणरूप जो आत्मा, उसका आश्रय छोड़कर उसे ध्यान में न लेकर, आत्मा के अतिरिक्त दूसरे पदार्थों को ध्यान में, लक्ष्य में, ध्येय में बनाता है। आहाहा! है? वह अज्ञानी है। आहाहा! वापस उसमें मानता है न कि यह धर्म है। पर का आश्रय करने से मुझे कल्याण होगा। क्योंकि लाभ के लिये तो करता है न? इसलिए स्व का आश्रय छोड़कर पर आश्रय में लाभ मानकर करता है तो अज्ञानी है। ज्ञानी को शुभभाव आवे, परन्तु उसका आश्रय नहीं, शुभभाव की ओर का उसका लक्ष्य नहीं। आहाहा! उसे तो वह शुभभाव और परवस्तु भगवान, अपने स्वपरप्रकाशक ज्ञान में, वे तो निमित्त हुए। ज्ञान में निमित्त हुए, प्रगट होने में नहीं।

जो स्वरूप है, उसका ज्ञान होने पर स्वपरप्रकाशक पर्याय अपनी अपने में हुई, आहाहा! उसमें वह परवस्तु तो निमित्त है। उस वस्तु से ज्ञान हुआ नहीं, वह पर का ज्ञान

भी पर के आश्रय से नहीं हुआ। आहाहा! हें! पर का ज्ञान भी स्व के आश्रय से स्वपरप्रकाशक हुआ है। ऐसा आश्रय स्व का छोड़कर और अकेले परपदार्थ के लक्ष्य में, ध्यान में ध्येय में जाता है, वह अज्ञानी है। आहाहा! यह लोग कितने ही करे न, ध्यान करो... ध्यान करो, ध्यान। किसका? भगवान का ध्यान करो, परमेश्वर का ध्यान करो। परन्तु परमेश्वर तो पर है। वहाँ ध्यान करने जायेगा तो राग होगा, सुन न! अन्दर में से निकल जायेगा। आहाहा! णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं। आनुपूर्वी गिनते हैं न? णमो आईरियाणं, णमो उवज्झायाणं। दो आनुपूर्वी गिने, उसे वहाँ सामायिक पूरी हो जाये तो हो गया धर्म, लो! आहाहा! बापू! धर्म का मुख बड़ा है। आहाहा! उसमें विकल्प का भी प्रवेश नहीं।

यहाँ यह कहते हैं। अपने स्वभाव का ध्यान छोड़कर जो अपने में—स्वभाव में नहीं, ऐसी अनेक चीज़ों का ध्यान करेगा, वह अज्ञानी है। अरेरे! ज्ञानी को आता है न शुभभाव? परन्तु वह तो उसे जानता है। उस शुभभाव से मुझे लाभ होगा, ऐसा नहीं। शुभभाव का लक्ष्य तो पर के ऊपर है। पंचास्तिकाय में कहा है न, प्रशस्त राग। क्यों प्रशस्त राग? कि सामने प्रशस्त देव-गुरु हैं, उनके आश्रय से हो, इसलिए प्रशस्त। आहाहा! वह राग उनके आश्रय से होता है। उस प्रशस्त द्रव्य को, ऐसा कहे। आहाहा! विषय है। राग का विषय पर है। गजब बात है, बापू! एक ओर आतमराम तथा एक ओर जगत पूरा। और वह आतमराम अनन्त ज्ञानादि गुणस्वरूप, उसे छोड़कर आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य का जो ज्ञान करे, ध्यान करे, आहाहा! वह अज्ञानी है। क्योंकि उनके लक्ष्य से आत्मा को कुछ भी लाभ नहीं होता। नुकसान होता है। आहाहा! इसलिए ऐसा कहते हैं। लाभ के लिये करते हैं न कि ऐसा करूँ तो लाभ होगा। इसलिए पराश्रय करने जायेगा तो लाभ होगा, यही मिथ्या अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

यह पण्डितों के बीच में, सब पढ़े हों काशी में। ऐसी बात बैठना कठिन पड़े। क्या करे? आहाहा! थोथा पढ़े हों बहुत शास्त्र के। थोथा। भगवान पढ़ा नहीं, उसे यह बैठना भारी कठिन। वाद और विवाद और उसमें ऐसा लिखा है। सब लिखा है। आहाहा! स्व का आश्रय छोड़कर अकेला पर का आश्रय करने जाये, वहाँ अज्ञान है। क्योंकि अनन्त ज्ञानादि केवलज्ञानादि गुण का रूप, वह आत्मा है। उसका ध्यान, वह तो

स्वआश्रय दृष्टि और ज्ञान, उसमें तो आनन्द है, कहते हैं। उसे छोड़कर परद्रव्य का आश्रय, वह अज्ञान है अथवा दुःख है। वह ज्ञान नहीं। यह ज्ञान नहीं। पूर्ण आनन्द स्वरूप का आश्रय करने से जो ज्ञान हो, वह पर का आश्रय करने से, वह ज्ञान नहीं। अर्थात् अज्ञान है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। लोग कहते हैं न कि भाई! भक्त निश्चय की बात में नहीं रह सकते। उसे भक्ति करना चाहिए। भक्ति करना आवे सही, परन्तु उससे लाभ होता है, ऐसा माने तो अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

परद्रव्य उनका ध्यान लगाते हैं, हे वत्स! वे अज्ञानी हैं,... 'तेषां अज्ञान विजृंभितानां' शुद्धात्मा के ज्ञान से विमुख,.... आहाहा! अपना भगवान ज्ञान का भण्डार। 'शुद्ध चेतनासिन्धु हमारो रूप है।' शुद्ध चेतनासिन्धु। चेतना का समुद्र भगवान आत्मा अन्दर पड़ा है। ऐसे शुद्धात्मा का आश्रय छोड़कर, महाप्रभु का आश्रय छोड़कर परद्रव्य का आश्रय करता है, वह अज्ञानी मूढ़ है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह सब व्यवहार का, इसलिए कहते हैं न! परन्तु तो कहे शास्त्र को और भगवान के पास जा। भगवान के पास अनन्त बार गया है। परन्तु कुछ हुआ नहीं। आहाहा! अन्तर में झुकने में माल है, वह झुका नहीं तो ऐसे करते-करते ऐसा होगा। पर के लक्ष्य में से भगवान का स्मरण, जाप, भक्ति, धुन लगाना भगवान की। भाई! तेरे अतिरिक्त दूसरे भगवान की धुन लगाना, वह तो विकल्प है और उसमें तू लाभ मानता है तो अज्ञान है। यों ही विकल्प अज्ञान है। अज्ञान अर्थात् उसमें ज्ञान है नहीं। आहाहा!

कुमति, कुश्रुत, कुअवधिरूप अज्ञान से परिणत हुए.... आहाहा! परद्रव्य के आश्रय से जो कुछ कुज्ञान—मति आदि हो। आहाहा! उन **जीवों को केवलज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है?** जो पर की ओर के ज्ञान रस में चढ़ गया है, ऐसा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि उसे केवलज्ञान आत्मा भगवान पूर्णानन्द ऐसा केवलज्ञान कहाँ से प्राप्त होगा? उसे पर्याय में केवलज्ञान कहाँ से होगा? वह बात है यह। समझ में आया? जिसे आत्मा पूर्ण स्वरूप ध्येय में नहीं, उसके ध्यान से केवलज्ञान कहाँ से होगा? ऐसा कहते हैं। पर के ध्यान से तो कुमति, कुश्रुत आदि होंगे। आहाहा! यह मुनि ऐसा कहे तो वहाँ किसी ने विरोध नहीं किया होगा? परन्तु तब तो ऐसा था नहीं न! रेल नहीं थी,

पत्र नहीं थे। एक गाँव से दूसरे गाँव की खबर न हो वहाँ। और यह तो अभी तो एक गाँव की बात हो तो पाँच घण्टे में अमेरिका पहुँच जाये। आहाहा! वापस सोनगढ़ में वाँचनेवाले जाये। बापू! यह तो ऐसा है।

यहाँ तो कहते हैं, स्वचैतन्य प्रभु जो अनन्त अपरिमित, मर्यादारहित स्वभाव का सागर भगवान है। आहाहा! ऐसा परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप। ऐसा जो केवलज्ञान-दर्शनमय, परमस्वरूप का आश्रय छोड़कर दूसरे द्रव्य का-पदार्थ का आश्रय करने जाये और उसमें लाभ माने तो जाता है न? वह अज्ञान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! पाँच, पचास लाख पैदा हुए हों, लड़के बड़े पढ़े ऐसे जगे हों। अभी लड़कियाँ भी बहुत पढ़ती हैं। एल.एल.बी., बी.ए., और फलाना और ढींकणा। आहाहा!

मुमुक्षु : लड़की पढ़े नहीं तो कोई ले नहीं। करे क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य हो तो मिले बिना रहे नहीं। आहाहा! उसमें क्या है परन्तु वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। आहाहा! कन्या को वर अच्छा मिला, घर अच्छा मिला। वर और घर अच्छा मिला। परन्तु वर वह कहाँ और घर, वह कहाँ तेरा है? आहाहा!

मुमुक्षु : संयोग की बात है न। आप स्वभाव से (कहते हो)।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं, संयोग के आश्रय से जहाँ लाभ माने तो मिथ्यात्व है। यह तो सब बाह्य का संयोग, पाप का। परन्तु यहाँ तो पुण्य का संयोग देव-गुरु-शास्त्र के लक्ष्य में जायेगा तो पुण्य होगा, धर्म नहीं होगा। और लक्ष्य करे और लाभ के लिये लक्ष्य करे, इसलिए अज्ञान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

केवलज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है? कभी नहीं हो सकती। 'यद्यपि विकल्प सहित अवस्था में शुभोपयोगों को चित्त की स्थिरता के लिये.... शुभराग के समय। **और विषय कषायरूप खोटे ध्यान के रोकने के लिये जिनप्रतिमा तथा णमोकार मन्त्र के अक्षर ध्यावनेयोग्य हैं,....** शुभभाव।

मुमुक्षु : अशुभ से बचने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना।

तो भी निश्चय ध्यान के समय शुद्ध आत्मा ही ध्यावनेयोग्य है,.... आहाहा! और वह भी निश्चय ध्यान जिसे प्रगट हुआ है, उसे णमोकार आदि के ध्यान में उसे शुभभाव होता है, इतनी बात है। और शुभभाव में तो पर का आश्रय है। उससे स्व के आश्रय की प्राप्ति होगी? आहाहा! भारी कठिन लगे लोगों को। यह तो शुभ बीच में होता है। पूर्ण न हो तब अशुभ से बचने के लिये (होता है)। परन्तु पर के आश्रय से लाभ माने, उसमें भगवान स्वआश्रय तो रह गया पूर्णानन्द का नाथ। **निश्चय ध्यान के समय शुद्ध आत्मा ही ध्यावनेयोग्य है, अन्य नहीं।** अन्य के आश्रय में जाने से तो राग होगा और राग है, वह विकल्प है और उससे आत्मा की प्राप्ति नहीं होगी। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १५९

अथ-

२८२) सुण्णउँ पउँ झायंताहँ वलि वलि जोइयडाहँ।
समरसि-भाउ परेण सहु पुण्णु वि पाउ ण जाहँ।।१५९।।

शून्यं पदं ध्यायतां पुनः पुनः (?) योगिनाम्।
समरसीभावं परेण सह पुण्यमपि पापं न येषाम्।।१५९।।

सुण्णउं पउं इत्यादि। सुण्णउं शुभाशुभमनोवचनकायव्यापारैः शून्यं पउं वीतराग परमानन्दैकसुखामृतरसास्वादरुपा स्वसंवित्तिमयी या सा परमकला तया भरितावस्थापदं निजशुद्धात्मस्वरुपं झायंताहं वीतरागत्रिगुप्तिसमाधिबलेन ध्यायतां बलि बलि जोइयडाहं श्रीयोगीन्द्रदेवाः स्वकीयाभ्यन्तरगुणानुरागं प्रकटयन्ति, बलिं क्रियेडहमिति परमयोगिनां प्रशंसां कुर्वन्ति। येषां किम्। समरसि-भाउ वीतरागपरमाह्लादसुखेन परमसमरसीभावम् केन सह। परेण सहु स्वसंवेधमानपरमात्मना सह। पुनरपि किं येषाम्। पुण्णु वि पाउ ण जाहं शुद्धबुद्धैक-स्वभावपरमात्मनो विलक्षणं पुण्यपापद्वयमिति न येषामित्यभिप्रायः।।१५९।।

आगे शुभाशुभ विकल्प से रहित जो निर्विकल्प (शून्य) ध्यान उसको जो ध्याते हैं, उन योगियों को मैं बलिहारी करता हूँ, ऐसा कहते हैं-

निर्विकल्प ध्यान जो धरते पर के प्रति रखते समभाव।
पुण्य पाप को एक मानते उन्हें नमन हो बारम्बार।।१५९।।

अन्वयार्थ :- [शून्यं पदं ध्यायतां] विकल्प रहित ब्रह्मपद को ध्यावनेवाले [योगिनाम्] योगियों की मैं [बलिं बलिं] बार बार मस्तक नमाकर पूजा करता हूँ, [येषाम्] जिन योगियों के [परेण सह] अन्य पदार्थों के साथ [समरसीभावं] समरसीभावं है, और [पुण्यम् पापं अपि न] जिनके पुण्य और पाप दोनों ही उपादेय नहीं हैं।

भावार्थ :-शुभ-अशुभ मन, वचन, काय के व्यापार रहित जो वीतराग परमआनंदमयी सुखामृत-रस का आस्वाद वही उसका स्वरुप है, ऐसी आत्मज्ञानमयी परमकलाकर भरपूर जो ब्रह्मपद-शून्यपद-निज शुद्धात्मस्वरुप उसको ध्यानी राग रहित तीन गुप्तिरुप समाधि के बल से ध्यावते हैं, उन ध्यानी योगियों की मैं बार बार बलिहारी

करता हूँ, ऐसे श्रीयोगींद्रदेव अपना अन्तरंग का धर्मानुराग प्रगट करते हैं, और परम योगीश्वरों के परम स्वसंवेदनज्ञान सहित महा समरसीभाव है। समरसीभाव का लक्षण ऐसा है, कि जिनके इंद्र और कीट दोनों समान, चिंतामणिरत्न और कंकड़ दोनों समान हों। अथवा ज्ञानादि गुण और गुणी निज शुद्धात्म द्रव्य इन दोनों का एकीभावरुप परिणमन वह समरसीभाव है, उसकर सहित हैं, जिनके पुण्य-पाप दोनों ही नहीं हैं। ये दोनों शुद्ध, बुद्ध चैतन्य स्वभाव परमात्मा से भिन्न हैं, सो जिन मुनियों ने दोनों को हेय समझ लिया है, परमध्यान में आरुढ़ हैं, उनकी मैं बार बार बलिहारी जाता हूँ।।१५९।।

वीर संवत् २५०२, माघ कृष्ण ०६, बुधवार
दिनांक- ०९-०२-१९७७, गाथा - १५९, प्रवचन-२११

१५९ गाथा। जिसे यह आत्मा प्राप्त करना है, वह किस प्रकार से प्राप्त होता है? अर्थात् कि धर्म किस प्रकार से होता है? यह विषय है। **आगे शुभाशुभ विकल्प...** शरीर, वाणी, मन तो पर है, जड़ है, वह तो भिन्न चीज़ है। उससे कुछ आत्मा का कल्याण नहीं होगा। उसमें पैसा, इज्जत, कीर्ति जड़ है। उससे भी कहीं आत्मा का कल्याण नहीं होगा। परन्तु अन्दर में पाप के परिणाम हों—हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, उनसे भी कहीं कल्याण नहीं होगा। अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के भाव हों, वे भी शुभभाव हैं, उनसे भी कल्याण नहीं होगा। आहाहा! ऐसी बातें हैं। समझ में आया? यह कहते हैं।

शुभाशुभ विकल्प से रहित.... देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा, दान, दया, व्रत, तप, वे सब शुभभाव हैं, शुभ विकल्प राग है, उससे आत्मा का कल्याण सम्यग्दर्शन नहीं होगा।

मुमुक्षु : तब उससे क्या होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे बन्ध होगा, पुण्यबन्ध होगा। अबन्धस्वरूपी भगवान को पुण्यबन्ध का कारण होगा शुभभाव; धर्म नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा!

वस्तु स्वयं चिदानन्दस्वरूप भगवान निर्विकल्प अर्थात् रागरहित अभेद त्रिकाली

स्वभाव, उसमें विकल्परहित होकर अन्दर में दृष्टि करे, अनुभव करे तो धर्म हो। आहाहा! कहते हैं न, **शुभाशुभ विकल्प से रहित...** यह पुण्य और पाप के दोनों भाव, यह शुभाशुभ राग है। यह अभी बड़ा विवाद उठा है न? कि यह व्रत करना, तपस्यायें करना, दया पालना, दान देना, वह सब (भाव) धर्म के साधन हैं, ऐसा (लोग) कहते हैं। यह बात एकदम झूठ है। यह यहाँ कहते हैं। यह परमात्मप्रकाश है न? आत्मा परमात्मस्वरूप ही है अन्दर शक्ति से, स्वभाव से। उसकी प्राप्ति पुण्य और पाप के विकल्प जो राग, उनसे रहित होकर, आहाहा! है? **निर्विकल्प (शून्य) ध्यान...** अर्थात् पर का ध्यान नहीं। आहाहा! परमात्मा अरिहन्त सर्वज्ञदेव का ध्यान भी शुभराग है। आहाहा! ऐसी बहुत सूक्ष्म बात, बापू! मार्ग ऐसा है। अभी लोगों को बेचारों को मिला नहीं, ऐसी की ऐसी जिन्दगी निरर्थक चली जाती है। जो प्रयोजन आत्मा की प्राप्ति और सम्यग्दर्शन, उसकी जिसे खबर ही नहीं और कैसे प्राप्त हो, उसकी बात की खबर नहीं, सुनने को मिलती नहीं। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं।

शुभ-अशुभ का ध्यान, वह तो विकल्पवाला है, रागवाला है—ऐसा कहते हैं। और आत्मा का ध्यान राग से शून्य निर्विकल्प है। आहाहा! अन्तर भगवान जो आत्मा है, वह तो शुद्ध चैतन्यघन, शुद्ध बुद्ध एक स्वभावी वस्तु है। अन्तिम शब्द में आयेगा, बीच में भी आयेगा अभी। उसका जिसे आत्मज्ञान से साक्षात्कार करना हो, अर्थात् कि जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, अर्थात् कि जैसी चीज़ है, वैसा अनुभव करके अवलोकन करके प्रतीति करनी हो। आहाहा! ऐसी बातें। उसे तो शुभाशुभभावरहित होकर, आहाहा! **निर्विकल्प अर्थात् (शून्य) ध्यान...** शून्य शब्द से? राग की शून्यता। ध्येय में तो अशून्य ऐसा भगवान पदार्थ दृष्टि में है। समझ में आया? कहता है न? वह भाई! रजनीश। शून्य होओ... शून्य होओ। परन्तु शून्य हो किससे? कहाँ जाकर किसके लक्ष्य से शून्य होगा? शून्य तो रागरहित होना, वह शून्य। परन्तु रागरहित चीज़ क्या है अन्दर? उसके अस्तित्व के मौजूदगी के अनुभव बिना राग से शून्य, विकल्प से शून्य नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग अलग प्रकार का है, बापू! कोई कहे कि भगवान की भक्ति, पूजा करते-करते कल्याण होगा। कोई कहे कि देव-

गुरु-शास्त्र, गुरु की कृपा हो जाये तो कल्याण होगा, गुरु की भक्ति करते-करते हो जायेगा, यह सब भ्रम-अज्ञान है।

मुमुक्षु : तो फिर कोई गुरु की भक्ति करेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : करेगा। वह उसे आये बिना रहेगी नहीं। जिसे आत्मा का आश्रय होकर धर्म सम्यक् हुआ, उसे बीच में शुभभाव देव, गुरु की भक्ति का भाव आयेगा। परन्तु वह आयेगा, वह बन्ध का कारण हेयबुद्धि से आयेगा। ऐसी बात है, बापू! समझ में आया? शुभाशुभ, पाठ में है।

उसको जो ध्याते हैं, उन योगियों को मैं बलिहारी करता हूँ,.... आहाहा! योगीन्द्रदेव १३०० वर्ष पहले दिगम्बर मुनि वनवासी थे, वे मुनि कहते हैं कि जो कोई पुण्य और पाप के शुभ-अशुभ विकल्प से रहित होकर और ध्याता, ध्याता का ध्यान—स्व का ध्यान करे। आहाहा! रागरहित होकर, पुण्य-पाप के विकल्प रहित होकर निर्विकल्प अर्थात् राग की शून्यता और स्वभाव की परिपूर्णता का ध्येय। आहाहा! ऐसी बातें, भारी कठिन, बापू! समझ में आया? यह उसका जो ध्यान करता है, उसे बलिहारी कहता हूँ, कहते हैं। मुनि ऐसा कहते हैं, दिगम्बर सन्त (कहते हैं कि) मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ। आहाहा! जो शुभभाव में रहकर धर्म मानता है, भगवान की भक्ति और देव, गुरु की भक्ति से कल्याण होगा, ऐसा मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है, वह जैन नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

बलिहारी करता हूँ... उसकी मैं प्रशंसा करता हूँ। जो कोई विकल्परहित स्वरूप का ज्ञान करे, उसे बलि जाता हूँ—बलिहारी करता हूँ। आहाहा! बाकी तो अज्ञानी अनादिकाल से शुभविकल्प का ध्यान करके मानता है कि हम कुछ धर्म करते हैं। आहाहा! यह गाथा कहते हैं।

२८२) सुण्णउँ पउँ झायंताहँ वलि वलि जोइयडाहँ।
समरसि-भाउ परेण सहु पुण्णु वि पाउ ण जाहँ।।१५९।।

अन्वयार्थ—'शून्यं पदं ध्यायतां' विकल्परहित ब्रह्मपद को ध्यावनेवाले.... ब्रह्मपद, ब्रह्म अर्थात् आत्मा। आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, ऐसा जो

ब्रह्म अर्थात् आत्मा। आहाहा! जो कोई **ब्रह्मपद को ध्यावनेवाले....** शुभ और अशुभ विकल्प से पुण्य-पाप से रहित होकर। आहाहा! बहुत कठिन काम बापू! अभी एक तो निवृत्ति नहीं मिलती संसार के काम के कारण। धन्धा, स्त्री, पुत्र, कमाना पूरे दिन पाप, पाप और पाप। आहाहा! उसमें समय थोड़ा मिले, उसमें पुण्य से धर्म मनवा ले। और उसे भी समय मिले, इसलिए यह ठीक है। भगवान की भक्ति करो, गुरु की भक्ति करो, तुम्हारा कल्याण होगा। आहाहा! अज्ञान के रास्ते चढ़ा दिया बेचारे को। समझ में आया?

यह ब्रह्मपद। राग, विकल्प, पुण्य-पाप के राग, यह बाद में कहेंगे पुण्य-पाप। उसे विकल्प ठहराया यहाँ। शुभराग से रहित **ब्रह्मपद को ध्यावनेवाले...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान आत्मा, परन्तु स्वयं को पामर माना है, उसे प्रभुता कैसे बैठे? मैं तो एक रागी प्राणी हूँ, पुण्य का करनेवाला हूँ। आहाहा! यहाँ तो ब्रह्मपद अर्थात् आनन्दपद, सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर ने कहा, वैसा ब्रह्मपद आत्मा। वह सर्वव्यापक ब्रह्म कहते हैं, वह नहीं। कहते हैं न सर्वव्यापक ब्रह्म आत्मा? सर्वव्यापक वस्तु हो सकती ही नहीं। वस्तु तो एक-एक शरीर में भिन्न-भिन्न पदार्थ आत्मा भगवान है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा ब्रह्मपदस्वरूप जिसका, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप जिसका है। आहाहा! स्व-रूप। अनाकुल अतीन्द्रिय सुख का सागर भगवान यह आत्मा, हों, यह। भगवान केवली परमात्मा उनके घर में रहे वे। वे कहीं यहाँ नहीं आते और यहाँ देते भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जो कोई **ब्रह्मपद को ध्यावनेवाले योगियों को....** योगी अर्थात् जिसने स्वरूप में जुड़ान किया है। वे योगी बाबा होते हैं, वह नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा देखा, आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन, उसमें जिसने अपनी वर्तमान परिणति—पर्याय को जोड़ा है, उसे योगी कहा जाता है। समझ में आया? और मन, वचन, काया में शुभाशुभ योग में वर्ते, वह तो जोगी, भोगी है, वह तो जोगी। आहाहा! समझ में आया? यह पहले आ गया है। हे योगी! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का करनेवाला तू, वह विकल्परहित आत्मा की प्राप्ति नहीं करे तो तूने क्या किया? वह तेरा योग तो बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? हे योगी! जिसने अपनी वर्तमान ज्ञान की दशा को ब्रह्म अर्थात् पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसमें जिसने परिणति जोड़ी है, उसे यहाँ योगी समकिती

से लेकर योगी कहने में आता है। समझ में आया? वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई!

योगियों की मैं बार-बार मस्तक नमा कर पूजा करता हूँ,.... मुनि कहते हैं कि, आहाहा! धन्य प्रभु! तुझे आत्मा के आनन्द की ओर का झुकाव हो गया, उसके झुकाव में तू ध्यान में आया, मैं प्रसन्न होता हूँ भाई! तेरे भाव के लिये। आहाहा! शुभयोग के करनेवाले को मैं प्रसन्न नहीं होता, कहते हैं। समझ में आया? दिगम्बर मुनि जंगल में बसते हैं। आहाहा! एक जरा विकल्प राग का थोड़ा बाकी है। वरना तो वीतरागदशा प्रगट हुई है। आहाहा! बाह्य में नग्न हैं, बाह्य में व्यवहार के विकल्प भी पंच महाव्रत के हों, परन्तु उससे रहित जो आनन्द के नाथ में जुड़ान है, वह धर्म है। ऐसा एकदम रूखा जैसा लगे। करना कुछ नहीं बाहर का। अन्तर में स्थिर होना, वह धर्म है। आहाहा! अभी उसकी श्रद्धा तो कर, ज्ञान तो कर उसका तू। इसके बिना तू आगे कहाँ से जायेगा? जो मार्ग है, उसका ज्ञान न करे तो मार्ग में जायेगा कैसे? आहाहा!

जिन योगियों के.... 'परेण सह' अन्य पदार्थों के साथ.... देखा! **'परेण सह'** अर्थात् परपदार्थ। चाहे तो स्त्री, कुटुम्ब, परिवार हो; चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र सब परपदार्थ हैं। आहाहा! ऐसी बात वीतराग करे कि मैं तुझसे परपदार्थ हूँ। मेरा ध्यान करने जायेगा तो तुझे राग होगा। आहाहा! तेरा ध्यान करने से तुझे वीतरागता होगी। ऐसी बात भगवान करे। समझ में आया? **अन्य पदार्थों.... 'परेण सह'** अर्थात् क्या कहा? कि ब्रह्मस्वरूप भगवान आनन्द वीतराग मूर्ति प्रभु अन्दर है, उसका जो विकल्परहित होकर उसका ध्यान करता है, उसे मैं **'बलिं बलिं'** प्रशंसा करता हूँ और **'परेण सह' अन्य पदार्थों के साथ समरसीभाव है,....** आहाहा! समता... समता... समता... परसन्मुख का विकल्प ही नहीं जिसे। परसन्मुख के देव-गुरु-शास्त्र का, पर की ओर का विकल्प, वह शुभ है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, धन्धा आदि के पाप के भाव, वे अशुभ हैं। परन्तु वे परपदार्थ के लक्ष्य से होते हैं। वह जिसने छोड़ दिये हैं, कहते हैं। आहाहा! है? **समरसीभाव है,...** पुण्य-पापभाव है, वह विषमभाव है। विषम अर्थात् रागभाव है। आहाहा! दया का, दान का, पूजा का, भक्ति का, व्रत का, तप का, वह सब भाव रागभाव है, समभाव नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। यह भगवान के सन्देश यह आये हैं। आहाहा!

अन्य पदार्थों के साथ समरसीभाव है, और जिनके पुण्य और पाप दोनों ही उपादेय नहीं हैं। आहाहा! है? जिसे भगवान की भक्ति, शास्त्र का वाँचन, पंच महाव्रत के परिणाम, वे उपादेय नहीं, जिसे उसे धर्मी कहते हैं। आहाहा! उपादेय अर्थात् आदरणीय तो भगवान वीतराग मूर्ति प्रभु, वह जिसे दृष्टि में आदरणीय है, उसे यह शुभभाव, वह आदरणीय नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। लोगों को कठिन लगे न, इसलिए सोनगढ़ के नाम से कहते हैं, सोनगढ़ ने ऐसा निकाला। सोनगढ़ कहता है या यह दो हजार वर्ष पहले के शास्त्र हैं। अरे प्रभु! मार्ग तो यह है, बापू! वह ठगा जायेगा, मरकर चला जायेगा। यह कहा न? **'पुण्यम् पापं अपि न' जिनके पुण्य और पाप दोनों ही उपादेय नहीं है।** आहाहा! सम्यग्दृष्टि को अन्तर में, ध्यान में आत्मा प्राप्त हो, उसे समकिती को पुण्य-पाप तो हेय है, आदरणीय नहीं। आहाहा! तथापि आत्मज्ञानी को भी अन्तर में रम नहीं सके, तब उसे शुभभाव आता है। भक्ति का, व्रत का, तप का, दया का भाव आता है, परन्तु उसे बन्ध का कारण जाने। आहाहा! ऐसी बातें हैं। दुनिया के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : भगवान के साथ तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान के साथ मिलान खाये ऐसा है। आहाहा!

भावार्थ—शुभ-अशुभ मन, वचन, काय के व्यापार रहित.... देखा! दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, वह शुभभाव। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासना, काम, क्रोध, बड़ाई, इज्जत वह पापभाव। ऐसा मन, वचन और काया उसके व्यापाररहित **जो वीतराग परमानन्दमयी सुखामृतरस का आस्वाद वही उसका स्वरूप है,....** भगवान आत्मा का। आहाहा! **ऐसी आत्मज्ञानमयी परमकलाकर भरपूर जो ब्रह्मपद-शून्यपद-निज शुद्धात्मस्वरूप उसको ध्यानी रागरहित तीन गुप्तिरूप समाधि के बल से ध्यावते हैं,....** अब ऐसी बड़ी व्याख्या है। आहाहा! कैसा है प्रभु! और उसकी परिणति जो आत्मा को प्राप्त करने की भी परिणति आत्मज्ञानमय कैसी है? वीतराग परमानन्दमय है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में धर्म की पहली शुरुआत में शुभाशुभ रागरहित वीतरागी परम आनन्दरूपमय... आहाहा! **सुखामृत-रस का आस्वाद....** वह सुखरूपी अमृत जो आत्मा का, उसमें रस का आस्वाद। **वही उसका स्वरूप है, ऐसी आत्मज्ञानरूपी परमकला....** आहाहा! थोड़ी

सूक्ष्म बात है। यह तो परमात्मप्रकाश ग्रन्थ-शास्त्र है। जिसमें परमात्मा को प्राप्ति करने की परिणति कैसी है? कि शुभाशुभरागरहित वीतराग सुखामृत आनन्दमयी परिणति दशा है जिसकी। आहाहा!

मुमुक्षु : वीतराग तो तेरहवें गुणस्थान में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! परिणति में वीतराग परिणति है। तेरहवें में तो पूर्ण वीतराग अनन्त ज्ञानसहित है। यहाँ तो शुभाशुभराग से रहित वीतरागी परमानन्द सुखामृत आनन्दमयी आत्मज्ञान की परिणति है। आहाहा! क्योंकि आत्मा जो स्वयं वीतराग परमानन्दरूपी सुखामृत का अनुभव करनेवाला ऐसा स्वरूप ही उसका है। यह तो अब स्वरूप की परिणति है, वह ऐसी है उसकी। आहाहा!

वीतराग परमानन्दमयी सुखामृतरस का.... अनाकुल आनन्दरस उसका जो आस्वाद, वेदन, अनुभव **वही उसका स्वरूप है,....** आहाहा! **ऐसी आत्मज्ञानमयी परमकलाकर भरपूर....** है न वहाँ? भरित अवस्था। वस्तु भी ऐसी है और उसकी परिणति भी ऐसी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भारी कठिन काम। इससे कोई सरल मार्ग होगा या नहीं? मार्ग ही यह है। सरल कहो, उसका कहो, सरस कहो, सीधा कहो वह मार्ग ही यह है, दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

उसी उसका स्वरूप है, ऐसी आत्मज्ञानमयी परमकलाकर भरपूर.... आहाहा! **ब्रह्मपद...** ब्रह्मपद की व्याख्या की। **ब्रह्मपद-शून्यपद-निज शुद्धात्मस्वरूप उसको ध्यानी राग रहित तीन गुप्तिरूप समाधि के बल से ध्यावते हैं,....** वह वस्तु कहो तो ऐसी है और वह परम आत्मज्ञानमयी वीतराग परमानन्ददशा भी ऐसी है। आहाहा! भक्ति आदि का या दया, दान का, व्रत, तप का भाव, वह तो राग है और दुःख है। आहाहा! उस दुःख से आत्मा की आनन्ददशा, आत्मज्ञान नहीं होता। अरे... अरे..! ऐसी बातें हैं। वाडा में तो रहने न दे, बाहर निकालो। देखो न, चिल्लाहट करते हैं न! बाहर ही है, सुन न! आहाहा!

दो सिद्धान्त सवेरे कहे थे। एक क्रमबद्ध और क्रमबद्ध का आश्रित निर्णय, स्व का आश्रय करे वह। यह दो सिद्धान्त। क्या कहा यह? आत्मा की पर्याय हो, वह

क्रमबद्ध होती है। एक के बाद एक जो होनेवाली है, वह क्रमबद्ध होती है। अब उस क्रमबद्ध में निमित्त से हो या देव-गुरु-शास्त्र से हो या विकल्प से हो, यह है नहीं। जब उसे वीतरागी परिणति हो क्रमबद्ध में, तब कहीं राग से होती है, ऐसा है नहीं, उसका अपना पर्याय का वीतरागी परिणति का उत्पाद ही उस काल में स्वयं से है। आहाहा! परन्तु उस क्रमबद्ध का निर्णय करे, उसे आत्मा के ज्ञायक का निर्णय हो, अर्थात् स्व का आश्रय हो, तब क्रमबद्ध का निर्णय (होता है)। इसलिए क्रमबद्ध में वीतराग—स्व का आश्रय और क्रमबद्धपर्याय का निर्णय दोनों एक काल में हो जाते हैं। आहाहा! शान्तिभाई! यह लोगों को खटकता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **ऐसी आत्मज्ञानमयी परमकलाकर भरपूर....** आहाहा! **ब्रह्मपद शून्यपद....** है। वह **निज शुद्धात्मस्वरूप....** आहाहा! ऐसा निजशुद्धात्मस्वरूप। **उसको ध्यानी रागरहित तीन गुप्तिरूप समाधि के बल से....** वह विकल्परहित और मन, वचन, काया को गोपकर अन्दर में जाये, उसके बल से, आहाहा! **ध्यावते हैं,....** आहाहा! भारी कठिन काम। **उन ध्यानी योगियों की मैं बार-बार बलिहारी करता हूँ,....** आहाहा! समझ में आया? परमात्मा सर्वज्ञदेव, तीर्थंकरदेव इन्द्र और गणधरों के समक्ष में दिव्यध्वनि में आया था, वह सन्त कहते हैं। भगवान की वाणी में यह आया था कि तू हमारे सन्मुख देखकर तू जो धर्म होता है, ऐसा माने, वह तेरा भ्रम है। हम तो कहते हैं कि तू हमारे सामने देखना छोड़कर तेरे सन्मुख देख। आहाहा! वह तो वीतराग ऐसा कहते हैं। तो फिर मान दे किसका? हमारे से हो, फिर तुमको मान दें किसका हम? देव को। तेरा क्या काम है तुझे अब सुन न! आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू! बहुत... आहाहा!

ऐसा जो स्वरूप है, उसको जो इस प्रकार से ध्यान करे आत्मज्ञान का। आहाहा! **उसको ध्यानी रागरहित तीन गुप्तिरूप समाधि के बल से....** आत्मा की शान्ति, वीतरागी ज्ञान की शान्ति। आहाहा! उसके **बल से ध्यावते हैं,....** ऐसा कहकर यह कहा कि देव-गुरु-शास्त्र के लक्ष्य से भी तेरा ध्यान नहीं हो सकता। दूसरा, कि कर्म कुछ मार्ग दे तो तू ध्यान कर सके, ऐसा भी नहीं है। तू तेरे पुरुषार्थ से विकल्परहित होकर ध्यान कर तो उसमें कोई अवरोधक जगत में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? जयसुखभाई! ऐसी बात है। वीतराग का मार्ग ऐसा है, भाई! शुरुआत का मार्ग यह है। **बार-बार बलिहारी**

करता हूँ, ऐसे योगीन्द्रदेव अपना अन्तरंग का धर्मानुराग प्रगट करते हैं,.... योगीन्द्रदेव। कर्ता है न योगीन्द्रदेव? परमात्मप्रकाश के। **अपना अन्तरंग का धर्मानुराग प्रगट करते हैं,....** ऐसा कहकर कहते हैं। आहाहा! जिसे विकल्प अर्थात् दया, दान, व्रत, तप और भक्ति के भाव से रहित जिसे आत्मा के अन्दर ध्यान करके जिसे आनन्द की प्राप्ति हुई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की अन्तर के अवलम्बन से प्राप्ति हुई, उसकी मैं प्रशंसा, उसके धर्मानुराग के कारण ... परन्तु आत्मा के आश्रय बिना जितने परिणाम दया, दान, व्रत और भक्ति के करे, उसकी मैं प्रशंसा नहीं करता। समझ में आया? आहाहा! ऐसा कठिन लगे।

सवेरे प्रश्न करते थे, वे वकील थे, भाई! है? अभी आये हैं? पालीताणा। पालीताणा गये। अपने भाई जगजीवनभाई के दलुभाई। वे मिले होंगे वहाँ। बातचीत वहाँ... बापू! वीतराग का मार्ग सूक्ष्म, बापू! उसे ऐसा कहा कि पुण्य को बाँधने के भाव दूसरे और पाप को बाँधने के भाव दूसरे। पुण्य बाँधने में राग की एकता है, पाप के बाँधने में राग की एकता है। ....पुण्य और पाप में अध्यवसाय एक ही बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? मूल उसे पाप से पुण्य का पृथक् करना था। मैंने कहा, इसे कहाँ अभी... वकील है वकील। ...मैंने कहा, भाई! यहाँ दो वकील तो बैठे हैं। एक जामनगर के हैं और एक यह रामजीभाई हैं। ऐसा कहा था। कहा, बापू! यह वकालत अलग प्रकार की है। यह दलाली करना भगवान के मार्ग की, वह अलग जाति है। ऐसा मार्ग है।

सन्त, योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त जिन्हें तीन कषाय का अभाव और आनन्द वर्तता है, पंच महाव्रत के परिणाम को भी जो धर्म नहीं मानते। आहाहा! तथापि उन्हें भाव होता अवश्य है, तथापि वह धर्म है और उससे धर्म होगा, ऐसा मानकर उसकी प्रशंसा हम नहीं करते, कहते हैं। आहाहा! **और परम योगीश्वरों के परम स्वसंवेदनज्ञानसहित महा समरसीभाव है।** आहाहा! बहुत उत्कृष्ट बात मुनि की ली है। सम्यग्दृष्टि को भी समरसीभाव जघन्य—थोड़ा है, मुनि को बहुत है। वीतरागी रस, अनाकुल आनन्द का रस मुनि को बहुत है। आहाहा! उसका नाम मुनिपना है। नग्नपना और पंच महाव्रत के परिणाम, वे कहीं मुनिपना नहीं; वह तो अचारित्र है। नग्नपना होता अवश्य है, मुनि हो

उसे नग्नपना न हो—ऐसा नहीं होता। परन्तु नग्नपना है, वह मुनिपना है—ऐसा नहीं है। आहाहा! जिसे अन्तर मुनिपना प्रगट हो, उसे तो नग्नदशा ही होती है। परन्तु नग्नदशा है, इसलिए मुनिपना प्रगट होता है—ऐसा नहीं है। बात-बात में अन्तर लगे। समझ में आया? आहाहा! नग्न दिगम्बर मुनि हैं। जंगल में बसते हैं। जैसे माता से जन्मा, वैसे ही होते हैं। सिंह और बाघ के बीच, सिंह दहाड़ मारता हो वहाँ जाये। ध्यान में, आनन्द में लीन हैं। उसे चारित्र और आनन्द धर्म कहते हैं। आहाहा! वह धर्म चारित्र है, परन्तु उसका मूल है, वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र नहीं हो सकता। '**चरित्तं खलु धम्मो**', '**दंसण मूलो धम्मो**' वस्तु की रमणता, वह चारित्र, परन्तु उसका मूल दंसण—समकित। समकित बिना चारित्र नहीं हो सकता। यह समकित की व्याख्या करते-करते चारित्र की व्याख्या साथ में करते हैं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन, वह भी विकल्परहित—रागरहित, मन के सम्बन्धरहित स्वरूप के शुद्ध ब्रह्मपद के आश्रय से होनेवाली निर्विकल्पदशा का नाम सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी है। आहाहा! और फिर द्रव्य का अधिक आश्रय करके, सीधे वीतरागी समरसरूप से परिणमे, उसे मुनि कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

अब यहाँ कहा, देखो! **परम स्वसंवेदनज्ञानसहित....** क्या कहा यह? **परम स्वसंवेदनज्ञानसहित....** आहाहा! स्व अर्थात् आत्मा, सं अर्थात् प्रत्यक्ष समरस का वेदन। आहाहा! भगवान स्व का संवेदन। आहाहा! प्रत्यक्ष वेदन। ऐसे ज्ञानसहित **महा समरसीभाव है।** यह चारित्र लिया। सम्यग्दर्शन में... है न? **परम स्वसंवेदनज्ञानसहित महा समरसीभाव है।** महा समता। समकितदृष्टि को समरसीभाव है परन्तु वह जघन्य है। वह महासमरसी वीतराग ... आहाहा! वीतराग के आनन्द में जो लवलीन हो गये हैं, ऐसी वीतरागता। जिसने पुण्य-पाप को हेय मानकर त्रिकाली आनन्द के नाथ को उपादेय जिसने अनुभव किया है, वह महासमरसीभाव है, वह वीतरागभाव है।

समरसीभाव का लक्षण ऐसा है कि जिनके इन्द्र और कीट दोनों समान,.... इन्द्र हो या कीड़ा हो। **चिन्तामणिरत्न और कंकड़ (पत्थर) दोनों समान हों।** मुनि जंगल में चलते हों, तब पैर से ठोकर मारी (लगी), उसमें निकला हीरा का कलश। एक-एक हीरा करोड़ का, ऐसा पूरा कलश। उन्हें कुछ विशेषता नहीं लगती। चले जाते हैं।

आहाहा! पैरे ऐसे घुमाया और उसमें से... हो गया ऐसा देखा तो हीरा निकले। करोड़ों हीरा। वहाँ ढेला ऊपर से निकला। दोनों समान हैं। जरा भी ऐसा मन, ऐसा है कि यह चीज़ ओहोहो! लाओ न ले जाऊँ, लोग प्रयोग करेंगे? आहाहा! समझ में आया? **चिन्तामणिरत्न और कंकड़....** वापस ऐसा लिया।... चिन्तामणि रत्न जिसे देव अधिष्ठित चिन्तामणि रत्न और पत्थर-कंकड़, दोनों को ज्ञातारूप से जानते हैं। वह वस्तु ज्ञेयरूप से है। इस प्रकार यह ऊँची है और यह हल्की है, ऐसा है नहीं। आहाहा! सब ज्ञेय हैं। चिन्तामणि रत्न हो या कंकड़ हो, सब ज्ञान का परज्ञेय है, स्वज्ञेय नहीं। आहाहा! यह मुनि की दशा। लोगों को कठिन लगे बेचारों को। क्या करे? इस मुनि की दशा की अभी श्रद्धा भी नहीं और यह व्रत करो, तप करो, इससे तुमको कल्याण होगा, यह प्ररूपणा श्रद्धा ही मिथ्या है। आहाहा! भाई! क्या हो? मार्ग तो यह है। किसी के अनादर के लिये नहीं है। आहाहा!

दोनों समान हों। अथवा ज्ञानादि गुण और गुणी निज शुद्धात्मद्रव्य इन दोनों का ऐकीभावरूप परिणमन, वह समरसीभाव है,.... तीन अर्थ किये। एक तो समभाव में इन्द्र और कीड़ा दोनों; चिन्तामणिरत्न और काँटा तथा तीसरा, ज्ञानादि गुण और गुणी— ऐसा **निज शुद्धात्मद्रव्य इन दोनों का ऐकीभावरूप परिणमन....** भेद नहीं, ऐसा कहते हैं। गुण-गुणी का भेद भी विकल्प है। आहाहा! परन्तु भगवान पूर्णानन्द है और अनन्त गुण हैं उसमें आनन्द आदि, ऐसा भेद भी वह विकल्प है, विषमरस है। आहाहा! कथनी तो देखो कथनी, सन्तों की यह वाणी। क्या कहा यह? भगवान आत्मा अनन्त अनन्त गुण का धारक और उसमें अनन्त गुण ज्ञान, आनन्द आदि है। ऐसे गुणी और गुण का भेद का विचार करना, वह विकल्प-राग है। इससे भी समभाव (होता नहीं क्योंकि) वह भेद करे तो विकल्प उठता है। आहाहा! भक्ति आदि का भाव तो राग है, परन्तु गुण-गुणी का भेद करे तो भी राग होता है। आहाहा!

दोनों का ऐकीभावरूप परिणमन.... दोनों में एकपना। गुण-गुणी का अभेद, ऐसा एकरूप परिणमन, वह समरसीभाव है। एक-एक लाईन में, पंक्ति में... भरा है। लोगों को वीतराग का (तत्त्व) सुनने को मिला नहीं, इसलिए यह बात ऐसी लगे कि अरे! यह तो एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है। आहाहा! 'अनेकान्त भी सम्यक्

एकान्त ऐसे निज पद की प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य किसी हेतु से उपकारी नहीं है' मार्ग नहीं। सम्यक् एकान्त, श्रीमद् ने कहा है न, अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसा वीतरागमार्ग जो आत्मा का, जो त्रिकाल का आश्रय लेकर जो धर्म हो, वह एकान्त है, सम्यक् एकान्त है। उस सम्यक् एकान्त बिना अनेकान्तपना यथार्थ नहीं हो सकता। आहाहा! विकल्प रहित सम्यक् एकान्त त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेकर समभाव प्रगट करे, उसका जो ज्ञान हो और पर्याय तथा राग बाकी है, उसका भी उसे ज्ञान हो, वह अनेकान्त कहलाता है। समझ में आया? शास्त्र के अर्थ करने में बड़े... हें! आहाहा!

क्योंकि शास्त्र को तो वीतरागता बतलानी है। चारों अनुयोग हो या चाहे जो हों, वीतरागता बतलानी है। वह वीतरागता पुण्य-पाप रहित आत्मा का आश्रय करे तो वीतरागता प्रगट होती है। इसलिए चारों अनुयोगों में स्व का आश्रय करने की ही व्याख्या है। समझ में आया? है? पंचास्तिकाय। चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है। अब वह वीतरागता है, वह वीतरागता प्रगट होती है, वह तो त्रिकाली आनन्दस्वरूप भगवान है, उसका आश्रय करे तो वीतरागता प्रगटे। क्योंकि त्रिकाली स्वरूप, वह वीतरागस्वरूप है और वीतरागस्वरूप का आश्रय करे तो वीतराग पर्याय प्रगट होती है। वह चारों ही अनुयोगों का सार तो यह है। आहाहा!

...कोट पर चढ़कर बैठा था। ...सांगो कहे, सलवाणा, कुछ चढ़े न कुछ... जेल में पड़े हैं। आहाहा! कोई पाप में फँसे, कोई पुण्य में फँसे, परन्तु सब फँस गये हैं, जेल में है। आहाहा! समझ में आया? जिसमें वीतरागता का पोषण नहीं, वह धर्मकथा नहीं। राग से लाभ होता है, भक्ति से लाभ होता है, वह पोषण राग का है, वह भगवान की कथा नहीं। आहाहा! वीतराग की कथा नहीं, विकथा है। आहाहा! पच्चीस कथा में एक विकथा रखी है। जो कोई पर के आश्रय से राग से धर्म माने, ऐसी जो प्ररूपणा और कथन है, वह शास्त्र नहीं, वह धर्मकथा नहीं, वह तो विकथा है। आहाहा! धर्म से विपरीत कथा है। देखो न, कितना पुकार किया है! शुभाशुभभाव से रहित शुद्धस्वभाव में, अनन्त आनन्द से भरपूर भगवान की सन्मुखता में जो उसका सत्कार होता है, वह समरसी भाव से होता है। राग भाव से उसका सत्कार और स्वीकार जीव का होता नहीं। आहाहा!

देखा! समरस के तीन बोल किये। एक चिन्तामणिरत्न हो या कंकड़ हो। समझ में आया? एक, चिन्तामणिरत्न हो या कंकड़ हो, ऐसा कहा न? इन्द्र हो और जीव को लिया। इन्द्र हो या कीड़ा हो, यह जीव को लिया, भाई! इन्द्र हो या कीड़ा हो, यह जीव का लिया। चिन्तामणिरत्न और कंकड़, यह जड़ का लिया। आहाहा! है न बोल? है न यह ... नहीं? समरसी का लक्षण ऐसा है कि इन्द्र और कीट, यह जीव के दो लिये। इन्द्र हो या कीड़ा हो, परन्तु उसे दोनों जीव समान हैं। आहाहा! अब जड़ के दो लिये। एक चिन्तामणि रत्न हो या कंकड़ हो। आहाहा! दो। तीसरा यह लिया कि गुण-गुणी का भेद भी जिसे नहीं। वह समरसी अन्दर का लिया। वे दो जीव के, दो जड़ के और यह अन्दर के। बापू! यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञान की गद्दी पर बैठकर दूसरी बात करना, वह प्रभु का अनादर है। समझ में आया? ओहोहो!

जीव में इन्द्र हो या जीव में एक कीड़ा मिथ्यादृष्टि का, अभव्य जीव का हो। आहाहा! जिसके ऊपर कुछ प्रेम नहीं, कुछ द्वेष नहीं; ज्ञाता है। जड़ में चिन्तामणि रत्न हो या जिसे चिन्तवन करने से अरबों मकान चाहिए तो मकान तैयार हो जाये। वह चिन्तामणिरत्न हो या कंकड़ हो, उस जड़ में भी... जिसे विषमता नहीं और समभाव है, उसे वीतरागता होती है। आहाहा! और जिसे गुण-गुणी के भेद भी नहीं, उसे समरसीभाव होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अभेद भगवान गुण और गुणी एकरूप, एक स्वभाव से है। आया न? **दोनों का ऐकीभावरूप परिणमन....** आहाहा! टीका, वह टीका है न! अमृत के झरने झरते हैं! आहाहा!

श्रीमद् ने कहा न, 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरसमूल...' आहाहा! वे कायर को प्रतिकूल। परम शान्तरसमूल। आहाहा! 'औषध जो भवरोग के परन्तु कायर को प्रतिकूल।' आहाहा! यह तो एकदम निश्चय... निश्चय... निश्चय... ऐसा करके मश्करी करे। बापू! मार्ग तो यह है, भाई! निश्चय अर्थात् सत्य। निश्चय अर्थात् परमसत्य ऐसा जो भगवान, उसे निर्विकल्प द्वारा आदर करना, वह पर्याय का सत्य है। पहला त्रिकाली सत्य है। आहाहा! समझ में आया?

पर के सामने देखना तो छोड़ दे, दोनों का समान जीव और जड़ में, परन्तु तुझमें गुण-गुणी के भेद को देखना छोड़ दे। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! सोनगढ़ के रहावण

(में) वीतराग की वाणी आयी है। आहाहा! भाई! तुझे बैठे, न बैठे परन्तु मार्ग यह है। ...मान्युं घर चला जायेगा बापू! यह अवसर सब खो जायेंगे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, देखो न, समरस की व्याख्या तो की। हें! गजब है न! कहाँ इन्द्रपद बत्तीस लाख विमान का स्वामी, एक-एक विमान में कितने असंख्य देव, दो सागर की स्थिति, ऊपर इन्द्र है... कहाँ एक कीड़ा। आहाहा! धर्मी सम्यग्दृष्टि को तो समभाव में यह ठीक और अठीक, ऐसा है ही नहीं। जैसे पुण्य और पाप में यह ठीक और अठीक नहीं, दोनों हेय है। उसमें दो चीज़ के जीव में और जड़ में ठीक-अठीक नहीं, दोनों पर है। पर एक जाति के ज्ञेय हैं। आहाहा! अब स्वज्ञेय में आये। वहाँ गुण-गुणी का भेद। आहाहा! क्या कथनी! यह गुणी है भगवान पूर्ण, यह गुणी नहीं कहते चावल की गुणी (बोरी) और खाण्ड की गुणी (बोरी) वह अलग। यह तो गुणी अर्थात् अनन्त गुण का धनी गुणी। आहाहा! यह गुणी है और उसमें अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि गुण हैं, ऐसा भेद भी विषमभाव है। आहाहा! गजब बात है न सन्तों की। आहाहा! वह अभेद गुण-गुणी एकरूप त्रिकाल है। आहाहा! ऐसी निर्विकल्पदृष्टि करना, वह समभाव है। आहाहा!

उसकर सहित हैं,... क्या कहा? इस समभावसहित। तीन बोल लिये न? समभावसहित **जिनके पुण्य-पाप दोनों ही नहीं हैं।** आहाहा! जिसे शुभ और अशुभभाव है ही नहीं दृष्टि में। आहाहा! समझ में आया? पाठ में है न! '**पुण्णु वि पाउ ण जाहं**' जिसे नहीं भक्ति का भाव, नहीं जिसे हिंसा का, झूठ का भाव। आहाहा! **दोनों ही नहीं हैं। ये दोनों शुद्ध, बुद्ध, एक चैतन्यस्वभाव परमात्मा से भिन्न हैं,....** आहाहा! कौन? शुभ और अशुभभाव। कौन है? शुद्ध, बुद्ध एक चैतन्यस्वभाव ऐसा लेना, वहाँ 'एक' डालना। पाठ में पड़ा रहा है। शुद्ध—परम पवित्र प्रभु, बुद्ध—ज्ञानघन एक चैतन्यस्वभाव। अभेदरूप स्वरूप एकरूप, जिसमें पर्याय का भेद भी नहीं। आहाहा!

शुद्ध, बुद्ध, एक चैतन्यस्वभाव परमात्मा.... वह स्वयं परमात्मा। शुद्ध, बुद्ध श्रीमद् में आता है न!

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम,
दूसरा कितना कहें, कर विचार तो पाम।

तेरा ज्ञान वहाँ जोड़ तो प्राप्त कर, दूसरा कुछ है नहीं। हमारे से कुछ मिले, ऐसा नहीं तुझमें, भक्ति कर या लाख कर। आहाहा! **ये दोनों, शुद्ध, बुद्ध, एक चैतन्य-स्वभाव परमात्मा से भिन्न हैं,....** कौन दो? पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ विकल्प। वह शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव, उसमें पुण्य-पाप का दो का अभाव है। आहाहा! अथवा यह मैं परमात्मा हूँ, यह दोनों भाव भिन्न है।

सो जिन मुनियों ने दोनों को हेय समझ लिया है,.... आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, परन्तु अब लोगों को ऐसा हो गया है कि बाहर से यह व्रत करे, तप करे, त्याग करे न तो उसे अधिक लगे। गृहस्थाश्रम में हो परन्तु सम्यग्दृष्टि हो तो वह मोक्षमार्ग में है। और भाई! आता है न, अणगारो....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह।

सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में हो तो भी वह मोक्ष के मार्ग में है और अणगार—मुनि होकर भी मिथ्यादृष्टि राग से पुण्य से धर्मादि माने तो वह मार्ग से भ्रष्ट है। आहाहा! **सो जिन मुनियों ने दोनों को हेय समझ लिया है,....** आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दृष्टि ने दोनों को हेय माना है, परन्तु यहाँ तो दोनों से हटकर स्थिरता बढ़ गयी है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में अभी दोनों वर्तते हैं बहुत पुण्य और पाप के भाव। उनके प्रति हेयबुद्धि है, दोनों बन्ध के कारण हैं। परन्तु मुनि को तो वह पुण्य-पाप के भाव बहुत ही घट गये हैं और समरसभाव बढ़ गया है। स्थिरता में भी बढ़ गया है। आहाहा! **हेय समझ लिया है, परमध्यान में आरूढ़ हैं,....** आहाहा! **उनकी मैं बार-बार बलिहारी जाता हूँ।** आहाहा! उनकी तो मैं बारम्बार... बारम्बार बलि बलि जाऊँ। है न दो बार? पाठ में है न? '**बलिं बलिं**' शब्द है दो बार। आहाहा! **बार-बार बलिहारी जाता हूँ।** आहाहा! लो, एक गाथा हुई परन्तु बहुत सरस हुई। बहुत सरस है! आहाहा! कुछ निकल जाये ऐसे शल्य हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १६०

अथ-

२८३) उव्वस वसिया जो करइ वसिया करइ जु सुण्णु।
बलि किज्जउँ तसु जोइयहिँ जासु ण पाउ ण पुण्णु।।१६०।।

उद्वसान् वसितान् यः करोति वसितान् करोति यः शून्यतान्।
बलिं कुर्वेऽहं तस्य योगिनः यस्य न पापं न पुण्यम्।।१६०।।

उव्वस इत्यादि। उव्वस उद्वसान् शून्यान्। कान्। वीतरागतात्त्विकचिदानन्दोच्छलन-निर्भरानन्दशुद्धात्मानुभूतिपरिणामान् परमानन्दनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानबलेनेदानीं विशिष्टज्ञानकाले वसिया करइ तेनैव स्वसंवेदनज्ञानेन वसितान् भरितावस्थान् करोति जु जो यः परमयोगी सुण्णु निश्चयनयेन शुद्धचैतन्यनिश्चयप्राणस्य हिंसकत्वान्मिथ्यात्व- विकल्पजालमेव निश्चयहिंसा तत्प्रभृति-समस्तविभावपरिणामान् स्वसंवेदनज्ञानलाभात्पूर्वं वसितानिदानां शून्यान् करोतीति बलि किज्जउं तसु जोइयहिं बलिर्मस्तकस्योपरितन-भागेनावतारणं क्रियेऽहमिति तस्य योगिनः। एवं श्रीयोगीन्द्रदेवाः गुणप्रशंसां कुर्वन्ति। पुनरपि किं यस्य योगिनः। जासु ण यस्य न। किम्। पाउ ण पुण्णु वीतरागशुद्धात्मतत्त्वाद्विपरीतं न पुण्यपापद्वयमिति तात्पर्यम्।।१६०।।

आगे फिर भी योगीश्वों की प्रशंसा करते हैं-

जो उजड़े परिणामों को थिर करें बसे को नष्ट करें।
पुण्य-पाप जिनको नहिं होते हम योगी! को नमन करें।।१६०।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो [उद्वसान्] ऊजड़ हैं, अर्थात् पहले कभी नहीं हुए ऐसे शुद्धोपयोगरुप परिणामों का [वसितान्] स्वसंवेदनज्ञान के बल से बसाता है, अर्थात् अपने हदय में स्थापन करता है, और [यः] जो [वसितान्] पहले के बसे हुए मिथ्यात्वादि परिणाम हैं, उनको [शून्यान्] ऊजड़ करता है, उनको निकाल देता है, [तस्य योगिनः] उस योगी की [अहं] मैं [बलिं] पूजा [कुर्वे] करता हूँ, [यस्य] जिसके [न पापं न पुण्यम्] न तो पाप है और न पुण्य है।

भावार्थ :-जो प्रगटरुप नहीं बसते हैं, अनादिकाल के वीतराग चिदानंदस्वरुप शुद्धात्मानुभूतिरुप शुद्धोपयोग परिणाम उनको अब निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से

बसाता है, निज स्वादनरुप स्वाभाविक ज्ञानकर शुद्ध परिणामों की बस्ती निज घटरुपी नगर में भरपूर करता है। और अनादिकाल के जो शुद्ध चैतन्यरुप निश्चयप्राणों के घातक ऐसे मिथ्यात्व रागादिरुप विकल्पजाल हैं, उनको निज स्वरुप नगर से निकाल देता है, उनको ऊजड़ कर देता है, ऐसे परमयोगी की मैं बलिहारी हूँ, अर्थात् उसके मस्तक पर मैं अपने को वारता हूँ। इस प्रकार श्रीयोगींद्रदेव परमयोगियों की प्रशंसा करते हैं। जिन योगियों के वीतराग शुद्धात्मा तत्त्व से विपरीत पुण्य-पाप दोनों ही नहीं हैं।।१६०।।

वीर संवत् २५०२, माघ कृष्ण ०७, गुरुवार
दिनांक- १०-०२-१९७७, गाथा - १६०, १६१, प्रवचन-२१२

परमात्मप्रकाश। १६० गाथा। **आगे फिर भी योगीश्वरों की प्रशंसा करते हैं—**

२८३) उव्वस वसिया जो करइ वसिया करइ जु सुण्णु।
बलि किज्जउँ तसु जोइयहिँ जासु ण पाउ ण पुण्णु।।१६०।।

आहाहा! एकदम तत्त्व की बात है भाई यह। **जो उज्जड़ हैं, अर्थात् पहले कभी नहीं हुए ऐसे शुद्धोपयोगरूप परिणामों का स्वसंवेदन ज्ञान के बल से बसाता है,....** जिसके परिणाम उज्जड़ थे, उज्जड़ अर्थात् खाली, शुद्धोपयोग नहीं। पुण्य-पाप के परिणाम, वे तो अशुद्ध उपयोग हैं, वे कहीं वस्तु का स्वरूप नहीं। आहाहा! पुण्य-पाप है, लिया है। '**जासु ण पाउ ण पुण्णु**' जिस परिणाम में पुण्य-पाप नहीं और जो परिणाम पुण्य-पाप से रहित शुद्ध उपयोग से खाली है, उसे शुद्ध उपयोग से बसावे।

वस्तु शुद्ध चैतन्यघन है। उसके परिणाम में उसके शुद्ध परिणाम जो धर्मस्वभाव, उससे वे परिणाम खाली हैं। शुद्ध उपयोगरूपी धर्म, उससे परिणाम खाली हैं अनादि से। आहाहा! उस खाली को बसावे। पुण्य-पाप के भाव से रहित शुद्ध चैतन्य के आनन्द के आश्रय से शुद्ध परिणाम जो हों, उन्हें बसावे। खाली को बसावे, बसे हुए को निकाल डाले। सूक्ष्म बात है। एकदम तात्पर्य है न यहाँ तो। अन्तिम गाथायें हैं न! आहाहा! जो इसके परिणाम में पुण्य और पाप के भाव बसे हुए हैं, वे शुद्ध उपयोग से खाली हैं। ऐसी

बात अब! यह धर्म। वस्तु है, वह तो स्वभाव से भरपूर चीज़ है भगवान आत्मा, परन्तु उसके परिणाम में जो उसके शुद्ध परिणाम चाहिए, उससे वह अनादि से खाली है। आहाहा! खाली को बसावे। लो, यह वास्तु। मकान-बकान बनावे और वास्तु करते हैं न फिर। पाँच-पचास हजार खर्च करे और बड़े अमलदार अधिकारियों को बुलावे। हो...हा... हो...हा... धुँआ करे पैसे का। यह कहते हैं कि जिसमें कभी वास्तु हुआ नहीं। आहाहा! भगवान अपने घर में कभी आया नहीं। आहाहा! दुनिया का आकर्षण पदार्थों को लक्ष्य में से छोड़कर पुण्य-पाप के शुभ-अशुभभाव हैं, उसमें यह परिणाम बसे हुए हैं, रहे हुए हैं और शुद्ध उपयोग से खाली हैं। बहुत एकदम तात्पर्य (भूत) बात है।

यह वस्तु स्वरूप जो चैतन्यघन भगवान, उसके सन्मुख के परिणाम से अनादि से खाली है और वह अनादि से उससे विमुख जो पुण्य-पाप के भाव हैं, उनसे बसा हुआ है। आहाहा! घर में बसा है या मकान में बसा है, शहर में बसा है—यह नहीं। आहाहा! जो भगवान आत्मा ज्ञान, आनन्द, सच्चिदानन्द प्रभु जिनस्वरूपी आत्मा, उससे विरुद्ध जो पुण्य-पाप के भाव में वह बसा हुआ है अनादि से। वह घर में आया नहीं, घर की वस्तु की नहीं, पर के घर में वास्तु किया। आहाहा! यह मकान और फकान, यह बात तो यहाँ की नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले यह सब उज्जड था, आपने बसाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसके कारण से आया है। यह तो सवेरे कहा नहीं? भाई! कि अब तुमने बहुत... रामजीभाई ने ऐसा लिखा कि महाराज के पदचिह्न, क्या कहलाता है दूसरा? दान... दान। भूल गये। रामजीभाई ने लिखा है नवनीतभाई को कि यह पैसे तुम जहाँ-तहाँ पत्थर में डाल देते हो, वे पैसे तो ज्ञान खाते डालना चाहिए। ऐई! चिमनभाई! रामजीभाई की सीख है। मैं ऐसा कहता हूँ अब तो कि अब यह उम्र ८७ हो गयी, जहाँ-तहाँ अब पत्थर में पैसा डालते हो मकान में। यह वापस यहाँ से यह शरीर गिर जायेगा और यहाँ से यह आत्मा तो चला जायेगा। आहाहा! ८७ का चौथा भाग भी अब रहनेवाला नहीं है।

मुमुक्षु : ऐसा कुछ नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... आहाहा! भोजन साधारण और सब साधारण।

मुमुक्षु : भोजन के साथ आयुष्य का कुछ सम्बन्ध नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ऐसा शरीर पहले से साधारण है, यह तो कैसे चला इतना। आहाहा! उसे फिर यह सब बड़े कितने मकान। सोसायटी के और फिर यहाँ तुम्हारे बँगला किया, रसोई के ऊपर दो-ढाई लाख का, क्या कहलाता है वह? मंजिल, मंजिल न? माळ... माळ (मंजिल)। अब यह यहाँ सोसायटी। और वे पन्द्रह, उसके दो-तीन व्यक्ति आये हैं अभी तो दूसरे आये भी नहीं। बड़ा-बड़ा करके ३५, ४०-४० हजार का एक मकान। पायखाना-बायखाना में ऐसे पैसे डालना। यहाँ तो शास्त्र के प्रचार के लिये बात है। सिद्धान्त का तत्त्व यथार्थ क्या है? उसके लिये शास्त्र बनाकर सस्ते करना, यह बात है अब तो। अब सब फलाना करना, ढींकणा, वह कुछ नहीं होता। आहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु का लोगों को कान में न पड़े, बेचारे क्या करें? आहाहा! इसलिए जैसे बने वैसे सब बाहर का पूंछड़ा लम्बा न करना। अब ऐसी आवाज बाहर से कि सब खाली पड़ेंगे, इसलिए रबारी कहते हैं हम घुस जायेंगे। यहाँ कहते हैं अधिक लोग कहाँ रहते हैं? ऐसी आवाज आयी थी, बाहर से किसी ने कहा था। बाहर से किसी ने कहा था, यह खबर है। समझ में आया?

यहाँ तो वस्तु भगवान आत्मा, आहाहा! जिसमें बसा है, वह इसकी चीज़ नहीं और जिसमें बसना है, वह इसके पास नहीं अनादि से। आहाहा! वस्तु ऐसी है, बापू! आहाहा! यह परमात्मप्रकाश में तो बहुत आ गया, नहीं? देव-गुरु-शास्त्र सब नाशवान है। वे काल की अग्नि के ईंधन हैं। कालरूपी अग्नि के ईंधन हैं सब। यह यात्रा के स्थल, देव के स्थल, देव की प्रतिमायें, देव के मन्दिर, वे कालरूपी अग्नि के ईंधन / लकड़ियाँ हैं। आहाहा! २६-२६ वर्ष का युवक व्यक्ति, देखो न, यह वजुभाई का। वजुभाई है? गये। उनकी बुआ के लड़के का लड़का २६ वर्ष का जवान। अमेरिका में ९० (प्रतिशत) नम्बर से पास। अमेरिका में पास। कितने पढ़नेवाले होंगे वहाँ। कुँवारा। मान दिया लोगों ने कि, ओहोहो! अमेरिका में भी इतने नम्बर से तुम पास! तुम्हारी बुद्धि की बहुत विद्वत्ता। लोग कहे, हमारे तो अब देश में जाना है। सम्मान देना है, तुम तब

तक रुको। यह सम्मान दिया लोगों ने। फिर वह दिन में चाहे जो, परन्तु रात्रि में ११ बजे तक तो जागता था। बातचीत करे। सोता था, सवेरे मर गया। मुर्दा। आहाहा! नाशवान में क्या हो, बापू! यह जगा, वह सोयेगा नहीं, सोया है वह जागेगा नहीं। एक दिन ऐसा होगा बापू! यह तो नाशवान में, बापू! क्या लेना वहाँ? आहाहा!

चौक में एक गिन्नी खो गयी हो चौक में, उसे फिर खोजने जाये वहाँ कहाँ से हो बापू! हजारों लोग जाते हों, वे ले लेवे। इसी प्रकार काल के चौक में पड़ी है वस्तु शरीर आदि। काल आयेगा तो उठ जायेगा एकदम। आहाहा! शाश्वत् वस्तु तेरी जो है, आहाहा! उसमें पर्याय में, कभी उसकी पर्याय में बसा नहीं। कहो, भगवानजीभाई! मकान-बकान यह सब ४०-४० लाख के मकान। देखो, शाहूजी को ४० लाख का मकान दिल्ली में। उसको वहाँ गोवा में ४० लाख के। १०-१० लाख के दो। बापू! किसकी चीज़ भाई? तेरी चीज़ तो अन्दर आनन्दकन्द प्रभु है न! आहाहा! उसके परिणाम जो शुद्ध चाहिए, उससे तो अनादि से तू अणबसा है, उसमें तो कभी बसा नहीं। आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

उज्जड़ करता है... आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु के परिणाम, उससे उज्जड़ है। आहाहा! बाहर के आकर्षणों में खिंचकर मर गया है। आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा का आकर्षण इसने किया नहीं। एकदम यहाँ तो सार बात है न! परमात्मप्रकाश की अन्तिम गाथायें हैं। आहाहा! उज्जड़ है। आहाहा! **पहले कभी नहीं हुए ऐसे शुद्धोपयोगरूप परिणामों का.... 'वसितान्'** उसे बसा। किस प्रकार? **स्वसंवेदनज्ञान के बल से....** आहाहा! दूसरे सब विकल्पों को छोड़ दे, प्रभु! तुझे तुझमें रहना हो तो। आहाहा! जहाँ अमृत का सागर अन्दर डोलता है। आहाहा! सुखामृत का सागर प्रभु है, उसमें तेरे परिणाम को बसा। आहाहा! एकदम सार है। आहाहा! अरेरे! दो, पाँच, दस लाख का मकान बनाया हो और वास्तु करे तो कितना हर्ष करता है! ओहो! आज तो ऐसा हुआ, बड़े लोग आये थे, ढींकणा आये थे। पुण्यवन्त प्राणी, बापू! तुमने दस लाख का मकान और वास्तु। और फिर दो, चार हजार, पाँच, दस हजार खर्च किये। आहाहा! परन्तु प्रभु! तेरे बसने में कितना हर्ष हो? आहाहा! आनन्द का नाथ प्रभु स्वसंवेदन ज्ञानबल से शुद्धोपयोग को बसा। आहाहा!

'**उद्वसान् वसितान्**' खाली को भर दे। जो शुद्धोपयोग से खाली परिणाम हैं, उसे शुद्धोपयोग से भर दे। आहाहा! गजब है न! सन्तों की शैली तो देखो। आहाहा! और वापस कहेंगे अन्त में, हों! '**जासु ण पाउ ण पुण्णु**' यह लेना है वापस। जिसमें नहीं पाप और पुण्य के भाव। आहाहा! है? १६०। चौथा पद, चौथा। चौथा पद है न? '**जासु ण पाउ ण पुण्णु**' आहाहा! जिस परिणाम में पुण्य और पाप नहीं, ऐसे परिणाम में बस, उसे बसा। आहाहा! यह अकेले बाहर के क्रियाकाण्ड में रुकता है न, और हम धर्म करते हैं। बापू! वह सब पुण्य-पाप में पुण्य में बसना है। वह आत्मा का बसना और धर्म का बसना नहीं उसमें, भाई! आहाहा! दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, शुभ विकल्प।

अरे! कल तो यहाँ तक नहीं आया था? कि इन्द्र और कीड़ा धर्मी को दोनों समान हैं। बहुत पुण्यवन्त इन्द्र, इसलिए जिसे चौंसठ देव जिसको ऐसे वह करे, क्या कहलाता है वह? देहरक्षण। अंगरक्षक। अंगरक्षक होते हैं न! आहाहा! चारों ओर चौरासी हजार, चौरासी हजार देव इन्द्र को होते हैं। वह इन्द्रपद और कीड़ा जिसे इन्द्रियाँ भी पाँच नहीं। आहाहा! इन्द्र को यह सामग्री और इन्द्रगोप को पाँच इन्द्रिय नहीं। आहाहा! प्रभु! दोनों समान जान। यह ठीक और यह अठीक, ऐसे राग-द्वेष न कर। आहाहा! इसी प्रकार चिन्तामणि और कंकड़। आहाहा! जीव के भेद लिये दो, फिर पुद्गल के दो भेद। भाई! प्रभु! तू आत्मा समभावी स्वरूप है न तेरा। आहाहा! उसे समभाव में ऐसा ला कि जिसे चिन्तामणि रत्न और कंकड़ दोनों समान लगे। आहाहा! दो।

तीसरा, गुण-गुणी के भेद के विकल्प को छोड़ दे। पर का तो निकाल दिया। महत्ता और हीनता। चिन्तामणिरत्न और कंकड़ यह दोनों निकाल दिये। बापू! यह सब परमाणु की दशा है जगत की। आहाहा! तू तुझमें जो भेद है गुण-गुणी का, ओहोहो! वह गुणी प्रभु आत्मा और अनन्त गुण हैं, यह भेद है, वह भी विकल्प है और विषमभाव है। आहाहा! इन्द्र को बड़ा मानना और कीट-कीड़े को छोटा मानना, वह सब विषमता है, कहते हैं। चिन्तामणि रत्न को ऊँचा मानना और कंकड़ को हल्का / तुच्छ मानना, वह सब राग-द्वेष है। आहाहा! उसे छोड़कर अब तेरा जो भगवान आत्मा! आहाहा! दिगम्बर सन्तों की कथनी तो, आहाहा! तीव्र वचन। श्रीमद् कहते हैं न? दिगम्बर के

तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण, शिथिलता के कारण, मोळाश ली, रस शिथिल पड़ता है। आहाहा!

प्रभु! तुझे यह मनुष्यपना सफल करना हो तो यह है। बाकी सब निष्फल और अफल है। आहाहा! समझ में आया? जिसमें परिणाम में शुद्धपना बसा नहीं और जिसके परिणाम में अशुद्ध परिणाम बसे हुए हैं, वे बसे हुए नहीं, उसे बसा और बसा हुआ है, उसे छोड़ दे। आहाहा! ऐसी बातें हैं, लोगों को... यह लोगों की चर्चा-तर्क बड़े कि यह व्रत, तप, दया और दान यह आचरण है, वह साधन है और उससे आत्मा प्राप्त होगा। आहाहा! जो उसकी चीज़ में नहीं, उस चीज से वह मिलेगा? उसकी चीज़ में तो पवित्रता है, तो पवित्रता के परिणाम से वह मिलेगा। वह अपवित्र परिणाम से आत्मा मिलेगा नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान का पुकार है न! आहाहा! केवली तीर्थंकर का ऐसा पुकार है, भाई! आहाहा! इस शरीर की श्मशान में राख होगी एकबार। वह इस भव में होगी। हें! या दूसरे भव में? आहाहा! 'हाड जले ज्यों लकड़ी, केश जले ज्यों घास।' बड़े बाल-केश हों, घास सुलगे वैसे सुलगेंगे हड... हड... हड... और हड्डियाँ लकड़ी की भाँति सुलगेंगी। 'हाड जले ज्यों लकड़ी, केश जले ज्यों घास।' आहाहा! प्रभु! ऐसा अवसर तुझे फिर कब मिलेगा? आहाहा! पोपटभाई! यहाँ तो बात यह है, बापू! ऐसी बात है, प्रभु! तेरी प्रभुता तुझे नजर में नहीं आती और दूसरे की जो हीनता तुझे प्रभुता भासित होती है। ऐसी रंकाई तूने अनन्त बार सेवन की है।

मुमुक्षु : इस अवसर में माने ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ अवसर। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो कहा है न, सब अवसर आ गया है, भाई! आहाहा! तीन लोक के नाथ की सत्य वाणी को सुनने जैसा आ गया तुझे अब। आहाहा! अब प्रभु! करना हो तो यह कर न, कहते हैं। आहाहा! जहाँ प्रभु विराजता है, वहाँ जा न अन्दर। आहाहा! बाहर के विकल्प की बाजी को समेट और निर्विकल्पता में आ जा। आहाहा! किस प्रकार आना?

स्वसंवेदनज्ञान के बल से.... यह वापस कारण दिया, भाई! वे कहते हैं कि यह विकल्प से होगा और ढींकणा से होगा। आहाहा! ऐसा है, भाई! शरीर की जवानी,

बापू! आहाहा! वह जवानी झोला खाकर वृद्धावस्था आ जायेगी। मुख फट जायेगा। आहाहा! जवानी में भी मर जाते हैं न, यह देह छूट जाये। आहाहा! यह २६ वर्ष की बात नहीं? अभी तो कुँवारा लड़का था। पढ़कर आता था और फिर यहाँ विवाह करना था। कितना उत्साह होगा? बापू! यह क्या करता है पर का उत्साह, भाई! वह तो नाशवान है न! यहाँ तो यह बात भी नहीं की। यहाँ तो पुण्य-पाप के विकल्प जो नाशवान, विभाव और अधर्म है, उसमें तू बसा है, वह बसा है, उसे छोड़ दे। आहाहा! बहुत लगे लोगों को। परन्तु उसका साधन? वह साधन ही यह है भिन्न करना और अन्दर बसना, यह साधन है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रज्ञाछैनी, यह साधन।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रज्ञाछैनी। आया था न, कहा था न! आहाहा! यह पुण्य के परिणाम, वे राग हैं, उनसे भिन्न पड़कर निर्मल परिणाम में आवे, वह साधन है। आहाहा! क्योंकि वस्तु के स्वभाव में साधन नाम का एक गुण है। तो उस गुण का अंश जो है तो निर्मल पर्याय में साधनपना आया है। समझ में आया इसमें? आहाहा!

निर्मल परिणाम शुद्धोपयोग होना, वह स्वसंवेदन ज्ञानबल हुआ। वह स्वसंवेदन ज्ञानबल, उसके परिणाम में षट्कारक का परिणमन है। आहाहा! द्रव्य और गुण में है तो वह द्रव्य-गुण भी जिसके कर्ताकर्म पर्याय में नहीं। जिसकी पर्याय में निर्मलता, उसका कर्ता और कर्म और करण, उसकी पर्याय में बसता है। उस पर्याय में राग को साधन कहना, वह तो उपचार से ज्ञान कराने के लिये कहा है। आहाहा! जो साधन की शक्ति से परिणमन खड़ा हुआ है, अपनी साधनशक्ति से पर्याय खड़ी हुई है। समझ में आया? राग और पुण्य के साधन को छोड़ दे। पैसा-बैसा तो कहीं रह गया धूल न। हें!

मुमुक्षु : उससे यह साधन मिले, ऐसा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! लाखों रुपये के दान करे और उससे यह आत्मा मिले (ऐसा नहीं है), बापू! वह तो विकल्प है, राग है। आहाहा! समझ में आया?

'**वसितान्**' बस। बस में व्याख्या की वापस स्वयं कि इससे बसना? स्वसंवेदनज्ञान। भगवान आत्मा को स्व—अपना सं—प्रत्यक्ष ज्ञान में वेदन से शुद्ध उपयोग में बस।

आहाहा! पर से खस, स्वरूप में बस, इतना टुकूं टच, यह कहने का बस। आहाहा! एकदम संक्षिप्त बात ली है। आहाहा!

उल्टी दृष्टि और राग-द्वेष के गहरे कुँए में उतर गया है तू, कहते हैं। आहाहा! हें! पत्नी का पति मर जाये न छोटी उम्र में, (इसलिए) वह रोवे। कुँए में उतारकर... क्या कहलाता है? डोरी काट दी। ऐसा सब हमारे घर में हुआ न, तो सुना हुआ है तब ५७ के वर्ष में। बड़े भाई थे। दीपचन्दभाई ५७ में गुजर गये। पानी लगा था। बहुत रूपवान शरीर था और २८ वर्ष की उम्र। एक ही लड़का हुआ। और फिर रोवे... रोवे... कुँए गहरा उतारकर, क्या कुछ भाषा है।...काटा—डोरी काटी। डाली नीचे यह। अरे! धूल भी नहीं, सुन न! तूने तेरी उपयोग की डोर काटकर राग-द्वेष में गहरा उतर गया है। आहाहा! शुद्ध उपयोग के डोर की सन्धि तूने तोड़ दी है, प्रभु! आहाहा! गहरे कुँए में उतर गया, बापू! आहाहा! तूने सन्धि राग से भिन्न करके स्वसंवेदनज्ञान के बल से शुद्धोपयोग को बसना चाहिए, वह तो तूने तोड़ डाला, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? पर्याय का पति ऐसा जो भगवान, उस पर्याय को इस ओर न झुकाकर तूने राग में झुकायी, तेरा पति छूट गया वहाँ से। आहाहा! समझ में आया?

आचार्य ने संक्षिप्त भाषा परन्तु गजब है न! उस उज्जड़ को बसा और बसा है उसे उज्जड़ कर। यह दो शब्द। उज्जड़ को बसा और बस्ती जो की है, उसे उज्जड़ कर डाल। आहाहा! कहो, देवीदासभाई! यह ऐसी बातें हैं। आहाहा! यह उज्जड़ है, तेरा नाथ है, परिणाम में वह नहीं आया। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर वह परिणाम में आया नहीं, वह उज्जड़ है। उस परिणाम में बस अब। आहाहा! एक बात। क्या कहा?

अपने स्वसंवेदनज्ञान से बसाता है, अर्थात् अपने हृदय में स्थापन करता है, और जो.... 'वसितान्' पहले के बसे हुए मिथ्यात्वादि परिणाम.... आहाहा! मिथ्यात्व आदि है न? पुण्य और पाप के भाव, वे पर्याय में बसे हैं, उस पर्याय का स्वामी कोई नहीं। स्वामी मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसे **मिथ्यात्वादि परिणाम हैं, उनको उज्जड़ करता है,....** शून्य... शून्य। आहाहा! कठिन बातें, बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई! सुख के पंथ में जाना, बापू! दुःख के पंथ को उज्जड़ कर डालना। आहाहा! इन्द्रियों के विषय में शुभाशुभ

भाव में बसना... आहाहा! वह अग्नि में सो रहा है। आहाहा! अग्नि की ज्वाला फूटी है, उसमें सो रहा है। आहाहा! उस बसे हुए को उज्जड़ कर, अर्थात् शून्य कर। वह पुण्य-पाप का विकल्प है और मिथ्यात्वभाव है कि यह मुझे तारेगा, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव है, उसे अब शून्य कर। आहाहा! स्वभाव को शून्य किया था, अब उसे शून्य कर। आहाहा! दिशा बदल दे, भाई! दशा करनी हो तो दिशा बदलनी पड़ेगी। आत्मदशा करनी हो तो दिशा बदलनी पड़ेगी, भाई! आहाहा! तुझे उसमें आनन्द आयेगा। तुझमें बसेगा तो तुझे मकान में बसे और जैसे हर्ष करता है, वह तो दुःख है। हर्ष नहीं, वह तो कषाय की अग्नि सुलगती है। वास्तु लिया आज तो ऐसा किया रंगरोगन हुए मकान को, स्तम्भ रोपे हैं। आहाहा! नहीं एक जगह डाला? सब मकान किये हैं और स्तम्भ में। किस गाँव में? नदी बनायी है और ऐसे सब गाँव बनाये। बड़े मकान अपने देखने गये थे वहाँ। स्तम्भ में सब देव और...

मुमुक्षु : पोरबन्दर में नानजी कालीदास का मकान।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ वह। हाँ, वह नानजी कालीदास का। नानजी कालीदास का। बड़ा किया है। बहुत अधिक खर्च करके। सब देवों के, दिगम्बर के भी चित्र डाले हैं। मकान है। आहाहा! उसमें बसे तो ऐसा लगे कि ओहोहो! तब तो भाई नानभाई थे, साथ में बताने को आये थे। है न सात-आठ करोड़ रुपये। लुहार नहीं? लुहार है। पोरबन्दर। व्याख्यान में आते थे। (फिर कहा), एक बार हमारा मकान देखने आओ। गये थे। ऐसे बड़े स्तम्भ में चित्रित वे नदियाँ और वह बड़ा। देश खड़ा किया था। पैसेवाला व्यक्ति है। अफ्रीका का। वह तो गुजर गया। यहाँ आये थे। उनके भगत थे।

यहाँ कहते हैं कि बस्ती जो बसी है पुण्य-पाप की अथवा मिथ्याश्रद्धा, अव्रत परिणाम, आदि के परिणाम को उज्जड़ करता है। आहाहा! **उनको निकाल देता है,....** आहा! **'तस्य योगिनः' उस योगी की मैं बलि जाऊँ (पूजा करता हूँ),....** सिर पर रखकर पूजा करता हूँ। धारण करता हूँ। बड़ा राजा हो और फिर उसे गिन्नियों द्वारा पूजा करे। बाहर से आये हो न तो गिन्नी-गिन्नी। इसी प्रकार यह कहते हैं कि हे मुनि! जिसे आत्मा का उपयोग बसा है शुद्ध और इन्द्रियों के विषय और शुभाशुभभाव को उज्जड़

कर दिया है, उसे मैं बलि जाता हूँ, उसके सिर पर मैं बारम्बार... बारम्बार बलि जाता हूँ, उसकी प्रशंसा करता हूँ। आहाहा! कहो, पुण्य को करता है, उसकी प्रशंसा नहीं करते। हें! चाहे जितना पुण्य करता हो, बड़ी भक्ति और मन्दिर... आहाहा! भरत चक्रवर्ती ने तीन चौबीस के स्वर्ण के मन्दिर बनाये थे। पर्वत, कौन सा पर्वत? कैलाश... कैलाश। है न अपने उसमें? यहाँ है। वहाँ भी है अपने, प्रवचनमण्डप में है दरवाजे के ऊपर। तीन काल के तीनों चौबीसी के स्वर्ण के मन्दिर। अब उसे कहाँ कमी थी वहाँ हीरा का करे तो भी। स्वर्ण के बनाये स्वर्ण के। वह तो एक शुभभाव है। यह महाप्रभु मन्दिर है, उसमें बसे तो वह पवित्रता प्रगट करे, ऐसा है।

'तस्य योगिनः' पूजा करता हूँ,.... किसे? **जिसके 'न पापं न पुण्यम्' न तो पाप है और न पुण्य है।** आहाहा! जिसके ध्यान में उपयोग है, उसके नहीं पुण्य और पाप जिसके परिणाम में। आहाहा! वह उसमें ऐसे लोगों की चिल्लाहट है। परन्तु उसका साधन? यह कुछ भक्ति करें, व्रत करें, ऐसा कहे। अरे! प्रभु! वह साधन नहीं, भाई! वह स्वयं यह साधन है। आहाहा! समझ में आया? पैसे थोड़े×बहुत इकट्ठे हों और स्त्री ठीक मिले, पुत्र ठीक मिले, वहाँ ओहोहो! मानो कैसे सुखी हैं। धूल में भी सुखी नहीं। दुःख की ज्वाला में जल रहा है, इसे कहाँ भान है? आहाहा!

मुमुक्षु : भान नहीं तो तेजहीन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब तेजहीन हैं पैसेवाले भी। आहाहा! उस सर्प का नहीं कहा था? चूड़ा में। हलवाई था। प्रेमचन्दभाई! वे कुँवरजी हलवाई, कुँवरजी हलवाई। सामने दुकान। उसमें भुजिया या कुछ बनाते होंगे तेल की कड़ाई में। भुजिया या पूड़ी चाहे जो। उसमें उसकी ज्वाला लगी, ज्वाला। ऊपर सर्प जाये उसे ज्वाला लगी। पड़ा आधा पड़ा कड़ाई में और आधा बाहर। अब? उस बेचारे को ऐसा, वह तो आर्य व्यक्ति इसलिए शोर मचावे। आहाहा! वह चिमटा होता है, उससे ऐसे बाहर निकाला। परन्तु भान नहीं होता कि वह मानो उभरने का रास्ता कहाँ होगा। वह आहाहा! अग्नि से हळ... हळ... हळ... हळ (हुआ)। उसी प्रकार यह अज्ञानी राग और द्वेष की अग्नि में हळ... हळ... प्रविष्ट होते हैं। आहाहा! बेचारे शोर मचा गये थे। हलवाई थे। वे लोग

श्वेताम्बर परन्तु उन्हें ... धर्मादा निकाला हो, वह यहाँ दे गये थे एकबार। सुनने को मिले नहीं, समझ में आये नहीं, इसलिए यह क्या होगा? (ऐसा होता है)। उसकी अपेक्षा तो भगवान के दर्शन करें, दान करें, ऐसा करें तो अपने को धीरे-धीरे... इसलिए ऐसा करके उसमें सहारा ले शुभराग का। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि जिसे नहीं पुण्य और पाप, जिसके परिणाम में। थे, उन्हें टाला है और नहीं थे, उन्हें प्रगट किया है। उसकी मैं पूजा करता हूँ।

भावार्थ—जो प्रगटरूप नहीं बसते हैं,.... शुद्ध प्रगटरूप नहीं, स्वरूप में है। शक्तिरूप से शुद्धोपयोगरूप वीतरागस्वरूप है। आत्मा में वीतरागस्वरूप ही भरा है। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो शुद्धोपयोग अर्थात् वीतरागस्वरूप का शक्ति स्वभाव ही पड़ा है उसमें। वह है, देखो। **प्रगटरूप नहीं बसते हैं,....** पर्याय में वह वीतरागता नहीं आयी। आहाहा! **अनादि काल के वीतराग चिदानन्दस्वरूप....** उसमें तो ऊपर यह शब्द है भाई। नहीं? तात्त्विक शब्द है। वीतराग तात्त्विक चिदानन्द। पहले एक बार आ गया था। तात्त्विक। तात्त्विक अर्थात्? वीतरागी चिदानन्दस्वरूप वह तात्त्विक है। यह विषय के सुख, बाहर के सुख, वे तात्त्विक नहीं, वे तो जहर हैं। आहाहा! यह परमार्थ सुख है। है?

वीतराग चिद् अर्थात् ज्ञानानन्दस्वरूप **शुद्धात्मानुभूतिरूप शुद्धोपयोग परिणाम....** आहाहा! शुद्धोपयोग की व्याख्या की। पुण्य और पाप भाव है, वह अशुद्धोपयोग है। उससे अन्दर आत्मा में आते हैं परिणाम, वह शुद्ध उपयोग है। शुद्ध उपयोग अर्थात् क्या? कि पुण्य-पाप का अशुद्ध उपयोग है, उससे रहित वीतराग है। और पुण्य-पाप में तो राग का दुःख था। और यह तो चिदानन्द का स्वरूप है। परिणाम, हों! चिदानन्दस्वरूप शुद्धात्मानुभूति। वह राग का अनुभव था, यह शुद्धात्मा का अनुभव है। आहाहा! ऐसा उपदेश अब लोगों को... वह सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो, प्रौषध करो। वह एक चूड़ावाला कहता था। रतिलाल मास्टर, नहीं था? प्रेमचन्दभाई! वह रतिलाल मास्टर। एक बार सुनने आया था वहाँ। यह महाराज ऐसा कहते हैं, उपाश्रय को ताला लगाना पड़े। कौन करे? यह तो कहे व्रत, तप और भक्ति भाव, वह तो सब पुण्य है, धर्म नहीं। उसका लड़का आया था। ... सुनना कठिन पड़े, मिलता नहीं।

यहाँ कहते हैं कि शुद्धोपयोग अर्थात् क्या? अशुद्धोपयोग अर्थात् क्या? वह पुण्य-पाप के भाव, राग के भाव, आकुलता के भाव। आहाहा! अब शुद्ध उपयोग वह क्या? कि वीतराग चिदानन्दस्वरूप, शुद्धात्मानुभूति, शुद्ध भगवान का अनुभव ऐसा जो शुद्ध उपयोग परिणाम, शुद्ध उपयोगयपी परिणाम। आहाहा! नीचे वीतराग न हो, इसलिए ऐसा कहते हैं। वीतराग तो सातवें में होता है, फलाना होता है, ढींकण होता है, सराग समकित होता है। अरे! बापू! सराग समकित नहीं होता, समकित तो शुद्धोपयोगरूप ही है। समझ में आया? आहाहा! शुद्धस्वभाव की प्रतीति त्रिकाल की, वह शुद्धरूप से है। आहाहा! वह सरागपने नहीं। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहना है कि ऐसा शुद्धात्मारूप उपयोग है, उससे परिणाम खाली है अनादि के। उन परिणाम में यह परिणाम कर। आहाहा! वीतराग ज्ञानानन्दस्वरूप, तात्त्विकस्वरूप। ज्ञानानन्दस्वरूप वह तात्त्विकस्वरूप है। वह शुद्धात्मानुभूतिरूप शुद्धोपयोग, वह परिणाम है। परिणामी त्रिकाल है, उसके यह परिणाम है—पर्याय है। पर्याय भी है कैसी? आहाहा! जैसे वे दया, दान, व्रतादि के परिणाम, वह अशुद्ध उपयोग रागवाले, आकुलतावाले, दुःखवाले। और यह है वह शुद्ध चिदानन्द वीतरागी आनन्दस्वरूप शुद्धात्मानुभूतिरूप परिणाम। आहाहा!

उनको अब निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से बसाता है,.... लो, बसना आया था न?

मुमुक्षु : बसाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बसाता है। बसाता है। बसता है, वह स्वयं बसता है, ऐसा। **निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से बसाता है, निज स्वादनरूप....** है न? अपने स्वादरूप। पुण्य-पाप है, वे राग के स्वादरूप हैं। आहाहा! मुनि के लिये कहते हैं, शुद्धोपयोगरूपी धर्म चारित्र जिसने अंगीकार किया है। शुद्ध उपयोग जिसे परम शुद्ध उपयोग जिसने अंगीकार किया है। यहाँ (अज्ञानी) कहते हैं कि नहीं, शुद्ध उपयोग नीचे होता नहीं। वह तो सातवें में होता है। परन्तु सच्चा लक्षण... अब। आहाहा! ....भाई! ....मानेगा तो बापू! उसका रास्ता... भटकने का है। आहाहा! तेरे लाभ की बातें हैं,

भाई! दुनिया माने और दुनिया प्रशंसा करे। ... इससे तेरे आत्मा को क्या? ...वह तो बालब्रह्मचारी, ...महाव्रत पालते हैं। अरे! वह तो रागवाले परिणाम, आस्रववाले परिणाम, परलक्ष्यी परिणाम हैं। आहाहा! इससे यहाँ कहा न, वीतरागी चिदानन्दस्वरूप ऐसा जो शुद्ध उपयोग परिणाम, उसमें बसते हैं। आहाहा!

निज स्वादनरूप स्वाभाविक ज्ञानकर शुद्ध परिणामों की बस्ती निज घटरूपी नगर में भरपूर करता है। आहाहा! वह निज घटरूपी नगर, उसमें ऐसे शुद्ध परिणाम से भरपूर है। ...आनन्दस्वरूप चिदानन्द प्रभु की ओर के परिणाम भी शुद्ध उपयोग से भरपूर हैं, कहते हैं। आहाहा! **और अनादिकाल के जो शुद्ध चैतन्यरूप निश्चय प्राणों के घातक....** आहाहा! वह मिथ्यात्व परिणाम, पुण्य के परिणाम, आहाहा! वह **अनादिकाल के जो शुद्ध चैतन्यरूप निश्चय प्राणों....** शुद्धनिश्चय ज्ञान, आनन्द जिसके प्राण, उसे जो यह रागप्राण उत्पन्न करते हैं व्यवहार, आहाहा! वह उसका घातक है— आनन्द का घातक वह प्राण है। वह रागरूपी अशुद्ध प्राण, आहाहा! शुद्ध प्राण का घातक है। अब वह अशुद्ध प्राण शुद्ध प्राण की उत्पत्ति करे तो साधक कहलाये इसे। आहाहा! आत्मा आनुभवंती, नहीं आया था सवेरे? पर को जिला सकता हूँ, पर की रक्षा कर सकता हूँ, पर को अनुकूलता दे सकता हूँ, यह भाव आत्मा का आत्मा को हनन करनेवाला है। आहाहा!

यह प्राण निश्चयप्राण के घातक **ऐसे मिथ्यात्व रागादिरूप विकल्पजाल हैं,....** विपरीत मान्यता और रागादि विकल्प सब, अस्थिरता। **उनको निज स्वरूप नगर से निकाल देता है,....** उसको निजस्वरूप नगर में बसाता है, भरपूर करता है, इसे खाली करता है, उसे भरता है और उसको खाली कर, ऐसा कहते हैं। ऐसी क्रिया! आहाहा! **रागादिरूप विकल्पजाल....** ऐसा कहकर यह कहा कि शुभविकल्प है, वह भी जाल है, आत्मा के स्वभाव का घातक है। ऐसा आया या नहीं इसमें? जो घातक है, वह साधक होगा? आहाहा! अमृत का सागर भगवान अन्दर, आहाहा! निश्चयप्राण को राग, वह घातक है। आहाहा! उस आनन्द के स्वाद को उत्पन्न नहीं होने देता। और आकुलता को उत्पन्न करनेवाले, वे आनन्द के घातक हैं। आहाहा! और शुद्धोपयोग है, वह आनन्द का उत्पादक है। पुण्य-पापरहित शुद्धोपयोग है, वह आत्मा का उत्पादक है आनन्द का,

और यह राग है, वह आनन्द का घातक है। आहाहा! ऐसी बात है, अब इसे करना? बड़ी चर्चा लगावे, इस शास्त्र में ऐसा कहा है... तुझे अन्दर में झुकाने का सार है यह। आहाहा! बाहर में से निकल जा और अन्तर में जा। उसकी सब टीका पूरे शास्त्र की है। अब तुझे निकालना हो, वह निकाल। समझ में आया?

उनको उज्जड़ कर देता है,.... आहाहा! अनादि के पुण्य और पाप मेरे, ऐसा मिथ्यात्व, उसे उज्जड़ कर डाल। **ऐसे परमयोगी की मैं बलिहारी हूँ, अर्थात् उसके मस्तक पर मैं अपने को वारता हूँ।** वारता हूँ। मस्तक पर वारे न! आहाहा! **इस प्रकार श्री योगीन्द्रदेव परमयोगियों की प्रशंसा करते हैं।** आहाहा! मुनि ऐसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। उत्कृष्ट बात है न! दर्शनसहित चारित्र की बात है न! आहाहा! ऐसे **परमयोगियों की प्रशंसा करते हैं। जिन योगियों के वीतराग शुद्धात्मा तत्त्व से विपरीत पुण्य-पाप दोनों ही नहीं है।** आहाहा! जो स्वभाव सन्मुख के शुद्धोपयोग में आया है, उसे पुण्य और पाप दोनों है नहीं। उससे विपरीत है वह तो। शुद्धात्मतत्त्व का उपयोग है, उससे पुण्य-पाप तो विपरीत है। आहाहा! एक-एक गाथा में तो बारह अंग का सार कहते हैं। भाई! तुझे सार हो तो यह करनेयोग्य है। आहाहा!

पुण्य-पाप दोनों ही नहीं है। शुभ-अशुभभाव दोनों नहीं। तब उसे शुद्धा उपयोग होता है। यह कहा न, घातक है इसलिए इनकार करते हैं। आहाहा! होता है। आत्मभान हुआ, वीतरागी उपयोग प्रगट हुआ तो भी अभी वीतराग पूर्ण न हो, तब तक राग होता है। है तो वह घातक। साधक को मददगार नहीं। आहाहा! वह तो निमित्त के कथन हैं। श्रावक को शुभ उपयोग वह... ऐसा कहे। अर्थात् कि पाप के परिणाम होते हैं, तब ऐसे पुण्य के परिणाम भक्ति आदि के होते हैं उसे... विकल्प तो है। बन्धन तो है। आहाहा! गृहवास बसते हुए, नहीं आया? योगीन्द्रदेव का। वह तो व्यवहार से बात की है। यहाँ तो इनकार किया वापस। गृहवास बसते हुए जो अपने ध्यान में रहता है, वह मुक्ति के योग्य है। आहाहा!

गाथा - १६१

अथैक सूत्रेण प्रश्नं कृत्वा सूत्रचतुष्टयेनोत्तरं दत्त्वा च तमेव पूर्वसूत्रघपञ्चकेनोक्तं निर्विकल्पसमाधिरुपं परमोपदेशं पुनरपि विवृणोति पञ्चकलेन–

२८४) तुट्टइ मोहु तडित्ति जहिँ मणु अत्थवणहँ जाइ।
सो सामइ उवएसु कहि अण्णेँ देविं काइँ।।१६१।।

त्रुट्यति मोहः झटिति यत्र मनः अस्तमनं याति।
तं स्वामिन् उपदेशं कथय अन्येन देवेन किम्।।१६१।।

तुट्टइ इत्यादि। तुट्टइ नश्यति। कोडसौ। मोहु निर्मोहशुद्धात्मद्रव्यप्रतिपक्षभूतो मोहः तडित्ति झडिति जहिं मोहोदयोत्पन्नसमस्तविकल्परहिते यत्र परमात्मपदार्थे। पुनरपि किं यत्र। मणु अत्थवणहं जाइ निर्विकल्पात् शुद्धात्मस्वभावाद्विपरीतं नानाविकल्पजालरुपं मनोवास्तं गच्छति सो सामिय उवएसु कहि हे स्वामिन् तदुपदेशं कथयति प्रभाकरभट्टः श्रीयोगीन्द्रदेवान् पृच्छति। अण्णें देविं काइं निर्दोषिपरमात्मनः परमाराध्यात्सकाशादन्येन देवेन किं प्रयोजन– मित्यर्थः।।१६१।।

आगे एक दोहे में शिष्य का प्रश्न और चार दोहों में प्रश्न का उत्तर देकर निर्विकल्पसमाधिरुप परम उपदेश को फिर भी विस्तार से कहते हैं–

शीघ्र नशे अब मोह और मन भी स्थिरता प्राप्त करे।
ऐसा दो उपदेश प्रभो! अब अन्य देव से चित्त हटे।।१६१।।

अन्वयार्थ :– [स्वामिन्] हे स्वामि, मुझे [तं उपदेशं] उस उपदेश को [कथय] कहो [यत्र] जिससे [मोहः] मोह [झटिति] शीघ्र [त्रुट्यति] छूट जावे, [मनः] ओर चंचल मन [अस्तमनं] स्थिरता को [याति] प्राप्त हो जावे, [अन्य देवेन किम्] दूसरे देवताओं से क्या प्रयोजन है?

भावार्थ :–प्रभाकरभट्ट श्रीयोगीन्द्रदेव से प्रश्न करते हैं, कि हे स्वामी, वह उपदेश कहो कि जिससे निर्मोह शुद्धात्मद्रव्य से पराङ्मुख मोह शीघ्र जुदा हो जावे, अर्थात् मोह के उदय से उत्पन्न समस्त विकल्प–जालों से रहित जो परमात्मा पदार्थ उसमें मोह–जाल का लेश भी न रहे; और निर्विकल्प शुद्धात्म भावना से विपरीत नाना विकल्पजालरुपी

चंचल मन वह अस्त हो जावे। हे स्वामी, निर्दोष परमाराध्य जो परमात्मा उससे अन्य जो मिथ्यात्वी देव उनसे मेरा क्या मतलब है? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया उसका एक दोहा-सूत्र कहा।।१६१।।

गाथा-१६१ पर प्रवचन

आगे एक दोहे में शिष्य का प्रश्न और चार दोहों में प्रश्न का उत्तर देकर निर्विकल्पसमाधिरूप परम उपदेश को फिर भी विस्तार से कहते हैं—निर्विकल्प उपयोग, उसे फिर से विशेष (कहते हैं)। शिष्य का प्रश्न है। प्रभु! सब बात छोड़कर मुझे तो मोह कैसे टूटे, यह बात करो। कैसे पुण्य हो और कैसे राग हो, ऐसा पूछा नहीं। है?

२८४) तुट्टइ मोहु तडित्ति जहिं मणु अत्थवणहँ जाइ।
सो सामइ उवएसु कहि अण्णें देविं काइँ।।१६१।।

आहाहा! मोह एकदम टूटे। ऐसा है न, शीघ्र? और मन से अस्त हो जाये। आहाहा! **जो हे स्वामी!.... 'सो सामइ उवएसु कहि अण्णें देविं काइँ।'** मुझे यह उपदेश दो। दूसरे का मुझे क्या काम है? दूसरे देव क्या कहते हैं, उसका मुझे क्या काम है? प्रभु! आप परमात्मा हो। आहाहा! समझ में आया? लाख बात की बात मुझे यह उपदेश दो। मोह कैसे टूटे और मन कैसे अस्त हो जाये? आहाहा! समझ में आया? देखो! प्रश्न करनेवाले का प्रश्न भी ऐसा है। आहाहा! धर्म के जिज्ञासु ऐसे होते हैं, कहते हैं। मोह कैसे टूटे और मन कैसे अस्त हो जाये, अस्त हो जाये? आहाहा! स्वरूप में सावधान कैसे हो जाये और आगे कैसे बढ़ जाये आत्मा, ऐसा मुझे उपदेश दो। ऐसा शिष्य का प्रश्न है। है न? आहाहा!

जो हे स्वामी!.... 'हे स्वामिन् तदुपदेशं कथयति' 'अण्णें देविं काइं उवएसु' आहाहा! अन्य देव के साथ मुझे क्या काम? प्रभु का उपदेश है सत्य, वह कहो। ऐसा कहकर यह कहा है कि वीतरागदेव में ही यह उपदेश सच्चा है, अन्य देव में कहीं है नहीं। आहाहा! यह विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, माघ कृष्ण ०८, शुक्रवार
दिनांक- ११-०२-१९७७, गाथा - १६१, १६२, प्रवचन-२१३

१६१ गाथा। प्रभाकरभट्ट गुरु से पूछता है कि **हे स्वामी!...** शब्दार्थ है न? **मुझे उस उपदेश को कहो....** मुझे वह उपदेश कहो, **जिससे मोह शीघ्र छूट जावे,....** मिथ्यात्वभाव शीघ्र नाश हो जाये, वह उपदेश करो। मिथ्यात्व के साथ राग-द्वेष भी साथ है। दूसरी बात का मुझे क्या काम है? मुझे तो यह मोह कैसे टूटे, वह उपदेश मुझे कहो। देखो, शिष्य का प्रश्न यह है। कैसे पुण्य बँधे? कैसे स्वर्ग मिले? कैसे लक्ष्मी मिले? (यह नहीं पूछा)। मोह कैसे टूटे, वह उपदेश करो। एक ही बात। पर में सावधानी का मिथ्यात्वभाव वह कैसे टूटे, यह उपदेश करो।

जिससे मोह शीघ्र छूट जावे,.... एक क्षण में मोह नाश हो जाये, ऐसा उपदेश करो। आहाहा! **और चंचल मन स्थिरता को प्राप्त हो जावे,....** अस्त हो जाये, मन है वह स्थिर हो जाये। **प्राप्त हो जावे, दूसरे देवताओं से क्या प्रयोजन है?** अपने भगवान देवस्वरूप के अतिरिक्त दूसरे देव से मुझे क्या प्रयोजन? अथवा अन्यमति के जो देव हैं, उनसे भी क्या प्रयोजन? क्योंकि स्वदेव जो भगवान है, वह तो अपने आतमा के देव की ओर ढलने का कहता है, अन्तर में जा... अन्तर में जा, प्रभु! आहाहा! सर्वज्ञ का यह उपदेश है, ऐसा कहते हैं। आत्मा आनन्दस्वरूप है, उस ओर का झुकाव कर तो मोह का नाश होगा, यह उपदेश सर्वज्ञ परमात्मा का है, ऐसा कहते हैं। अन्य देवों में या दूसरे मत में यह उपदेश है नहीं। **दूसरे देवताओं से क्या प्रयोजन है?**

भावार्थ—प्रभाकर भट्ट श्री योगीन्द्रदेव से प्रश्न करते हैं,.... १३०० वर्ष पहले योगीन्द्रदेव हुए, उनसे प्रभाकरभट्ट प्रश्न करते हैं। **स्वामी! वह उपदेश कहो कि जिससे निर्मोह शुद्धात्मद्रव्य से पराङ्मुख....** मोह नाश हो न, यह मोह की व्याख्या की। मोह कहना किसे? तो **निर्मोह शुद्धात्मद्रव्य से पराङ्मुख....** आहाहा! भगवान आत्मा निर्मोह शुद्धात्म पदार्थ, उससे विमुख... आहाहा! **पराङ्मुख मोह....** मिथ्यात्व की—मोह की व्याख्या की है कि मोह किसे कहना? आहाहा! कि शुद्धात्मद्रव्य जो भगवान आत्मा

निर्मोह शुद्धात्मद्रव्य। उसमें तो मोह है नहीं। आहाहा! निर्मोह शुद्धात्मद्रव्य परमानन्दस्वरूप भगवान, वह तो निर्मोह आत्मा तो है। समझ में आया?

मोह की व्याख्या करते हुए, मोह विपरीत है, किससे? निर्मोह शुद्धात्मद्रव्य से। आहाहा! **निर्मोह शुद्धात्मद्रव्य से पराङ्मुख मोह शीघ्र जुदा हो जावे, अर्थात् मोह के उदय से उत्पन्न समस्त विकल्पजालों से रहित....** इसमें नाश कहा है। मोह के उदय से विकल्प होते हैं। स्वयं पर में सावधान होता है, तब कर्म उसमें निमित्त है, वह विकल्प की जाल तब खड़ी होती है। समझ में आया? स्वभाव चैतन्य का वर्तमान और त्रिकाल निर्मोह शुद्धात्मतत्त्व। भगवान शुद्धस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु! परमात्मप्रकाश है न, यह परमात्मस्वरूप निर्मोह शुद्धात्मा, वह परमात्मा है। आहाहा! उससे विमुख, वह मोह है। आहाहा! वह **जुदा हो जावे, अर्थात् मोह के उदय से उत्पन्न समस्त विकल्पजालों से रहित जो परमात्मा पदार्थ....** देखा! वापस लिया यह परमात्मपदार्थ। आहाहा! निर्मोह शुद्धात्मद्रव्य, वह परमात्मा।

उसमें मोह-जाल का लेश भी न रहे;.... ऐसा जो परमात्मा पदार्थ **उसमें मोह-जाल का लेश भी न रहे; और निर्विकल्प शुद्धात्म-भावना से विपरीत,....** आहाहा! देखा! उस निर्मोह शुद्धात्मद्रव्य से विमुख मोह; अब यहाँ विकल्प कैसा है, कहते हैं। **निर्विकल्प शुद्धात्म-भावना से....** अर्थात्? अखण्ड आनन्द की एकाग्रतारूपी भावना, निर्विकल्प एकाग्रता। आहाहा! **निर्विकल्प शुद्धात्म-भावना से विपरीत,....** आहाहा! भगवान शुद्धस्वरूप परमात्मा की जो भावना, वह निर्विकल्प भावना है। समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म बहुत, इसलिए लोगों को (कठिन लगता है)। बापू! मार्ग तो ऐसा है अनादि काल का। भगवान पूर्णाननदस्वरूप, निर्मोह शुद्धात्मद्रव्य, अब उसकी प्राप्ति निर्विकल्प वीतरागी पर्याय से प्राप्ति होती है। निर्विकल्प वीतरागी पर्याय से विपरीत विकल्प जाल। समझ में आया? मोह की व्याख्या करते हुए निर्मोह शुद्धात्मस्वरूप से विपरीत पराङ्मुख मोह। वह तो द्रव्य के सामने विरुद्ध कहा, अब पर्याय के सामने विरुद्ध। समझ में आया? आत्मा की निर्विकल्प जो भावना। है?

निर्विकल्प शुद्धात्म-भावना से.... रागरहित, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित

निर्विकल्प शुद्धात्मा की भावना। आहाहा! एकाग्रता। उससे **विपरीत नाना विकल्पजालरूपी चंचल मन....** लो, यहाँ तो यह कहा कि मोक्षमार्ग जो निर्विकल्प दृष्टि है, निर्विकल्प एकाग्रता है, उससे विरुद्ध विकल्प जाल है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह भी निर्विकल्प वीतराग भावना, वीतरागता की भावना जो निर्विकल्प है, उससे विकल्प, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी विपरीत है। आहाहा! ऐसा लगे लोगों को। यह बाहर से माना हो, उसे कठिन लगे।

निर्मोह शुद्धात्मद्रव्य—पदार्थ से विमुख मिथ्यात्वभाव मोह। यहाँ कहते हैं कि निर्विकल्प शुद्धात्मा की भावना। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप चैतन्यमूर्ति की भावना अर्थात् स्वसन्मुख की एकाग्रता, उससे विपरीत विकल्प की विमुखता। आहाहा! जितने विकल्प उठें, वे सब स्वभाव से विरुद्ध हैं। मोक्षमार्ग की परिणति से वे सब विरुद्ध हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निर्विकल्प शुद्धात्म भावना, वह मोक्षमार्ग। शुद्धात्मा की एकाग्रता, वह भावना। वह निर्विकल्प भावना है शुद्धात्मा की। उससे विपरीत अनेक प्रकार के विकल्प जाल। आहाहा! स्वरूप में एकाग्रतारूप वह तो एक ही रूप है—स्वभाव में एकाग्रता और वह अनेकरूप विकल्प, उससे विरुद्ध है। आहाहा! ऐसा मार्ग है देवजीभाई! आहाहा! परमात्मप्रकाश है न! निर्मोह शुद्धात्मद्रव्य अर्थात् परमात्मा। स्वयं, हों! उससे विरुद्ध, वह मोह।

अब वह परमात्मा जो शुद्धात्मा है निर्मोह, उसकी एकाग्रता। आहाहा! विकल्प से—राग से हटकर और स्वरूप में एकाग्रता, वह मोक्ष का मार्ग। आहाहा! वह निर्मल परिणति भावना अर्थात्। उससे विरुद्ध विकल्पजाल। आहाहा! चाहे तो शुभभाव हो या अशुभ हो, परन्तु वह निर्विकल्प परिणति से विरुद्ध भाव है। आहाहा! उन लोगों को यह ठहराना है कि व्यवहार जो विकल्प है, उससे निर्विकल्प होता है। यह बड़ा विवाद है। सुजानमलजी! ऐसी बातें हैं। क्या हो, भाई! आहाहा! भगवान अन्दर वस्तु है न बापू! प्रभु! तू तेरा पिता है पर्याय का पिता। वह पर्याय कौन? कि निर्विकल्प वीतरागी। आहाहा! वह उसकी प्रजा है। यह रागादि की प्रजा तो निर्विकल्प परिणति से विरुद्ध है, कहते हैं। समझ में आया?

निर्विकल्प शुद्धात्म-भावना.... ऐसा, उससे **विपरीत नाना विकल्पजाल....**

आहाहा! यह निमयसार में लिया नहीं? निश्चय से विरुद्ध विकल्प, वह जाल विपरीत, उसका फल विपरीत। व्यवहार की क्रिया जितनी है, वह भी निर्मल परिणति से विपरीत और उसका फल भी यह आनन्द का फल आवे, इससे वह विपरीत दुःखरूप फल आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अब कहाँ पहुँचना इसे? गृहस्थाश्रम में कुछ हल्का करो, ऐसा कहते हैं। क्योंकि बहुत काल पाप में रुकना (होता है), अब उसे कुछ पुण्य बताओ। पुण्य है, वह साधन है। उसमें ऐसा कहा, लो प्रश्न किया है। पुण्यफला अर्हंता। खानियाचर्चा में। पुण्य के फल से तो अरिहन्तपद मिलता है और तुम उसका निषेध करते हो? ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! उसका उपोद्घात तूने पढ़ा नहीं। पुण्य के फल, वे आत्मा को अकिंचित्कर हैं, ऐसा है वहाँ तो। उसमें यह लिखा है। छहढाला में। वह क्या कहलाती है? खानियाचर्चा। आहाहा! पुण्य का फल तो देह की, उदय की क्रिया, वाणी की क्रिया, वह पुण्य का फल है। ऐसा कहना है वहाँ। आत्मा को वह फल अकिंचित्कर है। आत्मा में उसका कुछ फल नहीं आता। आहाहा! परन्तु उसमें यह कहते हैं, पुण्य का फल अरिहन्त है और उसमें पंचम काल में तो अभी शुद्धोपयोग होता नहीं और शुभ उपयोग का ही कर्तव्य है। ऐसा। अब उसके साथ मिलान कैसे करना? कहो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादेय वही उसका है। वह शुभ उपयोग ही अभी धर्म का साधन है। (ऐसा लोग मानते हैं)। आहाहा!

यह तो यहाँ कहते हैं कि निर्विकल्प शुद्धात्मभावना। एक तो शुद्धात्मा निर्विकल्प है और उसकी भावना निर्विकल्प भावना है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में तो निर्विकल्पदशा है। वह सम्यग्दर्शन, वही शुद्धात्मद्रव्य की भावना है। समझ में आया? उससे विरुद्ध अनेक प्रकार के विकल्पजाल। आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का (भाव) आवे, परन्तु विकल्प जाल है, कहते हैं। ऐसी बातें। समझ में आया? यह धन्धे के विकल्पजाल पाप के, वे तो कहीं रह गये। आहाहा! यह तो कहते हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव, वह विकल्प जाल है। क्योंकि निर्विकल्प शुद्धात्मा और उसकी परिणति निर्विकल्प समाधि अर्थात् एकाग्रता, उससे यह नाना विकल्प जाल

अनेक प्रकार के भिन्न हैं। ऐसा कहकर निश्चय परिणति से व्यवहार विकल्प भिन्न जाति के हैं। आहाहा! कहो, फूलचन्दजी! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। यह कहते हैं कि अन्तरिक्ष को सब ध्यान रखना, वह सब विकल्प है, ऐसा कहते हैं। हों, परन्तु वह विपरीत है, स्वभाव से विपरीत है। आवे, परन्तु वह बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसी बात जगत को... उसमें दोनों की तकरार वापस। वे श्वेताम्बर कहे, मेरा है, और यह कहे, मेरा है। भाई! कहाँ मेरा-तेरा? आत्मा तो अन्दर है। ऐसे विवाद। अरेरे!

यहाँ कहते हैं, **निर्विकल्प शुद्धात्म-भावना से विपरीत नाना विकल्पजालरूपी चंचल मन....** ऐसे विकल्प में मन है न सम्बन्ध में। निर्विकल्प में मन का सम्बन्ध नहीं। आत्मा शुद्धात्मा की परिणति सम्यग्दर्शन-ज्ञान की, वह तो निर्विकल्प है। वहाँ मन का सम्बन्ध नहीं। आहाहा! और उससे विपरीत वह सब विकल्प जाल, वह मन के सम्बन्धवाले हैं। आहाहा! यह श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र जो निर्मल है, वे आत्मा के सम्बन्धवाले हैं और पुण्य-पाप के विकल्प, वे मन के सम्बन्धवाले हैं। आहाहा! दोनों भिन्न हैं। क्यों भाई चले गये? आये थे न खीमचन्दभाई? नीचे बैठे हैं? क्यों? भले बैठे ऊपर।

आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति की जो एकाग्रता विकल्परहित की निर्विकल्पदशा, उससे विकल्पजाल अन्य और भिन्न है। आहाहा! आत्मा के सम्बन्धवाली निर्मल परिणति वीतरागी धर्म से मन के सम्बन्धवाले विकल्प भिन्न जाति है। आहाहा! **वह अस्त हो जाये।** आहाहा! अन्तर की एकाग्रता में मन के विकल्प का जाल अस्त हो जाता है। आहाहा! अस्त हो जाता है, अस्त हो जाता है। यह उगता है, वह अस्त हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा यह? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन की सन्मुख की दशा उत्पन्न होती है, तब मन की दशा के विकल्प अस्त हो जाते हैं। वे व्यय हो जाते हैं और यह उत्पन्न हो जाती है और ध्रुव तो भगवान है। आहाहा! समझ में आया?

हे स्वामी! निर्दोष परमाराध्य.... भगवान आत्मा अत्यन्त निर्दोष वीतरागी स्वरूप परम आराध्य, उत्कृष्टरूप से सेवनयोग्य। आहाहा! देव को सेवन करना, इसकी अपेक्षा यह परम आराध्य सेवनयोग्य तो यह आत्मा है, कहते हैं। ऐसा है, देवजीभाई! आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का, कहा श्री वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ ने। भाई! तू तो शुद्ध

आत्मा है न प्रभु! और उसके सन्मुख में जाना, वह शुद्धपरिणति है न! उससे विरुद्ध में तो विकल्प की जाल अशुद्धपरिणति है। आहाहा! वह अशुद्धपरिणति शुद्धात्मा की शुद्धपरिणति के काल में वह अशुद्धपरिणति व्यय होती है और शुद्धपरिणति उत्पन्न होती है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसी धर्म की पद्धति, इसलिए लोगों को व्यवहार साधन है, यह व्रत, भक्ति, पूजा करे तो वह... भाई! वह साधन नहीं, बापू! आहाहा!

यह प्रश्न पूछा है न कि कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा तो मिथ्यात्व है, परन्तु सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र की श्रद्धा मिथ्यात्व है? कहो, यह प्रश्न है। सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र की श्रद्धा तो राग है, उसे धर्म माने तो मिथ्यात्व है। यह बड़ा प्रश्न उठा है, उसमें उन लोगों को। सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र की मान्यता माने तो कहे मिथ्यात्व है। किस प्रकार? उन्हें मानने से मिथ्यात्व नहीं, उन्हें मानने में तो शुभराग है। परन्तु उसमें धर्म माने (तो मिथ्यात्व है)। आहाहा! ऐसी कठिन बातें, भाई! बनियों को धर्म आया, परन्तु वे निर्णय करने के लिये निवृत्त नहीं होते। आहाहा!

कहते हैं, **परमात्मा उससे अन्य जो मिथ्यात्वी....** है? **देव उनसे मेरा क्या मतलब है?** आहाहा! इसका अर्थ है कि सर्वज्ञदेव ही यह बात कर सकते हैं। शुद्ध आत्मा की भावना से मोक्ष और विकल्प से नहीं, यह सर्वज्ञदेव ही, उनमें यह मार्ग है। ऐसा मार्ग अन्यमति में कहीं है नहीं। आहाहा! यहाँ सीधे, बात करते हैं आत्मा की और अन्य देव से क्या काम है, ऐसा पूछते हैं। है न भाई! अन्य देव से क्या? ऐसा पूछा, देखो! '**अन्य देवेन किम्**' आहाहा! क्योंकि सर्वज्ञदेव परमेश्वर, वे तो सर्वज्ञस्वभाव—सन्मुख होने की बात करते हैं। उसकी सन्मुखता करने की अपेक्षा सर्वज्ञस्वभाव तेरा, वहाँ सन्मुख हो। आहाहा! समझ में आया? जैन परमेश्वर सर्वज्ञ केवली परमात्मा के उपदेश में तो यह आता है कि वीतरागभाव प्रगट कर। उसका अर्थ यह आता है कि जहाँ भगवान शुद्ध है, वहाँ जा अन्दर। तू सर्वज्ञ है। आहाहा! श्रीमद् में एक वाक्य आता है—सर्वज्ञदेव परमगुरु की माला गिनना, ऐसा आता है। आता है न? सर्वज्ञदेव परमगुरु। उसके दो अर्थ हैं। सर्वज्ञदेव पर हैं, वे देव हैं और यह सर्वज्ञस्वभावी आत्मा, वह देव है, वह परमगुरु है। वे व्यवहार गुरु हैं। समझ में आया? आहाहा!

सर्वज्ञस्वभाव भगवान आत्मा का। सर्वज्ञशक्ति है न? तो शक्ति है, उसका अर्थ

कि उसका सत्त्व ही वह है, उसका स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! ऐसा जो सर्वज्ञदेव स्वयं, वही परमदेव और वह परमदेव सर्वज्ञ होने के लिये ही उपदेश देते हैं। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ हुए परमेश्वर, सर्वज्ञ होने का उपदेश देते हैं। तब उस सर्वज्ञ होने के उपदेश में या सर्वज्ञस्वभाव जो पूरा है, वहाँ एकाग्र हो, कि जिससे तुझे पहली सर्वज्ञस्वभाव की अनुभव से प्रतीति होगी और फिर एकाग्र होने पर पर्याय में सर्वज्ञता होगी। यह चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है।

यह बाहर की धमाधमी। आहाहा! उसमें क्या है? यहाँ अपने उद्घाटन किया, (तब) २६ हजार लोग। दो जमींदार खड़े थे दरबार वहाँ। किसी की दुकान थी वहाँ। साथ में वहाँ निकलते न, लोग बहुत। हम खड़े वहाँ। नानुभाई गुजर गये न! और केशुभाई, दोनों खड़े थे। ओहोहो! यह लोग इतना यह तो खचाखच लोग चलते हैं। परन्तु वह बाहर की महिमा लगे लोगों को।

मुमुक्षु : बहिर्दृष्टिवाले को तो बाहर की ही हो न, अन्तर्दृष्टिवाले को अन्तर की हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भाव शुभ होता है, वहाँ शुभभाव इतना। वहाँ कोई उसमें गज बड़े लाख लोग निकलें, इकट्ठे हों, इसलिए वहाँ धर्म होता है, ऐसा है?

मुमुक्षु : धर्म की प्रभावना होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभावना करे तो वह उसके कारण से होती है? वह तो सन्मुख हो तो श्रद्धा होती है। बाह्य की प्रवृत्ति की क्रिया से विमुख हो और स्वभाव-सन्मुख हो तो श्रद्धा होती है।

मुमुक्षु : ....लोग इकट्ठे करने की भूल की।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन लावे और कौन इकट्ठे करे? आहाहा! ऐसी बातें बहुत कठिन, भाई!

यह वस्तु की स्थिति ऐसा परमात्मा स्वयं अन्दर आनन्दकन्द है। जैसा भगवान को पर्याय में प्रगट हुआ, वैसा स्वभाव ऐसा ही है। आहाहा! उसका स्वभाव कहो, उसका सत्त्व कहो, उसका तत्त्व कहो, उस अर्थ का तत्त्व कहो। आहाहा! गुण, द्रव्य, गुण और पर्याय को अर्थ कहा है न? और उसका तत्त्व, उसका भाव। तत्त्वार्थ, ऐसा कहा है

न? तत्त्वार्थ। अर्थ जो द्रव्य, गुण और पर्याय, उसका सत्त्व, उसका भाव। आहाहा! 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' अर्थ अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्याय तीन अर्थ। उसका तत्त्व अर्थात् उसका भाव। आहाहा! द्रव्य का भाव—स्वरूप, गुण का भाव—स्वरूप, पर्याय का भाव—स्वरूप। अब जब उसे सर्वज्ञस्वभावभाव स्वरूप उसका है, वह गुण का तत्त्व है। वह गुण का तत्त्व है, वह द्रव्य का स्वभाव है। आहाहा! कहो, पण्डितजी! आहाहा!

'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' अर्थात् क्या हुआ? कि द्रव्य है अर्थ, गुण है अर्थ, पर्याय है अर्थ। उसका तत्त्व। आहाहा! द्रव्य का स्वभाव, गुण का स्वभाव, पर्याय का स्वभाव। अब वह जहाँ गुण के स्वभाव की प्रतीति करने जाता है, तब उसके द्रव्य पर दृष्टि जाती है कि जो सर्वज्ञस्वभाव से भरपूर भगवान है। आहाहा! यह विकल्प जाल रहित की व्याख्या चलती है। समझ में आया? आहाहा! अन्य देव का क्या कहूँ? यह सर्वज्ञदेव ही यह कहते हैं। ऐसी बात सर्वज्ञदेव ने ही कही हुई है और सर्वज्ञस्वभाव ही आत्मा का है। वह देव भगवान स्वयं सर्वज्ञदेव है। आहाहा! इसे आत्मज्ञान होने से यह ऐसी बातें करते हैं। आहाहा!

निर्विकल्प शुद्धात्म भावना.... आहाहा! इससे विपरीत विकल्प की जाल। मन का अस्त हो जाना और आत्मा में परिणति का जुड़ जाना। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है। अभी यह बात बहुत चलती नहीं, इसलिए लोगों को (नयी लगती है)। बाकी तो उसके घर की घट की ही यह है। ऐसी वस्तु है। आहाहा! सर्वज्ञ स्वभाव अर्थात्? आहाहा! अकेला ज्ञ स्वभाव। भगवान अकेला ज्ञ-स्वभाव अर्थात् कि सर्वज्ञ स्वभाव अर्थात् कि ज्ञायकभाव, पूर्ण भाव। आहाहा! उसकी सन्मुखता में निर्विकल्पता होती है, वह उपदेश भगवान का है। अन्य देव वह कह नहीं सकते, अन्य देव को भान ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जिसे सर्वज्ञस्वभाव में से सर्वज्ञपना प्रगट हुआ, वे देव यह बात करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : वे देव?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे देव। समझ में आया? अन्य देव और दूसरे देव जिन्हें सर्वज्ञपना प्रगट नहीं हुआ और उन्हें सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है, यह जानने में नहीं आया। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! दुःख के नाश के लिये, सुख की उत्पत्ति

के लिये। सुख की उत्पत्ति कहो या मोक्षमार्ग कहो, आत्मा की भावना कहो, उसकी उत्पत्ति के लिये तो भगवान आत्मा का आश्रय लेना कि जिससे वीतरागता हो और वह वीतरागस्वरूप ही, सर्वज्ञस्वरूप ही वीतरागस्वरूप है। आहाहा! यह उसे समझने से ही छुटकारा है। दूसरे किसी प्रकार से मिले, ऐसा आत्मा है नहीं। आहाहा! और बाहर में तो सर्वत्र दुःख है। सर्वज्ञस्वभाव वीतरागस्वभाव, वीतरागस्वभाव अर्थात् आनन्दस्वभाव; रागस्वभाव अर्थात् दुःखभाव। समझ में आया? वीतरागस्वभाव, वह आत्मा का और उसकी परिणति हो एकाग्रता, वह वीतरागपरिणति। अर्थात् कि वीतरागस्वभाव और सर्वज्ञस्वभाव, वह आनन्दरूप है, उसमें एकाग्र होने से वीतराग और आनन्द वीतरागी आनन्द की परिणति हो, वह आत्मा की भावना कहने में आती है। आहाहा! पोपटभाई!

मुमुक्षु : यह बात गाँव-गाँव में पहुँच गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहुँच गयी। बात सत्य। भाई कहते हैं। करते हैं बात तो। मार्ग तो यह है, बापू! आहाहा! ओहोहो!

यह तो '**अन्य देवेन**' ऐसा आया न भाई? उसमें से जरा यह (चला)। अन्य देव से क्या काम है? अन्य बात से क्या काम है, ऐसा नहीं कहा यहाँ? दूसरी बात से मुझे क्या काम है, ऐसा नहीं कहा। '**अन्य देवेन किम्**' आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव, उन जिनेश्वरदेव को सर्वज्ञता और वीतरागता पूर्ण प्रगट हुई है। उनके उपदेश में सर्वज्ञस्वभावी वीतरागी स्वभावी, आनन्दस्वभावी प्रभु; क्योंकि वीतराग वही, आनन्द है। आनन्द, वह वीतराग है। आहाहा! ऐसे स्वभाव-सन्मुख के झुकाव का ही परमात्मा का उपदेश है। आहाहा! ऐसा भगवान ने कहा है। इस बात के अतिरिक्त दूसरे का हमारे क्या काम है? आहाहा! समझ में आया? उपदेश भी ऐसे भगवान का हो, वह हमारे काम है। आहाहा! भाषा तो देखो!

'**अन्य देवेन किम्**' आहाहा! दूसरे देवों से क्या काम है? आहाहा! तात्त्विक परमानन्द शब्द पड़ा है वहाँ, हों! (१६२ गाथा में) संस्कृत में। '**तात्त्विकपरमानन्द-भरितावस्थे निर्विकल्पसमाधौ विलाइ**'। आहाहा! फिर जरा बात करते हैं। **अन्य जो मिथ्यात्वी देव उनसे मेरा क्या मतलब है? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया, उसका एक देहा-सूत्र कहा।** अब इसका उत्तर।

गाथा - १६२

इति प्रभाकरभट्टप्रश्नसूत्रमेकं गतम्। अथोत्तरम्-

२८५) णास-विणिग्गउ सासडा अंबरि जेत्थु विलाइ।
तुट्टइ मोहु तडत्ति तहिँ मणु अत्थवणहँ जाइ।।१६२।।

नासाविनिर्गतः श्वासः अम्बरे यत्र विलीयते।
त्रुट्यति मोहः झटिति तत्र मनः अस्तं याति।।१६२।।

णासाविणिग्गउ इत्यादि। णास-विणिग्गउ नासिकाविनिर्गतः सासडा उच्छ्वासः अंबरि मिथ्यात्वरागादिविकल्पजालरहिते शून्ये अम्बरशब्दवाच्ये जेत्थु यत्र तात्त्विकपरमानन्दभरितावस्थे निर्विकल्पसमाधौ विलाइ पूर्वोक्तः श्वासो विलयं गच्छति नासिकाद्वारं विहाय तालुरन्ध्रेण गच्छतीत्यर्थः। तुट्टइ त्रुट्यति नश्यति। कोडसौ। मोहु मोहोदयेनोत्पन्नरागादिविकल्पजालः तडत्ति झटिति तहिं तत्र बहिर्बोधशून्ये निर्विकल्पसमाधौ मणु मनः पूर्वोक्तरागादिविकल्पाधारभूतं तन्मयं वा अत्थवणइं जाइ अस्तं विनाशं गच्छति स्वस्वभावेन तिष्ठति इति। यत्र यदायं जीवो रागादिपरभावशून्यनिर्विकल्पसमाधौ तिष्ठति तदायमुच्छ्वासरुपो वायुर्नासिकाछिद्रद्वयं वर्जयित्वा स्वयमेवानीणहितवृत्त्या तालुप्रदेशे यत् केशात् शेषाष्टमभागप्रमाणं छिद्रं तिष्ठति तेन क्षणमात्रं दशमद्वारेण तदनन्तरं क्षणमात्रं नासिकया तदनन्तरं रन्ध्रेण कृत्वा निर्गच्छतीति। न च परकल्पितवायुधारणारुपेण श्वासनाशो ग्राह्यः। कस्मादिति चेत् वायुधारणा तावदीहापूर्विका, ईहा च मोहकार्यरुपो विकल्पः। स च मोहकारणं न भवतीति न च परकल्पितवायुः। किंच। कुम्भकपूरकरेचकादिसंज्ञा वायुधारणा क्षणमात्रं भवत्येवात्र किंतु अभ्यासवशेन घटिकाप्रहरदिवसादिष्वपि भवति तस्य वायुधारणस्य च कार्यं देहारोगत्वलघुत्वादिकं न च मुक्तिरिति। यदि मुक्तिरपि भवति तर्हि वायुधारणाकारकाणामिदानीन्तनपुरुषाणां मोक्षो किं न भवतीति भावार्थः।।१६२।।

आगे श्रीगुरु उत्तर देते हैं-

उत्सर्जित हो श्वास नाक से जब अम्बर में होय विलीन।
मन हो जाता अस्त और तब मोह नष्ट भी होता शीघ्र।।१६२/२८५।।

अन्वयार्थ :- [नासाविनिर्गतः श्वासः] नाक से निकला जो श्वास वह [यत्र] जिस [अंबरे] निर्विकल्पसमाधि में [विलीयते] मिल जावे, [तत्र] उसी जगह [मोहः] मोह

[झटिति] शीघ्र [त्रुटयति] नष्ट हो जाता है, [मनः] और मन [अस्तं याति] स्थिर हो जाता है।

भावार्थ :- नासिका से निकले जो श्वासोच्छ्वास हैं, वे अम्बर अर्थात् आकाश के समान निर्मल मिथ्यात्व-विकल्प-जाल रहित शुद्ध भावों में विलीन हो जाते हैं, अर्थात् तत्त्वस्वरुप परमानंदकर पूर्ण निर्विकल्पसमाधि में स्थिर चित्त हो जाता है, तब श्वासोच्छ्वासरुप पवन रुक जाती है, नासिका के द्वार को छोड़कर तालुवा रंध्ररुपी दशवें द्वार में होके निकले, तब मोह टूटता है, उसी समय मोह के उदयकर उत्पन्न हुए रागादि विकल्प-जाल नाश हो जाते हैं, बाह्य ज्ञान से शून्य निर्विकल्पसमाधि में विकल्पों का आधारभूत जो मन वह अस्त हो जाता है, अर्थात् निजस्वभाव में मन की चंचलता नहीं रहती। जब यह जीव रागादि परभावों से शून्य निर्विकल्पसमाधि में होता है, तब यह श्वासोच्छ्वासरुप पवन नासिका के दोनों छिद्रों को छोड़कर स्वयमेव अवाँछीक वृत्ति से तालुवा के बाल की अनीके आठवें भाग प्रमाण अत सूक्ष्म छिद्र में (दशवें द्वार में) होकर निकलती है, नासा के छेद को छोड़कर तालुरंध्र में (छेद में) होकर निकलती है। और पातंजलिमतवाले वायुधारणारुप श्वासोच्छ्वास मानते हैं, वह ठीक नहीं हैं, क्योंकि वायुधारणा वाँछापूर्वक होती है, और वाँछा है, वह मोह से उत्पन्न विकल्परुप है, वाँछा का कारण मोह है। वह संयमी को वायु का निरोध वाँछापूर्वक नहीं होता है, स्वाभाविक ही होता है। जिनशासन में ऐसा कहा है, कि कुंभक (पवन को खेंचना) पूरक (पवन को थाँभना) रेचक (पवन को निकालना) ये तीन भेद प्राणायाम के हैं, इसी को वायुधारणा कहते हैं। यह क्षणमात्र होती है, परंतु अभ्यास के वश में घड़ी, पहर, दिवस आदि तक भी होती है। उस वायुधारणा का फल ऐसा कहा है, कि देह आरोग्य होती है, देह के सब रोग मिट जाते हैं, शरीर हलका हो जाता है, परंतु मुक्ति इस वायुधारणा से नहीं होती, क्योंकि वायुधारणा शरीर का धर्म है, आत्मा का स्वभाव नहीं है। शुद्धोपयोगियों के सहज ही बिना यत्न के मन भी रुक जाता है, और श्वास भी स्थिर हो जाते हैं। शुभोपयोगियों के मन के रोकने के लिये प्राणायाम का अभ्यास है, मन के अचल होने पर कुछ प्रयोजन नहीं है। जो आत्मस्वरुप है, वह केवल चेतनामयी ज्ञान दर्शनस्वरुप है, सो शुद्धोपयोगी तो स्वरुप में अतिलीन हैं, और शुभोपयोगी कुछ एक मन को चपलता से आनंदघन में अडोल अवस्था को नहीं पाते, तब तक मन के वश

करने के लिए श्रीपंचपरमेष्ठी का ध्यान स्मरण करते हैं, ओंकारादि मंत्रों का ध्यान करते हैं और प्राणायाम का अभ्यास कर मन को रोक के चिद्रूप में लगाते हैं, जब वह लग गया, तब मन और पवन सब स्थिर हो जाते हैं। शुद्धोपयोगियों की दृष्टि एक शुद्धोपयोग पर हो, पातंजलि मत की तरह थोथी वायुधारणा नहीं है। जो वायुधारणा से ही शक्ति होवे, तो वायुधारणा करनेवालों को उस दुःषमकाल में मोक्ष क्यों न होवे? कभी नहीं होता। मोक्ष तो केवल स्वभावमयी है।।१६२।।

गाथा-१६२ पर प्रवचन

आगे श्री गुरु उत्तर देते हैं—

२८५) णास-विणिग्गउ सासडा अंबरि जेत्थु विलाइ।
तुट्टइ मोहु तडत्ति तहिँ मणु अत्थवणहँ जाइ।।१६२।।

आहाहा! **अन्वयार्थ—नाक से निकला जो श्वास वह जिस निर्विकल्पसमाधि में मिल जावे,....** इसका अर्थ कि अन्दर में ध्यान करे, तब विकल्प वहाँ अन्दर में मिल जाते हैं और उस समय नासिका श्वास रुक जाता है। ऐसा। **नाक से निकला जो श्वास वह जिस निर्विकल्पसमाधि में.... 'अंबरे' 'अंबरे'** अर्थात् आकाश। आकाश वह जड़ नहीं, परन्तु यह चैतन्य-आकाश। वह **निर्विकल्प समाधि में...** आहाहा! अर्थ करेंगे अन्दर। पातंजलि आदि जो कहते हैं, वह यह नहीं। पातंजलि तो थोथा। अकेली वायु की थोथा। आहाहा! श्वास और विकल्प रहे। कहते हैं कि वह श्वास निकल जाती है और मन **निर्विकल्पसमाधि में मिल जावे, उसी जगह मोह शीघ्र नष्ट हो जाता है,....** आहाहा! अन्दर में एकाग्रता होने से अम्बर अर्थात् आकाश चैतन्यमूर्ति प्रभु में एकाग्रता होने से, आहाहा! **'मोह झटिति' मोह शीघ्र नष्ट हो जाता है, और मन.... 'अस्तं याति' स्थिर हो जाता है। 'मन स्थिर हो जाता है।'** का अर्थ विकल्प छूट जाता है और अन्दर स्थिर होता है, ऐसा। मन स्थिर होता है, ऐसा कहा न? मन जो विकल्प में अस्थिर था, वह छूटकर इस ओर स्थिर होता है। ऐसी व्याख्या।

भावार्थ—नासिका से निकले श्वासोश्वास हैं, वे अम्बर अर्थात् आकाश के

समान निर्मल.... भगवान आत्मा। वह **मिथ्यात्व-विकल्प-जाल रहित शुद्धभावों में विलीन हो जाता है,....** इस ओर ध्यान करने से विकल्प नाश हो जाता है, ऐसा। समझ में आया? अकेली वायु के श्वास की बात की है, वह तो साथ में विकल्प की साथ में बात की है। ऐसी वायु की धारणा तो अन्यमति भी बहुत करते हैं। यहाँ तो अन्दर में से बाहर से हट जाते हैं तो श्वास की गति भी रोके, इस प्रकार से हो जाती है ऐसी। यह साथ में डाला है। जैसे यह श्वास चलती है, तब आत्मा आनन्द के ध्यान में जाता है। आहाहा! तब वह श्वास की गति जो मुख से नाक से होती है, वह बदल जाती है और उस काल में राग का नाश होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अन्यमति की व्याख्या जरा इसमें (की है)। परन्तु यहाँ यह अपेक्षा है। आहाहा!

मिथ्यात्व-विकल्प-जाल रहित शुद्धभावों में.... उसे यहाँ अम्बर कहा। अम्बर अर्थात् आकाश। वह आकाश है, वह जड़ है और यह आकाश चैतन्य है। आहाहा! जैसे आकाश में बादल या कुछ है नहीं, उसी प्रकार भगवान—आकाश है, उसमें रागादि है नहीं। आहाहा! आकाश जैसे बादल से मलिन नहीं होता, उसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य-पाप के भाव से मलिन नहीं होता, वह तो निर्मलानन्द है। समझ में आया? ऐसी बातें बापू बहुत सूक्ष्म, इसलिए वे कहीं न कहीं चढ़ गये हैं, कहीं चढ़ गये हैं। वे रजनीशवाले रजनीशवाले कहें, एकदम बहुत रोओ, बहुत रोओ, फिर तुमको निर्विकल्पता हो जायेगी। अथवा बहुत हँसो। अरे प्रभु! रोने में तो राग है। आहाहा! द्वेष है। हँसने में तो राग है। बहुत राग करो और बहुत द्वेष करो तो निर्विकल्प होगा? बिना ठिकाने की बातें। उसे भी माननेवाले हैं। १५-१५ लाख के मकान रहने के हैं। पूना में १५ लाख का मकान।

मुमुक्षु : एयरकन्डीशन।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ठण्डा रहे ऐसा होगा कुछ। होता है उसमें क्या? ठण्डा तो यहाँ है भगवान। आहाहा! शीतल... शीतल... शीतल... उसमें नहीं आया था? भक्ति में आया था, पूजा में सवेरे। चन्दन शीतल चन्द्र जैसा। पूजा में नहीं आता पूजा में? नहीं आता? आज आया था। बोलते हैं, शान्तिभाई बोलते थे न साथ में।

मुमुक्षु : काषायिक भाव विनष्ट किये....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह नहीं।

मुमुक्षु : चन्दन शीतलता करे तप्त वस्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। शीतल चन्दन के जैसे है। जैसे चन्द्रमा शीतल है, वैसे भगवान शीतल है। यह आया था सवेरे भक्ति करते हुए, शान्तिभाई बोलते थे। आहाहा! ठण्डा जैसे चन्द्रमा है, वैसे अकषाय शान्त उपशमरस का भगवान आत्मा है। शुद्ध है और शीतल चन्द्र है। उसी प्रकार यह पवित्र है और जिसमें शान्ति है। आहाहा! ऐसा जो निज भगवान आत्मा, उसमें ध्यान करने से, एकाग्र होने से नासिका का श्वास जो नासिका द्वारा चलता है, वह बदल जायेगा और विकल्प जाल में रुक जाता था, वह बदल जायेगा। आहाहा! यह तो अवांछिक वृत्ति से होता है। लोगों को ऐसा कुछ नहीं, हों, यह। आहाहा!

विकल्पजाल रहित शुद्धभावों में विलीन हो जाते हैं, अर्थात् तत्त्वस्वरूप परमानन्दकर पूर्ण.... यह लिया तात्त्विक, हों! तात्त्विक परमानन्द है न? '**तात्त्विक-परमानन्दभरितावस्थे**' इसका अर्थ है यह। **तत्त्वस्वरूप परमानन्दकर पूर्ण....** '**भरित**' अर्थात् पूर्ण। **तत्त्वस्वरूप परमानन्दकर पूर्ण....** आहाहा! आत्मा तत्त्व अर्थात् भावस्वरूप परमानन्दकर पूर्ण। आहाहा! आत्मा क्या है, उसकी बातें नहीं होती और बाहर की क्रियाकाण्ड की बातें पूरी। अर्थात् यह बात उसे ऐसी लगे। पामरता सेवन करता हो, उसे कहे यह तत्त्व आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, वह किस प्रकार माप करना इसे?

तत्त्वस्वरूप... अर्थात् भावस्वरूप। कैसा? **परमानन्दकर पूर्ण...** आहाहा! उसका भाव तो परमानन्दकर पूर्ण है। आहाहा! भगवान आत्मा तत्त्वस्वभाव स्वरूप परमानन्दकर परिपूर्ण प्रभु है यह तो। '**भरितावस्थे**' पर्याय की बात नहीं यहाँ। परिपूर्ण भाव स्वभावरूप से भरपूर है। अवस्थ—निश्चय से स्थ रहा हुआ है उसमें। परमानन्द के स्वच्छपने से भरपूर भगवान... आहाहा! वह **निर्विकल्पसमाधि में स्थिर...** ऐसा जो पूर्ण, उसमें निर्विकल्प समाधि में स्थिर **चित्त हो जाता है,...** ऐसा। ऐसा परमानन्दस्वरूप भगवान तत्त्वस्वरूप, भावस्वरूप, परमानन्दस्वरूप ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें मन स्थिर हो

जाता है। आहाहा! बाहर की महिमा छूट जाती है और अन्दर की महिमा घुस जाती है। आहाहा! ऐसी बातें। फिर कोई ऐसा कहे कि यह अन्यमति का मार्ग ऐसा होगा? जैन में ऐसा कभी हम तो सुनते नहीं थे। आहाहा!

श्वासोश्वासरूप पवन रुक जाती है,.... अपने आप। **नासिका के द्वार को छोड़कर तालुवा रंध्ररूपी दशवें द्वार में होके निकले,....** यह सहज स्वभाव है। यह दसवाँ द्वार। निकल जाये बाहर ऐसा। आहाहा! बाह्य ज्ञान से शून्य। आहाहा! **नासिका के द्वार को छोड़कर तालुवा रंध्ररूपी दशवें द्वार में होके निकले, तब मोह टूटता है,....** आहाहा! स्व-सावधान में आया, इसलिए पर-सावधान का भाव नाश हो जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बातें अब। पूर्णानन्दस्वरूप भगवान तत्त्व तात्त्विक वस्तु है। तात्त्विक वस्तु है वह। वह तात्त्विक अर्थात् भावस्वरूप है, और भावस्वरूप वह परमानन्दस्वरूप है, वह परमानन्द भावस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य वस्तु है, क्षेत्र असंख्य प्रदेश हैं, काल वर्तमान पर्याय है और भाव त्रिकाली परमानन्द भाव है। समझ में आया?

उसी समय मोह के उदयकर उत्पन्न हुए.... है न? **रागादि विकल्प-जाल नाश हो जाता है,....** सम्यग्दर्शन में जो आत्मा का ध्येय पकड़ में आया, तब वहाँ मोह नाश हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी क्रिया अब यह सब तो यह सामायिक करना, प्रतिक्रमण करना, वे सब कहाँ गये? प्रौषध करना न! हम वहाँ सब करते थे, हों! पालेज। सामायिक करें, प्रतिक्रमण करें। पर्यूषण में, हों! फिर आठ दिन के अतिरिक्त कुछ नहीं। सवेरे (नहीं) शाम प्रतिक्रमण। सवेरे नहीं। और एक अपवास। सामायिक करके प्रतिक्रमण करें सब इकट्ठे होकर। आहाहा! कहाँ सामायिक किसे कहना, उसे खबर नहीं होती। आहाहा! समता का पिण्ड। यहाँ कहा न? वीतरागी निर्विकल्प आनन्द जिसका तत्त्व है। आहाहा! भाषा में कहा, उसका वाच्य यह है। तत्त्व परमानन्द तत्त्व ऐसा स्वभावभाव, उसमें निर्विकल्प समाधि से, उसके सन्मुख की एकाग्रता से परसन्मुख के विकल्प मोह है, वह नाश हो जाता है। समझ में आया?

जाल नाश हो जाते हैं,.... ऐसा कहा, हों! नाश करते हैं, ऐसा नहीं कहा। नाश

हो जाते हैं। आहाहा! क्योंकि वस्तु भगवान आत्मा अकेला परमानन्द का पाताल कुँआ है। उसमें से तो आनन्द झरे, ऐसी चीज़ है। आहाहा! उसके सन्मुख निर्विकल्प शान्ति से जहाँ हुआ तो विकल्प की जाल उत्पन्न नहीं होती, अर्थात् नाश होता है। नाश करता हूँ, ऐसा नहीं। उसके उत्पाद के समय उसका व्यय का स्वभाव है, ऐसा कहा। एक समय में है न? **'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्'** ...ऐसा जो तत्त्व परमानन्दस्वरूप, उसकी एकाग्रतारूप उत्पाद, उस समय पूर्व के रागादि के विकल्प का नाश हो जाता है, व्यय हो जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? इसलिए लोग फिर विवाद उठाते हैं। यह तो परमात्मप्रकाश का कथन है। यह सोनगढ़ का है? कितने वर्ष पहले प्रकाशित हुआ है। आहाहा!

यह आठ वर्ष की बालिका भी जब आत्मा के ध्यान में उतरे, आहाहा! उस समय विकल्प टूट जाये और निर्विकल्पदशा उत्पन्न हो आनन्दसहित, आहाहा! उसका नाम धर्म और मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! अरे! ढोर-पशु, आहाहा! वह भी असंख्य समकिती विराजते हैं। ढाई द्वीप के बाहर असंख्य समकिती हैं। आहाहा! वे आत्मा के आनन्द में जब जाते हैं, वैसे तो बहुत समय विकल्प हो, इसलिए आनन्द की अमुक शैली तो हो परन्तु अन्दर में ध्यान में जब जाते हैं... आहाहा! तब कहते हैं कि विकल्प जाल टूट जाता है और निर्विकल्प बुद्धि होती है। आहाहा! निर्विकल्प बुद्धि होती है अर्थात् क्या? कि अशुद्ध की निर्जरा हो जाती है, ऐसा। समझ में आया? नाश हुआ कहा न? तो वह निर्जरा हुई। निर्विकल्प दृष्टि थी, त्रिकाली ज्ञायकभाव की दृष्टि थी और उसमें जब विशेष स्थिर होता है, तब शुद्धि की वृद्धि होती है, वह निर्जरा। अशुद्धता का नाश होता है, वह निर्जरा। आहाहा! और उसके निमित्त से जिसे नाश होनेयोग्य है कर्म, वे भी नाश होते हैं। उनकी योग्यता से वे नाश होते हैं। इसके कारण से कुछ नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

बाह्य ज्ञान से शून्य निर्विकल्पसमाधि में विकल्पों का आधारभूत जो मन वह अस्त हो जाता है,.... बाह्य का ज्ञान ही रहता नहीं फिर ख्याल में। आहाहा! एक सर्वज्ञ -स्वभावी भगवान परमानन्दस्वरूप जहाँ ध्येय में (आया), द्रव्य ध्येय में पर्याय में आया। आहाहा! यह ऐसा कहते हैं, देखो! फिर **बाह्य ज्ञान से शून्य निर्विकल्पसमाधि**

में विकल्पों का आधारभूत जो मन वह अस्त हो जाता है,.... आहाहा! निजज्ञान में निर्विकल्प में आया, ऐसा कहते हैं अन्दर। तब बाह्य ज्ञान से शून्य, ऐसे विकल्प से रहित होता है। आहाहा! **अर्थात् निजस्वभाव में मन की चंचलता नहीं रहती।** आहाहा! चाहे तो भक्ति, व्रतादि के विकल्प हैं, वह मन की चंचलता है, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है। ऐसा सब सूक्ष्म पड़े, हों! भाई! गुलाबचन्दभाई! समझ में आया? मुम्बई बड़े ...वाले। लोगों को परिचय नहीं, सुनने को मिला नहीं, सत्य श्रवण में आया नहीं। क्या सत्य है और किस प्रकार से प्रगटे? अरेरे! जिन्दगी ऐसी की ऐसी चली जाती है।

जब यह जीव रागादि परभावों से शून्य निर्विकल्पसमाधि में होता है,.... निर्विकल्प समाधि में होता है, **तब यह श्वासोश्वास पवन नासिका के दोनों छिद्रों को छोड़कर स्वयमेव अवांछिक वृत्ति से....** देखा! अवांछिक वृत्ति। वृत्ति नहीं कि इसे छोड़ूँ और इसे लूँ। ऐसा कुदरत से ही सहज ऐसा हो जाता है। **तालुवा के बाल की अनी के आठवें भाग....** अन्दर। अन्दर में **प्रमाण अत सूक्ष्म छिद्र में.... अनी के आठवें भाग प्रमाण अति सूक्ष्म छिद्र में (दशवें द्वार में) होकर निकलती है,....** आहाहा! श्वास। **नासा के छेद को छोड़कर तालुरंध्र में (छेद में) होकर निकलती है।** श्वास की गति। **और पातंजलिमतवाले वायुधारणारूप श्वासोश्वास मानते हैं, वह ठीक नहीं हैं,....** अकेले वायु को ऐसे रोकूँ, ऐसा करूँ, वह तो सब कल्पना है। उन लोगों में आता है, वह डाला है। श्वास को नासिका से बन्द करना और ऐसे छिद्र में दसवें द्वार में जाये। वह तो क्रिया हुई राग की। यह बात अन्यमत में नहीं। कहा न, अन्य देव में कहाँ है? उसमें है ही नहीं। आहाहा! उसकी बात की है परन्तु वह सब कल्पना की बातें हैं सब।

क्योंकि वायुधारणा वांछापूर्वक होती है,.... वायु को नाक में से निकालने पर ऐसा करूँ, वह तो इच्छा है, राग है। वहाँ कहाँ निर्विकल्पता आयी? समझ में आया? **और वांछा है, वह मोह से उत्पन्न विकल्परूप है,....** आहाहा! **वांछा का कारण मोह है। वह संयमी को वायु का निरोध वांछापूर्वक नहीं होता है,....** सम्यग्दृष्टिसहित मुनि की बात है न यहाँ? ध्यान में बैठता है, अन्दर में स्थिर होता है, तब वांछापूर्वक श्वास को निकालना, डालना, ऐसा नहीं उसे। ऐसा सहज हो जाता है। **स्वाभाविक ही होता है। जिनशासन में ऐसा कहा है कि कुम्भक (पवन को खेंचना)....** ऐसे खींचना। **पूरक**

(पवन को थम्भना).... रोकना। अन्दर रोकना। **रेचक (पवन को निकालना) ये तीन भेद प्राणायाम के हैं, इसी को वायुधारणा कहते हैं। वह क्षणमात्र होती है, परन्तु अभ्यास के वश में....** ऐसी क्रिया करे बहुत समय कोई। यह बाबा और वे करते हैं न? ऐसा है न? **अभ्यास के वश में घड़ी, पहर, दिवस आदि तक भी होती है।** लो। आहाहा! आत्मा के भान बिना वह शून्य हो जाये अन्दर। आहाहा! वह कुछ वस्तु नहीं। लो, **उस वायुधारणा का फल ऐसा कहा है, कि देह में आरोग्य होती है,....** उसमें आत्मा को क्या है? **देह के सब रोग मिट जाते हैं,....** है न? आहाहा! **शरीर हलका हो जाता है, परन्तु मुक्ति इस वायुधारणा से नहीं होती,....** आहाहा! अन्यमति जो कहते हैं, उस प्रकार से नहीं होती। अन्दर में ध्यान करने से एकाग्र हो, तब वायु रुक जाये, उससे मुक्ति होती है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, माघ कृष्ण ९, शनिवार
दिनांक- १२-०२-१९७७, गाथा - १६२, १६३, प्रवचन-२१४

१६२ गाथा है। श्वासोश्वास की क्रिया की बात चलती है न यहाँ। अन्यमत में यह मुख्यता। श्वास को रोकना और यहाँ से श्वास निकालना। वह सब शरीर की क्रियायें हैं, वे कहीं आत्मिक क्रिया नहीं। **परन्तु मुक्ति इस वायुधारणा से नहीं होती,....** है न? **क्योंकि वायुधारणा शरीर का धर्म है,....** वायु को निकालना और वायु को अन्दर रोकना, कुम्भक और रेचक यह आता है न? वह तो सहज हो जाता है अन्दर। जहाँ आत्मा आनन्दस्वरूप है, कहते हैं देखो! **शुद्धोपयोगियों के सहज ही बिना यत्न के मन भी रुक जाता है,....** अपना स्वभाव शुद्ध आनन्दघन, उसमें जहाँ उपयोग ढला शुद्धोपयोग, वहाँ उस श्वास की क्रिया सहज रुक जाती है, रोकनी नहीं पड़ती, ऐसा कहते हैं। वह तो शरीर का धर्म है, आत्मा का धर्म नहीं। **श्वास भी स्थिर हो जाते हैं।** ठीक! **मन भी रुक जाता है, और श्वास भी स्थिर हो जाते हैं। शुभोपयोगों के मन के रोकने के लिये प्राणायाम का अभ्यास है, मन के अचल होने पर कुछ प्रयोजन नहीं है।** शास्त्र में चला है न ज्ञानार्णव में। वायुधारणा और आवे, वह विकल्प है, उस प्रकार का रोकने के लिये। परन्तु वह कहीं आत्मा का धर्म नहीं और उसके कारण से ध्यान होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! **कुछ प्रयोजन नहीं है। मन के अचल होने पर कुछ प्रयोजन नहीं है।**

जो आत्मस्वरूप है, वह केवल चेतनामयी ज्ञान-दर्शनस्वरूप है,.... वह तो चेतनास्वरूप और उसका भेद—ज्ञान और दर्शन। आत्मा एक, उसका चेतनास्वरूप त्रिकाली, उसका भेद दर्शन और ज्ञान। एक, दो और तीन। समझ में आया? **जो आत्मस्वरूप है, वह केवल चेतनामयी....** अर्थात् विकल्प और वह क्रिया श्वास की, वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं। केवल चेतनामयी ज्ञान-दर्शनस्वरूप है। **सो शुद्धोपयोगी तो स्वरूप में अतिलीन हैं,....** आहाहा! शुभभाव में तो पर का आश्रय है और उसमें अवलम्बन पर है, इसलिए वह राग है। और शुद्धोपयोग में तो अकेला आत्मा का अवलम्बन है।

धर्म की शुद्धदशा शुद्ध उपयोग। पुण्य-पाप का भाव तो अशुद्ध उपयोग है और

यह शुद्धउपयोग है। वस्तु शुद्ध है, गुण शुद्ध है, उसका व्यापार अन्दर का, वह शुद्ध है। आहाहा! द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है और पर्याय शुद्ध है। आहाहा! ऐसी बात है जरा। पर्याय शुद्ध उपयोगी का अवलम्बन द्रव्य है। समझ में आया? शुद्ध उपयोग का अवलम्बन द्रव्य है। द्रव्य है, वह शुद्ध और पवित्र; गुण भी पवित्र और शुद्ध है। उसका अवलम्बन लेने से जो शुद्ध उपयोग हुआ, उसमें आत्मा का ही आश्रय और अवलम्बन है, उसमें कोई परद्रव्य का अवलम्बन है नहीं। तीर्थंकर को नमस्कार, णमोकार का भी नहीं उसमें, ऐसा कहते हैं। शास्त्र में बहुत जगह आता है। जिनबिम्ब के दर्शन करने से निद्धत निकाचित कर्म छूट जाये, ऐसा आता है, लो। यह लोग डाले व्यवहारवाले। वह जिनबिम्ब यह नहीं, जिनबिम्ब यह। उस जिनबिम्ब पर लक्ष्य जाये, फिर जिनबिम्ब इस आत्मा में लक्ष्य जाये। आहाहा! उसे निद्धत और निकाचित कर्म टूटते हैं। समझ में आया? जैसे कहा न कि '**जो जाणदि अरहंतं**'। जो अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, वह आत्मा को जानता है। वह निमित्त है यह तो।

मुमुक्षु : जो पर को जाने, वह स्व को जाने—ऐसा हुआ न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निमित्त है, कहा न यह। उसमें से छूटकर आत्मा को जाने तो द्रव्य-गुण-पर्याय अरिहन्त के जाने, ऐसा निमित्त से कहने में आता है। ऐसा है। वहाँ ऐसा डाले, देखो! द्रव्य-गुण-पर्याय भगवान के जानते हैं, उससे आत्मा का ज्ञान होता है। ऐसा नहीं है। उसे पहले द्रव्य-गुण-पर्याय अरिहन्त ऐसे हैं, ऐसा मन द्वारा, विकल्प द्वारा उसे ज्ञान हुआ था। फिर उसे आत्मा के साथ मिलान करता है, तब उसकी आत्मा की सन्मुख दशा होती है। पर से विमुख हो जाता है। आहाहा! ऐसा सन्मुख और विमुख का कभी सुना नहीं होगा इसने। आहाहा! शुद्धोपयोगी स्वभाव में लीन है, अति लीन है।

और शुभोपयोगी कुछ एक मन को चपलता से आनन्दघन में अडोल अवस्था को नहीं पाते,.... आनन्दघन भगवान आत्मा। आहाहा! आनन्द का पिण्ड है। जैसे विज्ञानघन कहा है न? भगवान विज्ञान का घन है, उसमें विकल्प—राग का प्रवेश नहीं। ऐसा आनन्दकन्द भगवान है, उसमें विकल्प है, वह तो दुःख है, उसका प्रवेश नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें! विज्ञानघन। आता है न ७४वीं गाथा। जैसे-जैसे विज्ञानघन

होता जाता है, वैसे-वैसे आस्रव टलते जाते हैं। जैसे-जैसे आस्रव टलते जाते हैं, वैसे-वैसे विज्ञानघन होता जाता है। आहाहा! इसी प्रकार यहाँ आनन्दघन। जैसे-जैसे स्थिरता अन्दर आनन्दघन की होती जाती है, वैसे-वैसे आस्रव घटते जाते हैं। आहाहा! पर की ओर का अवलम्बन, निजस्वरूप के उग्र अवलम्बन से घटता जाता है। ऐसी बात है। कहो, देवजीभाई! आहाहा!

आनन्दघन में अडोल अवस्था को नहीं पाते, तब तक मन के वश करने के लिये श्री पंच परमेष्ठी का ध्यान स्मरण करते हैं,.... है वह राग। उससे अन्दर में लीन हो सके, ऐसा नहीं है। उसका आश्रय और अवलम्बन छोड़े और आत्मा का अवलम्बन ले तो शुद्ध उपयोग होकर लीन होता है। आहाहा! समझ में आया? रमेशभाई कहाँ हैं? नहीं आये? वहाँ बैठे हैं, ठीक। समझ में आया? आहाहा! पर की ओर की दिशा के परिणाम को आस्रव और बन्ध कहते हैं। आहाहा! स्वसन्मुख के अवलम्बन के परिणाम को संवर और निर्जरा कहते हैं। प्रौषध करे, प्रतिक्रमण करे तो संवर-निर्जरा हो गयी है। जामनगर में। उपदेश दे, दूसरा क्या हो? आहाहा! यह वस्तु मिली ही नहीं, पूरा जैनदर्शन मिला ही नहीं। बाह्य के धर्म को धर्म मान लिया।

मुमुक्षु : दिगम्बर में व्रत, तप करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! भगवान पूर्ण आनन्दघन। है न आनन्दघन? आनन्दघन वे हो गये हैं श्वेताम्बर में, वे नहीं। वह तो यह (आत्मा) आनन्दघन है। अकेला अणीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का पिण्ड है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्याख्या तो बहुत सरस है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा क्या हो? करना तो इसे है न! आहाहा! समझ में आया? उसके अवलम्बन में जाये तो इसे शुद्ध उपयोग होता है, तो धर्म होता है, तो मोक्ष का मार्ग होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभव करना किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न यह, करना यह। स्व का अवलम्बन लेना, यह करना। आहाहा! यह तो कैसे लेना, वह अन्दर में जाना ऐसा। अन्दर में कैसे जाना? पर्याय को

अन्दर में झुकाना, ऐसा। झुकाना, कैसे झुकाने? कि बहिर्मुख में से हट जाना, ऐसा। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अनन्त काल का अनजाना मार्ग बापू! आहाहा! यह तो कहे, दया पाला, व्रत करो और अपवास करो, यात्रा करो और भक्ति करो। जाओ, करते-करते धर्म होगा। जिन्दगी चली जाती है और आस्रव-बन्ध के भाव में रुक जायेगा। आहाहा! भगवान अनास्रवी और अबन्धस्वरूप का इसे विश्वास और रुचि, दृष्टि और स्थिरता करनी है। यह बात है। आहाहा! समझ में आया?

उस **आनन्दघन में अडोल अवस्था को नहीं पाते, तब तक मन के वश करने के लिये श्री पंच परमेष्ठी का ध्यान स्मरण करते हैं, ओंकारादि मन्त्रों का ध्यान करते हैं....** परन्तु है शुभविकल्प-राग। वह राग करता है, इसलिए अन्दर जा सकता है, ऐसा नहीं है। यह बड़ा विवाद है न अभी। बारहवीं गाथा का आधार दिया है। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, पण्डित जयचन्दजी ने लिखा है न, उसका आधार दिया है। फिर आधार दिया है सोनगढ़ के हिम्मतलाल ट्रस्ट है, उसमें यह लिखा हुआ है, देखो! वह तो क्या कहा? निश्चय होता है, तब ऐसा व्यवहार उसे होता है। परन्तु इससे व्यवहार से निश्चय हो, ऐसा कहीं वहाँ कहा नहीं। समझ में आया? प्रश्न है न यह दूसरे भाग में। यह जवाब दिया है। देखो! १२वीं गाथा में पण्डित जयचन्द्रजी लिखते हैं, वह हिम्मतभाई ने छपाया है। हिम्मतलाल, सोनगढ़ के हिम्मतलाल। ये हिम्मतभाई। आहाहा! ऐसा कि उसमें से उससे हो शुभभाव से, ऐसा कहा है उसमें, ऐसा (वे) कहते हैं। वह साधन है, जब तक सिद्ध न हो, तब तक यह साधन करना। सम्यग्दर्शन न पावे, तब तक यह साधन करना। यह तो एक होता है और (वहाँ से) हटकर स्व का आश्रय लेने से उसे सम्यग्दर्शन होता है; और सम्यग्दर्शन के पश्चात् भी बाकी शुभ रहता है, उसमें से हटकर स्थिर हो, तब चारित्र होता है। आहाहा! ऐसा कठिन काम है, भाई! आहाहा!

प्राणायाम अभ्यासकर मन को रोक के चिद्रूप में लगाते हैं, जब यह लग गया, तब मन और पवन सब स्थिर हो जाते हैं। शुद्धोपयोगियों की दृष्टि एक शुद्धोपयोग पर हो,.... आहाहा! शुभउपयोग हो, पंच परमेष्ठी हो, नमस्कार हो, णमोकार आदि परन्तु उसका लक्ष्य शुद्ध उपयोग के ऊपर है। इससे होगा, ऐसा नहीं। समझ में आया? शुभोपयोग

होता है, उसकी दृष्टि अन्तर में जाना है, यह बात है। परन्तु उससे जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! बड़े श्रद्धा में पहले...

मुमुक्षु : शुद्धोपयोग का साधक शुभोपयोग कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहा जाता है उपचार से। छोड़ता है और अन्त में होता है, इसलिए कहा जाता है। उसका लक्ष्य छोड़े तब होता है। उससे होता है? अज्ञानी मानता है ऐसा। वह तो व्यवहार से कहा है। समकिती को शुभोपयोग में नजदीकपना शुद्ध उपयोग है, इसलिए शुभ उपयोग छोड़कर शुद्ध होगा, ऐसा उसे कहने में आता है, ऐसा है। मोक्षमार्गप्रकाशक में सातवें अध्याय में है। समझ में आया? वह तो जिसकी दृष्टि में शुभराग हेय है, ऐसा आत्मा का अनुभव हुआ है, उसे वह शुभराग में जब आता है, तो फिर उसे छोड़कर शुद्ध में जायेगा, ऐसा कहा है। आहाहा! क्योंकि शुद्ध में जाने के समय अन्तिम अशुभभाव नहीं होता, ऐसा। अन्तर शुद्ध में जाने के लिये अन्तिम अशुभ नहीं होता। वह शुभ होता है, वहाँ से हटकर जाता है; इसलिए वहाँ से उसे व्यवहार से कहा। आहाहा! क्या हो?

एक शुद्धोपयोग पर हो,.... इस शुभोपयोग के प्रवर्तनेवाले को भी धर्मी की दृष्टि शुद्धोपयोग पर है। **पातंजलिमत की तरह थोथी वायुधारणा नहीं है।** अकेली वायु धारणा करे पातंजलि में। **जो वायुधारणा से ही शक्ति होवे, तो वायुधारणा करनेवालों को उस दुःषमकाल में मोक्ष क्यों न होवे?** वायु धारणा को करे... करे। वायु की धारणा करनेवाला जंगल में बाबा आदि। **कभी नहीं होता। मोक्ष तो केवल स्वभावमयी है। 'केवल स्वभावमयी है।'** आहाहा! मोक्ष तो अकेला स्वभावमय है। उस स्वभाव से स्वभावमय प्राप्त होता है। वह विभाव से प्राप्त नहीं होता। अभी जिसके ज्ञान में ठिकाना नहीं, उसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसके अन्तर में जाये कहाँ से? यह १६२ (गाथा) हुई।

गाथा - १६३

अथ-

२८६) मोहु विलिज्जइ मणु मरइ तुट्टइ सासु-णिसासु।
केवल-णाणु वि परिणमइ अंबरि जाहँ णिवासु।।१६३।।

मोहो विलीयते मनो म्रियते त्रुट्यति श्वासोच्छ्वासः।
केवलज्ञानमपि परिणमति अम्बरे येषां निवासः।।१६३।।

मोहु विलिज्जइ इत्यादि। मोहु मोहो ममत्वादिविकल्पजालं विलिज्जइ विलयं गच्छति मणु मरइ इहलोकपरलोकाशाप्रभृतिविकल्पजालरुपं मनो म्रियते। तुट्टइ नश्यति। कोडसौ। सासु-णिसासु अनीहितवृत्त्या नासिकाद्वारं विहाय क्षणमात्रं तालुरन्ध्रेण गच्छति पुनरप्यन्तरं नासिकया कृत्वा निर्गच्छति पुनरपि रन्ध्रेणेत्युच्छ्वासनिः श्वासलक्षणो वायुः। पुनरपि किं भवति। केवल-णाणु वि परिणमइ केवलज्ञानमपि परिणमति समुत्पघते। येषां किम्। अंबरि जाहं णिवासु रोगद्वेषमोहरुपविकल्पजालशून्यं अम्बरे अम्बरशब्दवाच्ये शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरुपे निर्विकल्पत्रिगुप्तिगुप्तपरमसमाधौ येषां निवास इति। अयमत्र भावार्थः। अम्बरशब्देन शुद्धाकाशं न ग्राह्यं किंतु विषयकषायविकल्पशून्यः परमसमाधिर्ग्राह्यः, वायुशब्देन च कुम्भकरेचकपूरकादि-रुपो वायुनिरोधो न ग्राह्यः किंतु स्वयमनीहितवृत्त्या निर्विकल्पसमाधिबलेन दशमद्वारसंज्ञेन ब्रह्मरन्ध्रसंज्ञेन सूक्ष्माभिधानरुपेण च तालुरन्ध्रेण योडसौ गच्छति स एव ग्राह्यः तत्र। यदुक्तं केनापि-''मणु मरइ पवणु जहिं खयहं जाइ। सव्वंगइ तिहुवणु तहिं जि ठाइ। मूढा अंतरालु परियाणहि। तुट्टइ मोहजालु जइ जाणहि।।'' अत्र पूर्वोक्तलक्षणमेव मनोमरणं ग्राह्यं पवनक्षयोडपि पूर्वोक्तलक्षण एव त्रिभुवनप्रकाशक आत्मा तत्रैव निर्विकल्पसमाधौ तिष्ठतीत्यर्थः। अन्तरालशब्देन तु रागादिपरभावशून्यत्वं ग्राह्यं न चाकाशे ज्ञाते सति मोहजालं नश्यति न चान्याद्दशं परकल्पितं ग्राह्यामित्यभिप्रायः।।१६३।।

आगे फिर परमसमाधि का कथन करते हैं-

परम समाधि में जो बसते उनका मोह नष्ट हो शीघ्र।
अम्बर में करते निवास अरु केवलज्ञान प्रगट हो शीघ्र।।१६३।।

अन्वयार्थ :- [येषां] जिन मुनिश्वरों का [अंबरे] परमसमाधि में [निवासः] निवास

है, उनका [मोहः] मोह [विलीयते] नाश को प्राप्त हो जाता है, [मनः] मन [म्रियते] मर जाता है, [श्वासोच्छ्वासः] श्वासोच्छ्वास [त्रुट्यति] रुक जाता है, [अपि] और [केवलज्ञानम्] केवलज्ञान [परिणमति] उत्पन्न होता है।

भावार्थ :- दर्शनमोह और चारित्रमोह आदि कल्पना-जाल सब विलय हो जाते हैं, इस लोक परलोक आदि की वाँछा आदि विकल्परुप मन स्थिर हो जाता है, और श्वासोच्छ्वासरुप वायु रुक जाती है, श्वासोच्छ्वास अवाँछीकपने से नासिका के द्वार को छोड़कर तालुछिद्र में होकर निकलते हैं, तथा कुछ देर के बाद नासिका से निकलते हैं। इस प्रकार श्वासोच्छ्वासरुप पवन वश हो जाता है। चाहे जिस द्वार से निकालो। केवलज्ञान भी शीघ्र ही उन ध्यानी मुनियों के उत्पन्न होता है, कि जिन मुनियों का राग-द्वेष-मोहरुप विकल्पजाल से रहित शुद्धात्मा का सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणरुप निर्विकल्प त्रिगुप्तमयी परमसमाधि में निवास है। यहाँ अम्बर नाम आकाश का अर्थ नहीं समझना, किन्तु समस्त विषय-कषायरुप विकल्प-जालों से शून्य परमसमाधि लेना। और यहाँ वायु शब्द से कुंभक पूरक रेचकादिरुप वाँछापूर्वक वायुनिरोध न लेना, किन्तु स्वयमेव अवाँछिक वृत्ति पर निर्विकल्पसमाधि के बल से ब्रह्मद्वार नामा सूक्ष्म छिद्र जिसको तालुवे का रंध्र कहते हैं, उसके द्वारा अवाँछिक वृत्ति से पवन निकलता है, वह लेना। ध्यानी मुनियों के पवन रोकने का यत्न नहीं होता है, बिना ही यत्न के सहज ही पवन रुक जाता है, और मन भी अचल हो जाता है, ऐसा समाधि का प्रभाव है। ऐसा दूसरी जगह भी कहा है, कि जो मूढ है, वे तो अम्बर का अर्थ आकाश को जानते हैं, और जो ज्ञानीजन हैं, वे अम्बर का अर्थ परमसमाधिरुप निर्विकल्प जानते हैं। सो निर्विकल्प ध्यान में मन मर जाता है, पवन का सहज ही विरोध होता है, और सब अंग तीन भुवन के समान हो जाता है। जो परमसमाधि को जाने, तो मोह टूट जावे। मन के विकल्पों का मिटना वही मन का मरना है, और वही श्वास का रुकना है, जो कि सब द्वारों से रुककर दशवें द्वार में से होकर निकले। तीन लोक का प्रकाशक आत्मा को निर्विकल्पसमाधि में स्थापित करता है। अंतराल शब्द का अर्थ रागादि भावों से शून्यदशा लेना आकाश का अर्थ न लेना। आकाश के जानने से मोह-जाल नहीं मिटता, आत्मस्वरुप के जानने से मोह-जाल मिटता है। जो पातञ्जलि आदि परसमय में शून्यरुप समाधि कही है, वह अभिप्राय नहीं लेना, क्योंकि जब विभावों की शून्यता हो जावेगी तब वस्तु का ही अभाव हो जाएगा।।१६३।।

गाथा-१६३ पर प्रवचन

१६३। **आगे फिर परमसमाधि का कथन करते हैं—** १६३।

२८६) **मोहु विलिज्जइ मणु मरइ तुट्टइ सासु-णिसासु।**
केवल-णाणु वि परिणमइ अंबरि जाहँ णिवासु।।१६३।।

तीन बोल कहे। जिसका अम्बर में वास है।

अन्वयार्थ—जिन मुनिश्वरों का.... विशेष बात ली है न ठेठ। एकदम केवलज्ञान हो, उसकी बात ली है। '**अंबरे**' अर्थात् **परमसमाधि में निवास है,....** अम्बर... अम्बर अर्थात् आकाश। निर्मल परिणति उसे यहाँ अम्बर—आकाश कहा है। **जिन मुनिश्वरों का परमसमाधि में....** आकाश में निवास है। **उनका मोह नाश को प्राप्त हो जाता है,....** आहाहा! परम विज्ञानघन है परन्तु उसका भरोसा, प्रतीति आये बिना स्थिर कहाँ से हो? आहाहा! (समयसार गाथा) १७-१८ में कहा है न कि उसकी प्रतीति यह वस्तु पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानघन है, उसका जहाँ अनुभव हुआ, उसकी प्रतीति हुई। प्रतीति में यह आया कि उसमें जितना स्थिर होगा, उतने कर्म खिरेंगे, अशुद्धता जायेगी। तब उसे श्रद्धा में यह आता है। ज्ञाता-दृष्टा भगवान आत्मा का जहाँ भान हुआ, तब भान की प्रतीति में यह आया कि इसमें स्थिर होऊँगा, उतना राग घटेगा। समझ में आया? जितना पर का आश्रय लूँगा, उतना आस्रव होगा और उसमें जो स्थिर होऊँगा, आहाहा! आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उस क्रिया की जिसे खबर नहीं, वे सब थोथे बाहर की क्रिया और वायु-फायु और ढींकणा है। समझ में आया?

मोह नाश को प्राप्त हो जाता है, मन मर जाता है, श्वासोच्छश्वास रुक जाता है,.... '**त्रुट्यति**' आहाहा! **और केवलज्ञान उत्पन्न होता है।** यह शब्द क्या है? '**त्रुट्यति**' **रुक जाता है,....** फिर कोष्ठक में क्या है? '**अपि**' है? ठीक। रुक गया है, वह अक्षर छूट गया है। '**अपि**' यह ... है। वह केवलज्ञान '**अपि**' आहाहा! एकदम पूर्ण दशा की प्राप्ति के लिये यह की है। जलहल ज्योति केवलज्ञान, उसे जहाँ अन्तर में समाधि अर्थात् निर्विकल्पदशा शुद्ध उपयोग में जहाँ स्थिर होता है, आहाहा! वहाँ मोह मरता है, मन

गलता है, श्वास रुक जाता है। उसे रोकना पड़ता नहीं, तोड़ना पड़ता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्तर के आनन्दस्वरूप में जहाँ लीन होता है, उसे मोह नाश होता है, मन मर जाता है, श्वास रुक जाता है। आहाहा! कहो, देवजीभाई! कहते थे न भाई, यह हमारा नासिका का क्या कहा? कल कहते थे। वाँचा है न। वाँच है, हों! यह परमात्मप्रकाश और सब वहाँ। पूछते थे कल कि यह नासिका का ऐसा वाँचा तब क्या होगा यह? यह तो वाँचा है। यह तुमने वाँचा हो, उसकी खबर भी न हो कि किस जगह नासिका है। ऐई! पोपटभाई! यह वाँचा था उसमें ऐसा आया था कि इस नासिका में श्वास जाये, ऐसे जाये, वैसे जाये। कहा, इसने वाँचा है। वाँचना तो चाहिए न घर में निवृत्ति लेकर। पाप की बहियाँ पूरे दिन फिराया करता है। दुकान के धन्धे में न बैठे तो भी लड़के को सब पूछ लेता है कि क्या है? क्या है? सब हाथ में रखता है। पतंग।

मुमुक्षु : पतंग नहीं। पतंग का डोरा रखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पतंग का डोरा रखा, इसका अर्थ है। आहाहा!

मुमुक्षु : पतंग तो कारखाने में उड़ती हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ में डोरा रखे, फिर ध्यान रखे। कैसे हुआ? कैसे नहीं हुआ? कितना आया?

मुमुक्षु : रिपोर्ट देनी चाहिए न शाम को।

पूज्य गुरुदेवश्री : रिपोर्ट दे उसके बाप को। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ आत्मा में राग कितना गया, राग कितना रहा? उसकी रिपोर्ट उसे लेनी चाहिए न आत्मा को। आहाहा! तेरा धन्धा तो कहाँ है, बापू! बाहर का धन्धा तो कर नहीं सकता। उसके नाम से पाप करता है। ...क्षण में चला गया। कल। नहीं? मुसलमान था न! कहीं गये होंगे तो बराबर शरीर में ठीक नहीं, आये। आये तब तो ठीक था। फिर आज समाचार आये होंगे अधिक। छह बजे उठा था। आठ बजे दूसरी बार गया। आहाहा! अब कितने डॉक्टर होंगे उसके पास? बड़ा राष्ट्रपति, वह डॉक्टर और दवायें। आहाहा! धूल भी काम नहीं आता तेरा। आहाहा!

मुमुक्षु : वे डॉक्टर कुछ....

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टरों ने धूल, डॉक्टर भी क्या करे वहाँ? स्वयं भी मर जाते हैं न! ऐई! धर्मचन्दजी! डॉक्टर मर जाते हैं या नहीं? आत्मा नहीं मरता परन्तु जिसे डॉक्टर कहते हैं, वह शरीर मर जाता है। आहाहा! छोटी उम्र ७५ वर्ष, ७२-७२।

मुमुक्षु : ७२ वह छोटी उम्र?

पूज्य गुरुदेवश्री : ७२ छोटी कहलाये न तुम्हारे हिसाब से तो। यहाँ ७२ है, ऐसा कहता था। १३ वर्ष का अन्तर। १३ कितना, वह तो बहुत हुआ। २३ वर्ष का अन्तर। यहाँ ८७ और ७२—१५ वर्ष का अन्तर। आहाहा! वह नहीं था भाई अपने गोण्डल में? मूँछवाला। नेमिचन्दभाई का पुत्र ८० वर्ष का।

मुमुक्षु : चन्दुभाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे दोनों आते, पिता-पुत्र व्याख्यान में। उसे ९८ वर्ष की उम्र—पिता को ९८ वर्ष की उम्र। और ...ऐसा था। ८० कुछ कहते थे तब। व्याख्यान में आवे। दोनों व्यक्ति आवे व्याख्यान में।

मुमुक्षु : चन्दुभाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह नाम क्या?

मुमुक्षु : नेमचन्द कोठारी। वे हमारे दादा के मित्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पिता-पुत्र उन्हें ८० और ९८। अब ८० वर्ष का हो, तब तो ६५। ६० वर्ष का हो वह ४० वर्ष का और ४० वर्ष का हो उसे २०। आहाहा! अरे... अरे...! संसार का.... आहाहा! नेमचन्द कोठारी थे बड़ी मूँछोंवाले।

यहाँ कहते हैं कि परन्तु भगवान! एक बार सुन! तेरा नाथ अन्दर पूर्ण विराजता है। उसकी ओर का झुकाव तुझे होने से मोह मर जायेगा, मन मर जायेगा, मन टल जायेगा और श्वासोच्छ्वास रुक जायेगा। उसे रोकना नहीं पड़ेगा। आहाहा! अस्ति तत्त्व ऐसा है। यह लोग ऐसा कहते हैं न! क्या कहलाता है वह? रजनीश। विकल्प से शून्य हो जाओ, शून्य हो जाओ। परन्तु शून्य होकर किसमें शून्य हो? किसके आश्रय में जाये तो शून्य हो? पहली सीढ़ी में चढ़े पैर उठाया नीचे से, परन्तु पैर रखे बिना पैर उठाना

किसमें ? कहाँ रखना है वहाँ से रखने से पहले उठे कैसे ? नीचे गिरेगा। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! ऐसे अस्तितत्त्व भगवान पूर्णानन्द, वह तो बात नहीं होती और ऊपर की बातें ऐसे करो और वैसे करो। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा स्वयं शुद्ध चैतन्यघन का अस्तित्व-अस्ति-मौजूदगी-सत्ता उसकी पूरी पड़ी है। आहाहा! उसका आश्रय लेने से अर्थात् कि उसमें लीन होने से मोह गल जाता है, मोह नहीं रहता। यहाँ सावधान हो गया, इसलिए पर की सावधानी का भाव नाश हो जायेगा, ऐसा कहते हैं। स्वरूप में जहाँ सावधान हुआ, परसन्मुख का सावधानपना नाश हो जाता है। स्वरूप में जहाँ स्थिर हुआ, वह श्वास भी उसके कारण से निकल जाती है और नासिका द्वारा निकल जाती है। श्वास अपने आप रुक जाती है। **और केवलज्ञान उत्पन्न होता है।** आहाहा!

भावार्थ—दर्शनमोह... भ्रमणा—पुण्य और पाप के भाव मेरे और पुण्य परिणाम से मुझे धर्म होगा, ऐसी जो भ्रमणा दर्शनमोह **और चारित्रमोह...** अस्थिरता। राग और द्वेष में इष्ट-अनिष्ट को देखकर, मानकर जो राग-द्वेष होते हैं, वह **आदि कल्पना-जाल...** वह सब कल्पना जाल है। आहाहा! पुण्य-पाप के भाव वे सब कल्पना जाल है, स्वभावभाव नहीं। आहाहा! **सब विलय हो जाते हैं,....** आहाहा! भगवान चिदानन्द प्रभु, उसकी ओर की लीनता करने से मोह नाश हो जाता है। इसके अतिरिक्त कोई मोह नाश होने का उपाय दूसरा नहीं है। आहाहा!

इस लोक-परलोक आदि की वांछा आदि विकल्परूप मन स्थिर हो जाता है,.... लो! मोह मर जाता है, उसकी पहली बात की। **विकल्पजाल मन स्थिर हो जाता है, इस लोक-परलोक आदि की वांछा....** इच्छा। आहाहा! इस लोक में मेरी महत्ता कोई माने, महत्ता गिनती में मुझे ले, वह सब विकल्प की जाल। आहाहा! और **परलोक आदि की वांछा....** यहाँ से मरकर जायें तो कहीं अच्छे स्थान में उपजें, ऐसी विकल्प की जाल। आहाहा! उससे मन स्थिर हो जाता है। ऐसा मन है, वह स्थिर हो जाता है।

और श्वासोच्छ्श्वासरूप वायु रुक जाती है, श्वासोश्वास अवांछिकपने से नासिका के द्वार को छोड़कर तालुछिद्र में होकर निकलते हैं। अपने आप जाता है।

तथा कुछ देर के बाद नासिका से निकलते हैं। इस प्रकार श्वासोच्छश्वास पवन वश हो जाता है। चाहे जिस द्वार से निकलो। केवलज्ञान भी शीघ्र ही उन ध्यानी मुनियों के उत्पन्न होता है,.... केवलज्ञान, अकेला ज्ञानपिण्ड प्रभु, उसके ध्यान में जाने से केवलज्ञान हो जाता है। जैसा अन्दर केवल एक ज्ञान है, वैसी ही पर्याय में अकेला पूर्ण ज्ञान हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो वीतराग मार्ग है, बापू! राग के... यह मार्ग दूसरा है। आहाहा!

मुनियों के उत्पन्न होता है, कि जिन मुनियों का राग-द्वेष-मोहरूप विकल्पजाल से रहित शुद्धात्मा का सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप निर्विकल्प त्रिगुप्तिमयी परमसमाधि में निवास है। लो, यह निवास कहा न! आहाहा! जिन मुनियों का अन्दर में निवास। आया न पहला शब्द? अम्बर अर्थात् भगवान निर्विकल्प समाधि। **त्रिगुप्तिमयी परमसमाधि में निवास है।** मन और वचन की ओर का झुकाव छूट गया। अकेला भगवान आनन्द का नाथ, उसके अवलम्बन में गया, लीन हुआ। आहाहा! लो, यह केवलज्ञान और मोक्ष होने की कला। बाकी सब बातें हैं। अपवास किये और उसे तपस्या कहलाये और उससे निर्जरा कहलाये। वह अपवास-बपवास नहीं, वह तो सब अपवास—बुरे हैं। उपवास—भगवान आनन्दस्वरूप में उप अर्थात् समीप में। जो दूर बसता था, वह समीप में बसे, उसे उपवास कहते हैं। आहाहा! ऐसी व्याख्या।

निर्विकल्प है न? **शुद्धात्मा का सम्यक् श्रद्धान....** स्वरूप परमात्मा अपना स्वरूप, उसकी श्रद्धा—सम्यक् श्रद्धा। जैसा स्वरूप है, वैसी यथार्थ प्रतीति; ज्ञान और उसका ज्ञान। शुद्धात्मस्वरूप है, उसका ज्ञान। आहाहा! दूसरा ज्ञान नहीं। शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र का ज्ञान करके अभिमान करे कि हमको आता है। वह तो सब मिथ्यात्व में फँस गया है। आहाहा! वह ज्ञान ही नहीं। आत्मा शुद्धात्मा का ज्ञान, वह ज्ञान है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? शुद्धात्मा का ज्ञान, आहाहा! और शुद्धात्मा का आचरण। शुद्धस्वरूपी भगवान पूर्ण आनन्द का दल है। जैसे बर्फ की बड़ी, क्या कहलाती है? शिला। मुम्बई में होती है न, ट्रक में जाती हो। बड़ी बर्फ की खुल्ली। क्योंकि वह तो पिघले नहीं कहीं एकदम। आहाहा! इसी प्रकार यह भगवान आनन्द की शिला है। अतीन्द्रिय आनन्द की शुद्ध शिला।

आहाहा! ऐसे वह पिघले नहीं, कहते हैं। वह पूरी चीज़ है, वह पर्याय में आती नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें!

शुद्धात्मा का श्रद्धान, शुद्धात्मा का ज्ञान, शुद्धात्मा का आचरणरूप, वह आचरण चारित्र का लेना। **निर्विकल्प त्रिगुप्तिमयी परमसमाधि में निवास है।** आहाहा! '**चरित्तदंसणणाणठिदो**' आयी है न (समयसार) दूसरी गाथा? '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' जीव शुद्ध आनन्दघन की प्रतीति, ज्ञान और रमणता में स्थिर हुआ, आहाहा! उसे जीव कहते हैं, उसे स्वसमय कहते हैं। ऐसा कहा न? '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण। पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं**' राग में रुके हुए जीव को परसमय अनात्मा जान। आहाहा! इसमें वाद-विवाद कहाँ... शास्त्र के कथन व्यवहार के बहुत आवे। ...पूजा, भक्ति से... है कौन? यह नहीं कहा इसमें? प्रभु! अभव्य तुमको नहीं नमता। जिसे राग की रुचि है, वह वीतराग को नहीं नमता। आहाहा! समझ में आया? तुमको तो प्रभु! वीतरागी दृष्टिवाला तुमको नमता है। जिसे वीतरागपना सुहाता है, वह वीतराग को नमता है। परन्तु जिसे राग सुहाता है, वह वीतराग को कैसे नमे? बाहर से भले कहे परन्तु वास्तव में अन्दर में वीतरागभाव को नमता नहीं। आहाहा! वह तो शुभराग के प्रेम की मिठास में पड़ा है। आहाहा! वह आपको नहीं नमता। आहाहा! राग के रसिया को, वह तुम्हारे आता है न विवाह में? 'नहिं नमे रे, नहिं नमे मोटाना' ऐसा सुना था खुशालभाई के विवाह में। यह दूसरी बार विवाह हुआ न! गढडे। बारात आयी, हमे मोटाना... कौन... आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ, उसका लड़का अर्थात् दृष्टिवन्त, वह राग को नहीं नमता, वह राग का आदर नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? हो, परन्तु जिसे... ७२ की बात है। ७२ के वर्ष की बात है। २८ और २३ कितने हुए? ६१। ६१ वर्ष पहले की बात है। पहली बाई मर गयी थी। दूसरी विवाह करने आये थे। आहाहा! तीन लोक का नाथ जिसे आत्मा प्रतीति में, अनुभव में आया, वह बड़े का लड़का, वह राग को नहीं नमेगा, राग का आदर नहीं करेगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आता है, यह विवाह में करते हैं। बनिया गाते होंगे, किसान भी गाते होंगे। सब करते होंगे। सबके घर में चूल्हे में राख ही होती है न! बाहर की कहावत समान ही होती है न!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! **निर्विकल्पसमाधि के बल से....** आहाहा! यहाँ तो विषय कहा न! परम समाधि में निवास। **यहाँ अम्बर नाम आकाश का अर्थ नहीं समझना,....** आकाश नहीं लेना ऐसा कि यहाँ। आहाहा! **किन्तु समस्त विषय-कषायरूप विकल्प-जालों से शून्य....** गुण-गुणी के भेदवाले विकल्प से भी शून्य। आहाहा! दया, दान, व्रत के विकल्प से तो शून्य, परन्तु भगवान पूर्णानन्द है, उसके गुण हैं अनन्त और वह गुणी है, ऐसा जो भेद का विकल्प है, उससे शून्य। आहाहा! **परम समाधि लेना।** अम्बर का अर्थ ऐसा लेना। परम शान्ति। जिसमें विकल्प की जाल नहीं, उसका नाम अम्बर। जैसे आकाश में मलिनता नहीं, वैसे भगवान आत्मा की परिणति में विकल्प नहीं, उसे आम्बर में निवास कहा जाता है। आहाहा!

और यहाँ वायु शब्द से कुम्भक पूरक रेचकादिरूप वांछापूर्वक वायुविरोध न लेना, किन्तु स्वयमेव अवांछिक वृत्ति पर निर्विकल्पसमाधि के बल से.... आहाहा! है न? **ब्रह्म द्वार नामा सूक्ष्म छिद्र.... ध्यानी मुनियों के पवन रोकने का यत्न नहीं होता है,....** उसे कुछ रोकने का नहीं होता। समझ में आया? **बिना यत्न के सहज ही पवन रुक जाता है, और मन भी अचल हो जाता है,....** आहाहा! मन मर जाता है। उसमें आया है न? पद्मनन्दि पंचविंशति नहीं? स्तुति में आया था न? ऋषभदेव भगवान की स्तुति में। प्रभु! यह मन क्यों बाहर भटकता है? कि अन्दर में जाये तो मर जायेगा, इसलिए बाहर भटका करता है। जीवित तो रहूँ। पद्मनन्दि में आता है। ऋषभस्तोत्र। आहाहा! क्योंकि यदि अन्दर में जाऊँगा तो मैं मर जाऊँगा, मुझे मार डालेंगे। बाहर भटका करूँ तो जीवित तो रहूँ। आहाहा! आहाहा! **ऐसा समाधि का प्रभाव है।** मन भी अचल हो जाता है।

ऐसा दूसरी जगह भी कहा है कि जो मूढ़ है, वे तो अम्बर का अर्थ आकाश को जानते हैं,.... कहाँ का है, खबर नहीं, लिखा नहीं। **और जो ज्ञानीजन हैं, वे अम्बर का अर्थ परमसमाधिरूप निर्विकल्प जानते हैं।** आहाहा! आत्मा के ध्यान में निर्विकल्पता प्राप्त हो, इसका नाम अम्बर है। आहाहा! इसका नाम आकाश। चैतन्य भगवान की लीनता अन्दर में हो, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, निर्विकल्प समाधि, समाधि अर्थात् शान्ति, उसे यहाँ अम्बर अर्थात् आकाश कहने में आता है। है न यहाँ, **जो ज्ञानीजन हैं, वे**

अम्बर का अर्थ परमसमाधिरूप निर्विकल्प जानते हैं। सो निर्विकल्प ध्यान में मन मर जाता है, पवन का सहज ही निरोध होता है,... निरोध। विरोध होता है, उसके बदले निरोध भाषा है। विरोध कहा? विरोध होता है, परन्तु निरोध चाहिए। क्या शब्द है?

मुमुक्षु : विरोध।

पूज्य गुरुदेवश्री : विरोध खोटा है, निरोध चाहिए।

पवन का सहज ही निरोध होता है, और सब अंग तीन भुवन के समान हो जाता है। आहाहा! तीन भुवन का नाथ तीन भुवन से इस जगत से निराला शरीर से। आहाहा! ऐसी लीनता हो, उसे अल्प काल में केवलज्ञान होता है। समझ में आया? अकेला स्वभाव प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **सब अंग तीन भुवन के समान हो जाता है।** भिन्न। आहाहा! **जो परमसमाधि को जाने....** लोगस्स में आता है। समाहिवरमुत्तमदिंतु नहीं आता? पोपटभाई! यह समाहिवर... परन्तु अर्थ का कब भान था वहाँ? पहाड़ बोलते रहते थे। ...है। लोगस्स में आता है न! ऐई! रतिभाई! लोगस्स में नहीं आता? समाहिवरमुत्तमदिंतु एवं विहुयरयमला, परन्तु अर्थ किसे खबर? हाँक रखे गाड़ियाँ।

नहीं कहा था वह विहुयरयमला का? स्थानकवासी की वृद्धा थी, वह संघवी के विरुद्ध में थे वे। सामायिक करने बैठे, उसमें यह आया विहुईरयमला। लोगस्स में, हों! तब उसे उन विशाश्रीमाली का विरोध, इसलिए विहा रोई मर्या, इसमें आता है। परन्तु यह विशा को और अपने को विरोध है, वह यहाँ लोगस्स में कहाँ से आया? विशा रोई मळ्या, दशाश्रीमली को और विशाश्रीमाली को विरोध। बेचारे कुछ भान नहीं होता। लेकर बैठे रेत की घड़ी (Sand Clock) ....४८ मिनिट हो गये, हो गयी सामायिक। आहाहा! हमारे यहाँ वृद्धा बहुत थी वहाँ किसान गली में ... अपने घर। वे सब शाम को बैठे, लेकर बैठे, देखा बहुत बार। आहाहा! लोगस्स आया तो कहे, विशारोईमला, ऐसा कहे। परन्तु उसमें विशा रोई मळया परन्तु उसमें नहीं होता। देखो तो सही अर्थ। विहुईरयमला है। हे नाथ! आपने आत्मा के आनन्द से विहुई अर्थात् टाले हैं, रय—कर्मरूपी रज और मल, रागरूपी भावकर्म। भावकर्म मलिनता और द्रव्यकर्म जड़, उन्हें विहुई अर्थात् टाले हैं। विहुई—विशेष हुई धूल, पक्षी जैसे खिरा डालते हैं ऐसे रज को।

लीलाधरभाई! ऐसा अर्थ भी किया नहीं कभी। यह तो जिज्ञासु हैं, वे आये हैं न! ऐसा मार्ग है। मुझे दूसरा कहना था यह समाहिवरमुत्तमदिंतु। यह समाधि कौन सी? यह समाधि। यह तो आत्मा में निर्विकल्परूप से विकल्परहित होकर स्थित, वह समाधि। वे बाबा करें, वह समाधि नहीं। लोगस्स में आता है यह श्वेताम्बर में। सामायिक करे न, तब यह आता है। पहले णमोकार... फिर इच्छामि पडिक्कमणुं, पश्चात् तस्सउत्तरी, पश्चात् लोगस्स और पश्चात् करेमि भंते, पश्चात् णमोत्थुणं। भाषा है उनकी।

मुमुक्षु : सामायिक बँधे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सामायिक बँधे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि उसे समाधि कहना। आहाहा! समझ में आया? **जो परमसमाधि को जाने, तो मोह टूट जावे।** आहाहा! वे बाबा समाधि चढ़ावे, वह नहीं, हों! यह तो आत्मा भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो कहा, ऐसा जो आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध, उसमें राग टलकर स्वरूप में स्थिर होने से निर्विकल्पदशा हो, उसे यहाँ शान्ति और समाधि कहते हैं। आहाहा! वह समाहिवरमुत्तमदिंतु। हे भगवान! मुझे शान्ति की प्रधानता का फल दो। वर दो। वर अर्थात् फल। वरदान कहते हैं न? भगवान के पास वरदान माँगते हैं। लोगस्स में आता है न! आहाहा! सिद्धासिद्धि मम दिंसतु, आता है अन्त में। हे सिद्ध भगवान! मुझे सिद्धपना दिखलाओ। इसका अर्थ कि मैं केवलज्ञानी होऊँ, तब मुझे सिद्धपद दिखेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें भगवान....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....निमित्त का कथन ऐसा ही होता है न! दे क्या? उसे कहाँ अर्थ की खबर है। हाँक रखे गाड़ियाँ। ऐसा का ऐसा जीवन मर जाता है, हो गया चले जाओ। कौवे और कुत्ते के अवतार। आहाहा! गजब है न! यहाँ बड़े हजारों राजा और लोग पूछते हों खम्मा... खम्मा। माँस खाता हो, (तो) मरकर नरक में जाये, बापू! आहाहा! अरेरे! एक क्षण में यहाँ पलंग पर सोता हो और लोग हवा करते हों। दूसरे क्षण में नरक में जाये, बापू! आहाहा! चिल्लाहट मचाये। भाई! उसके रोग और उसके दुःख, रोते देख सकते नहीं, ऐसे उसके दुःख। समझ में आया? आहाहा! ऐसे दुःखों में

अनन्त बार गया है। अनन्त काल भूतकाल व्यतीत किया, भाई! अब तुझे दुःख से मुक्त होना हो तो यह पंथ है। आहाहा! शुद्धस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु, उसे राग और विकल्प से रहित करके शान्ति, समाधि अकषाय निर्विकल्प समाधि करना, वह उसका उपाय है। दुःख से मुक्त होने का दूसरा कोई उपाय है नहीं। शास्त्र में व्यवहार आता है। दोनों मोक्षमार्ग हैं, ऐसा कहे। परन्तु एक तो आरोपित है और एक यथार्थ है। आरोपित है, उसे भी यथार्थ मोक्ष का मार्ग मान ले। आहाहा! समझ में आया?

दशवें द्वार में से होकर निकले। तीन लोक का प्रकाशक आत्मा को निर्विकल्प-समाधि में स्थापित करता है। आहाहा! **अन्तराल शब्द का अर्थ रागादि भावों से शून्यदशा लेना....** अन्तराल है न? संस्कृत में है। उसमें है। उस श्लोक का आधार दिया, उसमें है। श्लोक का आधार दिया है न, उसमें है। '**अन्तरालशब्देन**' उसमें है। **अन्तराल शब्द का अर्थ रागादि भावों से शून्यदशा लेना, आकाश का अर्थ न लेना। आकाश के जानने से मोह-जाल नहीं मिटता, आत्मस्वरूप के जानने से मोह-जाल मिटता है।** परद्रव्य का ज्ञान करे तो विकल्प होता है। **जो पातंजलि आदि परसमय में शून्यरूप समाधि कही है, वह अभिप्राय नहीं लेना,....** 'एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानं' अर्थात् अन्दर एकाग्र हो, परन्तु एकाग्र किसमें? एकाग्र हो। वह चिन्ता निरोधो ध्यानं। यहाँ तो एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानं। अस्ति करके नास्ति आयी। उसमें तो अकेली नास्ति, चिन्ता रोक दो। परन्तु चिन्ता रोके कब? आहाहा!

मुमुक्षु : बड़ा अन्तर।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा पूर्व-पश्चिम का अन्तर। अन्दर अस्तिपना, वह तो आनन्दकन्द का ज्ञान हो, उसमें रोके, वह उसका नाम स्थिरता है। आहाहा! उसका नाम एकाग्रता है। तब चिन्ता-विकल्प रुक जाते हैं। वह अकेला चिन्ता निरोधो ध्यानं, ऐसा कहते हैं पातंजलि। एकाग्र चिन्ता निरोधा ध्यानं, यह जैन का वाक्य है। आहाहा! जैन परमेश्वर ने तो वस्तु की स्थिति जैसी है, उस प्रकार से देखी और जानी है न सर्वज्ञ ने? उसने तो कल्पित बातें, अपनी कल्पना से खड़ी की हुई बातें करे। वह कहीं नहीं चलता सत्य में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना ... है वह।

क्योंकि जब विभावों की शून्यता हो जावेगी, तब वस्तु का ही अभाव हो जायेगा। '**जब विभावों की शून्यता हो जावेगी....**' अर्थात् वस्तु का अभाव हो जाये। पर की, हों! अपना स्वभाव स्थिर हो जाये। यदि अकेले विकल्प का अभाव माने तो वस्तु का अभाव हो जाये। वस्तु तो दृष्टि में आती नहीं। अकेला विकल्प रोके, विकल्प... वस्तु का अभाव हो जाये। वस्तु तो रहती नहीं। परन्तु वस्तु को दृष्टि में रखकर और विकल्प को रोको, तो वस्तुस्थिति खड़ी होती है। समझ में आया? यह कहते हैं। **क्योंकि जब विभावों की शून्यता हो जावेगी तब वस्तु का ही अभाव हो जायेगा।** क्योंकि वस्तु तो दृष्टि में है नहीं। चिन्ता को रोका, परन्तु किसमें जाकर रोकना? विकल्प शून्य होंगे तो वस्तु का अभाव होगा। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ को दृष्टि में लेने से अन्दर जाने से जो विकल्प छूट जाये, तब वस्तु में एकाग्रता हो, उसे यहाँ धर्मध्यान और मोक्ष का समाधिमार्ग कहा जाता है। आहाहा! १६३ हुई। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

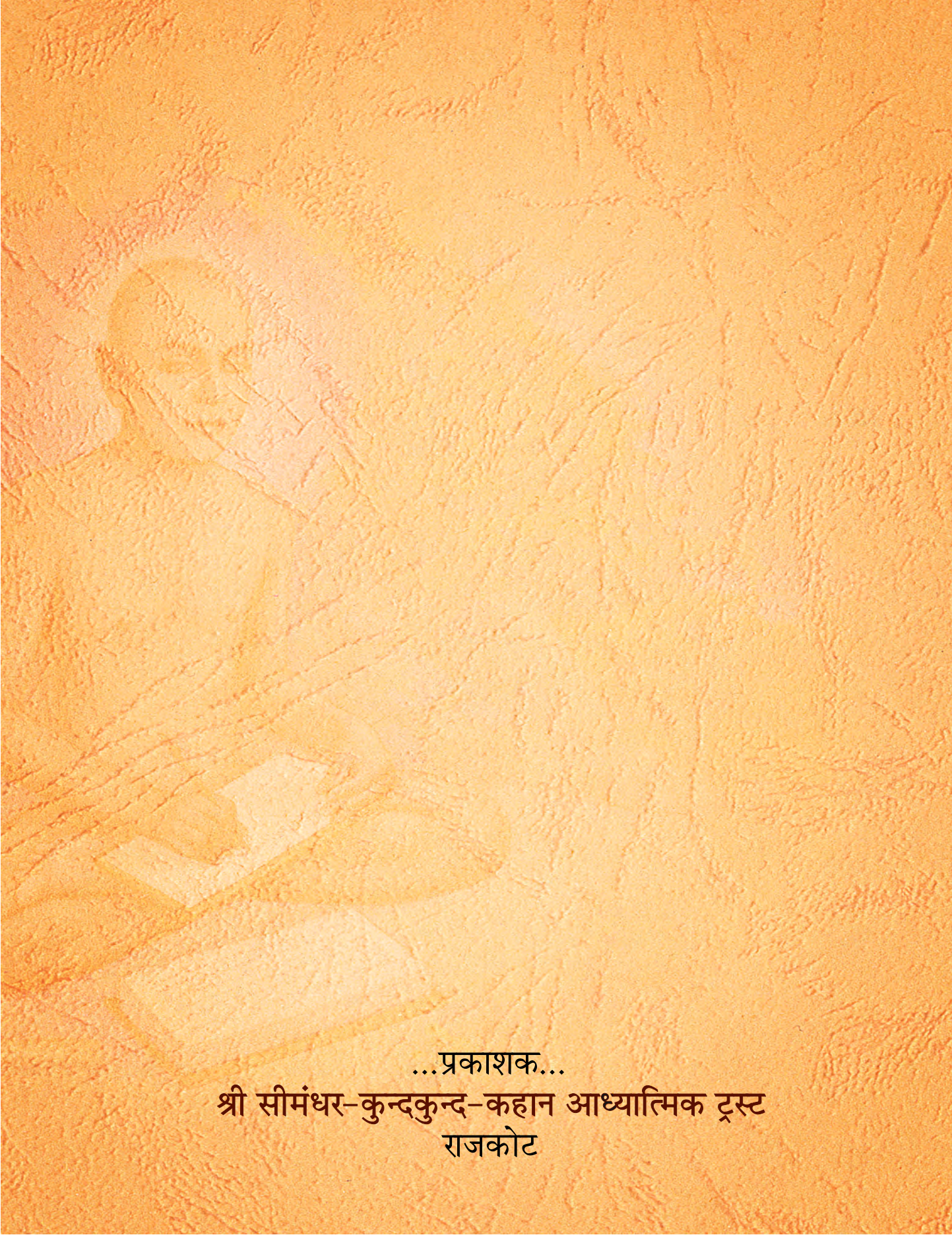

...प्रकाशक...
श्री सीमंधर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट
राजकोट